विश्वम्भर

❀ श्री श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रो जयति ❀

❀ श्री श्री चैतन्य भागवत ❀

अन्त्य खण्ड—प्रथमोऽध्यायः

अवतीर्णौ स्वकारुण्यौ परिछिन्नौ सदीश्वरौ। श्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ द्वौ भ्रातरौ भजे ॥१॥

नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथसुताय च। सभृत्याय सपुत्राय सकलत्रायते नमः ॥ २ ॥

जय जय श्रीकृष्ण चैतन्य लक्ष्मीकान्त। जय जय नित्यानन्द-वल्लभ-एकान्त ॥१॥

जय जय वैकुंठ-ईश्वर न्यासिराज। जय जय जय श्रीभकत समाज ॥२॥

जय जय पतितपावन गौरचन्द्र। दान देह' हृदये तोमार पद-द्वन्द्व ॥३॥

"जय जय शेष-रमा-अज-भव नाथ। जीव प्रतिकर' प्रभु शुभ दृष्टि पात" ॥४॥

शेषखण्ड़-कथा भाइ शुन एक-चित्ते। नीलाचले गौरचन्द्र आइला येमते। ॥५॥

करिया सन्यास वैकुण्ठेर अधीश्वर। से रात्रि आछिला प्रभु कन्टक-नगर ॥६॥

करिलेन मात्र प्रभु सन्यास-ग्रहण। मुकुन्देरे आज्ञा हैल करिते कीर्तन ॥७॥

'बोल बोल' वलि प्रभु आरम्भिला नृत्य। चतुर्दिगे गाइते लागिला सब भृत्य ॥८॥

श्वास, हास, श्वेद, कम्प, पुलक, हुंकार। ना जानि कतेक हय अनन्त विकार ॥९॥

कोटि-सिंह-प्राय येन विशाल गर्जन। आछाड़ देखिते भय पाय सर्वजन ॥१०॥

कोन् दिगे दण्ड़ कमण्ड़लु वा पड़िल। निज प्रेमे वैकुंठेर पति मत्त हैल ॥११॥

नाचिते नाचिते प्रभु गुरुरे धरिया। आलिंगन करिलेन बड़ तुष्ट हैया ॥१२॥

पाइया प्रभुर अनुग्रह-आलिङ्गन। भारतीर विष्णुभक्ति हइल तखन ॥१३॥

लक्ष्मीकान्त श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २ और नित्यानन्द के एकान्त वल्लभ की जय हो ॥ १ ॥ वैकुण्ठ ईश्वर सन्यासीराज की जय हो २ और आपके श्रीभक्त समाज की जय हो, जय हो ॥ २ ॥ पतित-पावन गौरचन्द्र की जय हो २, आप अपने चरण-कमलों को हमारे हृदय में प्रदान करो ॥३॥ शेष-रमा-ब्रह्मा-शिव के नाथ की जय हो २, हे प्रभो ! जीवों पर आप शुभ दृष्टिपात करो ॥ ४ ॥ अरे भाइयो शेष खण्ड की कथाओं को एकाग्र चित्त से सुनो, जिस प्रकार नीलाचल में गौरचन्द्र आये ॥ ५ ॥ सन्यास करके वैकुण्ठ-नायक उस रात्रि को कन्टक नगर (काटोया) में ही रहे ॥ ६ ॥ प्रभु ने सन्यास मात्र ग्रहण करते ही मुकुन्द को कीर्तन करने की आज्ञा दी ॥ ७ ॥ "बोलो-बोलो" कहकर प्रभु ने नृत्य आरम्भ किया तब चारों ओर से सब भृत्य गाने लगे ॥ ८ ॥ श्वास-हास-श्वेद-कम्प-पुलक-हुङ्कार आदि न जाने कितने अनन्त विकार हो रहे हैं ॥ ९ ॥ कोटि सिंहों के तुल्य जैसे विशाल गर्जना करते थे तथा पछाड़ों को देखते ही सब लोग डर गये ॥ १० ॥ न जाने दण्ड कमण्डलु किस ओर गिरे, वैकुंठनाथ तो निज प्रेम में मत्त हो रहे थे ॥११॥ नाचते-नाचते गौरचन्द्र ने गुरुजी को पकड़ लिया और बड़े सन्तुष्ट होकर आलिङ्गन किये ॥ १२ ॥ गौरचन्द्र के

पाक दिया दण्ड़ कमण्डलु दूरे फेलि । सुकृति भारती नाचे हरि हरि वलि ॥१४॥
वाह्य दूरे गेल भारतीर प्रेम रसे । गड़ा गड़ि जाय वस्त्र ना सम्वरे शेषे ॥१५॥
भारतीरे कृपा हैल प्रभुर देखिया । सर्व-गण 'हरि' वोले डाकिया डाकिया ॥१६॥
सन्तोषे गुरुर सङ्गे प्रभु करे नृत्य । देखिया परम सुखे गाय सव भृत्य ॥१७॥
चारि-वेदे ध्याने यारे देखिते दुष्कर । तांर सङ्गे साक्षाते नाचये न्यासिवर ॥१८॥
केशव-भारती-पाये वहु नमस्कार । अनन्त-ब्रह्माण्ड़-नाथ शिष्य-रूपे जार ॥१९॥
एइमत सर्व-रात्रि गुरुर संहति । नृत्य करिलेन वैकुण्ठेर अधि पति ॥२०॥
प्रभात हइले प्रभु वाह्य प्रकाशिया । चलिलेन गुरु-स्थाने विदाय करिया ॥२१॥
"अरण्ये प्रविष्ट मुञि हइमू सर्वथा । प्राण नाथ मोर कृष्णचन्द्र पाङ यथा" ॥२२॥
गुरु वोले "आमिह चलिव तामा सङ्गे । थाकिव तोमार सङ्गे सङ्कीर्तन-रङ्गे ॥२३॥
कृपा करि प्रभु सङ्गे लइलेन ताने । अग्रे गुरु करिया चलिया प्रभु वने ॥२४॥
तवे चन्द्रशेखर-आचार्य कोले करि । उच्चस्वरे कान्दिते लागिला गौर हरि ॥२५॥
"गृहे चल तुमि सर्व-वैष्णवेर स्थाने । कहिआ सभारे आमि चलिलाङ वने ॥२६॥
गृहे चल तुमि-दुःख ना भाविह मने । तोमार हृदये आमि वन्दी सर्वक्षणे ॥२७॥
तुमि आर पिता मुञि नन्दन तोमार । जन्म जन्म तुमि प्रेम-संहति आमार ॥२८॥
एतेक वलिया ताने ठाकुर चलिला । मूर्च्छागत हइ चन्द्रशेखर पड़िला ॥२९॥

अनुग्रह रूप आलिङ्गन को पाते ही उसी समय भारती जी को विष्णु भक्ति हो गई ॥ १३ ॥ फेरी देकें दंड-कमण्डलु को दूर फेंककर सुकृति केशव भारती ने हरि २ कहकर नृत्य किया ॥ १४ ॥ प्रेमातिरेक में—केशव भारतीजी का वाह्य ज्ञान दूर चला गया और अन्त में वस्त्रों को न सँभार सके आप लोट-पोट होने लगे॥१५॥ ऐसा देखकर भारती के ऊपर प्रभु की कृपा हुई और सब भक्तवृन्द ऊँचे स्वर से हरि-हरि कह रहे हैं ॥१६॥ गुरु के साथ बड़े सन्तोष से गौरचन्द्र नाच रहे हैं और सब दास बड़े सुख से गान कर रहे हैं ॥ १७ ॥ चार वेदों द्वारा जिसको ध्यान में देखना दुष्कर है आज साक्षात् रूप में उसी के साथ न्यासिवर नाच रहे हैं ॥१८॥अनन्त ब्रह्माण्डनाथ जिसके शिष्य हैं ऐसे केशव भारती के चरणों को अनन्त कोटि नमस्कार है॥१९॥ इस प्रकार बैकुण्ठनाथ ने गुरु के साथ सब रात्रि नृत्य किया॥२०॥प्रभात होते ही प्रभु ने वाह्य ज्ञान प्रकाश किया और गुरु के स्थान से बिदा होकर चल दिये ॥ २१ ॥ आप कहने लगे—मैं सर्वथा बन में प्रवेश करूँगा जिससे मैं प्राणनाथ कृष्णचन्द्र को प्राप्त करलूँ ॥ २२ ॥ गुरु ने कहा मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा जिससे तुम्हारे साथ संकीर्तनानन्द में रहूँ ॥ २३ ॥ प्रभु ने कृपा करके उनको भी साथ ले लिया । गुरुजी को आगे करके प्रभु वन को चले हैं ॥ २४ ॥ तब गौरहरि चन्द्रशेखर आचार्य की जेट भरकर ऊँचे स्वर से रोने लगे ॥ २५ ॥ तुम घर को जाओ और सब वैष्णवों के स्थानों में कह देना कि मैं वन को चला गया हूँ ॥ २६ ॥ तुम घर को जाकर मनमें दुःख मत पाना मैं तो तुम्हारे हृदय में सदा ही बन्दी हूँ ॥ २७ ॥ तुम मेरे पिता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ तथा तुम मेरे जन्म-जन्म के प्रेम सहचर हो ॥ २८ ॥ उनसे इस प्रकार कहकर

कृष्णेर अचिन्त्य शक्ति बूझने ना याय । अतएब से विरहे प्राण रक्षा पाय ॥३०॥
क्षणेके चैतन्य पाइ श्रीचन्द्रशेखर । नवद्वीप-प्रति तिंहों गेलेन सत्त्वर ॥३१॥
भक्तगणे कहिल प्रभुर जत कथा । शुनिञा भक्त गण मने भावे व्यथा ॥३२॥
तवे नवद्वीपे चन्द्रशेखर आइला । सभा स्थाने कहिलेन "प्रभु वने गेला" ॥३३॥
श्रीचन्द्रशेखर-मुखे शुनि भक्तगण । अतिनादे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥३४॥
शुनिञा हइला मात्र, अद्वैत मूर्छित । प्राण नाहि देह, प्रभु पड़िला भूमित ॥३५॥
शची देवी शोके रहिलेन जड़ हैया । कृत्रिम पुतली येन आछे दाण्डाइया ॥ ३६ ॥
भक्त पत्नी सब यत पतिव्रता गण । भूमिते पड़िया सभे करेन क्रन्दन ॥ ३७ ॥
कोटि मुख हइलेओ से सब विलाप । वर्णिते ना पारि तां सभार अनुताप ॥ ३८ ॥
अद्वैत बोलये 'मोर ना रहे जीवन' । विदरे पाषाण काष्ठ शुनिसे क्रन्दन ॥ ३९ ॥
अद्वैत बोलये 'आर कि कार्य जीवने । से-हेन ठाकुर मोर छाड़िल यखने ॥ ४० ॥
प्रविष्ट हइमू आजि सर्वथा गङ्गाय । दिने लोक धरिबेक, चलिमूँ निशाय' ॥ ४१ ॥
एइ मत विरहे सकल भक्तगण । सभार हइल बड़ि चित्त उच्चाटन ॥ ४२ ॥
कोन मते चित्ते केहो स्वास्थ्य नाहि पाय । देह एड़िवारे सभे निरवधि चाय ॥ ४३ ॥
यद्यपिह सभेइ परम-महा-धीर । तभो केहो कारो करिवारे नारे स्थिर ॥ ४४ ॥
भक्तगण देह त्याग भाविला निश्चय । जानि सभा प्रबोधि आकाश वाणी हय ॥ ४५ ॥

गौरचन्द्र चल-दिये तब चन्द्रशेखर मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ २९ ॥ देखो कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति समझ में नहीं आती सो उस विरह में भी प्राण-रक्षा हो गई ॥ ३० ॥ कुछ क्षण में श्रीचन्द्रशेखरजी चैतन्य होकर शीघ्र नवद्वीप की ओर चल दिये ॥ ३१ ॥ जाकर भक्तवृन्दों से प्रभु के सब प्रसंग कहे, सुनते ही भक्तों के मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ३२ ॥ इस प्रकार चन्द्रशेखर नवद्वीप में आगे और सब भक्तों के स्थान में कहा कि गौरचन्द्र वन को चले गये ॥ ३३ ॥ भक्तवृन्द चन्द्रशेखर के मुख से यह सुनकर आर्तस्वर से रुदन करने लगे ॥ ३४ ॥ सुनते ही तुरन्त अद्वैत प्रभु मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और देह में प्राण नहीं रहे ॥३५॥ शचीदेवी शोक से जड़ होकर खड़ी रह गई, जैसे कृत्रिम (बनावटी) पुतली खड़ी हो ॥ ३६ ॥ पतिव्रता शिरोमणि सब भक्त पत्नियाँ भूमि पर गिर पड़ीं और क्रन्दन करने लगीं ॥ ३७ ॥ करोड़ों मुख होने पर भी उन सब का विलाप, अनुताप वर्णन नहीं हो सकेगा ॥ ३८ ॥ श्रीअद्वैत ने कहा कि मेरा जीवन नहीं रहेगा, उस रोने को सुनकर पाषाण व काष्ठ भी विदीर्ण होते थे॥३९॥अद्वैत ने कहा और जीवन का क्या काम है, जबकि ऐसे दयालु प्रभु मेरे को छोड़ गये ॥ ४० ॥ मैं आज ही गङ्गा में प्रवेश करूँगा, सो दिन में लोग पकड़ लेंगे उससे रात्रि को चलूँगा ॥४१॥ इस प्रकार प्रभु के विरह में सब भक्तवृन्दों के चित्त में बड़ा उच्चाटन हुआ ॥ ४२ ॥ किसी प्रकार से चित्त में कोई भी स्वस्थता को नहीं पाते व निरन्तर सब लोग देह छोड़ने की ही निरन्तर इच्छा करते थे ॥ ४३ ॥ यद्यपि सब लोग बड़े महाधीर थे तथापि कोई किसी को स्थिर नहीं कर पाता था ॥ ४४ ॥ भक्तवृन्दों ने देह त्याग करने का निश्चय कर लिया ऐसा जानकर सबको प्रबोध करने

दुःख ना भाविह अद्वैतादि-भक्तगण। सभे सुखे कर कृष्णचन्द्र-आराधन ॥ ४६ ॥
सेइ प्रभु एइ दिन-दुइ-चारि ब्याजे। आसिया मिलिब तोमा सभार समाजे ॥ ४७ ॥
देह त्याग केहो किछु ना भाविह मने। पूर्ववत सभे विहरिवा प्रभु-सने ॥ ४८ ॥
शुनिञा आकाशवाणी महा-भक्तगण। देह त्याग प्रति सभे छाड़िलेन मन ॥ ४९ ॥
करि अवलम्बन प्रभुर गुण नाम। शची वेढ़ि भक्तगण थाके अविराम ॥ ५० ॥
तवे गौरचन्द्र सन्यासीर चूड़ामणि। चलिला पश्चिम-मुखे करि हरि ध्वनि ॥ ५१ ॥
नित्यानन्द गदाधर मुकुन्द संहति। गोविन्द पश्चाने, आगे केशव भारती ॥ ५२ ॥
चलिलेन मात्र प्रभु मत्त-सिंह-प्राय। लक्ष कोटि लोक पाछे पाछे कान्दि जाय ॥ ५३ ॥
चतुर्दिगे वन भाङ्गि लोक सब धाय। सभारे करेन प्रभु कृपा अमायाय ॥ ५४ ॥
सभे घर याह लह गिया हरि नाम। सभार हउक कृष्णचन्द्र धन प्राण ॥ ५५ ॥
ब्रह्मा-शिव-शुकादि ये रस वाञ्छा करे। हेन रस हउ तोमा सभार शरीरे ॥ ५६ ॥
वर शुनि सर्वलोक कान्दे उच्च स्वरे। पर वश-प्राय सभे आइलेन घरे ॥ ५७ ॥
राढ़े आसि गौरचन्द्र हइला प्रवेश। अद्यापिह सेइ भाग्ये धन्य राढ़-देश ॥ ५८ ॥
राढ़-देश भूमि यत देखिते सुन्दर। चतुर्दिगे अश्वत्थ-मण्डली मनोहर ॥५९॥
स्वभाव-सुन्दर स्थान शोभे गावी गणे। देखिया आविष्ट प्रभु हय सेइ क्षणे ॥ ६० ॥

के लिए आकाशवाणी हुई ॥ ४५ ॥ हे अद्वैतादि भक्तवृन्द ! सब लोग सुख से कृष्णचन्द्र का आराधन करो ॥ ४६ ॥ और वे ही गौरचन्द्र दो-चार दिन के अनन्तर तुम सब की समाज में आकर मिल जावेंगे ॥४७॥ कोई कभी देह त्याग करने का मनमें विचार न करना, कारण कि पहिली तरह सब प्रभु के साथ विहार करोगे ॥ ४८ ॥ श्रेष्ठ भक्तवृन्दों ने आकाशवाणी सुनकर देह त्याग करने का विचार छोड़ दिया ॥ ४९ ॥ भक्तवृन्द प्रभु के गुण तथा नाम का अवलम्बन करते हुए शचीदेवी को घेरकर रात्रि दिन रहने लगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर सन्यासी शिरोमणि श्रीगौरचन्द्र हरि ध्वनि करते २ पश्चिम को मुख करके चलने लगे ॥ ५१ ॥ आगे केशव भारती और पीछे नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द तथा गोविन्द संग में थे ॥ ५२ ॥ मत्त सिंह के तुल्य गौरचन्द्र के मात्र चलते ही लाखों करोड़ों लोग ऐसे हुए पीछे २ जो चलने लगे ॥५३॥ सब लोग चारों ओर से वन को भेद करके दौड़े आये, प्रभु गौरचन्द्र ने निष्कपट रूप से सब पर कृपा की ॥ ५४ ॥ सब अपने २ घरों को जाओ और हरिनाम लो तुम सब का प्राण-धन कृष्णचन्द्र हो ॥ ५५ ॥ ब्रह्मा-शिव-शुकादि जिस प्रेमरस की वाञ्छा करते हैं वह प्रेमरस तुम सबके शरीर में हो ॥ ५६ ॥ वरदान सुनकर सब लोग ऊँचे स्वर से रोने लगे और परमवश की भाँति सब अपने घर को आये ॥ ५७ ॥ गौरचन्द्र ने आकर राढ़ देश में प्रवेश किया उसी भाग्य से राढ़ देश आज भी धन्य है ॥ ५८ ॥ राढ़ देश की जहाँ तक भूमि है वह देखने में सुन्दर है, जिसके चारों ओर अश्वत्थ (पीपल) मण्डली कैसी मनोहर लग रही है ॥ ५९ ॥ ऐसे प्राकृत सुन्दर स्थान है, गौओं के झुण्ड शोभा दे रहे हैं, जिन्हें देखते ही तत्क्षण प्रभु आविष्ट हो गये थे

'बोल बोल' वलि प्रभु आरम्भिला नृत्य । चतुर्दिगे गाइते लागिला सब भृत्य ।। ६१ ।।
हुङ्कार गर्जन करे वैकुण्ठेर राय । जगतेर चित्तवृत्ति शुनि शोध पाय ।। ६२ ।।
एइ मत प्रभु धन्य करि राढ़-देश । सर्व पथे चलि लेन करि नृत्या वेश ।। ६३ ।।
प्रभु बोले 'वक्रेश्वर' आछेन ये बने । तथाइ याइमूँ मुञि थाकिमूँ निर्जने ।। ६४ ।।
एतेक वलिया प्रेमावेशे चलियाय । नित्यानन्द-आदि सब पाछे पाछे धाय ।। ६५ ।।
अद्भुत प्रभुर नृत्य, अद्भुत कीर्तन । शुनि मात्र धाइया आइसे सर्वजन ।। ६६ ।।
यद्यपिह कोन देशे नाहि संकीर्तन । केहो नाहि देखे कृष्ण प्रेमेर क्रन्दन ।। ६७ ।।
तथापि प्रभुर देखि अद्भुत क्रन्दन । दण्डवत् हइया पड़ये सर्व जन ।। ६८ ।।
तथि-मध्ये केहो केहो परम पामर । तारा बोले 'एत केने कान्देन विस्तर'' ।। ६९ ।।
सेहो सब जन एवे प्रभुर कृपाय । सेइ प्रेम स्मङरिया कान्दे गड़ियाय ।। ७० ।।
सकल भुवन एवे गाय गौरचन्द्र । तथापिह सबे नाहि गाय भूतवृन्द ।। ७१ ।।
श्रीकृष्णचैतन्य-नामे विमुख ये जन । निश्चय जानिह सेइ पापी भूतगण ।। ७२ ।।
हेन मते नृत्य-रसे वैकुण्ठेर नाथ । चलिया यायेन सर्व-भक्त वर्ग-साथ ।। ७३ ।।
दिन-अवशेषे प्रभु एक धन्य ग्रामे । रहिलेन पुण्यवन्त-ब्राह्मण आश्रमे ।। ७४ ।।
भिक्षा करि महाप्रभु करिला शयन । चतुर्दिगे वेढ़िया शुइला भक्तगण ।। ७५ ।।
प्रहर-खानेक निशा थाकिते ठाकुर । सभा छाड़ि पलाइया गेला कथो दूर ।। ७६ ।।

।।६०।।गौरचन्द्र बोलो २ कहकर नृत्य करने लगे तथा उनके चारों ओर सब सेवकगण गान करने लगे ।।६१।। वैकुण्ठनाथ हुङ्कार गर्जन करने लगे, जिसे सुनकर जगत् की चित्तवृत्ति शुद्ध हो गई ।। ६२ ।। इस प्रकार प्रभु राढ़ देश को धन्य करते हुए पूरे मार्ग भर आवेश में नाचते हुए चलने लगे ।। ६३ ।। प्रभु ने कहा जिस वन में वक्रेश्वर (महादेव) हैं, मैं वहीं जाकर निर्जन स्थान में रहूँगा ।। ६४ ।। इस प्रकार कहकर प्रभु प्रेमावेश में चले जा रहे थे तथा नित्यानन्द आदि सब पीछे २ दौड़ रहे थे ।। ६५ ।। प्रभु के अद्भुत कीर्तन नृत्य को मात्र सुनते ही सब लोग दौड़कर आते थे ।।६६।। यद्यपि संकीर्तन किसी देश में नहीं होता था और न किसी ने कृष्ण प्रेम में रोना ही देखा है तथापि प्रभु के अद्भुत रुदन को देखकर सब लोग दण्डवत् प्रणाम करते थे।।६७-६८।।उनमें भी जो कोई २ अति पामर (नीच) थे वे कहते थे कि इतना अधिक क्यों रोते हैं ? ।।६९।। तब वे भी सब लोग प्रभु की कृपा से उस प्रेम का स्मरण करके रोते तथा लोट-पोट होते थे ।। ७० ।। इस समय सब भुवनवासी गौर गुणगान करते हैं, केवल भूतों के समूह ही नहीं गाते ।। ७१ ।। श्रीकृष्णचैतन्य के नाम से जितने मनुष्य विमुख हैं निश्चय ही उन्हें पापी भूतगण जानो ।। ७२ ।। इस प्रकार बैकुंठनाथ सब भक्तवृन्दों के साथ नृत्यावेश में चले जा रहे थे ।। ७३ ।। दिन छिपने पर प्रभु ने एक धन्य ग्राम में एक पुण्य-वान ब्राह्मण के आश्रम में विश्राम किया ।। ७४ ।। भोजन करके महाप्रभु ने शयन किया तब भक्तवृन्द चारों ओर से उन्हें घेरकर सोये ।।७५।। गौरचन्द्र एक प्रहर रात्रि रहने पर सबको छोड़कर कुछ दूर भाग (पलायन)

शेषे सभे उठिया चाहेन भक्तगण । ना देखिया प्रभु सभे करेन क्रन्दन ॥७७॥
सर्व ग्राम विचार करिया भक्तगण । प्रान्तर-भूमिते तबे करिला गमन ॥ ७८ ॥
निज प्रेम-रसे वैकुण्ठेर अधीश्वर । प्रान्तरे रोदन करे करि उच्च स्वर ॥ ७९ ॥
कृष्ण रे प्रभु रे आरे कृष्ण मोर बाप । बलिया रोदन करे सर्व-जीव-नाथ ॥ ८० ॥
हेन से डाकिया कान्दे न्यासी चूड़ामणि । क्रोशेकेर पथ जाय रोदनेर ध्वनि ॥ ८१ ॥
कथो दूरे थाकिया सकल भक्तगण । शुनेन प्रभुर अति अद्भुत क्रन्दन ॥ ८२ ॥
चलि लेन सभे क्रन्दनेर अनुसारे । देखि लेन सभे प्रभु कान्दे उच्च स्वरे ॥ ८३ ॥
प्रभुर कान्दने कान्दे सर्व भक्तगण । मुकुन्द लागिला तबे करिते कीर्तन ॥ ८४ ॥
शुनिञा कीर्तन प्रभु लागिला नाचिते । आनन्दे गायेन सभे बेढ़ि चारि भिते ॥ ८५ ॥
एइ मत सर्व-पथे नाचिया नाचिया । यायेन पश्चिम-मुखे आनन्दित हैया ॥ ८६ ॥
क्रोश-चारि सकले आछेन वक्रेश्वर । सेइ स्थाने फिरि लेन श्रीगौरसुन्दर ॥ ८७ ॥
नाचिया यायेन प्रभु पश्चिमाभिमुखे । पूर्व-मुख पुन हइलेन निज सुखे ॥ ८८ ॥
पूर्व मुखे चलिया यायेन नृत्य रसे । अन्तर-आनन्दे प्रभु अट्ट अट्ट हासे ॥ ८९ ॥
बाह्य प्रकाशिया प्रभु निज कुतूहले । बलि लेन आमि चलिलाङ नीलाचले ॥९०॥
जगन्नाथ प्रभुर हइल आज्ञा मोरे । नीलाचले तुमि झाट आइस सत्वरे ॥ ९१ ॥
एत बलि चलिलेन हइ पूर्व-मुख । भक्तगण पाइलेन परानन्द सुख ॥९२॥

कर चले गये ॥ ७६ ॥ पीछे जब सब भक्त उठे तो ढूँढ़ने लगे तथा प्रभु को न देखकर सब क्रन्दन करने लगे ॥ ७७ ॥ भक्तवृन्दों ने सब गाम में अन्वेषण करके पीछे निर्जन प्रदेश (भूमि) में ढूँढ़ने के लिये गमन किया ॥ ७८ ॥ वैकुंठाधिपति अपने प्रेमरस से निर्जन भूमि में ऊँचे स्वर से रोदन कर रहे थे ॥ ७९ ॥ सब जीवों के नाथ (गौरचन्द्र) "अरे ओ कृष्ण अरे मेरे बाप" ऐसे बार २ कहकर रो रहे थे ॥ ८० ॥ सन्यासी चूड़ामणि (गौर) ऐसे ऊँचे स्वर से रोते थे कि रोने की ध्वनि मार्ग में एक कोस दूर तक सुनाई पड़ती थी ॥ ८१ ॥ सब भक्तवृन्द ने कुछ दूर पर ही प्रभु की अति विचित्र रोदन ध्वनि सुनी ॥ ८२ ॥ सब लोग रोदन की ओर चल दिये, पहुँचने पर सबने प्रभु को ऊँचे स्वर से रोते हुए ऐसे देखा ॥८३॥ प्रभु के रोने पर सब भक्त रोने लगे तब पीछे से मुकुन्द कीर्तन करने लगे ॥८४॥ कीर्तन सुनकर गौरचन्द्र नाचने लगे उनको चारों ओर घेरकर सब भक्तवृन्द भी गाने लगे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार मार्ग भर नाचते २ आनन्दित होकर पश्चिम को मुख करके जा रहे थे ॥ ८६ ॥ जब वक्रेश्वर (महादेव) केवल चार कोस रहे तभी श्रीगौरसुन्दर उसी स्थान से लौट पड़े ॥ ८७ ॥ गौरचन्द्र पश्चिमाभिमुख होकर नाचते जाते थे फिर अपने प्रेमानन्द सुख से पूर्व को मुख कर लिया ॥ ८८ ॥ पूर्व को मुख करके नृत्यावेश में चलने लगे और हृदय में आनन्दित होकर प्रभु अट्ट-अट्ट हँसने लगे ॥ ८९ ॥ गौरचन्द्र ने अचानक ही कुतूहल से बाह्य ज्ञान प्रकाश करके कहा कि मैं नीलाचल (जगन्नाथ) जाऊँगा ॥ ९० ॥ जगन्नाथ प्रभु की मुझे आज्ञा हुई है कि तुम नीलाचल-पुरी को शीघ्र ही चले जाओ ॥ ९१ ॥ ऐसे कहकर पूर्व को मुख करके चल दिये तथा भक्तवृन्द ने परानन्द

तान इच्छा तिंहो से जानेन सबे मात्र । तान अनुग्रहे जाने तान कृपापात्र ॥ ९३ ॥
कि इच्छाय चलि लेन वक्रेश्वर-प्रति । केनेवा ना गेला बूझे काहार शकति ॥ ९४ ॥
हेन बूझि, करि प्रभु वक्रेश्वर-व्याज । धन्य करि लेन सर्व राढेर समाज ॥ ९५ ॥
गंगा-मुख हइया चलिला गौरचन्द्र । निरवधि देहे निज प्रेमेर आनन्द ॥ ९६ ॥
भक्ति शून्य मर्व देश, ना जाने कीर्तन । कारो मुखे नाहि कृष्ण नाम-उच्चारण ॥ ९७ ॥
प्रभु बोले हेन देशे आइलाङ केने । 'कृष्ण' हेन नाम कारो ना शुनि वदने ॥ ९८ ॥
केने हेन देशे मुञि करिलूँ प्रयाण । ना राखिमू देह मुञि छाड़ों एइ प्राण ॥ ९९ ॥
हेनइ समये गरु राखे शिशु गण । तार मध्ये सुकृति आछये एक जन ॥ १०० ॥
हरि ध्वनि करिते लागिला आचम्बित । शुनिञा हइला प्रभु अति हरषित ॥ १०१ ॥
'हरि बोल' वाक्य प्रभु शुनि शिशु मुखे । विचार करिते लागिलेन महा सुखे ॥१०२॥
दिन-तिन-चारि यत देखिलाङ ग्राम । काहारो मुखेते ना शुनिलूँ हरि नाम ॥१०३॥
आचम्बिते शिशु मुखे शुनि हरि ध्वनि । कि हेतु इहार सभे कह देखि शुनि ॥१०४॥
प्रभु बोले 'गङ्गा कत दूर एथा हैते' । सभे बलिलेन 'एक प्रहरेर पथे ॥१०५॥
प्रभु बोले 'ए महिमा केवल गङ्गार । अतएव एथा हरिनामेर संचार ॥१०६॥
गङ्गार वातास किवा लागियाछे एथा । अतएव शुनिलाङ हरि-गुण-गाथा ॥१०७॥
गङ्गार महिमा व्याख्या करिते ठाकुर । गङ्गा-प्रति अनुराग वाढ़िल प्रचुर ॥१०८॥

सुख पाया ॥ ९२ ॥ उनकी इच्छा से ही उन्हें सब जान पाते हैं, उनके कृपापात्र भी उनके अनुग्रह से ही उन्हें जान पाते हैं ॥ ९३ ॥ किस इच्छा से वक्रेश्वर के प्रति गये और फिर किस निमित्त से नहीं गये, यह किस की सामर्थ्य है जो यह समझे ? ॥ ९४ ॥ समझ में यह आता है कि प्रभु ने वक्रेश्वर का छल करके सब राढ़ देश की समाज को धन्य कर दिया ॥ ९५ ॥ बिना रुके देह में निज प्रेम का आनन्द चल रहा था, इस प्रकार गौरचन्द्र गङ्गा की ओर मुख करके चले जा रहे थे ॥ ९६ ॥ किसी के मुख से कृष्ण नाम का उच्चारण नहीं होता सभी देश-भक्ति शून्य था कीर्तन जानते ही नहीं ॥ ९७ ॥ प्रभु ने कहा—"ऐसे देश में कैसे आ गया ? जहाँ कृष्ण नाम किसी के मुख से नहीं सुन पड़ता ? ॥ ९८ ॥ मैं ऐसा देश में क्यों आ गया ? अब मैं इस देह को नहीं रक्खूँगा तथा इन प्राणों को छोड़ दूँगा ॥ ९९ ॥ वहाँ उस समय गौ-रक्षक शिशु-वृन्दों के बीच में एक सुकृतिजन था (वह)॥ १०० ॥ अकस्मात् हरिध्वनि करने लगा सुनते ही गौरचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए ॥ १०१ ॥ प्रभु (गौरचन्द्र) बालक के मुख से हरि बोल शब्द सुनकर बड़े सुख पूर्वक विचार करने लगे कि ॥ १०२ ॥ तीन-चार दिन से जितने गाँव देखे वहाँ किसी के मुख से हरिनाम नहीं सुना ॥ १०३ ॥ अकस्मात् शिशु के मुख से हरिध्वनि सुनी है सो सब लोग विचार करके कहो कि इसका क्या हेतु है ? ॥१०४॥ प्रभु ने कहा कहो—"यहाँ से गङ्गा कितनी दूर है ?" तब सबने कहा "प्रभो ! एक पहर का मार्ग है"॥१०५॥प्रभु ने कहा "यह महिमा केवल गङ्गा की ही है इसी से यहाँ हरिनाम का चलन है"॥१०६॥ कारण कि गङ्गा की पवन यहाँ आकर ही लगा, उससे हरि गुणों की कथा सुन रहा हूँ ॥१०७॥ गङ्गा की

प्रभु बोले 'आजि आमि सर्वथा गङ्गाय । मज्जन करिव' एत वलि चलियाय ॥१०६॥
मत्त-सिंह-प्राय चलिलेन गौर सिंह । पाछे धाइलेन सब चरणेर भृङ्ग ॥११०॥
गङ्गा दरशनावेशे प्रभुर गमन । लाग नाहि पाय केहो यत भक्तगण ॥१११॥
सबे एक नित्यानन्दसिंह करि सङ्गे । सन्ध्या काले गङ्गा तीरे आइलेन रङ्गे ॥११२॥
नित्यानन्द सङ्गे करि गङ्गाय मज्जन । 'गङ्गा-गङ्गा' वलि वहु करिला क्रन्दन ॥११३॥
पूर्ण करि करिलेन गङ्गा जल पान । पुनः पुन स्तुति करि करेन प्रणाम ॥११४॥
'प्रेमरस स्वरूप तोमार दिव्य जल । शिव से तोमार तत्त्व जानेन सकल ॥११५॥
सकृत तोमार नाम करिले श्रवण । तार विष्णु भक्ति हय, कि पुन भक्षण ॥११६॥
तोमार प्रसादे से 'श्रीकृष्ण' हेन नाम । स्फुरये जीवेर मुखे, इथे नाहि आन ॥११७॥
कीट पक्षी श्रृगाल कुक्कुर यदि हय । तथापि तोमार यदि निकटे वसय ॥११८॥
तथापि ताहार यत भाग्येर उपमा । अन्यत्रेर कोटीश्वर नहे तार समा ॥११६॥
पतित तारिते से तोमार अवतार । तोमार समान तुमि वइ नाइ आर ॥१२०॥
एइ मत स्तुति करे श्रीगौरसुन्दर । शुनिआ जाह्नवी-देवी लज्जित-अन्तर ॥१२१॥
ये प्रभुर पादपद्मे बसति गङ्गार । से प्रभु करये स्तुति,-हेन अवतार ॥१२२॥
ये शुनये गौराङ्गेर गङ्गा-प्रति स्तुति । तार हय श्रीकृष्णचैतन्ये रति मति ॥१२३॥

महिमा की व्याख्या करते २ गौरचन्द्र का गङ्गा के प्रति विशेष अनुराग बढ़ गया ॥ १०८ ॥ प्रभु ने कहा आज मैं सर्वथा गङ्गा में मज्जन करूँगा ऐसे कहकर चलने लगे ॥ १०६ ॥ मत्त सिंह की तरह गौरसिंह चल रहे थे और पीछे २ सब चरणों के भृङ्ग (दास) दौड़े जा रहे थे ॥ ११० ॥ प्रभु का गमन गंगा दर्शन के आवेश में हो रहा था सो भक्तवृन्द में से कोई भी साथ नहीं चल पाता था ॥ १११ ॥ केवल एक नित्यानन्द सिंह का संग करके सन्ध्या के समय आनन्द से गंगा तट पर आये ॥ ११२ ॥ नित्यानन्द के साथ गंगा में मज्जन किया और गंगा-गंगा करकर बहुत क्रन्दन किया॥११३॥पेट भरकर गंगाजल पान किया और बार २ स्तुति करते हुए प्रणाम किया ॥ ११४ ॥ हे दिव्यजल तुम प्रेमस्वरूप हो केवल शिवजी ही तुम्हारे तत्त्व को पूरी तरह जानते हैं ॥ ११५ ॥ एक बार तुम्हारा नाम सुनने से ही विष्णु-भक्ति हो जाता है तो फिर जल-पान का फल तो और विशेष ही होगा ॥ ११६ ॥ तुम्हारी ही कृपा से श्रीकृष्ण नाम जीवों के मुख में स्फुरन होता है इसमें अन्यथा नहीं है ॥११७॥ कीड़ा,पक्षी,गीदड़, कुत्ता होकर भी यदि तुम्हारे निकट बसे ॥११८॥ तो भी उनके भाग्य की जितनी उपमा है दूसरी जगह कोटीश्वर भी उसके समान नहीं है ॥ ११६ ॥ पतितों को उद्धार करने के लिये ही तुम्हारा अवतार हुआ तुम्हारे समान तुम्हीं हो और दूसरा नहीं है ॥ १२० ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर स्तुति कर रहे थे जिसे सुनकर गंगादेवी हृदय में लज्जित हो रही थी ॥ १२१ ॥ जिन प्रभु के चरण-कमलों में गङ्गा का निवास है—इस अवतार में वे ही प्रभु (उसकी) स्तुति करते हैं॥१२२॥ गौरचन्द्र की गंगा के प्रति स्तुति को जो सुनेंगे उनकी श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र में प्रीति बुद्धि होगी ॥ १२३ ॥

नित्यानन्द-संहति से निशा सेइ-ग्रामे । आछिलेन कोन पुण्यवन्तेर आश्रमे ॥१२४॥
तवे आरदिने कथोक्षणे भक्त गण । आसिया प्रभुर पाइलेन दरशन ॥१२५॥
तवे प्रभु सर्व भक्तगण करि सङ्ग । नीलाचल- प्रति शुभ करिलेन रङ्ग ॥१२६॥
प्रभु बोले "शुन नित्यानन्द महामति । सत्वरे चलह तुमि नवद्वीप-प्रति ॥१२७॥
श्रीवासादि यत आछे भागवत गण । सभार करह गिया दुःख विमोचन ॥१२८॥
एइ कथा तुमि गिया कहिओ सभारे । आमि याइ नीलाचल चन्द्र देखिवारे ॥१२६॥
सभार अपेक्षा आमि करि शान्ति पुरे । रहिवाङ श्रीअद्वैत-आचार्येर घरे ॥१३०॥
ताँ सभा लइया तुमि आसिवा सत्वरे । आमि याइ हरिदासेर फुलिया नगरे ॥१३१॥
नित्यानन्दे पाठाइया श्रीगौर सुन्दर । चलिलेन महाप्रभु फुलिया-नगर ॥१३२॥
प्रभुर आज्ञाय महामल्ल नित्यानन्द । नवद्वीपे चलिलेन परम आनन्द ॥१३३॥
प्रेमरसे महामत्त नित्यानन्दराय । हुंकार गर्जन प्रभु करये सदाय ॥१३४॥
मत्त-सिंह-प्राय प्रभु आनन्दे विह्वल । विधि-निषेधेर पार बिहार सकल ॥१३५॥
क्षणेके कदम्ब वृक्षे करि आरोहण । बाजाय मोहन बेणु त्रिभङ्ग मोहन ॥१३६॥
क्षणेके देखिया गोष्ठे गड़ागड़ि याय । वत्स प्राय हइया गावीर दुग्ध खाय ॥१३७॥
आपना आपनि सर्व पथे नृत्य करे । वाह्य नाहि जाने डूबि आनन्द-सागरे ॥१३८॥
कखनो वा पथे बसि करेन रोदन । हृदय विदरे ताहा करिते श्रवण ॥१३६॥
कखनो हासेन अति महा अट्टहास । कखनो वा शिरे वस्त्र वान्धि दिगवास ॥१४०॥

महाप्रभु नित्यानन्द के साथ उस रात्रि को उसी गाँव में किसी पुण्यवान के आश्रम में रहे ॥१२४॥ तब दूसरे दिन कुछ देर पर भक्तवृन्द ने आकर प्रभु के दर्शन पाये ॥ १२५ ॥ तब गौरचन्द्र सब भक्तवृन्द साथ में लेकर आनन्द से नीलाचल के प्रति गमन किया ॥ १२६ ॥ प्रभु बोले–"हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले श्रीनित्यानन्दजो सुनो तुम शीघ्र नवद्वीप को चले जाओ ॥ १२७ ॥ वहाँ श्रीवास आदि जितने भक्तवृन्द हैं जाकर उन सबके दुख को दूर करो ॥ १२८ ॥ सबसे जाकर तुम यह कहना कि मैं नीलाचलचन्द्र के दर्शन के निमित्त जा रहा हूँ ॥ १२६ ॥ मैं सबकी अपेक्षा करके श्रीअद्वैत आचार्य के घर शान्तिपुर में ठहरूँगा ॥ १३० ॥ तुम उन सबको लेकर शीघ्र आ जाना अब मैं हरिदासजी के यहाँ फुलिया नगर को जाता हूँ ॥ १३१ ॥ श्रीमहाप्रभु नित्यानन्द को भेजकर फुलिया नगर को चल दिये ॥ १३२ ॥ प्रभु की आज्ञा पाकर महा मत्तमल्ल नित्यानन्दजी बड़े आनन्द से नवद्वीप को चले ॥ १३३ ॥ प्रेमरस में महा मतवाले श्रीनित्यानन्दराय सदा हुङ्कार-गर्जन करते रहते थे ॥ १३४ ॥ मत्तसिंह के तुल्य नित्यानन्दजी आनन्द में विह्वल थे उनका विहार सब विधि निषेध से परे था ॥ १३५ ॥ क्षण में ही कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर त्रिभङ्ग होकर मनमोहनी वंशी बजाने लगते थे तो ॥ १३६ ॥ दूसरे ही क्षण गोष्ठ को देखकर लोट-पोट होने लगते थे तथा बछड़ा के समान गौ का दूध पीने लगते ॥ १३७ ॥ अपने आप ही सब मार्ग में नृत्य करते जाते थे वाह्य ज्ञान नहीं था–आनन्द सागर में मग्न हो रहे थे ॥ १३८ ॥ अथवा कभी मार्ग में बैठकर ऐसा रुदन करते थे कि सुनते ही हृदय विदीर्ण

कखनो वा स्वानु भावे अनन्त आवेशे । सर्प-प्राय हइया गङ्गार स्रोते भासे ॥१४१॥
अनन्तेर भावे प्रभु गङ्गार भितरे । भासिया यायेन अति देखि मनोहरे ॥१४२॥
अचिन्त्य अगम्य नित्यानन्देर महिमा । त्रिभुवने अद्वितीय कारुण्येर सीमा ॥१४३॥
एइमत गङ्गा मध्ये भासिया भासिया । नवद्वीपे प्रभु-घाटे मिलिला आसिया ॥१४४॥
आपना सम्बरि नित्यानन्द-महाशय । प्रथमे उठिला आसि प्रभुर आलय ॥१४५॥
आसि देखे आइर द्वादश-उपवास । सबे कृष्ण शक्ति बले देहे आछे श्वास ॥१४६॥
यशोदार भावे आइ परम विह्वल । निरवधि नयने बहये प्रेमजल ॥१४७॥
यारे देखे आइ ताहारेइ वार्ता लय । मथुरार लोक कि तोमरा सब हय ॥ १४८ ॥
कह कह राम कृष्ण आछेन केमने । बलिया मूर्च्छित हइ पड़ये तखने ॥ १४९ ॥
क्षणे बोले आइ "ओइ शुनि शिङ्गा बाजे । अक्रूर आइला किवा पुन गोष्ठ माझे"॥१५०॥
एइ मत आइ कृष्ण-विरह-सागरे । डुबिया आछेन बाह्य नाहि कलेवरे ॥ १५१ ॥
नित्यानन्द महाप्रभु हेनइ समय । आइर चरणे आसि दण्डवत् हय ॥ १५२ ॥
नित्यानन्द देखि सब भागवत गण । उच्च स्वरे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥ १५३ ॥
"बाप-बाप" बलि आइ हइला मूर्च्छित । ना जानिये केवा वा पड़ये कोन्‌भित ॥१५४॥
नित्यानन्द महाप्रभु सभा करि कोले । सिंचिलेन सभार शरीर प्रेम जले ॥१५५॥
शुभ-वाणी नित्यानन्द कहेन सभारे । सत्त्वरे चलह सभे प्रभु देखिवारे ॥ १५६ ॥

हो जाता था ॥१३९॥ कभी बड़े जोर से अट्टहास करके हँसते थे अथवा कभी उत्तरीय वस्त्र उतारकर शिर पर बाँधकर दिगंबर (नग्न) हो जाते थे ॥१४०॥ और कभी अपने अनन्त स्वरूप के आवेश में सर्प के तुल्य होकर गङ्गा के प्रवाह में दिखाई पड़ते थे ॥ १४१ ॥ अनन्त भाव से नित्यानन्दजी गङ्गा के भीतर घुसते हुए देखने में अत्यन्त मनोहर लगते थे ॥ १४२ ॥ नित्यानन्द की महिमा चिन्तन बुद्धि के परे है, तीनों भुवनों में कारुण्य की सीमा है, उनके समान दूसरा नहीं है ॥ १४३ ॥ इस प्रकार गङ्गा के बीच में घुसे २ नवद्वीप में महाप्रभु घाट पर जाकर निकले ॥१४४॥ अपने को सँभाल कर (सम्वरन) करके श्रीमान् नित्यानन्द पहिले आकर महाप्रभु के घर पहुँचे हैं ॥ १४५ ॥ आकर देखा कि शची माता को बारह उपवास हो गये थे केवल कृष्ण शक्ति से ही देह में श्वास था ॥ १४६ ॥ शचीदेवी यशोदा के भाव में विह्वल हो रही थी और निरन्तर नेत्रों से प्रेमजल की धारा बह रही थी ॥ १४७ ॥ शचीदेवी जिसको देखती थी उसी से पूछती थी कि क्या तुम सब मथुरावासी हो ? ॥ १४८ ॥ कहो २ राम कृष्ण कैसे हैं ? इस प्रकार कहकर उसी समय वे मूर्छित होकर गिर पड़ती थी ॥ १४९ ॥ शचीदेवी कहतीं—"अरे सुना वह सींगा बजाता है, क्या गोकुल में अक्रूर फिर आ गया है ? ॥ १५० ॥ इस प्रकार शची कृष्ण के विरह सागर में डूब रही थीं उन्हें शरीर का बाह्य ज्ञान नहीं था ॥ १५१ ॥ नित्यानन्द महाप्रभु उसी समय में पहुँचकर शची माता के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया ॥१५२॥ सब भक्तवृन्द-नित्यानन्द को देखकर बड़े ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे और॥१५३॥ "बाप २" कहकर शचीदेवी मूर्च्छित हो गईं तथा कौन किस ओर पड़ा है ? यह पता नहीं ॥१५४॥ नित्यानन्द महाप्रभु ने सबको गोदी में लेकर सबके शरीर को प्रेमजल से सिंचन किया ॥ १५५ ॥ नित्यानन्द ने

शान्तिपुर गेला प्रभु आचार्येर घरे । आमि आसिलाङ तोमा सभारे निवारे ।। १५७ ।।
चैतन्य विरहे जीर्ण सब भक्तगण । पूर्ण हैला शुनि नित्यानन्देर वचन ।। १५८ ।।
सभेइ हइला अति आनन्दे विह्वल । उठिल परमानन्द कृष्ण कोलाहल ।। १५९ ।।
ये दिवसे गेला प्रभु करिते सन्यास । से दिवस अवधि आइर उपवास ।। १६० ।।
द्वादस-उपवास तान-नाहिक भोजन । चैतन्य-प्रभावे सबे, आछये जीवन ।। १६१ ।।
देखि नित्यानन्द वड़ दुखित-अन्तर । आइरे प्रबोधि बोले मधुर उत्तर ।। १६२ ।।
'कृष्णेर रहस्य कोन् ना जान' वा तुमि । तोमारे वा किवा कहिवारे जानि आमि ।१६३।।
तिलार्द्धे को चित्ते नाहि करिह विषाद । वेदेओ कि पाइवेन तोमार प्रसाद ।। १६४ ।।
वेदे यारे निरवधि करे अन्वेषण । से प्रभु तोमार पुत्र-सभार जीवन ।। १६५ ।।
हेन प्रभु वक्षे हाथ दिया आपनार । आपने सकल भार लइल तोमार ।। १६६ ।।
व्यवहार परमार्थ यतेक तोमार । मोर दाय प्रभु वलियाछे बार बार ।। १६७ ।।
भाल हय येमते प्रभुसे सब जाने । सुखे थाक तुमि देह समर्पिया ताने ।। १६८ ।।
शीघ्र गिया कर माता कृष्णेर रन्धन । आनन्दित हउक सकल भक्तगण ।। १६९ ।।
तोमार हस्तेर अन्ने सभाकार आश । तोमार उपासे हय कृष्ण उपवास ।। १७० ।।
तुमि ये नैवेद्य कर करिया रन्धन । मोहोर एकान्त ताहा खाइवारे मन ।। १७१ ।।
तवे आइ शुनि नित्यानन्देर वचन । पासरि विरह गेला करिते रन्धन ।। १७२ ।।

सब भक्तों से अति शुभ वाणी से कही कि "तुम सब ही गौरचन्द्र के दर्शन करने को शीघ्र चलो ।। १५६ ।। गौराङ्ग प्रभु शान्तिपुर में आचार्य के घर गये हैं और मैं तुम सबको लिवाने के लिये आया हूँ" ।।१५७।। सब भक्त चैतन्य के विरह में जीर्ण हो रहे थे सो नित्यानन्दजी के वचनों को सुनकर संतुष्ट हुए ।। १५८ ।। सब लोग आनन्द में विह्वल हो गये और परम आनन्द देने वाला (कृष्ण) कहकर कोलाकल करने लगे ।।१५९।। जिस दिन प्रभु ने सन्यास लेने को गमन किया था उसी दिन से माता शचीदेवी के उपवास हो रहे थे।।१६०।।श्रीशचीदेवी को बिना भोजन के कई दिन हो गये थे केवल चैतन्यदेव के प्रभाव से ही जीवन रहा था ।। १६१ ।। यह देखकर नित्यानन्दजी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ और माता को प्रबोध करके मधुर वचन बोले ।। १६२ ।। कृष्ण के कौन से रहस्य हैं जो तुम नहीं जानती हो तथा मुझे तुमसे क्या कहने योग्य ज्ञान है ? ।। १६३ ।। तिल मात्र भी मन में विषाद मत करो, कारण तुम्हारा सा अनुग्रह तो क्या वेदों को प्राप्त है ? ।। १६४ ।। निरवधि वेद जिसे ढूँढ़ते हैं वे ही चराचर के जीवन प्रभु आपके पुत्र हैं (धन्य है आपको) ।। १६५ ।। ऐसे प्रभु ने वक्षस्थल में हाथ देकर तुम्हारा सब भार अपने ऊपर ले लिया है ।। १६६ ।। "जितना तुम्हारा सांसारिक व पारमार्थिक भार है वह मेरे ऊपर है" श्रीप्रभु ने इस प्रकार बार २ कहा है ।। १६७ ।। जिस प्रकार तुम्हारा भला होगा, वह सदा गौरचन्द्र भली भाँति जानते हैं तुम सुख पूर्वक उनको देह सौंप दो ।। १६८ ।। हे माता ! जल्दी जाकर कृष्ण के निमित्त रसोई करो जिससे सब भक्तवृन्द आनन्दित हों ।। १६९ ।। तुम्हारे हाथ के अन्न की सबको आशा है तुम्हारे उपवास करने से कृष्ण का भी उपवास होता है ।। १७० ।। रसोई करके तुम जो नैवेद्य कराती तो उसे खाने का मेरा भी मन है ।। १७१ ।। तब नित्यानन्द

मोर दाय प्रभु बलियाछे बार-बार । आर बार आमि लोक करिमूँ उद्धार ॥ १७३ ॥
कृष्णेर नैवेद्य करि आइ पुण्यवती । अग्रे दिया नित्यानन्द स्वरूपेर प्रति ॥ १७४ ॥
तवे आइ सर्व-वैष्णवेरे आगे दिया । करिलेन भोजन सभारे सन्तोषिया ॥ १७५ ॥
परम-आनन्द हइलेन भक्तगण । द्वादश-उपासे आइ करिला भोजन ॥ १७६ ॥
तबे सर्व भक्तगण नित्यानन्द सङ्गे । प्रभु देखिवारे सज्ज हइलेन रङ्गे ॥ १७७ ॥
ए सब आख्यान यत नवद्वीपवासी । शुनि लेन "गौरचन्द्र हइला सन्यासी" ॥ १७८ ॥
शुनिञा अद्भुत नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य' । सर्व लोक 'हरि' बलि बोले 'धन्य धन्य' ॥१७९॥
फुलिया-नगरे प्रभु आछेन शुनिञा । देखिते चलिला सर्व लोक हर्ष हञा ॥१८०॥
किवा वृद्ध किवा शिशु कि पुरुष नारी । आनन्दे चलिला सभे बलि 'हरिहरि' ॥१८१॥
पूर्वे ये पाषण्डी सब करिल निन्दन । ताराओ सपरि करे करिल गमन ॥१८२॥
गूढ़रूपे नवद्वीपे लइलेन जन्म । ना जानिञा निन्दा करिलाङ तान धर्न ॥१८३॥
एवे लइ गिया तान चरणे शरण । तवे सव अपराध हइबे खण्डन ॥१८४॥
एइमत वलि लोक महानन्दे याय । हेन नाहि जानि लोक कत पथे धाय ॥१८५॥
अनन्त अर्बुद लोक हैल खेया घाटे । खेयारि करिते पार पडिल सङ्कटे ॥१८६॥
केहो वान्धे भेला केहो घट वूके करे । केहोवा कलार गाछ धरिया सांतरे ॥१८७॥
कत्तक वा हइल लोक नाहि समुच्चय । ये येमते पारे सेइमते पार हय ॥१८८॥
सहस्र सहस्र लोक एकी नाये चढ़े । कथोदूर गिया मात्र नौका डूबि पड़े ॥१८९॥

के वचन सुनकर माता विरह भूलकर रसोई करने लगी ॥ १७२ ॥ पुण्यवती माता शचीदेवी ने कृष्ण को निवेदन करके प्रथम नित्यानन्द स्वरूप को भोजन कराये ॥ १७३-१७४ ॥ उसके पीछे वैष्णवों को प्रसाद देकर सबको सन्तुष्ट करके पीछे स्वयं भी भोजन किया ॥ १७५ ॥ भक्तवृन्द बड़े आनन्दित हुए, अहो शची माता ने द्वादस उपवास के पश्चात् भोजन किये ॥१७६॥ तब सब भक्तवृन्द नित्यानन्द के साथ गौरचन्द्र को देखने के लिये आनन्द से सजने लगे ॥१७७॥ जब समस्त नवद्वीपवासियों ने यह सब बात सुनी कि गौरचन्द्र सन्यासी होगये और॥१७८॥श्रीकृष्णचैतन्य ऐसा अद्भुत नाम हुआ ऐसा सुनकर सब हरि २ बोलकर धन्य-धन्य कहने लगे ॥ १७९ ॥ गौरचन्द्र फुलिया नगर में हैं यह सुनकर सब लोग आनन्दित होकर दर्शन करने चले॥१८०॥ क्या वृद्ध क्या बालक क्या पुरुष क्या स्त्री सब ही हरि २ कहकर आनन्द में चल दिये ॥ १८१ ॥ पहिले जिन पाखण्डियों ने निन्दा की थी उनने भी कुटुम्ब सहित गमन किया ॥ १८२ ॥ नवद्वीप धाम में गुप्त रूप से जन्म लेकर उनके धर्म-कर्म को न समझकर ही निन्दा की थी ॥ १८३ ॥ अब जाकर उनके चरण-कमलों की शरण लेंगे तब ही सब अपराध नष्ट होंगे ॥ १८४ ॥ इस प्रकार मनुष्य बड़े आनन्द के साथ जा रहे थे, मार्ग में कितने लोग दौड़ रहे थे यह जानना कठिन था ॥१८५॥ नौका के घाट पर अनन्त अर्बुद (असंख्य) मनुष्य हो गये थे, मल्लाह लोग पार करने के लिये संकट में पड़ गये ॥ १८६ ॥ कोई नौका विशेष बाँधते थे तो कोई घड़े को छाती के नीचे लगायकर तथा कोई केला के वृक्ष को पकड़कर तैर रहे थे ॥१८७॥ कितने लोग जमा हुए यह कुछ निश्चय नहीं है और जिससे जैसे हो सका उसी प्रकार पार हुआ ॥ १८८ ॥

भासे सबलोक 'हरि' बोले उच्चस्वरे। तथापिह चित्ते केहो विषाद ना करे ॥१६०॥
हेन से आनन्द जन्मि-आछये अन्तरे। सर्व लोक भासे येन आनन्द सागरे ॥१६१॥
ये ना जाने सांतरिते, सेहो भासे सुखे। ईश्वर-प्रभावे कूल पाय बिनि-दुखे ॥ १६२ ॥
कत दिगे लोक पार हय नाहि जानि। सबे एक चतुर्दिगे शुनि हरि ध्वनि ॥ १६३ ॥
एइ मत आनन्दे चलिल सब लोक। पासरिया सभे क्षुधा तृष्णा गृह शोक ॥ १६४ ॥
आइल सकल लोक फुलिया-नगरे। ब्रह्माण्ड स्पर्शिया 'हरि' बोले उच्च स्वरे ॥ १६५ ॥
शुनिञा अपूर्व अति उच्च हरि ध्वनि। बाहिर हइला सर्व न्यासि-शिरोमणि ॥ १६६ ॥
कि अपूर्व शोभा से कथन किछुनय। कोटि चन्द्र येन आसि करिल उदय ॥१६७॥
सर्वदा श्रीमुखे हरे कृष्ण हरे हरे। बलिते आनन्दधारा निरवधि झरे ॥ १६८ ॥
चतुर्दिगे सर्वलोक दण्डवत् हय। के कार उपरे पड़े नाहि समुच्चय ॥ १६९ ॥
कन्टक भूमिते लोक नाहि करे भय। आनन्दित सर्वलोक दण्डवत् हय ॥ २०० ॥
सर्व लोके त्राहि त्राहि बोले हाथ तुलि। एइ मत करे गौरचन्द्र कुतूहली ॥ २०१ ॥
अनन्त अर्बुद लोक एतसे हइल। कि प्रान्तर किबा ग्राम सकल पूरिल ॥ २०२ ॥
नाना ग्राम हैते लोक लागिल आसिते। केहो नाहि याय घरे से मुख देखिते ॥ २०३ ॥
हइते लागिल बड़ लोकेर गहल। फुलिया-नगर पूर्ण हइल सकल ॥ २०४ ॥
देखि गौरचन्द्रेर श्रीमुख मनोहर। सर्वलोक पूर्ण हैल बाहिर अन्तर ॥ २०५ ॥

हजारों २ लोग एक ही नौका पर चढ़ जाते थे जिससे कुछ दूर पर ही जाकर नाव डूब जाती ॥१८९॥ जल में गिरे हुए सभी मनुष्य ऊँचे स्वर से हरि-हरि बोलते थे तो भी किसी के चित्त में विषाद नहीं था ॥१९०॥ उनके अन्तर में ऐसा प्रेमानन्द उत्पन्न हो रहा था जैसे सब लोग आनन्द सागर में डूब रहे हों ॥ १९१ ॥ जो तैरना नहीं जानते हैं वे भी सुख पूर्वक पानी में पड़े थे, अहो ईश्वर इच्छा से बिना दुःख के पार पहुँच रहे थे ॥१९२॥ मनुष्य कितनी ओर से पार हो जा रहे थे जान नहीं पड़ता था केवल चारों ओर से एक हरि ध्वनि सुनाई दे रही थी ॥ १९३ ॥ इस भाँति सब लोग तृष्णा, गृह कर्म व शोक आदि को भूलकर आनन्द में जा रहे थे ॥ १९४ ॥ ब्रह्माण्ड स्पर्शकारी ऊँचे स्वर से हरि २ बोलते २ सब लोग फुलिया नगर में आये हैं ॥ १९५ ॥ अत्यन्त अपूर्व उच्च हरि ध्वनि सुनकर सब सन्यासियों में शिरोमणि (श्रीगौर) बाहिर आये ॥ १९६ ॥ कहते नहीं बनता था जैसों करोड़ों चन्द्रमा एक साथ उदय हुए हों कैसी अपूर्व शोभा थी ॥१९७॥ सदा श्रीमुख कमल से "हरे कृष्ण हरे हरे" कहते २ नेत्रों से निरन्तर आनन्द की अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी ॥ १९८ ॥ चारों ओर से सब लोग दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे कौन किसके ऊपर गिरता था इसका कोई पता नहीं ? ॥ १९९ ॥ काटों वाली भूमि से भी लोग भय नहीं करते थे आनन्दित होकर सब लोग दण्डवत् कर रहे थे ॥ २०० ॥ मनुष्य हाथ उठाय २ कर "रक्षा करो रक्षा करो" कह रहे थे, गौरचन्द्र ऐसा कुतूहल (खेल) कर रहे थे ॥ २०१ ॥ इतने असंख्य मनुष्य एकत्र हो गये कि क्या मैदान और क्या गाँव सब जगह भर गये ॥ २०२ ॥ उस मुख कमल के दर्शन के लिये अनेक गाँवों से लोग आने लगे, परन्तु कोई घर को लोटकर नहीं जाता था ॥ २०३ ॥ बहुत लोगों की भीड़ होने लगी जिससे फुलिया नगर सम्पूर्ण भर

तबे प्रभु कृपा दृष्टि करिया सभारे । चलि लेन शान्तिपुर-आचार्येर घरे ॥ २०६ ॥
सम्भ्रमे आचार्य देखि निज प्राणनाथ । पादपद्मे पड़िलेन हइ दण्डपात ॥ २०७ ॥
आर्तनादे लागिलेन क्रन्दन करिते । ना छाड़ेन पादपद्म दुइ बाहु हैते ॥ २०८ ॥
श्रीचरण अभिषेक करि प्रेम जले । आनन्दे मूर्च्छित हइलेन पद तले ॥ २०९ ॥
दुइ हस्ते तुलि प्रभु लइलेन कोले । आचार्य भासिला ठाकुरेर प्रेम जले ॥ २१० ॥
स्थिर हइ ठाकुर वसिला कथोक्षणे । उठिल परमानन्द अद्वैत भवने ॥ २११ ॥
दिगम्बर शिशुरूप अद्वैत तनय । नाम श्रीअच्युतानन्द महा ज्योतिर्मय ॥ २१२ ॥
परम सर्वज्ञ तिंहो अतर्क्य प्रभाव । योग्य अद्वैतेर पुत्र सेइ महाभाग ॥ २१३ ॥
धूलाय धूसर अङ्ग हासिते हासिते । जानिञा आइला प्रभु-चरण देखिते ॥ २१४ ॥
आसिया पड़िला गौरचन्द्र-पद तले । धूलार सहित प्रभु लइलेन कोले ॥ २१५ ॥
प्रभु बोले 'अच्युत आचार्य मोर पिता । से सम्बन्धे तोमाय आमाय दुइ-भ्राता' ॥ २१६ ॥
अच्युत बोलेन 'तुमि दैवे जीव-सखा । सबे के तोमार बाप एइ नाहि लेखा' ॥२१७॥
हासे प्रभु भक्तगण अच्युत-वचने । विस्मय सभार बड़ उपजिल मने ॥ २१८ ॥
'ए सकल कथात शिशुर कभू नय । ना जानि जन्मियाछेन कोन् महाशय ?' ॥२१९॥
हेनइ समये श्रीअनन्त नित्यानन्द । आइला नदिया हैते सङ्गे भक्तवृन्द ॥ २२० ॥
श्रीवासादि-भक्तगण देखिया ठाकुर । लागिलेन हरिध्वनि करिते प्रचुर ॥ २२१ ॥

गया ॥ २०४ ॥ श्रीगौरचन्द्र के मनोहर श्रीमुख दर्शन करके सब लोग बाहिर-भीतर से पूर्ण आनन्द मग्न हो गये ॥ २०५ ॥ तब गौरचन्द्र ने सबके ऊपर कृपा दृष्टि की और शान्तिपुर में आचार्य के घर के लिये चल दिये ॥२०६॥ एकाएक (सम्भ्रम) से अपने प्राणनाथ को देखकर अद्वैत आचार्य दण्डवत् होकर चरण-कमलों में गिरे तथा ॥२०७॥ आर्त स्वर से रोने लगे और दोनों भुजाओं से चरण-कमलों को पकड़कर छोड़ते नहीं थे ॥ २०८ ॥ प्रेमाश्रु जल से श्रीचरण-कमलों का अभिषेक करके चरणों के नीचे ही आनन्द से मूर्च्छित हो गये ॥ २०९ ॥ दोनों हाथों से उठाकर आचार्य को प्रभु ने गोदी में ले लिया और गौरचन्द्र के प्रेमजल से भीज रहे हैं ॥ २१० ॥ कुछ क्षण में गौरचन्द्र स्थिर होकर बैठे तब अद्वैत भवन में विशेष प्रेमानन्द उठ पड़ा ॥ २११ ॥ महा ज्योतिस्वरूप श्रीअच्युतानन्द नामक एक दिगम्बर (वस्त्र रहित) शिशु श्रीअद्वैत के पुत्र थे ॥ २१२ ॥ वे महाभाग बड़े सर्वज्ञ थे तथा उनका प्रभाव तर्क रहित था (वास्तव में) आपही अद्वैत के योग्य पुत्र थे ॥ २१३ ॥ अङ्ग में धूलि लिपटी थी तथा हँस रहे थे, प्रभु को आया हुआ जानकर चरण दर्शन करने को आये ॥ २१४ ॥ आकर गौरचन्द्र के चरणों में गिर पड़े तब गौरचन्द्र ने धूलि में लिपटा हुआ ही गोद में ले लिया ॥ २१५ ॥ प्रभु ने कहा "अच्युत ! आचार्य मेरे पिता हैं उस सम्बन्ध से मैं और तुम दोनों भाई हैं" ॥ २१६ ॥ अच्युत ने कहा "भाग्यवश ही आप जीवों के सखारूप में प्रकट हुए थे आपका पिता कोई हैं इसका लेख (शास्त्र में) नहीं है ॥ २१७ ॥ गौरचन्द्र व भक्तवृन्द अच्युतानन्द के वचन को सुनकर हँस पड़े तथा सबके मनमें बड़ा विस्मय उत्पन्न हुआ ॥ २१८ ॥ यह सब शब्द शिशु के कभी नहीं हैं, न जाने किसी महाशय ने यह जन्म लिया है ॥ २१९ ॥ उसी समय श्रीअनन्तदेव नित्यानन्दजी भक्तवृन्दों के साथ

दण्डवत् हइया सकल भक्तगण । क्रन्दन करेन सभे धरि श्रीचरण ॥ २२२ ॥
सभारे करिला प्रभु आलिङ्गन-दान । सभेइ प्रभुर निज-प्राणेर समान ॥ २२३ ॥
आर्तनादे क्रन्दन करेन भक्तगण । शुनिञा पवित्र हय सकल भुवन ॥ २२४ ॥
कृष्ण प्रेमानन्दे कान्दे ये सुकृति जन । से ध्वनि श्रवणे सर्व-बन्ध विमोचन ॥ २२५ ॥
चैतन्य कृपाय व्यक्त हैल हेन धन । ब्रह्मादि-दुर्लभ रस भुञ्जे ये-ते-जन ॥ २२६ ॥
भक्तगण देखि प्रभु परम-हरिषे । नृत्य आरम्भिला प्रभु निज-प्रेम-रसे ॥ २२७ ॥
सत्वरे गाइते लागिलेन भक्तगण । 'बोल-बोल' बलि प्रभु गर्जे घनेघन ॥ २२८ ॥
धरिया, बूलेन नित्यानन्द महाबली । अलक्षिते अद्वैत लयेन पद धूली ॥ २२९ ॥
अश्रु, कम्प, पुलक, हुङ्कार, अट्टहास । किवा से अद्भुत अङ्ग भङ्गीर प्रकाश ॥ २३० ॥
किवा से मधुर पद-चालन-भङ्गिमा । किवा से श्रीहस्त-चालनादिर महिमा ॥ २३१ ॥
कि कहिब से बा प्रेमरसेर माधुरी । आनन्दे तुलिया बाहु बोले 'हरिहरि' ॥ २३२ ॥
रसमय नृत्य अति अद्भुत-कथन । देखिया परमानन्दे डूबे भक्तगण ॥ २३३ ॥
हाराइ याछिला प्रभु सर्व भक्तगण । हेन प्रभु पुनर्वार दिला दरशन ॥ २३४ ॥
आनन्दे नाहिक बाह्य काहारो शरीरे । प्रभु वेढ़ि सभेइ उल्लासे नृत्य करे ॥ २३५ ॥
केवा कार गाये पड़े केवा कारे धरे । केवा कार चरण धरिया वक्षे करे ॥ २३६ ॥
केवा कारे धरि कान्दे, केवा किवा बोले । केहो किछु ना जाने प्रेमेर कुतूहले ॥ २३७ ॥

नवद्वीप से आ पहुँचे ॥ २२० ॥ श्रीवासादि भक्तवृन्द ने गौरचन्द्र को देखकर विशेष रूप से हरिध्वनि करना आरम्भ किया ॥ २२१ ॥ सब भक्तवृन्द ने दण्डवत् होकर श्रीगौर के चरण-कमलों को पकड़ कर रुदन करने लगे ॥ २२२ ॥ श्रीगौर प्रभु ने सबको आलिङ्गन किया कारण कि सब ही तो उनके अपने प्राणों के समान हैं ॥२२३॥ आर्तनाद से भक्तवृन्द के रुदन सुनकर समस्त भुवनवासी पवित्र हो गये ॥२२४॥ कृष्ण प्रेमानन्द से सुकृतिजन रोते हैं उस ध्वनि के सुनने से सब बन्धन छूट जाते हैं ॥ २२५ ॥ ऐसा प्रेमधन चैतन्यचन्द्र की कृपा से ही प्रकट हुआ था जो ब्रह्मादिकों को दुर्लभ रस है उसे साधारण प्राणी भोग रहे थे ॥ २२६ ॥ श्रीप्रभु ने भक्तवृन्द को देखकर अपने निज प्रेमरस में बड़े हर्ष से नाचना प्रारम्भ किया ॥ २२७ ॥ तब शीघ्र ही भक्तवृन्द गाने लगे और गौरचन्द्र "बोलो २" कहकर बार-बार बेग से गर्जने लगे ॥ २२८ ॥ महाबली नित्यानन्दजी उन्हें पकड़कर घूमने लगे तब श्रीअद्वैतजी ने प्रभु की चरण रज छुपकर ले ली ॥ २२९ ॥ अश्रु-कम्प-पुलक-हुङ्कार-अट्टहास आदि कैसे २ अद्भुत अङ्ग-भंगी का प्रकाश कर रहे थे ॥ २३० ॥ अहो चरणों के चलाने की भङ्गिमा (टेढ़ाई) कैसी मधुर थी तथा श्रीहस्त चालन की महिमा कैसी अद्भुत थी ॥ २३१ ॥ और आनन्द से दोनों बाहु उठाकर हरि २ बोलने की उस प्रेम माधुरी का क्या कहना ? ॥२३२॥ रसमय नृत्य की तो अति अद्भुत कथा है जिसे देखकर भक्तवृन्द बड़े आनन्द सागर में मग्न हो रहे थे ॥ २३३ ॥ सब भक्तवृन्द तो गौरप्रभु को खो ही चुके थे ऐसे प्रभु ने पुनर्वार कृपा करके ही दर्शन दिया था ॥ २३४ ॥ उस आनन्द में किसी को शरीर में वाह्य ज्ञान नहीं था तथा सब लोग प्रभु को घेरकर प्रसन्नता से नाच रहे थे ॥ २३५ ॥ कोई किसी के शरीर पर गिरता तो कोई किसी को पकड़ता था अथवा कोई किसी के

स पार्षदे नृत्य करे वैकुण्ठ-ईश्वर । ए मत अपूर्व हय पृथिवी-भितर ॥ २३८ ॥
"हरिबोल हरिबोल हरिबोल भाइ' । इहा बइ आर किछु शुनिते ना पाइ ॥ २३९ ॥
कि आनन्द हइल से अद्वैत भवने । से मर्म जानेन सबे सहस्र वदने ॥ २४० ॥
आपने ठाकुर तबे धरि जने जने । सर्व-वैष्णवेरे करे प्रेम-आलिङ्गने ॥ २४१ ॥
पाइया वैकुण्ठनायकेर आलिङ्गन । विशेष आनन्दे मत्त हय भक्तगण ॥ २४२ ॥
'हरि' बलि सर्व-गणे करे सिंहनाद । पुनः पुनः बाढ़े आगे सभार उन्माद ॥ २४३ ॥
सांगोपाङ्गे नृत्य करे वैकुण्ठेर पति । पद भरे टलमल करे वसुमती ॥ २४४ ॥
नित्यानन्द महाप्रभु परम-उद्दाम । चैतन्य बेढ़िया नाचे महा ज्योतिर्धाम ॥ २४५ ॥
आनन्दे अद्वैत नाचे करये हुङ्कार । सभइ-चरण धरे-जे पाय याहार ॥ २४६ ॥
नवद्वीप येन हैल आनन्द-प्रकाश । सेइमत नृत्य, गीत, सकल विलास ॥ २४७ ॥
कथोक्षणे महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर । स्वानुभावे वसे विष्णु खट्टार ऊपर ॥ २४८ ॥
जोड़ हाथे सभे रहिलेन चारि-भिते । प्रभु लागिलेन निज तत्त्व प्रकाशिते ॥ २४९ ॥
मुञि कृष्ण मुञि राम मुञि नारायण । मुञि मत्स्य मुञि कूर्म वराह वामन ॥ २५० ॥
मुञि पृश्निगर्भ हयग्रीव महेश्वर । मुञि बौद्ध कल्कि हंस मुञि हलधर ॥ २५१ ॥
मुञि नीलाचल-चन्द्र कपिल नृसिंह । दृश्यादृश्य सब मोर चरणेर भृङ्ग ॥ २५२ ॥
मोर यश गुण ग्राम बोले सर्ववेदे । मोहोरे से अनन्त ब्रह्माण्ड कोटि सेवे ॥ २५३ ॥

चरण पकड़कर अपनी छाती से लगाता था ॥ २३६ ॥ कोई किसी को पकड़कर रोता था कोई अंट-संट बोलता था और कोई आवेश (प्रेम) में बेसुध हो रहा था ॥ २३७ ॥ पार्षदों सहित बैकुंठनाथ नाच रहे थे ऐसा अपूर्व आनन्द पृथ्वी पर हो रहा था ॥ २३८ ॥ भाई हरि बोलो ! हरि बोलो ! इसके व्यतिरिक्त और कुछ सुन नहीं पड़ता था ॥ २३९ ॥ अद्वैत भवन में क्या विलक्षण आनन्द हुआ उसके भेद को केवल सहस्र-वदन (अनन्तदेव) ही जानते हैं ॥ २४० ॥ उसके पीछे स्वयं गौरचन्द्र ने प्रत्येक भ्राता को पकड़कर सभी वैष्णवों को प्रेमालिङ्गन दिया ॥ २४१ ॥ बैकुण्ठनायक (गौरचन्द्र) का आलिङ्गन पाकर भक्तवृन्द विशेष आनन्द में मत्त हो गये ॥ २४२ ॥ हरि २ कहकर सब भक्तों ने सिंह की तरह हुङ्कार की तथा सभी को पुनः पुनः और अधिक उन्माद बढ़ने लगा ॥ २४३ ॥ बैकुण्ठनाथ (गौरचन्द्र) अंग व उपांग के साथ नृत्य करते थे तो चरणों की पटक से पृथ्वीडोलती थी ॥२४४॥महा ज्योतिस्वरूप नित्यानन्द महाप्रभु गौरचन्द्र को घेरकर बड़ा उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे ॥ २४५ ॥ अद्वैतप्रभु हुङ्कार करके आनन्द में नाचते थे तथा जो जिसके चरण पाते धर लेते थे ॥ २४६ ॥ जैसा नवद्वीप में आनन्द प्रकाशित हुआ था उसी प्रकार नृत्य गीत आदि सब विलास यहाँ किये ॥ २४७ ॥ कुछ क्षण में श्रीमहाप्रभु गौरसुन्दर निज भाव में (ईश्वर भाव से) विष्णु के सिंहासन पर बैठे हैं ॥ २४८ ॥ सब भक्तवृन्द चारों ओर हाथ जोड़कर खड़े हो गये तब गौरचन्द्र अपने तत्त्व का प्रकाश करने लगे ॥ २४९ ॥ मैं ही कृष्ण हूँ, मैं ही राम हूँ, मैं ही नारायण हूँ, मैं ही मत्स्य हूँ और मैं ही कूर्म वराह–वामन अवतारी हूँ ॥ २५० ॥ मैं ही पृश्निगर्भ-हयग्रीव-महेश्वर-बौद्ध-कल्कि-हंस-हलधर (बलराम) नीलाचल-चन्द्र, कपिल, नृसिंह सब मैं ही हूँ और दृश्य-अदृश्य-प्राकृत-अप्राकृत सब मेरे चरण-

मोर यश गुण ग्राम बोले सर्व वेदे । मोहोरे से अनन्त ब्रह्माण्ड कोटि सेवे ॥२५३॥
मुञि सर्व-काल रूपी भक्त गण विने । सकल आपद खण्डे' मोहोर स्मरणे ॥२५४॥
द्रौपदीरे लज्जा हैते मुञि उद्धारिलूँ । जउ गृहे मुञि पञ्च-पाण्डवे राखिलूँ ॥२५५॥
वृकासुर वधि मुञि राखिलूँ शङ्कर । मुञि उद्धारिलूँ मोर गजेन्द्र किङ्कर ॥२५६॥
मुञि से करिलूँ प्रह्लादेरे विमोचन । मुञि से करिलूँ गोपवृन्देरे रक्षण ॥२५७॥
मुञि से करिलूँ पूर्व अमृत मन्थन । वञ्चिया असुर, रक्षा कैलूँ देवगण ॥२५८॥
मुञि से वधिलूँ मोर भक्त द्रोही कंस । मुञि से करिलूँ दुष्ट रावण निर्वंश ॥२५९॥
मुञि से धरिलूँ वाम-हाथे गोवर्धन । मुञि से करिलूँ कालि-नागेर दमन ॥२६०॥
मुञि करों सत्ययुगे तपस्या-प्रचार । त्रेता युगे यज्ञ लागि करों अवतार ॥२६१॥
एइ मुञि अवतीर्ण हइया द्वापरे । पूजा धर्य बुझाइलूँ सकल लोकेरे ॥२६२॥
कत मोर अवतार वेदेओ ना जाने । सम्प्रति आइलूँ मुञि कीर्तन कारणे ॥२६३॥
कीर्तन- आरम्भे प्रेम भक्तिर विलास । अतएव कलियुगे आमार प्रकाश ॥२६४॥
सर्व वेदे पुराणे आश्रय मोर चाय । भक्तेर आश्रमे मुञि थाकों सर्वदाय ॥२६५॥
भक्त वइ आमार द्वितीय आर नाइ । भक्त मोर पिता माता बन्धु पुत्र भाइ ॥२६६॥
यद्यपि स्वतन्त्र आमि स्वतन्त्र-विहार । तथापिह भक्तवश-स्वभाव आमार ॥२६७॥
तोमरा से जन्म-जन्म संहति आमार । तोमा 'सभा' लागि मोर सर्व अवतार ॥२६८॥

कमलों के रसास्वादक भृङ्ग (दास) हैं ॥२५१-२५२॥ सब वेद मेरे ही यश तथा गुण समूह का वर्णन करते हैं और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डवासी मेरी ही सेवा करते हैं ॥२५३॥ मैं भक्तों को छोड़कर सबका कालस्वरूप हूँ, मेरे स्मरण करने से सब आपत्ति नष्ट होती हैं ॥ २५४ ॥ द्रौपदी की लज्जा से मैंने ही उद्धार किया लाख के घर से पाँचों पाण्डवों की रक्षा करने वाला मैं ही हूँ ॥ २५५ ॥ वृकासुर को मारकर शङ्कर की रक्षा करने वाला मैं हूँ अपने दास गजेन्द्र का उद्धार करने वाला मैं ही हूँ ॥ २५६ ॥ मैंने ही प्रह्लाद को दुःखों से छुड़ाया मैं ही गोपवृन्द की रक्षा करने वाला हूँ ॥ २५७ ॥ पूर्वकाल में मैंने ही अमृत मन्थन किया और असुरों को हटा कर देवताओं को अमृत देकर रक्षा की थी ॥ २५८ ॥ मैंने ही अपने भक्तों के द्रोही कंस का वध किया था मैंने ही दुष्ट रावण का नाश किया था ॥ २५९ ॥ मैंने ही बायें हाथ पर गोवर्द्धन धारण किया था, मैंने ही कालिय नाग का दमन किया था ॥ २६० ॥ सत्ययुग में तपस्या का प्रचार मैं ही करता हूँ त्रेता युग में यज्ञ के निमित्त अवतार लेता हूँ ॥ २६१ ॥ वही मैं ही द्वापर में अवतीर्ण होकर सब लोकों को पूजा रूप धर्म का बोध कराता हूँ ॥ २६२ ॥ मेरे कितने अवतार हैं इसको वेद भी नहीं जानता, इस समय मैं कीर्तन प्रचार के कारण से आया हूँ ॥२६३॥ कीर्तन के आरम्भ होने से प्रेम भक्ति का विलास आनन्द होता है इसी से कलियुग में मेरा प्रकाश हुआ है ॥२६४॥ वेद-पुराण सब मेरा आश्रय चाहते हैं भक्तों के आश्रम में मेरा निवास सर्वदा रहता है ॥ २६५ ॥ भक्तों के बिना मेरा और दूसरा कोई नहीं है भक्त ही मेरे पिता-बन्धु, पुत्र व भाई हैं ॥ २६६ ॥ यद्यपि मैं स्वतन्त्र हूँ मैं स्वतन्त्र बिहारी हूँ तथापि भक्तों के वशीभूत रहने का मेरा स्वभाव है ॥ २६७ ॥ तुम सब मेरे जन्म-जन्म के सङ्गी हो तुम ही सबके

तिलार्द्धेको आमि तोमा सभारे छाड़िया । कोथाओ ना थाकि सभे सत्य जान इहा ॥२६६॥
एइ मत प्रभु तत्त्व कहे करुणाय । शुनि सब भक्तगण कान्दे ऊर्द्ध-राय ॥२७०॥
पुनः पुन सभे दण्ड प्रणाम करिया । उठेन पड़ेन काकु करेन कान्दिया ॥१७१॥
कि आनन्द हइल से अद्वैतेर घरे । ये रस हइल पूर्वे नदिया-नगरे ॥१७२॥
पूर्व मनोरथ हइलेन भक्तगण । यतेक पूर्वेर दुःख हइल खण्डन ॥२७३॥
प्रभु से जानेन भक्त दुःख खण्डाइते । हेन प्रभु दुःखी जीव ना भजे केमते ॥२७४॥
करुणासागर गौरचन्द्र महाशय । दोष नाहि देखे प्रभु गुण मात्र लय ॥२७५॥
क्षणेके ऐश्वर्य सम्वरिया महाधीर । वाह्य प्रकाशिया प्रभु हइलेन स्थिर ॥२७६॥
सभारे लइया प्रभु गङ्गा स्नाने गेला । जाह्नवी ते बहुविध जल क्रीड़ा कैला ॥२७७॥
सभार सहित आइलेन करि स्नान । तुलसी रे प्रदक्षिण करि जल दान ॥२७८॥
विष्णु गृहे प्रदक्षिण नमस्कार करि । सभा लइ भोजने वसिला गौरहरि ॥२७९॥
मध्ये वसिलेन प्रभु नित्यानन्द सङ्गे । चतुर्दिगे सर्व-गण वसिलेन रङ्गे ॥२८०॥
सर्वाङ्गे चन्दन-प्रभु प्रफुल्ल-वदन । भोजन करेन चतुर्दिगे भक्तगण ॥२८१॥
वृन्दाबन-मध्ये येन गोपगण-सङ्गे । राम कृष्ण भोजन करेन सेइ रङ्गे ॥२८२॥
सेइ सब कथा प्रभु सभारे कहिया । भोजन करेन प्रभु हासिया हासिया ॥२८३॥
कार शक्ति आछे इहा सब वर्णिवारे । ताहार कृपाय येइ बोलान याहारे ॥२८४॥

निमित्त मेरे सब अवतार होते हैं ॥ २६८ ॥ तुम सबको तिलमात्र छोड़कर मैं कहीं भी नहीं रहता हूँ तुम यह सब सत्य जानो ॥ २६९ ॥ इस प्रकार श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कृपा करके अपना तत्त्व वर्णन किया जिसे सुनकर सब भक्तवृन्द ऊँचे स्वर से रोने लगे ॥ २७० ॥ बार-बार सब लोग दण्डवत् प्रणाम करके उठते गिरते थे तथा रो-रो कर और विनती करते थे ॥२७१॥ जो प्रेमानन्द पहिले नदिया नगर में हुआ था आज उसी प्रेमानन्द की वर्षा श्रीअद्वैत के घर में हुई ॥ २७२ ॥ भक्तवृन्द के मनोरथ पूर्ण हुए तथा पिछले समस्त दुःख नष्ट हो गये ॥ २७३ ॥ प्रभु ही भक्तों का दुःख नष्ट कराना जानते हैं—ऐसे प्रभु को भी दुखी जीव नहीं भजते ॥ २७४ ॥ श्रीमान् गौरचन्द्र करुणा के समुद्र हैं तथा महान् हृदय वाले हैं ॥ २७५ ॥ कुछ क्षण में महा धैर्यवान् प्रभु ने ऐश्वर्य छुपा लिया और वाह्य ज्ञान प्रकाश करके स्थिर हो गये ॥ २७६ ॥ सब भक्तों को लेकर गौरचन्द्र ने गङ्गा स्नान के लिये गमन किया और जान्हवी में बहुत प्रकार की जल-क्रीड़ा की ॥२७७॥ सब के साथ स्नान करके आये और तुलसी में जल देकर प्रदक्षिणा की ॥२७८॥ विष्णु-मन्दिर की परिक्रमा करके नमस्कार की तब सबको लेकर श्रीगौरहरि भोजन करने बैठे ॥ २७९ ॥ गौरहरि नित्यानन्दजी के साथ बैठे थे तथा चारों ओर सब भक्तवृन्द प्रेम से बैठे थे ॥ २८० ॥ श्रीप्रभु के सर्वाङ्ग में चन्दन लग रहा था तथा भक्तों से चारों ओर से घिरे हुए बड़े प्रसन्न मुद्रा में भोजन कर रहे थे ॥ २८१ ॥ जिस प्रकार वृन्दावन में गोपवृन्द के साथ श्रीरामकृष्ण भोजन करते थे उसी आनन्द से यहाँ भी कर रहे थे ॥ २८२ ॥ प्रभु यही सब बात सबसे कहते जाते थे तथा भोजन करते जाते थे ॥ २८३ ॥ यह किसकी शक्ति है जो यह सब वर्णन कर सके-जिस पर कृपा करें वही कह सकता है ॥ २८४ ॥ भोजन करके प्रभु हटे ही

भोजन करिया प्रभु चलिलेन मात्र । भक्तगण लूटि खाइलेन शेष-पात्र ॥२८५॥
भव्य-भव्य वृद्ध सब हैला शिशु मति । एइ मत हय विष्णु भक्तिर शकति ॥२८६॥
ये सुकृति जन शुने ए सब आख्यान । ताहारे मिलये गौरचन्द्र भगवान् ॥२८७॥
पुन प्रभु-सङ्गे भक्तगण-दरशन । पुनर्वार ऐश्वर्य्य आवेशे सङ्कीर्त्तन ॥२८८॥
सर्व्व वैष्णवेर प्रभु संहति भोजन । इहा ये शुनये तारे मिले प्रेम धन ॥२८९॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥२९०॥

इति श्रीचैतन्य भागवते अन्त्य खण्डे आचार्यगृहे पुनः सम्मेलनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

जय जय गौरचन्द्र जय सर्व्व प्राण । जय दुष्ट भयङ्कर जय शिष्ट-त्राण ॥१॥
जय शेष रमा अज भवेर ईश्वर । जय कृपासिंधु दीनबन्धु न्यासिवर ॥ २ ॥
भक्तगोष्ठी-सहित गौराङ्ग जय जय । कृपा कर प्रभु येन तोंहे मन रय ॥३॥
हेन मते श्रीगौरसुन्दर शान्ति पुरे । करिला अशेष रङ्ग अद्वैतेर घरे ॥ ४ ॥
बहुविध आपन रहस्य कथा-रङ्गे । सुखे प्रभु रात्रि गोङाइला भक्त-सङ्गे ॥५॥
पोहाइल निशा प्रभु करि नित्य कृत्य । वसिलेन चतुर्दिगे वेढ़ि सब भृत्य ॥६॥
प्रभु बोले आमि चलिलाङ नीलाचले । किछु दुःख ना भाविह तोमरा-सकले ॥७॥
नीलाचल चन्द्र देखि आमि पुनर्वार । आसिया हइब सङ्ग तोमा सभाकार ॥८॥

थे कि भक्तगण पात्र में बचा हुआ महाप्रसाद लूटकर खा गये ॥ २८५ ॥ शान्त शिष्ट बुद्धिमान् वृद्धजन भी सब शिशु-बुद्धि से हो गये विष्णु-भक्ति की ऐसी ही शक्ति है ॥ २८६ ॥ जो पुण्यवान यह सब कथाऐं सुनेंगे उनको श्रीगौरचन्द्र भगवान् अवश्य मिलेंगे ॥२८७॥ भक्तगण को श्रीप्रभु का दर्शन, पुनर्बार ऐश्वर्य आवेश से संकीर्तन और सब वैष्णवों का प्रभु के साथ में भोजन इन प्रसङ्गों का जो सुनेंगे तिनको प्रेम-धन अवश्य मिलेगा ॥ २८८-२८९ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके चरण युगलों की महिमा गान करते हैं ॥ २९० ॥

सब जीवों के प्राण गौरचन्द्र की जय हो २ दुष्टों को भयदाता व शिष्टों के रक्षक की जय हो २ ॥१॥ शेष-रमा-ब्रह्मा-शिव के ईश्वर की जय हो सन्यासियों में श्रेष्ठ कृपासिन्धु दीनबन्धु की जय हो २ ॥२॥ भक्तमण्डली के सहित श्रीगौराङ्गदेव की जय हो २ हे प्रभो ! ऐसी कृपा करें जिसमें तुम में मन स्थिर रहे ॥ ३ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने शान्तिपुर में श्रीअद्वैत के घर पर अनेक प्रकार से आमोद-प्रमोद किये ॥ ४ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने अपने अनेक प्रकार की रहस्य कथाओं के रङ्ग प्रसङ्ग में भक्तवृन्दों के साथ सुख से सभी रात्रि व्यतीत की ॥ ५ ॥ रात्रि व्यतीत होने पर प्रभु ने नित्य कृत्य किया तथा सेवकगण उन्हें चारों ओर से घेरकर बैठ गये ॥ ६ ॥ प्रभु ने कहा मैं नीलाचल (जगन्नाथपुरी) को जाता हूँ तुम सब मनमें कुछ दुःख न मानना ॥ ७ ॥ मैं नीलाचलचन्द्र (जगन्नाथ) के दर्शन करके तुम सबों के साथ शीघ्र ही दुबारा

सभे गिया सुखे गृहे करह कीर्तन । जन्म जन्म तुमि सब आमार जीवन ॥९।
भकतगण बोले प्रभु ये तोमार इच्छा । कार शक्ति ताहा करिबारे पारे मिछा ॥१०॥
तथापिह हइयाछे दुर्घट समय । से राज्ये एखने केहो पथ नाहि वय ॥११॥
दुइ राजाय हइयाछे अत्यन्त विवाद । महायुद्ध स्थाने स्थाने परम प्रमाद ॥१२॥
यावत उत्पात किछु उपशय हय । तावत् विश्राम कर यदि चित्ते लय ॥१३॥
प्रभु बोले ये से केने उत्पात ना हय । अवश्य चलिब आमि करिल निश्चय ॥१४॥
बूझि लेन अद्वैत प्रभुर चित्त वृत्त । चलिबेन नीलाचले, नहिला निवृत्त ॥१५॥
जोड़ हाथे सत्य कथा लागिला कहिते । के पारे तोमार पथ-निरोध करिते ॥१६॥
सर्व विघ्न-किंकरेर किङ्कर तोमार । तोमार करिते विघ्न शक्ति आछे कार ॥१७॥
यखने करिया आछ चित्त नीलाचले । तखने चलिबा प्रभु महा कुतूहले ॥१८॥
शुनिजा अद्वैत वाक्य प्रभु सुखी हैला । परम सन्तोषे 'हरि' बलिते लागिला ॥१९॥
सेई क्षणे महाप्रभु मत्त सिंह-गति । चलि लेन शुभ करि नीलाचल-प्रति ॥२०॥
धाइया चलिला पाछे सब भकतगण । केहो नाहि पारे सम्बरिबारे क्रन्दन ॥२१॥
कथोदूरे गिया प्रभु श्रीगौरसुन्दर । सभा प्रबोधेन बलि मधुर उत्तर ॥२२॥
चित्ते केहो कोनो किछु ना भाविह व्यथा । तोमा सभा आमि नाहिं छाड़िब सर्वथा ॥२३॥
कृष्ण नाम लह सभे वसि गिया घरे । आमिह आसिब दिन कथोक-भितरे ॥२४॥

आ मिलूँगा ॥ ८ ॥ सब लोग अपने २ घर जाकर सुख से कीर्तन करना तुम सब ही तो मेरे जन्म २ के जीवन सङ्गी हो ॥ ९ ॥ भक्तवृन्द बोले—"प्रभो ! जो तुम्हारी इच्छा है उसको मिथ्या करने की किसकी सामर्थ्य है ॥ १० ॥ तथापि यह दुर्घट अनुपयुक्त समय है इस समय उस राज्य में कोई मार्ग नहीं चलता है अर्थात् मार्ग बन्द है । ११ ॥ दोनों राजाओं में अत्यन्त विवाद हो रहा है, इस कारण जगह-जगह पर महायुद्ध व बड़ा प्रमाद हो रहा है ॥ १२ ॥ यदि मनमें ठीक जान पड़े तो उत्पात कुछ शान्त होने तक यहीं विश्राम करिये ॥ १३ ॥ प्रभु ने कहा "कैसा भी उत्पात क्यों न हो मैं तो अवश्य जाऊँगा यह निश्चय कर लिया" ॥१४॥ प्रभु की चित्तवृत्ति को अद्वैत समझ गये कि नीलाचल को अवश्य जाँयगे निवृत्त नहीं होंगे ॥ १५ ॥ वे हाथ जोड़कर सत्य कथा कहने लगे कि तुम्हारा मार्ग रोकने की किसकी सामर्थ्य है ॥ १६ ॥ सब विघ्न तो आपके दासों के आज्ञाकारी दास हैं, आपके साथ विघ्न करने की किसकी सामर्थ्य है ॥१७॥ जिस समय नीलाचल जाने के चित्त में बिचार कर लिया है प्रभो ! उसी समय बड़े आनन्द से चलोगे ॥१८॥ श्रीअद्वैतजी के वाक्य सुनकर प्रभु प्रसन्न हुए और परम सन्तोषपूर्वक "हरि हरि" कहने लगे ॥ १९ ॥ उसी क्षण मतवाले सिंह की गति से महाप्रभु यात्रा आरम्भ करके नीलाचल की ओर चल दिये ॥ २० ॥ सब भक्तगण पीछे दौड़कर चले तथा कोई रोने को रोक नहीं पाते थे—सब अधीर हो रहे थे ॥ २१ ॥ श्रीगौर-सुन्दर प्रभु ने कुछ दूर जाकर मधुर वचन कहकर सबको प्रबोधन कर समझाया ॥ २२ ॥ मनमें कोई किसी प्रकार का व्यथा मत मानना, देखो मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा ॥ २३ ॥ जाओ सब लोग घर में बैठकर कृष्ण नामलेना मैं भी कुछ दिन के भीतर ही आ जाऊँगा ॥२४॥ ऐसा कहकर महाप्रभु ने एक-एक करके

ए वलि महाप्रभु सर्व वैष्णवेरे । प्रत्येके प्रत्येके धरि आलिङ्गन करे ॥२५॥
प्रभुर नयन जले सर्व भक्त गण । सिंचित हइया अङ्ग करेन क्रन्दन ॥२६॥
एइ मत नाना रूपे सभा' प्रबोधिया । चलिलेन प्रभु दक्षिणाभि मुख हैया ॥२७॥
कान्दिया कान्दिया प्रेमे सर्व भक्त गण । उठेन पड़ेन पृथिवीते अनुक्षण ॥२८॥
येन गोपीगण कृष्ण मथुरा चलिले । डूवेलेन महाशोक समुद्रेर जले ॥२९॥
ये रूपे रहिल ताँहा सभार जीवन । सेइ मत विरहे रहिला भक्तगण ॥३०॥
दैवे से-इ प्रभु, भक्तगणो से इ सब । उपमाओ से-इ से, से-इ से अनुभव ॥३१॥
ये करेन मने कृष्ण इच्छाय से हय । विष वा अमृत भक्षिलेओ किछुनय ॥३२॥
ये मते याहारे कृष्णचन्द्र राखे मारे । ताहा वइ आर केहो करिते ना पारे ॥३३॥
हेन मते गौराङ्ग सुन्दर नीला चले । आइ सेन चलिया आपन कुतूहले ॥३४॥
नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द, गोविन्द । संहति जगदानन्द आर ब्रह्मानन्द ॥३५॥
पथे प्रभु परीक्षा करेन सभा' प्रति । "कि सम्बल आछे कह काहार संहति ॥३६॥
केवा कि दियाछे कारे पथेर सम्बल । निष्कपटे मोर स्थाने कहत सकल" ॥३७॥
सभे बोले "प्रभु बिना तोमार आज्ञाय । कार द्रव्य लैते शक्ति आछेवा काहाय ॥३८॥
शुनिया ठाकुर बड़ सन्तोष हइला । शेषे सेइ लक्ष्ये तत्त्व कहिते लागिला ॥ ३९ ॥
प्रभु बोले काहारो ये किछु ना लइला । इहाते आमार बड़ सन्तोष हइला ॥ ४० ॥
भोक्तव्य अदृष्टे थाके ये-दिने लिखन । अरण्येओ आसि मिले अवश्य तखन ॥४१॥

सब वैष्णवों को आलिंगन किया ॥२५॥ प्रभु के नेत्र जल से अङ्ग सिंचित होकर सब भक्तवृन्द क्रन्दन कर रहे थे ॥२६॥ इस प्रकार अनेक भाँति से सबको समझाकर प्रभु ने दक्षिण को मुख करके गमन किया॥२७॥ सब भक्तगण प्रेम में रोते हुए क्षण-क्षण में पृथ्वी पर गिरते और उठकर पुनः गिर पड़ते थे ॥ २८ ॥ जिस प्रकार गोपीवृन्द श्रीकृष्णचन्द्र के मथुरा जाने पर महा शोक समुद्र के जल में डूब गई थी ॥ २९ ॥ तथा जिस प्रकार उन सब गोपियों का जीवन रहा उसी प्रकार के विरह में भक्तवृन्दों के प्राण रहे ॥ ३० ॥ दैव-योग से वे ही प्रभु हैं तथा सब भक्त भी वे ही हैं और उपमा भी वही है तथा वही अनुभव भी हैं ॥३१॥ जो कुछ श्रीकृष्ण विचार करते हैं उनकी इच्छा वही होती है न विष खाने से कुछ होता है और न अमृत से ही ॥ ३२ ॥ कृष्णचन्द्र जिसको चाहे जैसे रक्खें अथवा मारें उनके अतिरिक्त और कोई कुछ नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥ इस भाँति गौराङ्गसुन्दर अपनी इच्छा से नीलाचल चले आये ॥ ३४ ॥ साथ में नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द, गोविन्द जगदानन्द व ब्रह्मानन्द थे ॥ ३५ ॥ प्रभु ने मार्ग में सबकी परीक्षा ली कि किसी के पास क्या पूँजी है सो कहो ॥ ३६ ॥ किसी ने किसी से मार्ग व्यय लिया दिया हो तो निष्कपट भाव से मुझसे कह दो ॥ ३७ ॥ सबने कहा "प्रभो तुम्हारी आज्ञा के बिना किसी से द्रव्य लेने की किसकी सामर्थ्य है" ॥३८॥ सुनकर गौरचन्द्र बड़े सन्तुष्ट हुए और तब वे उसी लक्ष्य को रखकर सिद्धान्त कहने लगे ॥३९॥ प्रभु ने कहा "जो किसी से किसी ने जो कुछ नहीं लिया है इससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है" ॥ ४० ॥

प्रभु यारे ये-दिने वा ना लिखे आहार । राजपुत्र हउ तभो उपवास तार ॥४२॥
थाकिलेओ खाइते ना पारे आज्ञा-विने । अकस्मात् कन्दल करये कारो सने ॥४३॥
क्रोध करि बोले 'मुञि ना खाइमूँ भात' । दिव्य करि रहे निज शिरे दिये हाथ ॥४४॥
अथवा सकल द्रव्य हैल विद्यमान । आचम्बिते देहे ज्वर हैल अधिष्ठान ॥४५॥
ज्वर वेदनाय कोथा थाकिल भक्षण । अतएव ईश्वरेर इच्छा से कारण ॥४६॥
त्रिभुवने कृष्ण दियाछेन अन्न छत्र । ईश्वरेर इच्छा थाके मिलिव सर्वत्र ॥४७॥
आपने ईश्वर सर्व जनेरे शिखाय । इहाते विश्वास यार सेइ सुख पाय ॥४८॥
ये-ते-मते केने कोटि प्रयत्न ना करे । ईश्वरेर इच्छा हइलेसे फल धरे ॥४९॥
हेन मते प्रभु तत्त्व कहिते कहिते । उत्तरिला आसि आटिसारा नगरेते ॥५०॥
सेइ आटिसारा-ग्रामे महा भाग्यवान् । आछेन परम साधु-श्रीअनन्त नाम ॥५१ ।
रहिलेन आसि प्रभु ताँहार आलय । कि कहिव आर ताँर भाग्य-समुच्चय ॥५२॥
अनन्त पण्डित अति परम उदार । पाइया परमानन्द वाह्य नाहि आर ॥ ५३ ॥
बैकुण्ठेर पति आसि अतिथि हइला । सन्तोषे भिक्षार सज्ज करिते लागिला ॥५४॥
सर्व-गण-सह प्रभु करिलेन भिक्षा । सन्यासीर भिक्षा धर्म कराइला शिक्षा ॥५५॥
सर्व रात्रि कृष्ण-कथा-कीर्तन-प्रसङ्गे । आछिलेन अनन्त पण्डित गृहे रङ्गे ॥५६॥
शुभ दृष्टि अनन्त पण्डित प्रति करि । प्रभाते चलिला प्रभु वलि 'हरि-हरि' ॥५७॥

जिस दिन प्रारब्ध में भोजन करना लिखा है, वह वह वन में भी उसी समय आकर अवश्य मिलता है ॥ ४१ ॥ प्रभु ने जिस दिन जिसको आहार नहीं लिखा चाहे वह राजपुत्र ही क्यों न हो, तो भी उसको उपवास ही करना पड़ेगा ॥ ४२ ॥ बिना आज्ञा के भक्ष्य पदार्थ घर में रहते भी नहीं खा सकते हैं किसी से अकस्मात् कलह हो जावेगी ॥ ४३ ॥ यदि कोई क्रोध करके कहे कि आज मैं अन्न नहीं खाऊँगा इस प्रकार शपथ करके अपने मस्तक पर हाथ धरकर बैठ जाते ॥ ४४ ॥ अथवा सब द्रव्य (भक्ष्य पदार्थ) विद्यमान होने पर यदि अकस्मात् देह में ज्वर का अधिष्ठान हो जावे ॥ ४५ ॥ तो ज्वर की पीड़ा से भोजन को मन कहाँ करता है ? इसलिये ईश्वर की इच्छा ही (भोजन मिलने में) कारण है ॥ ४६ ॥ कृष्णचन्द्र ने तीनों भुवनों में अन्न का सदाव्रत दे रक्खा है सो ईश्वर की इच्छा से सब जगह मिलेगा ॥ ४७ ॥ स्वयं ईश्वर ही (गौरचन्द्र) ने सब मनुष्यों को यह शिक्षा दी इस पर जिसका विश्वास होगा वह सुख पावेगा ॥ ४८ ॥ चाहे जिस प्रकार से भी कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे–ईश्वर इच्छा से भी वह सफल होता है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार प्रभु गौरचन्द्र तत्त्व कहते २ आटिसारा नामक नगर में आ पहुँचे ॥ ५० ॥ उस आटिसारा ग्राम में एक महाभाग्यवान श्रीअनन्त नामक बड़े साधु रहते थे ॥५१॥ प्रभु आकर उनके घर पर ठहरे, अहो उनके भाग्य की महिमा का क्या कहना ! ॥ ५२ ॥ श्रीअनन्त पंडित अत्यन्त उदार थे उन्हें परम आनन्द हुआ तथा वाह्य ज्ञान जाता रहा ॥ ५३ ॥ श्रीबैकुण्ठपति आकर अतिथि हुए हैं, यह जानकर सन्तोष पूर्वक रसोई की तैयारी करने लगे ॥ ५४ ॥ सब भक्तों के साथ प्रभु ने भिक्षा की और सन्यासियों को भिक्षा धर्म की शिक्षा दी ॥ ५५ ॥ अनन्त पंडित के घर में बड़े आनन्द से सब रात्रि कृष्ण कथा व कीर्तन के प्रसङ्ग में रहे ॥५६॥

देखि सर्व ताप हर श्रीचन्द्रवदन । हरि बलि सर्व लोके डाके अनुक्षण ।।५८।।
योगेन्द्र-हृदये अति दुर्लभ चरण । हेन प्रभु चलियाय देखे सर्व जन ।। ५९ ।।
एइ मत प्रभु जाह्नवीर कूले-कूले । आइ लेन छत्र-भोग महा कुतूहले ।। ६० ।।
सेइ छत्र भोगे गङ्गा हइ शतमुखी । वहिते आछेन सर्व लोके करि सुखी ।। ६१ ।।
जलमय शिवलिङ्ग आछे सेइ स्थाने । 'अम्बुलिङ्ग घाट' करि बोले सर्व जने ।। ६२ ।।
अम्बुलिङ्ग शङ्कर हइला ये निमित्त । सेइ कथा कहि शुन हइ एक चित्त ।। ६३ ।।
पूर्वे भगीरथ करि गङ्गा आराधन । गङ्गा आनि लेन वंश-उद्धार कारण ।। ६४ ।।
गङ्गा विरहे शिव विह्वल हइया । शिव आइलेन शेषे गङ्गा स्मङरिया ।। ६५ ।।
गङ्गारे देखिया शिव सेइ छत्र भोगे । विह्वल हइला अति गङ्गा अनुरागे ।। ६६ ।।
गङ्गा देखि मात्र शिव गङ्गाय पड़िला । जलरूपे शिव जाह्नवीते मिसाइला ।। ६७ ।।
जगन्माता जाह्नवीओ देखिया शङ्कर । पूजा करिलेन भक्ति करिया विस्तर ।। ६८ ।।
शिव से जानेन गङ्गा भक्तिर महिमा । गङ्गा ओ जानेन शिव भक्तिर ये सीमा ।। ६९ ।।
गङ्गाजल-स्पर्शे शिव हैला जलमय । गङ्गा ओ पाइया शिव करिला विनय ।। ७० ।।
जलरूपे शिव रहिलेन सेइ स्थाने । 'अम्बुलिङ्ग घाट' वलि घोषे सर्व जने ।। ७१ ।।
गङ्गा-शिव-प्रभावे से छत्र भोग ग्राम । हइला परम धन्य महातीर्थ नाम ।। ७२ ।।
तथि-मध्ये विशेष महिमा हैल आर । पाइया चैतन्यचन्द्र-चरण-विहार ।। ७३ ।।

अनन्त पण्डित की ओर शुभ दृष्टि करके प्रभु प्रभात होने पर हरि २ कहते हुए चल दिये ।।५७।। समस्त ताप दूर करने वाले श्रीचन्द्रमुख को देखकर सब लोग प्रतिक्षण हरि २ जोर से चिल्ला रहे थे ।। ५८ ।। जिन चरणों का दर्शन योगेन्द्रों को भी दुर्लभ है उन्हीं प्रभु को चलते हुए सब मनुष्य देख रहे थे ।। ५९ ।। इस प्रकार गङ्गाजी के किनारे २ चलकर छत्र भोग नामक स्थान में प्रभु आनन्द से आ पहुँचे ।। ६० ।। उस छत्र भोग में गङ्गाजी शतधारा होकर बहती हुई सब लोगों को सुखी करती हैं ।। ६१ ।। उस स्थान में जलरूप में शिवलिङ्ग है सब लोग अम्बुलिङ्ग घाट कहकर बोलते हैं ।। ६२ ।। जिस कारण से शङ्करजी जलमय लिङ्ग होकर प्रगट हुए वह कथा कहता हूँ एक चित्त होकर सुनो ! ।। ६३ ।। पहिले भगीरथजी अपने वंश उद्धार के निमित्त गङ्गाजी की आराधना करके जब गंगाजी को लाये।।६४।।तब गंगा के विरह में शिवजी विह्वल होकर उन्हें स्मरण करते हुए आये ।। ६५ ।। उस छत्र भोग में शिवजी गंगा को देखकर उनके अनुराग से अति विह्वल हो गये और ।। ६६ ।। गंगा को देखकर ही शिवजी (गंगा में) कूद पड़े और जलरूप होकर शिवजी गंगा में मिल गये ।। ६७ ।। जगत् माता गंगा ने भी शंकर को देखकर विशेष भक्ति पूर्वक प्रेमानन्द से पूजा की ।। ६८ ।। शिवजी ही गंगा भक्ति की महिमा जानते हैं और गंगाजी भी शिव भक्ति की सीमा को जानती हैं ।। ६९ ।। गंगाजल के स्पर्श से शिवजी जलमय हुए थे तथा गंगाजी ने शिवजी को पाकर विनय करी ।। ७० ।। उस स्थान में शिवजी जलरूप में रहते हैं तथा सर्व साधारण अम्बुलिंग घाट कहकर पुकारते हैं ।। ७१ ।। वह छत्र भोग नाम का ग्राम गंगा व शिव के प्रभाव से परम धन्य महातीर्थ स्थान हो गया ।।७२।।

छत्र भोग गेला प्रभु अम्बुलिङ्ग घाटे । शतमुखी गङ्गा प्रभु देखिला निकटे ॥७४॥
देखिया हइला प्रभु आनन्दे विह्वल । 'हरि' बलि हुङ्कार करेन कोलाहल ॥७५॥
आछाड़ खायेन नित्यानन्द कोले करि । सर्व-गणे जय दिया बोले 'हरि हरि' ॥७६॥
आनन्द-आवेशे प्रभु सब-गण लैया । सेइ घाटे स्नान करिलेन सुखी हैया ॥७७॥
अनेक कौतुके प्रभु करिलेन स्नाने । वेद व्यास ताहा सब लिखिव पुराणे ॥७८॥
स्नान करि महाप्रभु उठिलेन कूले । येइ वस्त्र परे सेइ तिते प्रेम जले ॥७९॥
पृथिवीते बहे एक शतमुखी धार । प्रभुर नयने बहे शतमुखी आर ॥८०॥
अपूर्व देखिया सभे हासे भक्तगण । हेन महाप्रभु गौरचन्द्रेर क्रन्दन ॥ ८१ ॥
सेइ ग्रामे अधिकारी रामचन्द्र-खान । यद्यपि विषयी तभू महा भाग्यवान् ॥ ८२ ॥
अन्यथा प्रभुर सङ्गे तान देखा केने । दैवगति आसिया मिलिला सेइ स्थाने ॥ ८३ ॥
देखिया प्रभुर तेज भय हैल मने । दोला हैते सत्वरे नामिला सेइ क्षणे ॥ ८४ ॥
दण्डवत् हइया पड़िला भूमि तले ।प्रभुर नाहिक वाह्य प्रेमानन्द जले ॥ ८५ ॥
'हा-हा जगन्नाथ' प्रभु बोले घने घन । पृथिवीते पड़ि घन करये क्रन्दन ॥ ८६ ॥
देखिया प्रभुर आर्ति रामचन्द्र खान । अन्तरे विदीर्ण हैल सज्जनेर प्राण ॥ ८७ ॥
कोन मते ए आर्तिर हय सम्वरण । कान्दे आर एइमत चिन्ते मने मन ॥ ८८ ॥
त्रिभुवने हेन आछे देखि से क्रन्दन । विदीर्ण ना हय काष्ठ-पाषाणेर मन ॥ ८९ ॥

उनमें चैतन्यचन्द्र के चरण-कमलों के विहार से और भी विशेष महिमा हो गई ॥ ७३ ॥ छत्र भोग ग्राम में प्रभु अम्बुलिंग घाट पर गये और निकट में प्रभु ने शतमुखी गंगा के दर्शन किये ॥७४॥ देखकर प्रभु आनन्द से विह्वल हो गये और हरि २ कहकर हुंकार सहित कोलाहल किये हैं ॥ ७५ ॥ नित्यानन्द को जेट भरकर पछाड़ खाये तथा भक्तवृन्द "जय जय" करके हरि २ बोलने लगे ॥७६॥ प्रभु गौरचन्द्र ने सब भक्तों के साथ आनन्द आवेश में सुख पूर्वक उसी घाट पर स्नान किया ॥ ७७ ॥ प्रभु ने स्नान के समय अनेक कौतुक किये उन सबको वेदव्यासजी पुराण में लिखेंगे ॥७८॥किनारे पर आगये वह जो भी वस्त्र पहिनते थे वही अश्रुजल में भीज जाता था॥७९॥एक शतमुखी धारा तो पृथ्वी पर बहती थी और दूसरी शतमुखी धारा प्रभु के नेत्रों से बह रही थी॥८०॥इस अपूर्व रीति को देखकर सब भक्तवृन्द हँसते थे, उन गौरचन्द्र महाप्रभु का रोना ऐसा था ॥ ८१ ॥ उस गाम का अधिकारी रामचन्द्र खान था यद्यपि वह विषयी था तथापि बड़ा भाग्यवान था ॥ ८२ ॥ अन्यथा प्रभु के साथ उसका मिलन क्यों होता ? सो दैवगति से उस स्थान में वह आकर मिला ॥ ८३ ॥ प्रभु का तेज देखकर उसके मनमें भय हो गया तथा उसी क्षण पालकी से शीघ्र उतर पड़ा ॥८४॥ और दण्डवत् होकर भूमि पर गिर पड़ा, प्रभु के भी प्रेमाश्रु बहने लगे व वाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ ८५ ॥ प्रभु "हा जगन्नाथ २" जोर-जोर से बार-बार बोलते तथा पृथ्वी पर गिरकर बहुत रुदन करते थे ॥ ८६ ॥ प्रभु का दुःख देखकर सज्जन रामचन्द्र खान के प्राण भीतर से विदीर्ण होने लगे ॥ ८७ ॥ यह आर्ति किस प्रकार से सम्बरण (शान्त) होय ऐसे मन ही मनमें चिन्तन करके रोने लगे ॥८८॥ ऐसा क्रन्दन देखकर तीनों लोकों

किछु स्थिर हइ वैकुण्ठेर चूड़ामणि । राम चन्द्र खाने जिज्ञासिलेन "के तुमि" ॥९०॥
सम्भ्रमे करिया दण्डवत् कर जोड़ । बोले "प्रभु दास-अनुदास मुञि तोर" ॥९१॥
तबे शेषे सर्व लोक लागिला कहिते । "एइ अधिकारी प्रभु दक्षिण-राज्येते ॥९२॥
प्रभु बोले "तुमि अधिकारी बड़ भाल । नीलाचले आमि याइ केमते सकाल' ॥९३॥
बहये आनन्द धारा कहिते कहिते । 'नीलाचल चन्द्र' बलि पड़िला भूमिते ॥९४॥
रामचन्द्र खान बोले "शुन महाशय । ये आज्ञा तोमार से-इ कर्तव्य निश्चय ॥९५॥
सबे प्रभु हइयाछे विषम समय । से देशे ए देशे केहो पथ नाहि वय ॥९६॥
राजारा त्रिशूल पुँतियाछे स्थाने स्थाने । पथिक पाइले 'जाशु' बलि लय प्राणे ॥९७॥
कोन् दिग दिया वा पाठाङ लुकाइया । ताहाते डराङ प्रभु शुन मन दिया ॥९८॥
मुञि से नस्कर, एथाकार मोर भार । नागालि पाइले, आगे संशय आमार ॥९९॥
तथापिह ये-ते केने प्रभु मोर नय । ये तोमार आज्ञा ताहा करिमू निश्चय ॥१००॥
यदि मोरे 'भृत्य' हेन ज्ञान थाके मने । तबे एथा भिक्षा आजि कर सर्व-गणे ॥१०१॥
जाति प्राण धन केने मोहोर ना जाय । आजि रात्र्ये तोमा पाठाइमूँ सर्व थाय ॥१०२॥
शुनिञा हइला सुखी वैकुण्ठेर नाथ । हासि ताने करिलेन शुभ दृष्टि पात ॥१०३॥
दृष्टि-मात्र ताँर सर्व-बन्ध क्षय करि । ब्राह्मण आश्रमे रहिलेन गौरहरि ॥१०४॥
ब्राह्मण-मन्दिरे हैल परम मङ्गल । प्रत्यक्ष पाइल सर्व सुकृतेर फल ॥१०५॥

में काष्ठ पाषान का मन भी विदीर्ण हो जाता ॥ ८९ ॥ बैकुण्ठ चूड़ामणि श्री (गौर) ने कुछ स्थिर होकर–रामचन्द्र खान से पूछा कि तुम कौन हो ? ॥ ९० ॥ शीघ्रता से दण्डवत् करके हाथ जोड़कर वह बोला–हे प्रभो ! मैं आपके दासों का तुच्छ सेवक हूँ ॥ ९१ ॥ उसके पीछे से सब लोग कहने लगे–"प्रभो ! यह दक्षिण राज्य के अधिकारी हैं" ॥ ९२ ॥ प्रभु ने कहा "तुम बड़े उत्तम अधिकारी हो सो कहो मैं नीलाचल को शीघ्रता से कैसे जा सकूँगा ? ॥ ९३ ॥ ऐसा कहते ही आनन्दधारा बहने लगी और "हे नीलाचलचन्द्र" कहकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ९४ ॥ रामचन्द्रखान ने कहा "हे महाशय ! सुनो जो आपकी आज्ञा वही निश्चित कर्तव्य है !"॥९५॥हे प्रभो ! इस समय बड़ी विषम परिस्थिति है उस देश से इस देश में मार्ग बन्द है ॥ ९६ ॥ स्थान २ पर राजाओं ने त्रिशूलधारी पुरुष छोड़ रक्खे हैं वे रास्ता चलने वालों को जासूस कहकर उनके प्राणों को ले लेते हैं ॥ ९७ ॥ यदि किसी ओर से छुपाकर भेज भी दूँ तो ध्यान से सुनिये "उससे भी मैं डरता हूँ" ॥ ९८ ॥ मैं ही वह राज-सेवक हूँ जिसके ऊपर यहाँ का प्रबन्ध भार है यदि निकट में आप गये तो भविष्य में मेरी संशयात्मक स्थिति हो जावेगी ॥ ९९ ॥ तथापि मेरे लिये प्रभु की जो कुछ आज्ञा क्यों न हो मैं उसे निश्चय पूर्वक करूँगा ॥ १०० ॥ यदि अपने मनमें मुझे अपना सेवक जानते हैं तो आज सब भक्तों सहित यहाँ भिक्षा (भोजन) करें ॥ १०१ ॥ चाहे मेरे धन, प्राण व जाति ही क्यों न चले जाँय तो भी मैं आज रात्रि में आपको अवश्य भेज दूँगा ॥ १०२ ॥ बैकुण्ठनाथ (गौर) सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और हँसकर उनके ऊपर शुभ दृष्टिपात की ॥ १०३ ॥ उन रामचन्द्रखाँन के दृष्टि मात्र से सब बन्धन नष्ट करके गौरहरि ब्राह्मण के आश्रम में ठहर गये ॥१०४॥ ब्राह्मण के घर में परम मंगल हुआ और सब सुकृतों

नाना यत्ने दृढ़-भक्तियोग-चित्त हैया । प्रभुर रन्धन विप्र करिलेन गिया ॥१०६॥
नाम मात्र ठाकुर से करेन भोजन । निजा वेशे अवकाश नाहि ताँर क्षण ॥१०७॥
भिक्षा करे प्रभु प्रियवर्ग-सन्तोषार्थ । निरवधि प्रभुर भोजन परमार्थ ॥१०८॥
विशेषे चलिला ये अवधि जगन्नाथे । नाम से भोजन प्रभु करे सेइ हैते ॥१०९॥
निरवधि जगन्नाथ प्रति आर्ति करि । आइसेन सर्व पथ आपना पासरि ॥११०॥
कारे बलि रात्रि दिन पथेर सञ्चार । किबा जल किबा स्थल पार वा ओपार ॥१११॥
किछुइ ना जाने प्रभु डूबि भक्तिरसे । प्रियवर्ग राखे निरवधि रहि पाशे ॥११२॥
ये आवेश महाप्रभु करेन प्रकाश । ताहा के कहिते पारे बिने वेदव्यास ॥११३॥
ईश्वरेर चरित्र बूझिते शक्ति कार । कखन किरूपे कृष्ण करेन विहार ॥११४॥
कारे वा करेन आर्ति, कान्देन काहारे । ए मर्म जानिते नित्यानन्द शक्ति धरे ॥११५॥
निज-भक्ति-रसे डूबि वैकुण्ठेर राय । आपना ना जाने प्रभु आपन-लीलाय ॥११६॥
आपनेइ जगन्नाथ भावेन आपने । आपने करिया आर्ति लओयायेन जने ॥११७॥
यदि कृपादृष्टि ना करेन जीव प्रति । तवे कार आछे ताने जानिते शकति ॥११८॥
नित्यानन्द-आदि सर्व प्रियवर्ग लैया । भोजन करिते प्रभु वसिलेन गिया ॥११९॥
किछु मात्र अन्न प्रभु परिग्रह करि । उठिलेन हुङ्कार करिया गौरहरि ॥१२०॥
आविष्ट हइला प्रभु करि आचमन । 'कत दूरे जगन्नाथ' बोले घने घन ॥१२१॥

का फल प्रत्यक्ष पा गया ॥ १०५ ॥ अनेक यत्न करके भक्ति-योग में मन को दृढ़ करके वह ब्राह्मण प्रभु के निमित्त रन्धन करने गया ॥ १०६ ॥ उस भोजन में से प्रभु ने नाम मात्र को भोजन किया कारण कि अपने प्रेमावेश से एक क्षण को भी अवकाश नहीं था ॥१०७॥ प्रभु ने प्रियजनों के सन्तोष के लिये कुछ खा लिया कारण कि सदा ही प्रभु का भोजन तो परमार्थ ही है ॥ १०८ ॥ विशेष कर जबसे जगन्नाथ के लिये चले तब से तो प्रभु नाम मात्र को ही भोजन करते थे ॥ १०९ ॥ और अपने को भुलाकर निरन्तर श्रीजगन्नाथ के प्रति अपनी दीनता दरसाते हुए पूरा मार्ग गमन किया॥११०॥रात दिन किसे कहते हैं चलाचल मार्ग में कैसे चले जा रहे थे, क्या जल, क्या थल-क्या इस पार-क्या उस पार-भक्तिरस में डूबे होने से प्रभु को कुछ भी पता नहीं था-प्रियवर्ग ही निरन्तर उनके पास रहकर देख-रेख करते थे ॥१११-११२॥ जो आवेश महाप्रभुजी प्रकाश करते थे उसे वेदव्यास बिना कौन कह सकता है ?॥ ११३ ॥ ईश्वर के चरित्र को समझने की किस में सामर्थ्य है कारण कृष्णचन्द्र कब किस रूप में विहार करें ॥ ११४ ॥ किसके प्रति प्रीति करते हैं किसके लिये रोते हैं इस मर्म को समझने में श्रीनित्यानन्द ही समर्थ हैं ॥ ११५ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ अपने भक्तिरस में डूबकर अपनी लीला द्वारा अपने को ही नहीं पहिचानते थे ॥ ११६ ॥ आप ही स्वयं जगन्नाथ हैं आपही भावना करते हैं और स्वयं ही दया करके लोगों को ग्रहण भी कराते हैं ॥११७॥ यदि जीव के प्रति कृपादृष्टि न करें तो ऐसा कौन है जो उन्हें जानने की अपनी सामर्थ्य रक्खे ॥ ११८ ॥ नित्यानन्द आदि सब प्रियवर्गों के साथ गौरप्रभु भोजन करने बैठे ॥ ११९ ॥ गौरहरि प्रभु बहुत थोड़ा अन्न ग्रहण करके हुंकार करते हुए उठ खड़े हुए ॥ १२० ॥ आचमन करने के अनन्तर प्रभु को आवेश हो गया और बार २ कहने लगे कि

मुकुन्द लागिला मात्र कीर्तन करिते । आरम्भिला वैकुण्ठेर ईश्वर नाचिते ॥१२२॥
पुण्यवन्त यत-यत छत्र भोगवासी । सभे देखे नृत्य करे वैकुण्ठ विलासी ॥१२३॥
अश्रु, कम्प, हुङ्कार, पुलक, स्तम्भ, घर्म । कत हय के जाने से विकारेर मर्म ॥१२४॥
किवा से अद्‌भुत नयनेर प्रेम-धार । भाद्र मासे ये-हेन गङ्गार अवतार ॥१२५॥
पाक दिया नृत्य करिते ये छुटे जल । ताहा तेइ लोक स्नान करिल सकल ॥१२६॥
इहारे से कहि प्रेममय-अवतार । ए शक्ति चैतन्यचन्द्र बिने नाहि आर ॥१२७॥
एइ मते गेल रात्रि तृतीय प्रहर । स्थिर हइलेन प्रभु श्रीगौरसुन्दर ॥१२८॥
सकल लोकेर चित्ते 'येन क्षण प्राय' । सभार निस्तार हैल चैतन्य कृपाय ॥१२९॥
हेनइ समये कहे रामचन्द्रखान । नौका आसि घाटे प्रभु हैल विद्यमान ॥१३०॥
सेइ क्षणे 'हरि' बलि श्रीगौरसुन्दर । उठि लेन गिया प्रभु नौकार उपर ॥१३१॥
शुभ दृष्ट्ये लोकेर विदाय दिया घरे । चलिलेन प्रभु नीलाचल-निज पुरे ॥१३२॥
प्रभुर आज्ञाय श्रीमुकुन्द महाशय । कीर्तन करेन प्रभु नौकाय विजय ॥१३३॥
अबुध नाइया बोले हइल संशय । बूझिलाङ आजि आर प्राण नाहि रय ॥१३४॥
कूले उठिले से बाघे लइया पलाय । जले पड़िले से बोल कुम्भीरेइ खाय ॥१३५॥
निरन्तर ए पानीते डाकाइत फिरे । पाइलेइ धन प्राण दुइ नाश करे ॥१३६॥
एतेके यावत उड़ियार देश पाइ । तावत नीरव हओ सकल गोसाञि ॥१३७॥

"जगन्नाथ कितनी दूर में हैं ?" ॥ १२१ ॥ तब मुकुन्द एक दम कीर्तन करने लगे व वैकुण्ठपति ने नृत्य करना आरम्भ कर दिया ॥ १२२ ॥ अहो बैकुण्ठविलासी (गौरहरि) नाच रहे हैं, ऐसा सभी पुण्यवान छत्र-भोगवासियों ने देखा ॥ १२३ ॥ अश्रु-कम्प हुङ्कार-पुलक-स्तम्भ-घर्म(प्रस्वेद) आदि विकारों के मर्म को कौन जाने कि कितने हो रहे थे ॥ १२४ ॥ अहो अद्‌भुत नेत्रों से कैसी अपूर्व प्रेम की धारा बह रही थी, मानों भादों के महीने में गङ्गाजी उतर आई हों ॥ १२५ ॥ फेरी देकर नृत्य करते समय जो जल छूट रहा था उसी से सब लोगों का स्नान हो गया ॥ १२६ ॥ इसी कारण से ही इन्हें प्रेम का अवतार कहते हैं और यह शक्ति श्रीचैतन्यचन्द्र के सिवाय और किसी (अवतार) में नहीं है ॥ १२७ ॥ इस प्रकार तीन प्रहर रात बीतने पर श्रीगौरसुन्दर कुछ स्थिर हुए ॥ १२८ ॥ परन्तु सब (उपस्थित) मनुष्यों को मालूम हुआ मानों क्षण मात्र ही बीता है—श्रीचैतन्यदेव की कृपा से सबका निस्तार हो गया ॥ १२९ ॥ उसी समय पर रामचन्द्रखान ने कहा "प्रभो ! घाट पर नौका आ गई है (उपस्थित है) ॥१३०॥ तब श्रीगौरसुन्दर प्रभु 'हरि २' कहते हुए उठकर नौका पर जा बैठे ॥ १३१ ॥ प्रभु ने शुभ दृष्टिपात करके सब लोगों को निज २ घर जाने को बिदा दी और स्वयं निज धाम नीलाचल को चल दिये और ॥ १३२ ॥ श्रीगौरसुन्दर आज्ञा से श्रीमुकुन्द महाशय श्रीकृष्ण की नौका विजय लीला (नौका खण्ड) गान करने लगे ॥ १३३ ॥ मूर्ख नाविकों (मल्लाहों) ने कहा—समझ गये आज और प्राण नहीं रहेंगे, ऐसा सन्देह हुआ कि ॥१३४॥ किनारे पर जावें तो बाघ लेकर भाग जावेगा और जल में कूदें तो कहीं मगर खा जायगा ॥ १३५ ॥ इस पानी में हर समय डाकू फिरते हैं—यदि मिल जावें तो धन और प्राण दोनों का नाश कर देते ॥ १३६ ॥ इसलिये हे सब

सङ्कोच हइल सभे नाइयार बोले । प्रभु से भासेन निरवधि प्रेम जले ॥१३८॥
चणेके उठिला प्रभु करिया हुङ्कार । सभाके बोलेन 'केने भयकर कार ॥१३९॥
एइ ना सम्मुखे सुदर्शन चक्र फिरे । वैष्णव जनेर निरवधि विघ्न हरे ॥१४०॥
किछु चिन्ता नाहि, कर कृष्ण सङ्कीर्तन । तोरा किना देख हेर फिरे सुदर्शन' ॥१४१॥
शुनिआ प्रभुर वाक्य सर्व भक्तगण । आनन्दे लगिला सभे करिते कीर्तन ॥१४२॥
व्यपदेशे महाप्रभु कहेन सभारे । निरवधि सुदर्शन भक्त रचा करे ॥१४३॥
जे पापिष्ठ वैष्णवेर पच्च हिंसा करे । सुदर्शन-अग्नि ते से पापी पूड़ि मरे ॥१४४॥
विष्णु चक्र सुदर्शन रचक थाकिते । कार शक्ति आछे भक्त जनेरे लंघिते ॥१४५॥
एइ मत श्रीगौरचन्द्रेर गोप्य कथा । तान कृपा जारे सेइ बूझ ये सर्वथा ॥१४६॥
हेन मते महाप्रभु सङ्कीर्तन रसे । प्रवेश हइला आसि श्रीउत्कल देशे ॥१४७॥
उत्तरिला गिया नौका श्रीप्रयाग घाटे । नौका हैते महाप्रभु उठिलेन तटे ॥१४८॥
प्रवेश करिला गौरचन्द्र ओड्र देशे । इहा ये शुनये से भासये प्रेम रसे ॥१४९॥
आनन्दे ठाकुर ओड्र देश हइ पार । सर्व-गण-सहित हइला नमस्कार ॥१५०॥
सेइ स्थाने आछे ताँर 'गङ्गाघाट' नाम । ताहिँ गौरचन्द्र प्रभु करिलेन स्नान ॥१५१॥
युधिष्ठिर-स्थापित महेश तथा आछे । स्नान करि ताँरे नमस्करि लेन पाछे ॥१५२॥
ओड्र देशे प्रवेश करिला गौरचन्द्र । गण-सह हइलेन परम आनन्द ॥१५३॥

गुसाँइयो ! जब तक उड़िया देश में पहुँच जावें तब तक सब चुप्प हो रहो ॥ १३७ ॥ मल्लाहों के कहने से सबको संकोच हुआ, परन्तु प्रभुजी तो निरन्तर प्रेमजल में ही डूब रहे थे ॥ १३८ ॥ और तुरन्त उठकर प्रभु हुङ्कारते हुए सबसे बोले कि क्यों किसी का डर करते हो ? ॥ १३९ ॥ क्या यह नहीं है कि वैष्णवजनों के सम्मुख विघ्नहरन करने को सुदर्शन-चक्र निरन्तर घूमता रहता है ? ॥१४०॥ कुछ चिन्ता नहीं ! कृष्ण नाम संकीर्तन करो ! तुम लोग क्या नहीं देखते यह सुदर्शन चक्र फिर रहा है ॥१४१॥ भक्तवृन्द प्रभु के वाक्य को सुनकर सब ही आनन्द से कीर्तन करने लगे ॥ १४२ ॥ व्यपदेश (छल) करके महाप्रभु सबसे कहने लगे कि सुदर्शन चक्र तो निरन्तर भक्तों की रचा करता रहता है ॥ १४३ ॥ जो पापी वैष्णवों की हिंसा करते हैं वे (पापी) सुदर्शन चक्र की अग्नि में दग्ध होकर मरते हैं ॥ १४४ ॥ श्रीविष्णु के सुदर्शन चक्र के रचक रहते हुए किसकी सामर्थ्य है जो भक्तों का लंघन व हिंसा करे ? ॥ १४५ ॥ श्रीगौरचन्द्र की ऐसी ही गुप्त कथाएं हैं जिन पर उनकी कृपा है वे ही ठीक समझते हैं ॥ १४६ ॥ इस प्रकार महाप्रभु संकीर्तन रस में प्रविष्ठ हुए और श्री उत्कल देश में आ पहुँचे ॥ १४७ ॥ नौका (मन्त्रेश्वर नदी के) श्रीप्रयाग घाट पर जाकर लगी और महाप्रभुजी नौका से तट पर उतर गये ॥ १४८ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने उत्कल देश में प्रवेश किया इस कथा को जो सुनेंगे वे प्रेमरस में डूब जाँयगे ॥ १४९ ॥ श्रीगौरचन्द्र आनन्द पूर्वक उत्कल देश के पार पर जाकर सब भक्तों के साथ नमस्कार की ॥ १५० ॥ वहीं पास में गङ्गा घाट नामक एक घाट है उस पर गौरचन्द्र ने सब गण सहित स्नान किया ॥ १५१ ॥ वहाँ पर युधिष्ठिर के स्थापित किये हुए महादेव हैं सो स्नान करके उन्हें नमस्कार किया ॥ १५२ ॥ उत्कल देश में प्रवेश करते ही श्रीगौरचन्द्र भक्तों सहित बड़े आनन्दितहुए ॥१५३॥

एक देव स्थाने प्रभु थुइया सभारे । आपने चलिला प्रभु भिक्षा करिवारे ॥१५४॥
यार घरे गिया प्रभु उपसन्न हय । से विग्रह देखिते काहार मोह नय ॥१५५॥
आंचल पातेन प्रभु श्रीगौर सुन्दर । सभेइ तण्डुल आनि देयेन सत्त्वर ॥१५६॥
भक्ष्य द्रव्य उत्कृष्ट ये थाके यार घरे । सभेइ सन्तोषे आनि देयेन प्रभुरे ॥१५७॥
'जगतेर अन्नपूर्णा' ये लक्ष्मीर नाम । से लक्ष्मी मागेन याँर पाद पद्म स्थान ॥१५८॥
हेन प्रभु आपने सकल घरे घरे । न्यासिरूपे भिक्षा-छले जीव धन्य करे ॥१५९॥
भिक्षा करि प्रभु हइ हरषित-मन । आइलेन यथा वसि आछे भक्तगण ॥१६०॥
भक्ष्य द्रव्य देखि सभे लागिला हासिते । सभेइ बोलेन "प्रभु पारिवा पूषिते" ॥१६१॥
सन्तोषे जगदानन्द करिला रन्धन । सभार संहति प्रभु करिला भोजन ॥१६२॥
सर्व रात्रि सेइ ग्रामे करि सङ्कीर्तन । उषः काले महाप्रभु करिला गमन ॥१६३॥
कथो-दूरे गेले मात्र दानी दुराचार । राखिलेल, दान चाहे, ना देय याइवार ॥१६४॥
देखिया प्रभुर तेज पाइल विस्मय । जिज्ञासिल "तोमार कतेक लोक हय" ॥१६५॥
प्रभु कहे जगते आमार केहो नय । आमिह काहारो नाहि-कहिल निश्चय ॥१६६॥
एक आमि, दुइ नाहि सर्वथा आमार । कहिते नयने बहे अविरत धार ॥१६७॥
दानी बोले 'गोसाञि करह शुभ तुमि । ए-सभार दान पाइले छाड़ि दिव आमि' ॥१६८॥
शुभ करिलेन प्रभु 'गोविन्द' वलिया । कथो दूरे सभा छाड़ि वसिलेन गिया ॥१६९॥
सभा परिहरि प्रभु करिला गमन । हरिष-विषाद हइलेन भक्तगण ॥१७०॥

गौरप्रभु एक देव मन्दिर में सबको रखकर स्वयं भिक्षा करने के लिये गये ॥ १५४ ॥ प्रभु जिसके घर जाकर उपस्थित होते थे वहाँ आपके उस श्रीविग्रह को देखकर किसी को मोह नहीं होता था ? ॥१५५॥श्रीगौरसुन्दर प्रभु अञ्चल (वस्त्र) फैलाते और सब लोग शीघ्र ही चावल लाकर डाल देते थे ॥ १५६ ॥ जिसके घर में जो भी उत्कृष्ट भक्ष्य द्रव्य थी सब ही ने प्रसन्न होकर लाकर प्रभु को दी ॥१५७॥ जिस लक्ष्मी का नाम "जगत् की अन्नपूर्णा" है वह लक्ष्मी जिनके चरण-कमलों में स्थान माँगती है, ऐसे प्रभु सबके घर २ में सन्यासी रूप से भिक्षा के बहाने जीवों को धन्य कर रहे थे ॥ १५८-१५९ ॥ भिक्षा करके प्रभु प्रसन्न मन से जहाँ भक्तवृन्द बैठे थे वहाँ आये ॥ १६० ॥ भक्ष्य द्रव्य देखकर सब हँसने लगे और सब ही बोले "प्रभु पोषण करने में" समर्थ हैं ॥ १६१ ॥ प्रसन्न होकर सन्तुष्ट मन से जगदानन्द ने रसोई करी तब सबके साथ प्रभु ने भोजन किया ॥ १६२ ॥ सब रात्रि उस ग्राम में संकीर्तन करके प्रातः (उषाकाल) में महाप्रभु ने गमन किया ॥ १६३ ॥ कुछ थोड़ी दूर जाने पर दुराचारीदानियों ने रोक लिये और जाने नहीं देते हैं तथा दान चाहते हैं ॥१६४॥ प्रभु का तेज देखकर विस्मित हुए और जिज्ञासा की कि तुम्हारे साथ कितने लोग हैं ? ॥१६५॥ प्रभु ने कहा जगत् में मेरा कोई नहीं है और मैं भी किसी का नहीं हूँ यह निश्चय कहता हूँ॥१६६॥मैं एक ही हूँ सदा से मेरा दूसरा नहीं हैं । इस प्रकार कहते २ नेत्रों से अटूट धारा बहने लगी।१६७॥दानी ने कहा प्रभु! तुम शुभ गमन करो और इन सबको तो मैं दान मिलने पर छोड़ूँगा ॥ १६८ ॥ "गोविन्द" कहकर प्रभु ने गमन किया और सबको छोड़कर कुछ दूर पर जा विराजे ॥ १६९ ॥ सबको छोड़कर प्रभु ने गमन किया

देखिया प्रभुर अति निरपेक्ष खेला । अन्योन्ये सर्वगणे हासिते लागिला ॥१७१॥
पाछे प्रभु सभा छाड़ि करेन गमन । एतेके विषाद आसि धरिलेक मन ॥१७२॥
प्रबोधिया नित्यानन्द बोले चिन्ता नाञि । आमा सभा छाड़ि ना याइबेन गोसाञि ॥१७३॥
दानी बोले तोमरात सन्यासीर नह । एतेके आमार ये उचित दान देह ॥१७४॥
कथो-दूरे प्रभु सर्व पार्षद छाड़िया । हेट माथा करि मात्र कान्देन वसिया ॥१७५॥
काष्ठ-पाषाणादि द्रवे शुनिञा क्रन्दन । अद्भुत देखिया दानी गणे मने मन ॥१७६॥
दानी बोले ए पुरुष नर कभू नय । मनुष्येर नयने कि एत जल हय ॥१७७॥
सभारे जिज्ञासे दानी प्रणति करिया । के तोमरा, कार लोक, कहत भाङ्गिया ॥१७८॥
सभे वलिलेन अइ ठाकुर सभार । 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम शुनिञाछ याँर ॥१७९॥
सभेइ उँहार भृत्य आमरा-सकल । कहिते सभार आँखि वाहि पड़े जल ॥१८०॥
देखिया सभार प्रेम मुग्ध हैल दानी । दानीर नयन दुइ वहि पड़े पानी ॥१८१॥
आथे व्यथे दानी गिया प्रभुर चरणे । दण्डवत् हइ बोले विनय वचने ॥१८२॥
कोटि-कोटि जन्मे यत, आछिल मङ्गल । तोमा देखि आजि पूर्ण हइल सकल ॥१८३॥
अपराध क्षमा कर करुणासागर । चल नीलाचल गिया देखह सत्वर ॥१८४॥
दानी प्रति करि प्रभु शुभ दृष्टिपात । 'हरि' वलि चलिलेन सर्व जीब नाथ ॥१८५॥
सभार करिव गौरसुन्दर उद्धार । विना पापी वैष्णव निन्दक दुराचार ॥१८६॥

इससे भक्तवृन्द हर्ष व विषाद से भर गये ॥ १७० ॥ प्रभु के अति निरपेक्ष-खेल (लीला) को देखकर परस्पर सब भक्तवृन्द हँसने लगे ॥ १७१ ॥ हाय कहीं पीछे से प्रभु सबको छोड़कर चले न जाय इसी विषाद ने सबके मन पकड़ लिये ॥ १७२ ॥ सबको समझाकर नित्यानन्दजी ने कहा "चिन्ता मत करो हम सबको छोड़कर गोसाईं गौरचन्द्र नहीं जाँयगे ॥ १७३ ॥ दानी ने कहा तुम लोग तो सन्यासी के कोई नहीं हो इसलिये जो मेरा उचित दान है देओ ॥ १७४ ॥ प्रभु कुछ दूर पर सब पार्षदों को छोड़ कर नीचा मस्तक करके बैठ कर केवल रोने लगे ॥ १७५ ॥ रोना सुनकर काष्ठ व पाषाण आदि भी पिघल जाते थे, इस प्रकार अद्भुत रोना देखकर दानी मन ही मन सोचने लगा ॥ १७६ ॥ दानी ने कहा यह पुरुष कभी मनुष्य नहीं हो सकता भला मनुष्य के नेत्रों से क्या इतना जल हो सकता है ॥ १७७ ॥ दानी ने प्रणति (प्रणाम) करके सबसे पूछा कि तुम कौन हो और किसके लोग व साथी हो, समझाकर तो कहो ? ॥ १७८ ॥ सबने कहा "जिनका "श्रीकृष्णचैतन्य" नाम सुना होगा वे यही हम सबके ठाकुर (प्रभु) हैं और ॥ १७९ ॥ हम सब उन्हीं के दास हैं तथा वे हमारे सर्वस्व हैं ऐसा कहते २ सबके नेत्रों से जल गिरने लगा ॥ १८० ॥ सबके प्रेम को देखकर दानी मुग्ध हो गया तथा उसके दोनों नेत्रों से जल की धारा बहने लगी ॥ १८१ ॥ और गिरते-पड़ते प्रभु के चरणों में दण्डवत् होकर दानी ने विनय पूर्वक कहा ॥ १८२ ॥ करोड़ों जन्मों के जितने (शुभ कर्म) मङ्गल रहे आज तुम्हारे दर्शन करके सब पूर्ण हुए ॥ १८३ ॥ हे करुणासागर ! अपराध क्षमा करो, आइये शीघ्र ही नीलाचलचन्द्र के दर्शन कीजिये ॥ १८४ ॥ प्रभु ने दानी के प्रति शुभ दृष्टिपात की और सब जीवों के स्वामी हरि २ कहकर चल दिये ॥ १८५ ॥ दुराचारी, वैष्णव-निन्दक पापियों को

असुर द्रविल चैतन्येर गुण-नामे । अत्यन्त दुष्कृति पापी से-इ नाहि माने ॥१८७॥
हेन मते नीलाचले वैकुण्ठेर नाथ । आइसेन सभारे करिया दृष्टिपात ॥१८८॥
निज प्रेमानन्दे प्रभु पथ नाहि जाने । अहर्निश सुविह्वल प्रेमरस-पाने ॥१८९॥
एइ मते महाप्रभु चलिया आसिते । कथो-दिने उत्तरिला सुवर्ण रेखाते ॥१९०॥
सुवर्ण रेखार जल परम-निर्मल । स्नान करिलेन प्रभु वैष्णव-सकल ॥१९१॥
स्नान करि स्वर्ण रेखा-नदी धन्य करि । चलिलेन श्रीगौरसुन्दर नरहरि ॥१९२॥
रहिला अनेक पाछे नित्यानन्दचन्द्र । संहति ताँहार सबे श्रीजगदानन्द ॥१९३॥
कथो-दूरे गौरचन्द्र वसिलेन गिया । नित्यानन्द स्वरूपेर अपेक्षा करिया ॥१९४॥
चैतन्य-आवेशे मत्त नित्यानन्द-राय । विह्वलेर प्राय व्यवसाय सर्वथाय ॥१९५॥
कखनो हुङ्कार करे, कखनो रोदन । क्षणे महा अट्टहास, क्षणे वा गर्जन ॥१९६॥
क्षणे वा नदीर माझे एड़ेन सांतार । क्षणे सर्व-अङ्गे धूला माखेन अपार ॥१९७॥
क्षणे वा ये आछाड़ खायेन प्रेमरसे । चूर्ण हय अङ्ग हेन सर्व लोक वासे ॥१९८॥
आपना आपनि नृत्य करे कौन क्षणे । टलमल करये पृथिवी सेइ क्षणे ॥१९९॥
ए सकल कथा ताने किछु चित्र नय । अवतीर्ण आपने अनन्त महाशय ॥२००॥
नित्यानन्द कृपाय ए सब शक्ति हय । निरवधि गौरचन्द्र याहार हृदय ॥२०१॥
नित्यानन्द स्वरूपे थुइया एक-स्थाने । चलिलेन जगदानन्द भिक्षा अन्वेषणे ॥२०२॥

छोड़कर श्रीगौरसुन्दर और सबका उद्धार करेंगे ॥ १८६ ॥ चैतन्य के गुण व नाम के प्रभाव से असुर भी द्रवीभूत होते थे, केवल जो अत्यन्त दुष्कृति पापी थे वे ही नहीं माने ॥ १८७ ॥ इस प्रकार श्रीवैकुण्ठनाथ सबके ऊपर शुभ दृष्टिपात करते हुए नीलाचल आ गये ॥ १८८ ॥ अपने प्रेमानन्द में प्रभु को मार्ग भी नहीं जान पड़ता क्योंकि प्रेमरस पान में दिन राति विशेष विह्वल रहते थे ॥ १८९ ॥ इस प्रकार श्रीमहाप्रभु चलकर कुछ दिन में सुवर्ण रेखा नदी के तट पर उतरे ॥ १९० ॥ सुवर्ण रेखा के परम निर्मल जल में श्रीप्रभु व सब वैष्णवों ने स्नान किया ॥ १९१ ॥ स्नान से स्वर्ण रेखा नदी को धन्य करके नरों में श्रेष्ठ श्रीगौरसुन्दर चल दिये ॥ १९२ ॥ श्रीनित्यानन्दचन्द्र तो बहुत पीछे थे, उनके साथ केवल श्रीजगदानन्दजी रह गये ॥ १९३ ॥ कुछ दूर जाकर श्रीगौरचन्द्र बैठ गये और श्रीनित्यानन्द स्वरूप की बाट देखने लगे ॥ १९४ ॥ श्रीनित्यानन्दराय तो श्रीचैतन्य के प्रेमावेश में मत्त हो रहे थे और बिलकुल विह्वलों के जैसा उनका आचरण हो रहा था ॥ १९५ ॥ कभी हुंकार करते थे तो कभी रोदन करते और क्षण में जोर से हँसते तो कभी गर्जन करते थे ॥ १९६ ॥ क्षण में ही नदी में तैरने लगते तो दूसरे ही क्षण में सब अङ्ग में अपार धूलि मल लेते ॥ १९७ ॥ क्षण में ही जो प्रेमरस में पछाड़ खाते तो सब लोग ऐसा समझते कि अङ्ग चूर २ हो गया ॥१९८॥ कभी किसी क्षण में आप ही आप नृत्य करते तो उस समय पृथ्वी डगमगाने लगती ॥१९९॥ ये सब बातें उनके लिये कुछ विचित्र नहीं हैं क्योंकि स्वयं अनन्त महाशय ही आप अवतीर्ण हुए हैं ॥२००॥ यह सब सामर्थ्य श्रीनित्यानन्द की कृपा से होती है क्योंकि श्रीगौरचन्द्र उनके हृदय में निरन्तर स्थित रहते हैं ॥ २०१ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप को एक स्थान में कर जगदानन्दजी भिक्षा लेने गये ॥ २०२ ॥ गौर-

ठाकुरेर दण्ड श्रीजगदानन्द वहे । दण्ड थुइ नित्यानन्द-स्वरूपेरे कहे ॥२०३॥
'ठाकुरेर दण्डे मन दिह सावधाने । भिक्षा करि आमिह आसिब एइ क्षणे' ॥२०४॥
आथे व्यथे नित्यानन्द दण्ड धरि करे । वसिलेन सेइ स्थाने विह्वल-अन्तरे ॥२०५॥
दण्ड हाथे करि हासे नित्यानन्द-राय । दण्डेर सहित कथा कहेन लीलाय ॥२०६॥
अये दण्ड आमि यारे वहिये हृदये । से तोमारे वहिवेक ए-त युक्त नहे ॥२०७॥
एत वलि बलराम परम प्रचण्ड । फेलि लेन दण्ड भाङ्गि करि तिन खण्ड ॥२०८॥
ईश्वरेर इच्छा, मात्र ईश्वर से जाने । केने भाङ्गिलेन दण्ड, जानिव केमने ॥२०९॥
नित्यानन्द ज्ञाता गौरचन्द्रेर अन्तर । नित्यानन्देरे श्रो जाने श्रीगौरसुन्दर ॥२१०॥
आगे येन दुइ भाइ श्रीराम लक्ष्मण । दोंहार अन्तर दोंहे जाने अनुक्षण ॥२११॥
एक वस्तु दुइ भाग भक्ति बुझाइते । गौरचन्द्र जानि सबे नित्यानन्द हैते ॥२१२॥
बलराम विने अन्य चैतन्येर दण्ड । भाङ्गिवारे पारे हेन के आछे प्रचण्ड ॥२१३॥
सकल बुझाय छले श्रीगौरसुन्दरे । ये जानये मर्म, सेइ जन सुखे तरे ॥२१४॥
दण्ड भाङ्गि नित्यानन्द आछेन वसिया । क्षणेके जगदानन्द मिलिला आसिया ॥२१५॥
भग्न दण्ड देखि महा हइला विस्मित । अन्तरे जगदानन्द हइला चिन्तित ॥२१६॥
वार्ता जिज्ञासेन 'दण्ड भाङ्गिलेक के' । नित्यानन्द वोले दण्ड धरिलेक ये ॥२१७॥
आपनार दण्ड प्रभु भाङ्गिला आपने । ताँर दण्ड भाङ्गिते कि पारे अन्य जने ॥२१८॥

चन्द्र के दण्ड को श्रीजगदानन्दजी बहन करते थे सोई दण्ड को रखकर नित्यानन्दस्वरूप से कहने लगे ॥२०३॥'गौरचन्द्र के दण्ड को मन देकर सावधानी से रखना,क्योंकि मैं भिक्षा करके कुछ देर में आऊँगा' ॥ २०४ ॥ जैसे-तैसे नित्यानन्द दण्ड हाथ में लेकर विह्वल मन से उसी स्थान में बैठ गये ॥ २०५ ॥ नित्यानन्दराय दण्ड को हाथ में लेकर हँसे और उससे हँसी में कहने लगे ॥ २०६ ॥ अरे दण्ड ! जिससे मैं अपने हृदय वहन (धारण) करता हूँ वह तुझे वहन करें (लिये-लिये फिरें) यह उचित नहीं है॥२०७॥ इस प्रकार कहकर परम प्रचण्ड बलराम (नित्यानन्द) ने दण्ड को तोड़कर तीन टुकड़े करके फेंक दिया ॥ २०८ ॥ ईश्वर की इच्छा केवल ईश्वर ही जाने कि दण्ड क्यों तोड़ दिया, अन्य पुरुष कैसे जानेंगे ? ॥ २०९ ॥ श्रीगौरचन्द्र के मन की बात नित्यानन्दजी जानते हैं और नित्यानन्द के अन्तर की श्रीगौरसुन्दर जानते हैं ॥ २१० ॥ पूर्व में जिस प्रकार श्रीराम व लक्ष्मण दोनों भाई दोनों की अन्तरङ्ग बातें दोनों ही प्रत्येक क्षण में जानते थे ॥ २११ ॥ भक्ति का ज्ञान कराने के लिये ही एक वस्तु दो भाग में है सो श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा ही लोग गौरचन्द्र को भली प्रकार जान सकते हैं॥२१२॥ भला ऐसा कौन बलवान् है, जो श्रीबलराम के अतिरिक्त श्रीचैतन्य के दण्ड को तोड़ सके ॥ २१३ ॥ श्रीगौरसुन्दर सबको छल से समझाते हैं, जो मर्म जान लेंगे वे ही मनुष्य सुख से तरेंगे॥२१४॥दंड को तोड़कर श्रीनित्यानन्द वहाँ आकर बैठ गये तब कुछ क्षण पीछे जगदानन्द आकर उनसे मिले ॥२१५॥ जगदानन्द दण्ड टूटा हुआ देखकर बड़े विस्मित हुए तथा मनमें बड़े चिन्तित हुए ।२१६॥ पूँछने लगे कि दण्ड किसने तोड़ा ? श्रीनित्यानन्द बोले 'जो दण्ड रखते थे'।।२१७॥ अपने दण्ड को प्रभु ने स्वयं तोड़ दिया क्या कोई अन्य जन उनके दण्ड को तोड़ सकता है ? ॥ २१८ ॥

शुनि विप्र आर ना करिला प्रत्युत्तर । भाङ्गा दण्ड लइ मात्र चलिला सत्त्वर ॥२१६॥
वसिया आछेन यथा श्रीगौर सुन्दर । भाङ्गा दण्ड फेलि दिल प्रभुर गोचर ॥२२०॥
प्रभु बोले "कह दंड भाङ्गिले केमेने । पथे ना कि कन्दल करिला कारो सने" ॥२२१॥
कहिला जगदानन्द पण्डित सकल । "भाङ्गिलेन दंड नित्यानन्द सुविहल" ॥२२२॥
नित्यानन्द प्रति प्रभु जिज्ञासे आपनि । "कि लागि भाङ्गिला दंड कह देखिशुनि" ॥२२३॥
नित्यानन्द बोले "भाङ्गियाछि बांश-खान" । नापार' चमिते, कर' ये शास्ति प्रमाण ।२२४।
प्रभु बोले "याहे सब-देव-अधिष्ठान । से तोमार मते कि हइल बांश खान ॥२२५॥
के बूझिते पारे गौरसुन्दरेर लीला । मने करे एक मुखे पाते आर खेला ॥२२६॥
एतेके ये बोले बूझि कृष्णेर हृदय । से-इसे अबुध इहा जानिह निश्चय ॥२२७॥
मारिबेन हेन यारे आछये अन्तरे । ताहारे ओ देखि येन महा प्रीति करे ॥२२८॥
प्राण-सम अधिक वा ये सकल जन । ताहारे ओ देखि येन निरपेक्ष-मन ॥२२९॥
एइमत अचिन्त्य अगम्य लीला मात्र । तान अनुग्रहे बूझे तान कृपा पात्र ॥२३०॥
दण्ड भाङ्गिलेन आपनेइ इच्छा करि । शेषे क्रोध व्यञ्जिते लागिला गौरहरि ॥२३१॥
प्रभु बोले सबे दण्ड मात्र छिल सङ्ग । ताहो आजि कृष्णेर इच्छाते हैल भङ्ग ॥२३२॥
एतेके आमार सङ्गे कारो सङ्ग नाइ । तोमरा वा आगे चल आमि वा आग्वाइ ॥२३३॥
द्विरुक्ति करिते आज्ञा शक्ति आछे कार । सभेइ हइला शुनि चिन्तित अपार ॥२३४॥

ऐसा सुनकर विप्र (जगदानन्द) ने कुछ प्रत्युत्तर नहीं किया टूटे ही दंड को लेकर शीघ्र ही चल दिये ॥२१६॥ जहाँ श्रीगौरसुन्दर विराजमान थे वहाँ प्रभु के सामने लायकर टूटा हुआ दण्ड फेंक दिया ॥ २२० ॥ प्रभु ने कहा कहिये दण्ड कैसे तोड़ दिया क्या मार्ग में किसी के साथ कलह किये थे ॥ २२१ ॥ जगदानन्दजी सब कह सुनाया कि अति विह्वल नित्यानन्दजी ने दण्ड तोड़ डाला ॥ २२२ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने नित्यानन्दजी से पूछा कि आपने किसलिये दण्ड तोड़ दिया देखें कहो तो सुने ॥ २२३ ॥ श्रीनित्यानन्दजी ने कहा "प्रभो मैंने तो बाँस मात्र तोड़ा है यदि क्षमा न कर सकते हैं तो जो चाहो दण्ड दो" ॥ २२४ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने कहा "जो सब देवों का अधिष्ठान है वह तुम्हारे मनमें क्या बाँस मात्र ही है" ॥ २२५ ॥ श्रीगौसुन्दर की लीला को कौन समझ सकेंगे जो मनसे एक प्रकार का खेल करते हैं और मुख से अन्य खेल प्रकाशित करते हैं ॥ २२६ ॥ इसलिये जो ऐसा कहते हैं कि हम कृष्ण के हृदय को समझते हैं वे ही मूर्ख हैं इसको निश्चय जानो ॥२२७॥ जिसे हृदय में मारने का भी विचार करें उसको भी देखकर प्रभु बहुत प्रीति करते हैं ॥२२८॥ जो भक्तजन उन्हें प्राणों से भी प्रिय हैं उनको भी देखकर (ऊपर से) निरपेक्ष मन से व्यवहार करते हैं ॥ २२९ ॥ इस प्रकार प्रभु की सभी लीला अचिन्त्य व अगम्य हैं उनके (प्रभु के) अनुग्रह से उनके कृपापात्र ही समझते हैं ॥ २३० ॥ आपने ही तो दण्ड तोड़ने की इच्छा की और अन्त में आप ही गौरहरि क्रोध भी दिखाने लगे ॥ २३१ ॥ प्रभु ने कहा "केवल दण्ड मात्र ही मेरे संग में था सो आज कृष्ण की इच्छा से वह भी भंग हो गया" ॥ २३२ ॥ इसलिये अब किसी से मेरा सङ्ग नहीं होगा या तो तुम आगे चलो अथवा मैं आगे जाऊँ ॥ २३३ ॥ आज्ञा होने पर दुबारा बोलने की किसकी सामर्थ्य है सुनकर सब ही बड़े चिन्तित

मुकुन्द बोलेन तबे तुमि चल आगे । आमरा-सभार किछु कृत्य आछे-पाछे ॥२३५॥
'भाल' बलि चलिलन श्रीगौरसुन्दर । मत्त-सिंह-प्राय गति लक्षिते दुष्कर ॥२३६॥
मुहूर्ते के गेला प्रभु जलेश्वर-ग्रामे । बराबर गेला जलेश्वर-देव-स्थाने ॥२३७॥
जलेश्वर पूजिते आछेन विप्रगणे । गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-माल्यादि आसने ॥२३८॥
बहुविध वाद्य उठियाछे कोलाहल । चतुर्दिगे नृत्य गीत परम मङ्गल ॥२३९॥
देखि प्रभु क्रोध पासरि लेन सन्तोषे । सेइ वाद्ये प्रभु मिशाइला प्रेमरसे ॥२४०॥
निज प्रिय शङ्करेर विभव देखिया । नृत्य करे गौरचन्द्र परानन्द हैया ॥२४१॥
शिवेर गौरव बुझायेन गौरचन्द्र । एतेके शंकर प्रिय सर्व भक्तवृन्द ॥२४२॥
ना माने चैतन्य पथ बोलाय 'वैष्णव' । शिवेरे अमान्य करे व्यर्थ तार सब ॥२४३॥
करिते आछेन नृत्य जगत जीवन । पर्वत विदरे हेन हुङ्कार गर्जन ॥२४४॥
देखि शिवदास सब हइला विस्मित । सभेइ बोलेन शिव हइला विदित ॥२४५॥
आनन्दे अधिक सभे करे गीत वाद्य । प्रभुओ नाचेन तिलार्द्धेको नाहि वाह्य ॥२४६॥
कथोक्षणे भक्तगण आसिया मिलिला । आसियाइ मुकुन्दादि गाइते लागिला ॥२४७॥
प्रियगण देखि प्रभु अधिक आनन्दे । नाचिते लागिला, वेढ़ि गाय भक्तवृन्दे ॥२४८॥
से विकार कहिते वा शक्ति आछे कार । नयने वहये सुर धुनी-शत-धार ॥२४९॥
एबे से शिवेर पुर हइल सफल । याहे नृत्य करे वैकुण्ठेर अधीश्वर ॥२५०॥

हुए ॥ २३४ ॥ मुकुन्द ने कहा तब तो आप आगे चलो कारण हम सबों का पीछे कुछ काम शेष है ॥२३५॥ "अच्छा" कहकर, लक्ष्य करने में दुष्कर मत्त सिंह के तुल्य गति से श्रीगौरसुन्दर चल दिये ॥ २३६ ॥ एक मुहूर्त में गौरचन्द्र जलेश्वर ग्राम में पहुँचकर सीधे जलेश्वर नामक शिवजी के मन्दिर तक चले गये ॥२३७॥ ब्राह्मण गण आसन-गन्ध-फूल-धूप-दीप-माला आदि से जलेश्वर की पूजा कर रहे थे ॥२३८॥ अनेक प्रकार से बहुत से बाजों का कोलाहल हो रहा था तथा चारों ओर परम मंगलमय नृत्य गीत हो रहे थे ॥ २३९ ॥ वे सन्तुष्ट हुए और बाजे के साथ प्रेमपूर्वक मिल गये यह देखकर प्रभु का क्रोध शान्त हो गया ॥ २४० ॥ अपने प्रिय शंकर के वैभव को देखते ही अत्यन्त प्रसन्न होकर गौरचन्द्र नाचने लगे ॥ २४१ ॥ शिवजी के गौरव को गौरचन्द्र समझने लगे–इसीलिये सब भक्तवृन्दों के शिवजी प्रिय हैं ॥ २४२ ॥ चैतन्य मार्ग को न मानकर जो वैष्णव कहाते हैं और शिवजी की अमान्यता करते हैं उनका सब कृत्य (पूजा-पाठ) व्यर्थ है ॥ २४३ ॥ जगत् प्राण श्रीगौर सुनकर नृत्य करते थे और ऐसी हुङ्कार व गर्जन करते थे जिनसे पर्वत विदीर्ण हो जाते ॥ २४४ ॥ देखकर सब शिव-भक्त विस्मित हुए और सभी कहने लगे कि शिवजी प्रत्यक्ष हुए हैं ॥ २४५ ॥ आनन्द से सब ही और अधिक गीत व वाद्य बजाते थे और प्रभु नाच रहे थे जिन्हें आधे तिल मात्र भी वाह्य ज्ञान नहीं था ॥ २४६ ॥ कुछ क्षण में भक्तगण भी आयकर मिल गये और आते ही मुकुन्दादिक गान करने लगे ॥ २४७ ॥ प्रियगणों को देखकर प्रभु और अधिक आनन्द से नाचने लगे तथा भक्तवृन्द उन्हें घेरकर गान करने लगे ॥ २४८ ॥ उन प्रेम-विकारों की कहने की किसमें सामर्थ्य है नेत्रों से सुरधुनी (गङ्गा) की सौ-सौ धारा जैसी बह रही थीं ॥ २४९ ॥ जहाँ श्रीबैकुण्ठनाथ ने नृत्य किया ऐसा

कथो क्षणे प्रभु परानन्द प्रकाशिया । स्थिर हइ रहिलेन प्रिय गोष्ठी लैया ॥२५१॥
सभा प्रति करिलेन प्रेम-आलिङ्गन । सभेइ निर्भय हैला परानन्द-मन ॥२५२॥
नित्यानन्द देखि प्रभु लइलेन कोले । बलिते लागिला ताँरे किछु कुतूहले ॥२५३॥
कोथा तुमि आमारे करिबे सम्बरण । ये मते आमार हय सन्यास-रक्षण ॥२५४॥
आरो आमा पागल करिते तुमि चाओ । आर यदि कर तबे मोर माथा खाओ ॥२५५॥
येन कर तुमि आमा तेन आमि हइ । सत्य-सत्य एइ आमि सभा स्थाने कइ ॥२५६॥
सभारे शिखाय गौरचन्द्र भगवान् । नित्यानन्द प्रति सभे हओ सावधान ॥२५७॥
मोर देह हैते नित्यानन्द देह बड़ । सत्य-सत्य सभारे कहिलूँ एइ दढ़ ॥२५८॥
'नित्यानन्द स्थाने यार हय अपराध । मोर दोष नाहि, तार प्रेम भक्ति-बाध' ॥२५९॥
नित्यानन्दे याहार तिलेक द्वेष रहे । भक्त हइलेओ आमार प्रिय नहे ॥२६०॥
आत्म स्तुति शुनि नित्यानन्द महाशय । लज्जाय रहिला प्रभु माथा ना तोलय ॥२६१॥
परम-आनन्द हैला सर्व भक्तगण । हेन लीला करे प्रभु श्रीशचीनन्दन ॥२६२॥
एइ मत जलेश्वरे से रात्रि रहिया । उषः काले चलिला सकल गण लैया ॥२६३॥
बाँशधाय पथे एक शाक्त न्यासि वेश । आसिया प्रभुरे पथे करिल आदेश ॥२६४॥
'शाक्त' हेन प्रभु जानिलेन निज मने । सम्भाषिते लागिलेन मधुर वचने ॥२६५॥
प्रभु बोले कह-कह कोथा तुमि सब । चिरदिने आजि देखिलाङ ये बान्धव ॥२६६॥

वह शिव-पुर सफल हो गया ॥ २५० ॥ कुछ क्षण में श्रीगौरप्रभु परानन्द प्रकाश करके स्थिर हुए और प्रिय-गोष्ठी को लेकर थम गये (स्थिर हुए) ॥ २५१ ॥ सबसे प्रेम से आलिङ्गन किया जिससे सभी निर्भय होकर परमानन्दित हुए ॥ २५२ ॥ श्रीगौर प्रभु ने नित्यानन्दजी को देखकर जेट में भर लिया और कुतूहल पूर्वक उनसे कुछ कहने लगे ॥ २५३ ॥ कहाँ तो यह बात कि तुम मुझे सम्हालो जिसमें मेरे सन्यास की रक्षा हो (यह तुम्हारा कर्तव्य है) ॥ २५४ ॥ उल्टा मुझे तुम पागल और बनाना चाहते हो यदि ऐसा फिर करो तो मेरा मस्तक खाओ ॥ २५५ ॥ तुम मुझे जैसा बनाते हो वैसा ही मैं बनता हूँ यह मैं सबों के सामने सत्य कहता हूँ ॥ २५६ ॥ श्रीभगवान् गौरचन्द्र ने आज्ञा (शिक्षा) दी, सबको सिखाते हैं कि नित्यानन्दजी की ओर सब भक्त सावधानी रक्खें ॥ २५७ ॥ मेरे शरीर से नित्यानन्दजी का शरीर श्रेष्ठ है यह दृढ़ बात मैं सबके सम्मुख सत्य ही कहता हूँ ॥ २५८ ॥ श्रीनित्यानन्द के प्रति जिसका अपराध होगा उसे प्रेम-भक्ति कभी नहीं मिलेगी इसमें मुझे दोष न देना ॥ २५९ ॥ श्रीनित्यानन्द के प्रति जिसका तिलमात्र भी द्वेष रहेगा वह भक्त होने पर भी मेरा प्रिय कदापि नहीं है ॥ २६० ॥ श्रीप्रभु नित्यानन्द महाशय अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जा से मस्तक नहीं उठा रहे थे ॥ २६१ ॥ सब भक्तों को बड़ा आनन्द हुआ श्रीशचीनन्दन प्रभु ऐसी विलक्षण लीला करते हैं ॥२६२॥ इस भाँति उस रात्रि जलेश्वर में रहकर प्रातःकाल में सब भक्तों को साथ लेकर चल दिये॥२६३॥काँशधा के पथ में जाते समय मार्ग में न्यासी वेशधारी एक शाक्त ने आकर प्रभु को आदेश किया ॥ २६४ ॥ यह शाक्त है ऐसा प्रभु ने अपने मनमें जान लिया तो भी मधुर वचनों से उससे सम्भाषण करने लगे ॥ २६५ ॥ गौरचन्द्र बोले कहो तुम सब कहाँ रहते हो, हे बांधव ! तुम्हें आज बहुत दिन में देखा है ?

प्रभुर मायाय शाक्त मोहित हइल । आपनार तत्त्व मत कहिते लागिल ॥२६७॥
यत-यत शाक्त वैसे यत-यत देशे । सब कहे एके-एके शुनि प्रभु हासे ॥२६८॥
शाक्त बोले चल झाट मठेते आमार । सभेइ 'आनन्द' आजि करिब अपार ॥२६९॥
पापी शाक्त मदिरारे बोलये 'आनन्द' । बूझिया हासेन गौरचन्द्र नित्यानन्द ॥२७०॥
प्रभु बोले आसि आमि 'आनन्द' करिते । आगे गिया तुमि सज्ज करह त्वरिते ॥२७१॥
शुनिञा चलिल शाक्त हइ हरषित । एइ मत ईश्वरेर अगाध चरित ॥२७१॥
'पतित पावन कृष्ण' सर्व वेदे कहे । अतएव शाक्त-सह प्रभु कथा कहे ॥२७३॥
लोके बोले 'ए शाक्तेर हइल उद्धार । ए-शाक्त-परसे अन्य शाक्तेर निस्तार ॥२७४॥
एइ मत श्रीगौरसुन्दर भगवान् । नाना मते करिलेन सर्व-जीव-त्राण ॥२७५॥
हेन मते शाक्तेर सहित रस करि । आइला रेमुणा-ग्रामे गौराङ्ग श्रीहरि ॥२७६॥
रेमुणाय देखि निज मूर्ति गोपीनाथ । विस्तर करिला नृत्य भक्तगण साथ ॥२७७॥
आपनार प्रेमे मत्त पासरि आपना । रोदन करेन अति करिया करुणा ॥२७८॥
से करुणा शुनिते पाषाण काष्ठ द्रवे । एवे ना द्रविल धर्मध्वजि-गण सवे ॥२७९॥
कथो दिने महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर । आइलेन याजपुर-ब्राह्मण नगर ॥२८०॥
यहि आदि वराहेर अद्भुत प्रकाश । याँर दरशने हय सर्व-बन्ध-नाश ॥२८१॥
महातीर्थ-बहे यथा नदी वैतरणी । याँर दरशने पाप पलाय आपनि ॥२८२॥

॥ २६६ ॥ प्रभु की माया से शाक्त मोहित होकर अपने समस्त गुप्त भेद (तत्त्व) को कहने लगा ॥ २६७ ॥ जिन-जिन प्रान्तों में जो-जो शाक्त रहते थे, एक २ करके सब बतलाये तथा सुनकर प्रभु हँसे ॥ २६८ ॥ शाक्त ने कहा शीघ्र से हमारे मठ में चलो आज सब मिलकर "आनन्द" करेंगे ॥ २६९ ॥ पापी शाक्त मदिरा को आनन्द कहता था, यह समझकर गौरचन्द्र व नित्यानन्द दोनों हँसने लगे ॥ २७० ॥प्रभु ने कहा मैं 'आनन्द' के लिये आता हूँ तुम आगे जाकर शीघ्र आयोजन करो ॥ २७१ ॥ शाक्त सुनकर प्रसन्न होता हुआ चला गया इस प्रकार ईश्वर के अपार चरित्र हैं ॥ २७२ ॥ सब वेद कृष्ण को पतित-पावन कहते हैं, इसी कारण से प्रभु ने शाक्त से वार्त्तालाप किया था ॥ २७३ ॥ लोगों ने कहा इस शाक्त का उद्धार होगया और इस शाक्त के स्पर्श होने से अन्य शाक्तों का भी निस्तार होगा ॥ २७४ ॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर भगवान् ने अनेक प्रकार से "सर्व लोक-कल्याण" के काम किये ॥ २७५ ॥ इस प्रकार शाक्त के साथ आनन्द वार्त्ता करके श्रीगौरहरि ने रेमुणा ग्राम में आगमन किया ॥ २७६ ॥ रेमुणा में अपनी ही स्वरूप श्री गोपीनाथ को देखकर भक्तवृन्दों के साथ विशेष रूप से नृत्य किया ॥ २७७ ॥ अपने प्रेम में मत्त अपने को ही भूलकर अत्यन्त करुणा करके प्रभु रोदन करने लगे ॥ २७८ ॥ उस करुणापूर्ण रोने को सुनकर पाषाण काष्ठ द्रवीभूत हो गये उस समय केवल "धर्म्म के ध्वजा-रक्षक गण" ही नहीं पिघले ॥ २७९ ॥ कुछ दिन में श्रीगौरसुन्दर महाप्रभु याजपुर नामक ब्राह्मणों के नगर में आ पहुँचे ॥२८०॥ यहाँ जिसमें आदिवराह का अद्भुत स्वरूप प्रकाश है जिसके दर्शन करने से बन्धन नष्ट हो जाते हैं ॥ २८१ ॥ जहाँ महा तीर्थरूप वैतरणी नदी बह रही

जन्तुमात्र ये नदीर हइलेइ पार । देव गणे देखे चतुर्भुजेर आकार ॥२८३॥
नाभिगया-विरजा देवीर यथा स्थान । यथा हैते क्षेत्र-दश-योजन-प्रमाण ॥२८४॥
याजपुरे यतेक आछये देव स्थान । लक्ष वत्सरे ओ नारि लैते सब नाम ॥२८५॥
देवालय नाहि हेन नाहि तथि स्थान । केवल देवेर वास याजपुर ग्राम ॥२८६॥
प्रथमे दशाश्वमेधि घाटे न्यासि मणि । स्नान करिलेन भक्त-संहति आपनि ॥२८७॥
तबे प्रभु गेला आदिवराह-सम्भाषे । विस्तर करिला नृत्य-गीत प्रेमरसे ॥२८८॥
बड़ सुखी हैला प्रभु देखि याजपुर । पुनः पुन बाढ़े आनन्दावेश प्रचुर ॥२८९॥
के जाने कि इच्छा तान धरिलेक मने । सभा' छाड़ि एका पलाइलेन आपने ॥२९०॥
प्रभु ना देखिया सभे हइल विकल । देवालये चाहि चाहि बूलेन सकल ॥२९१॥
ना पाइया कोथाओ प्रभुर अन्वेषण । परम चिन्तित हइलेन भक्तगण ॥२९२॥
नित्यानन्द बोले "सभे स्थिर कर' चित्त । जानिलाङ प्रभु गियाछेन ये निमित्त ॥२९३॥
निभृते ठाकुर सब याजपुर-ग्राम । देखिबेन यत यत आछे देवस्थान ॥२९४॥
आमराओ 'सभे भिक्षा करि' एइ ठांइ । आजि थाकि, कालि प्रभु पाइब एथाइ ॥२९५॥
सेइ मत करिलेन सबभक्त गण । भिक्षा करि आनि सभे करिला भोजन ॥२९६॥
प्रभुओ बूलिया सब याजपुर ग्राम । देखिया यतेक याजपुर-पुण्यस्थान ॥२९७॥
सर्व भक्तगण यथा आछेन वसिया । आर दिने सेइ स्थाने मिलिला आसिया ॥२९८॥

है जिसके दर्शन करते ही पाप स्वयं भाग जाते हैं ॥ २८२ ॥ प्राणीमात्र इस नदी के पार होते ही चतुर्भुज रूप में देवगणों को भी दीखने लगता है ॥ २८३ ॥ याजपुर के अन्तर्गत नाभिगया है जहाँ विरजा देवी का स्थान है वह से श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ) दशयोजन यानी ४० कोस दूर है ॥ २८४ ॥ याजपुर में जितने देवताओं के स्थान हैं उन सबके लाख वर्ष में भी नाम नहीं लिये जा सकते हैं ॥२८५॥ जहाँ देवालय न हो ऐसा वहाँ कोई स्थान ही नहीं था याजपुर ग्राम में केवल देवताओं का ही निवास है ॥२८६॥ प्रथम स्वयं सन्यासियों में शिरोमणि श्रीगौर ने भक्तवृन्दों के साथ दशाश्वमेध घाट पर स्नान किया ॥ २८७ ॥ तब प्रभु गौरचन्द्र आदिवराह के दर्शन को गये और अपने ही प्रेमरस में विशेष नृत्य व गान किया ॥२८८॥ याजपुर को देखकर प्रभु बड़े प्रसन्न हुए और उनका बारम्बार विशेष प्रेमानन्द आवेश बढ़ता जाता था ॥२८९॥ कौन जाने कि उनके मनमें क्या इच्छा उठी जिससे सबको छोड़कर वहाँ से आप अकेले ही भाग खड़े हुए ॥२९० ॥ प्रभु को न देखकर सब विह्वल हो गये और सब देवालयों में अन्वेषण करते २ भ्रमण करने लगे ॥ २९१ ॥ प्रभु को ढूँढ़ने पर जब कहीं पता न चला तो सब भक्तवृन्द बड़े चिन्तित हुए ॥२९२॥ श्रीनित्यानन्द ने कहा "सब लोग मन स्थिर करो जिस कारण से गौरचन्द्र गये हैं मैं जान गया ॥ २९३ ॥ याजपुर ग्राम के अन्तर्गत एकान्त में समस्त ठाकुर हैं सो जितने देवस्थान हैं उन सबके दर्शन करेंगे ॥ २९४ ॥ हम लोग सब आज भिक्षा करके इसी जगह में रहेंगे प्रभु कल यहीं मिलेंगे ॥ २९५ ॥ सब भक्तों ने उसी प्रकार किया, भिक्षा लाकर सबने भोजन किया ॥२९६॥ प्रभु गौरचन्द्र भी समस्त याजपुर ग्राम में भ्रमण करके जितने पुण्य स्थान वहाँ थे उन सबको देखकर जहाँ समस्त भक्त बैठे थे दूसरे दिन वहीं पर आकर मिलने लगे

आथे व्यथे भक्तगण 'हरि हरि' बलि । उठिलेन सभेइ हइया कुतूहली ॥२६६॥
सभा लइ प्रभु याजपुर धन्य करि । चलिलेन 'हरि' बलि गौराङ्ग श्रीहरि ॥३००॥
हेन मते महानन्दे श्रीगौर सुन्दर । आइलेन कथोदिन कटक-नगर ॥३०१॥
भाग्यवती-महानदी-जले करि स्नान । आइलेन प्रभु साक्षिगोपालेर स्थान ॥३०२॥
देखि साक्षिगोपालेर लावण्य मोहन । आनन्दे करेन प्रभु हुङ्कार गर्जन ॥३०३॥
'प्रभु' बलि नमस्कार करेन स्तवन । अद्भुत करेन प्रेम-आनन्द-क्रन्दन ॥३०४॥
यार मंत्रे सकल मूर्ति ते वैसे प्राण । सेइ प्रभु-श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र नाम ॥३०५॥
तथापिह निरवधि करे दास्य लीला । अवतार हैले हय एइमत खेला ॥३०६॥
तबे प्रभु आइलेन श्रीभुवनेश्वर । गुप्त काशी-वास यथा करेन शङ्कर ॥३०७॥
सर्वतीर्थ-जल यथा विन्दु विन्दु आनि । 'विन्दु सरोवर' शिव सृजिला आपनि ॥३०८॥
'शिव-प्रिय सरोवर' जानि श्रीचैतन्य । स्नान करि विशेषे करिला अति धन्य ॥३०९॥
देखिलेन गिया प्रभु प्रकट शङ्कर । चतुर्दिगे शिवध्वनि करे अनुचर ॥३१०॥
चतुर्दिगे सारि सारि घृतदीप ज्वले । निरवधि अभिषेक हइतेछे जले ॥३११॥
निज-प्रिय-शङ्करेर देखिया विभव । तुष्ट हइलेन प्रभु, सकल वैष्णव ॥३१२॥
ये चरण-रसे शिव वसन ना जाने । हेन प्रभु नृत्य करे शिव- विद्यमाने ॥३१३॥
नृत्य गीत शिव-अग्रे करिया आनन्द । से रात्रि रहिला सेइ ग्रामे गौरचन्द्र ॥३१४॥

॥ २९७-२९८ ॥ जैसे तैसे भक्तवृन्द 'हरि-हरि' कहते हुए आश्चर्य करके सब ही उठ खड़े हुए ॥ २९९ ॥ सब को लेकर श्रीगौरहरि याजपुर को धन्य करके "हरि-हरि" बोलते हुए चल दिये ॥ ३०० ॥ इस प्रकार बड़े आनन्द से श्रीगौरसुन्दर कुछ दिन में कटक नगर में आ पहुँचे ॥ ३०१ ॥ भाग्यवती महानदी के जलमें स्नान करके साक्षीगोपाल के स्थान में गौरहरि आये ॥ ३०२ ॥ साक्षीगोपाल की मोहक सुन्दर लावण्य को देखकर प्रभु प्रेमानन्द से हुंकार व गर्जन करने लगे ॥ ३०३ ॥ हे प्रभो ! कहकर नमस्कार व स्तुति की और प्रेमानन्द में अद्भुत क्रन्दन (रुदन) करने लगे ॥३०४॥ जिसके मन्त्र से सब मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा होती है वे ही प्रभु जगत् में श्रीकृष्णचैतन्य नाम से प्रकट हुए हैं ॥ ३०५ ॥ तथापि निरन्तर दास के समान लीला करते हैं कारण अवतार होने पर ऐसा ही खेल करते हैं ॥ ३०६ ॥ तब प्रभु गौरचन्द्र श्रीभुवनेश्वर नामक गुप्तकाशी में आये, जहाँ श्रीशिवजी वास करते हैं ॥ ३०७ ॥ जहाँ सब तीर्थों का विन्दु-विन्दु जल लाकर शिवजी ने स्वयं "विन्दु सरोवर" सृजन किया था ॥ ३०८ ॥ उसे शिव का प्रिय सरोवर जानकर श्रीचैतन्यदेव ने स्नान करके विशेष रूप से अति धन्य कर दिया ॥ ३०९ ॥ प्रभु ने जाकर श्रीशंकर के प्रकट दर्शन किये वहाँ चारों ओर सेवकगण शिव २ ध्वनि कर रहे थे ॥ ३१० ॥ चारों ओर पंक्ति की पंक्ति घी के दीपक जल रहे थे तथा निरन्तर जल से अभिषेक हो रहा था ॥ ३११ ॥ अपने प्रिय शिवजी का वैभव देखकर श्रीप्रभु व समस्त वैष्णवगण सन्तुष्ट हुए ॥ ३१२ ॥ जिसके चरणारविन्द के रस में मत्त होकर शिवजी को वस्त्र धारण का ज्ञान नहीं है ऐसे प्रभु शिव के सम्मुख नृत्य करने लगे ॥ ३१३ ॥ शिवजी के आगे आनन्दपूर्वक नृत्य गान करके श्रीगौरचन्द्र उस रात्रि को उसी ग्राम में रहे ॥ ३१४ ॥ जिस प्रकार शिवजी को वह

सेइ स्थान शिव पाइलेन येन मते । सेइ कथा शुन स्कन्द पुराणेर मते ॥३१५॥
काशीमध्ये पूर्व शिव पार्वती-सहिते । आछिला अनेक काल परम-निभृते ॥३१६॥
तवे गोरी-सह शिव गेला त कैलाश । नर-राजा गणे काशी करये बिलास ॥३१७॥
तवे काशीराज नामे हैला एक राजा । काशीपुर भोगकरे करि शिव पूजा ॥३१८॥
दैवे आसि कालपाश लागिल ताहारे । उग्र-तपे शिव पूजे कृष्ण जिनिवारे ॥३१९॥
प्रत्यक्ष हइला शिव तपेर प्रभावे । "वर माग" वलिलेन, राजा वर मागे ॥३२०॥
"एक वर मागों प्रभु तोमार चरणे । येन मुञि कृष्ण जिनिवारे पारों रणे" ॥३२१॥
भोलानाथ शङ्करेर चरित्र अगाध । के बूझे कि रूपे कारे करेन प्रसाद ॥३२२॥
तारे वलिलेन "राजा चल युद्धे तुमि । तोर पाछे सर्व-गण-सह आछि आमि ॥३२३॥
तोरे जिनिवेक हेन कार शक्ति आछे । पाशुपत-अस्त्र लइ मुञि तोर पाछे ॥३२४॥
पाइया शिवेर वल सेइ मूढ़मति । चलिला हरिषे युद्धे कृष्णेर संहति ॥३२५॥
शिवो चलिलेन तार पाछे सर्व-गणे । तार पक्ष हइ युद्ध करिवार मने ॥३२६॥
सर्वभूत-अन्तर्यामी देवकी-नन्दन । सकल वृत्तान्त जानिलेन सेइक्षण ॥३२७॥
जानिञा वृत्तान्त निजचक्र-सुदर्शन । एड़िलेन कृष्णचन्द्र सभार दलन ॥३२८॥
कारो अव्याहति नाहिं सुदर्शन-स्थाने । काशीराज-मुण्ड़ गिया काटिल प्रथमे ॥३२९॥
शेषे तार सम्बन्धे सकल वाराणसी । पूड़िया-झाड़िया करिलेन भस्म राशि ॥३३०॥
वाराणसी दाह देखि क्रुद्ध महेश्वर । पाशुपत-अस्त्र एड़िलेन भयङ्कर ॥३३१॥

स्थान प्राप्त हुआ वह कथा स्कन्द पुराण के अनुसार सुनो ॥ ३१५ ॥ पूर्व में पार्वती सहित श्रीशिवजी अनेक समय तक एक परम एकान्त स्थान पर काशी में रहे॥३१६॥पीछे से गौरी सहित श्रीशिवजी तो कैलाश को चले गये तत्पश्चात् मनुष्य व राजागण काशी में विलास करने लगे ॥ ३१७ ॥ तब काशीराज नामक एक राजा हुआ जो शिवजी की पूजा करके काशीपुरी को भोग करने लगा॥३१८॥दैववश आय कर उसको कालपाश ने घेर लिया सो कृष्ण को जीतने के लिये उग्र तप द्वारा शिवजी की पूजा करने लगा ॥ ३१९ ॥ तप के प्रभाव से शिवजी प्रत्यक्ष हुए और कहा कि "वर माँगो" तब राजा ने वर माँगा ॥ ३२० ॥ प्रभो तुम्हारे चरणों में एक वर माँगता हूँ कि जिसमें मैं रण में कृष्ण को जीत सकूँ ॥ ३२१ ॥ भोलानाथ शंकर के अपार चरित्र हैं कौन जाने किस प्रकार से कृपा करते हैं ॥ ३२२ ॥ उससे कहा हे राजा ! तू युद्ध को चल तेरे पीछे मैं सब गणों (भूत प्रेतादि) सहित हूँ ॥ ३२३ ॥ तुझे जीतने की किसमें सामर्थ्य है मैं तेरे पीछे पाशुपत अस्त्र लेकर उपस्थित हूँ ॥ ३२४ ॥ वह मूढ़मति शिव का बल पाकर प्रसन्न हो कृष्ण के साथ युद्ध करने के लिये चल दिया ॥ ३२५ ॥ शिवजी भी उसका पक्ष लेकर उसके पीछे सब गणों के साथ युद्ध करने के विचार से चल दिये ॥३२६॥ देवकीनन्दन सब प्राणियों के भीतर की जानने वाले उसी क्षण सब वृत्तान्त जान गये ॥ ३२७ ॥ वृत्तान्त जानकर श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने सुदर्शन चक्र को सबके दलन (नष्ट) करने के लिये छोड़ दिया ॥ ३२८ ॥ सुदर्शन चक्र के आगे किसी की रोक नहीं चलती सो प्रथम ही काशीराज का सिर काट दिया ॥ ३२९ ॥ अन्त में उसके सम्बन्ध से समस्त काशी को दग्ध करके पूर्ण रूप से भस्म राशि

पाशुपत-अस्त्र कि करिब चक्र-स्थाने । चक्र-तेज देखि पलाइल सेइक्षणे ॥३३२॥
शेषे महेश्वर प्रति जायेन धाइया । चक्र-भये शङ्करो जायेन पलाइया ॥३३३॥
चक्र-तेजे व्यापिलेक सकल भुवन । पलाइले दिग ना पायेन त्रिलोचन ॥३३४॥
पूर्वे येन चक्रतेजे दुर्वाशा पीड़ित । हइलेन, शिवेरो हइल सेइ रीत ॥३३५॥
शेषे शिव बूझिलेन सुदर्शन-स्थाने । रक्षा करिबेक हेन नाहि कृष्ण विने ॥३३६॥
एतेक चिन्तिया वैष्णवाग्र त्रिलोचन । भये त्रस्त हइ गेला गोविन्द-शरण ॥३३७॥
जय जय महाप्रभु देवकीनन्दन । जय सर्व व्यापि सर्व जीवरे शरण ॥३३८॥
जय जय सुबुद्धि कुबुद्धि सर्व दाता । जय जय स्रष्टा हर्ता सभार रक्षिता ॥३३९॥
जय जय अदोष दरशि कृपासिन्धु । जय जय सन्तप्तजनेर एकवन्धु ॥३४०॥
जय सर्व अपराध-भंजन-शरण । दोष 'क्षमा कर' प्रभु लइलूँ शरण'' ॥३४१॥
शुनि शङ्करेर स्तब सर्वजीवनाथ । चक्र-तेज निवारिया हइला साक्षात् ॥३४२॥
चतुर्दिगे शोभा करे गोप गोपीगण । किछु क्रोध-हास्य-मुखे बोलेन वचन ॥३४३॥
'केने शिव तुमित जानह मोर शुद्धि । एत काले तोमार ये हइल कुबुद्धि ॥३४४॥
कोन् कीट् काशीराज अधम नृपति । तार लागि युद्धकर' आमार संहति ॥३४५॥
एइ ये देखह मोर चक्रसुदर्शन । तोमाकेह ना सहे' याहार पराक्रम॥३४६॥
ब्रह्म-अस्त्र पाशुपत-अस्त्र आदि यत । परम अव्यर्थ महा-अस्त्र आर कत ॥३४७॥

कर दिया ॥ ३३० ॥ काशी को दग्ध देखते ही क्रुद्ध होकर महेश्वर ने अति भयंकर पाशुपत अस्त्र को छोड़ दिया ॥ ३३१ ॥ चक्र के आगे पाशुपत अस्त्र की क्या चले है सो चक्र के तेज को देखकर तुरन्त भाग गया ॥ ३३२ ॥ तब शिवजी की ओर भी चक्र दौड़ा—उसके भय से शङ्करजी भी भागे ॥ ३३३ ॥ सुदर्शन चक्र के तेज से सब भुवन डर गये सो शिवजी के भागने को कोई दिशा नहीं मिली ॥ ३३४ ॥ पहिले जिस प्रकार दुर्वाशा ऋषि चक्र के तेज से पीड़ित हुए थे उसी प्रकार आज शिव की भी वही गति हुई ॥ ३३५ ॥ अन्त में शिवजी जान गये कि सुदर्शन से कृष्ण बिना कोई रक्षा करने में समर्थ नहीं है ॥ ३३६ ॥ वैष्णवाग्रगण्य श्रीशिवजी इस प्रकार चिन्तन करके भय से त्रस्त हो गोविन्द की शरण में गये,स्तुति भी की ॥३३७॥ "महाप्रभु देवकी नन्दन की जय हो, सर्वान्तर्यामी सब जीवों को शरण देने वाले आपकी जय हो २॥३३८॥सुबुद्धि कुबुद्धि के दाता जय हो, २ सृष्टि पालन व संहारकर्त्ता की जय हो २ ॥३३९॥अदोषदर्शी कृपासिंधु की जय हो जय हो तथा दुःखी जनों के एक मात्र बन्धु आपकी जय हो, जय हो॥३४०॥ सब अपराध नष्ट करने वाले व शरणागत वत्सल प्रभु की जय हो प्रभो ! अपराध क्षमा करो आपकी शरण हूँ ॥ ३४१ ॥ सब जीवों के स्वामी, शिवजी को स्तुति सुनकर चक्र का तेज शान्त करके प्रगट हुए ॥ ३४२ ॥ आपके चारों ओर गोप व गोपियों के समूह शोभा दे रहे थे तथा कुछ क्रोध मिश्रित हास्य मुख से वचन बोले ॥३४३॥ क्यों शिवजी ? तुम तो मेरे शुद्ध स्वरूप (तात्पर्य) को जानते हो तब इस समय तुम्हें यह कुबुद्धि क्यों हो गई ॥ ३४४ ॥ अधम काशीराज तुच्छ कीड़ा है जिसके लिये तुमने मेरे साथ युद्ध किया ॥ ३४५ ॥ देखते हो यह मेरा सुदर्शन चक्र है जिसका पराक्रम तुम भी सहन नहीं कर पाते ॥ ३४६ ॥ ब्रह्मास्त्र, पाशुपत आदि जितने भी

सुदर्शन स्थाने कारो नाहि प्रतिकार । यार अस्त्र तारे चाहे करिते संहार ॥३४८॥
हेन त ना देखि आमि पृथिवी-भितरे । तोमा वइ आमारे ये करे अनादरे ॥३४६॥
शुनिञा प्रभुर किछु सक्रोध-उत्तर । अन्तरे कम्पित बड़ हइला शङ्कर ॥३५० ॥
तबे शेषे धरिया प्रभुर श्रीचरण । करिते लागिला शिव आत्म निवेदन ॥३५१॥
तोमार अधीन प्रभु सकल संसार । स्वतन्त्र हइते शक्ति आछये काहार ॥३५२॥
पवने चालाय येन शुष्क तृण गण । एइ मत अस्वतंत्र सकल भुवन ॥३५३॥
ये कराह प्रभु तुमि से-इ जीवे करे । हेन के वा आछे ये तोमार माया तरे ॥३५४॥
विशेषे दियाछ प्रभु मोरे अहङ्कार । आपनार बड़ वइ नाहि देखों आर ॥३५५॥
तोमार मायाय मोरे कराय दुर्गति । कि करिमूँ प्रभु मुञि अ-स्वतंत्रमति ॥३५६॥
तोर पादपद्म मोर एकान्त जीवन । अरण्ये थाकिमूँ चिन्ति तोमार चरण ॥३५७॥
तथापिह मोरे से लओयाओ अहङ्कार । मुञि कि करिमू प्रभु ये इच्छा तोमार ॥३५८॥
तथापिह प्रभु मुञि कैलूँ अपराध । सकल क्षमिया मोरे करह प्रसाद ॥३५६॥
ए मत कुबुद्धि मोर येन आर नहे । एइ वर देह प्रभु हइया सदये ॥३६०॥
येब अपराध कैलूँ करि अहङ्कार । हइल ताहार शास्ति, शेष नाहि आर ॥३६१॥
एवे आज्ञा कर प्रभु थाकिमू कोथाय । तोमा वइ आर वा वलिव कार पाय ॥३६२॥
शुनिञा शिवेर वाक्य ईषत् हासिया । वलिते लागिला प्रभु कृपायुक्त हैया ॥३६३॥
शुनि शिव तोमारे दिलाङ दिव्य स्थान । सर्व गोष्ठी सह तथा करह प्रयाण ॥३६४॥

बड़े अचूक (परम अव्यर्थ) महाअस्त्र हैं वे भी सुदर्शन चक्र की रोक नहीं कर सकते उनके स्वामी (अस्त्र-धारी) को ही मारने को उद्यत होता है ॥ ३४७-३४८ ॥ पृथ्वी पर तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसी को नहीं देखता जो मेरा अनादर करे ॥ ३४६ ॥ प्रभु के कुछ क्रोध भरे शब्द सुनकर शिवजी मनमें बड़े कम्पित हुए ॥ ३५० ॥ तब अन्त में प्रभु के चरण-कमल पकड़ कर शिवजी आत्म निवेदन करने लगे ॥३५१॥ हे प्रभो ! सब संसार तुम्हारे आधीन है स्वतन्त्र होने की किसमें सामर्थ्य है ॥३५२॥ जिस प्रकार वायु सूखे तिनकों को उड़ाती है उसी प्रकार समस्त भुवन परतन्त्र हैं ॥ ३५३ ॥ हे प्रभो ! तुम जो कराते हो जीव वही करते हैं ऐसा कौन है जो तुम्हारी माया के पार कर जा सके ॥ ३५४ ॥ तथा प्रभु ने तो मुझे अहङ्कार विशेष रूप से दिया है जिससे मैं अपने से बड़ा किसी को नहीं दीखता हूँ ॥ ३५५ ॥ आपकी माया ही प्रभो ! मेरी दुर्गति कर रही है मैं क्या करूँ मैं स्वतन्त्र बुद्धि वाला हूँ ॥३५६॥ आपके चरण-कमल ही मेरे एकमात्र जीवन हैं—बन में पड़ा हुआ उन्हीं का ध्यान करता रहता हूँ ॥ ३५७ ॥ तो भी मुझसे वही अहङ्कार ही कराते हो, प्रभो ! मैं क्या करूँ—जो आपकी इच्छा ॥३५८॥ तथापि प्रभो ! मैंने अपराध किया है सब क्षमा करके मेरे ऊपर अनुग्रह करिये ॥ ३५६ ॥ मुझसे ऐसी कुबुद्धि जिससे फिर न बन पड़े, दया करके प्रभो ! यही वर दीजिये ॥ ३६० ॥ मैंने अहंकार करके जो अपराध किया उसका उचित दण्ड ही पाया अब और अहंकार शेष नहीं रहा है॥३६१॥प्रभो ! आज्ञा करो मैं कहाँ रहूँ ? और आपके अतिरिक्त किसके चरणों में निवेदन करूँ ? ॥ ३६२ ॥ शिवजी के वाक्यों को सुनकर प्रभु हँसे तथा कृपा करके बोले ॥३६३॥ हे शिवजी सुनो !

एकाम्रक वन-नाम-स्थान मनोहर । तथाइ हइया तुमि कोटि लिङ्गेश्वर ॥३६५॥
सेहो वाराणसी-प्राय सुरम्य नगरी । सेइ स्थाने आमार आछये गोप्य पुरी ॥३६६॥
सेइ स्थान शिव ! आजि कहि तोमा स्थाने । से पुरीर मर्म मोर केहो नाहि जाने ॥३६७॥
सिन्धु तीरे वट-मूले नीलाचल-नाम । क्षेत्र-श्रीपुरुषोत्तम-अति रम्य स्थान ॥३६८॥
अनन्त ब्रह्माण्ड काले जखन संहरे । तभु से स्थानेर किछु करिते ना पारे ॥३६९॥
सर्व-काल सेइ स्थाने आमार वसति । प्रतिदिन आमार भोजन हय तथि ॥३७०॥
सेइ स्थान-प्रभावे योजन दश भूमि । ताहाते बसये यत जन्तु कीट कृमि ॥३७१॥
सभारे देखये चतुर्भुज देव गणे । 'मरण मंगल' करि कहिये ये स्थाने ॥३७२॥
निद्रा तेओ ये स्थाने समाधि फल हय । शयने प्रणाम-फल यथा वेदे कय ॥३७३॥
प्रदक्षिण-फल पाय करिले भ्रमण । कथा मात्र यथा हय आमार स्तवन ॥३७४॥
हेन से क्षेत्रेर अति प्रभाव निर्मल । मत्स्य खाइलेओ पाय हविष्येर फल ॥३७५॥
निज-नामे स्थान मोर हेन प्रियतम । ताहाते यतेक वैसे, से-इ मोर सम ॥३७६॥
से स्थाने नाहिक यमदण्ड-अधिकार । आमि करि भालमन्द विचार सभार ॥३७७॥
हेन ये आमार पुरी, ताहार उत्तरे । तोमारे दिलाङ स्थान रहिवार तरे ॥३७८॥
भुक्ति-मुक्तिप्रद सेइ स्थान मनोहर । तथा तुमि ख्यात हैया 'श्रीभुवनेश्वर' ॥३७९॥
शुनिञा अद्भुत पुरी-महिमा शङ्कर । पुनः श्रीचरण धरि करिला उत्तर ।३८०॥

तुम्हें एक दिव्य स्थान देता हूँ वहाँ सब गणों सहित पधारो ॥ ३६४ ॥ एकाम्रक वन नामक मनोहर स्थान है वहाँ तुम कोटि लिङ्गेश्वर नाम से रहो ॥ ३६५ ॥ वह भी वाराणसी (काशी) के तुल्य सुन्दर नगरी है और उसी जगह मेरी एक गोपनीय पुरी भी है॥३६६॥वह स्थान है, हे शिव ! आज मैं तुमसे उसे कहता हूँ मेरी उस पुरी के मर्म को कोई नहीं जानता ॥ ३६७ ॥ समुद्र के तट पर वट के मूल अति रम्य स्थान नीलाचल नामक श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र है ॥ ३६८ ॥ जिस समय काल अनन्त ब्रह्माण्डों का नाश करता है तब भी उस स्थान का कुछ भी नहीं कर पाता ॥ ३६९ ॥ उस स्थान में सदा ही मेरा निवास है वहीं नित्य प्रति मेरा भोजन होता है॥३७०॥उस स्थान के प्रभाव से दश योजन भूमि में (अर्थात् ४० कोस में) जितने जन्तु कृमि आदि रहते हैं ॥ ३७१ ॥ सबको देवगण चतुर्भुज स्वरूप में देखते हैं उस स्थान में शरीर छोड़ना शुभ कहा है ॥ ३७२ ॥ उस स्थान में नींद लेने से समाधि का फल होता है तथा लेटने से प्रणाम करने का फल वेदों में कहा है ॥ ३७३ ॥ भ्रमण करने से प्रदक्षिणा का फल प्राप्त होता है और जहाँ कथा मात्र से मेरी स्तुति होती है ॥ ३७४ ॥ उस क्षेत्र का ऐसा अति निर्मल प्रभाव है कि वहाँ मछली खाने पर भी हविष्य अन्न का फल प्राप्त होता है ॥ ३७५ ॥ मेरे ही नाम वाला वह स्थान इतना सर्वाधिक प्रिय है उसमें जितने प्राणी रहते हैं वे सब मेरे ही समान हैं ॥ ३७६ ॥ उस स्थान में यमराज को दण्ड देने का अधिकार नहीं है वहाँ तो सबके भले-बुरे कर्मों का विचार मैं ही करता हूँ ॥३७७॥ ऐसी जो मेरी पुरी है उसके उत्तर दिशा में तुम्हारे रहने को स्थान देता हूँ ॥ ॥ ३७८ ॥ वह स्थान भोग तथा मोक्ष (भुक्ति मुक्ति) देने वाला व मनोहर है वहाँ तुम श्रीभुवनेश्वर नाम से विख्यात होगे ॥३७९॥ शिवजी, पुरी की अद्भुत महिमा सुनकर

शुन प्राणनाथ मोर एक निवेदन। मुञि से परम अहंकृत सर्व क्षण ॥३८१॥
एतेके तोमाके छाड़ि मुञि अन्य स्थाने। थाकिले कुशल मोर नाहिक कखने ॥३८२॥
तोमार निकटे से थाकिते मोर मन। दुष्ट-सङ्गे भिन्न मन नहिव कखन ॥३८३॥
एतेके मोहार यदि थाके भृत्य-ज्ञान। तबे मोरे निज क्षेत्रे देह एक स्थान ॥३८४॥
क्षेत्रेर महिमा शुनि श्रीमुखे तोमार। बड़ इच्छा हैल तथा थाकिते आमार ॥३८५॥
निकृष्ट हइया प्रभु सेविमू तोमारे। तथाइ तिलेक स्थान देह' प्रभु मोरे ॥३८६॥
क्षेत्र वास प्रति मोर बड़ लय मन। एत बलि महेश्वर करेन क्रन्दन ॥३८७॥
शिव-वाक्ये तुष्ट हइ श्रीचन्द्रवदन। बलिते लागिला तारे करि आलिङ्गन ॥३८८॥
"शुन शिव तुमि मोर निज-देह-सम। ये तोमार प्रिय, से आमार प्रियतम ॥३८९॥
यथा तुमि, तथा आमि, इथे नाहि आन। सर्वक्षेत्रे तोमारे दिलाङ आमि स्थान ॥३९०॥
क्षेत्रेर पालक तुमि सर्वथा आमार। सर्वक्षेत्रे तोमारे दिलाङ अधिकार ॥३९१।
एकाम्रक वन ये तोमारे दिल आमि। ताहातेइ परिपूर्ण रूपे थाक तुमि ॥३९२॥
सेइ क्षेत्र आमार परम प्रियतम। मोर प्रीते तथाइ थाकिबे सर्वक्षण ॥३९३॥
ये आमार भक्त हइ तोमा ना, आदरे। से आमारे मात्र येन विडम्बना करे" ॥३९४॥
हेनमते शिव पाइलेन सेइ स्थान। अद्यापिह विख्यात भुवनेश्वर-नाम ॥३९५॥
शिव प्रिय बड़ कृष्ण ताहा बुझाइते। नृत्य करे गौरचन्द्र शिवेर अग्रेते ॥३९६॥
यत किछु कृष्ण कहियाछेन पुराणे। एबे ताहा देखायेन साक्षात् आपने ॥३९७॥

पुनः श्रीचरण-कमलों को पकड़कर कहने लगे ॥ ३८० ॥ हे प्राणनाथ! मेरा एक निवेदन सुनिये मैं सब समय विशेष अहकार में रहता हूँ ॥ ३८१ ॥ इस कारण आपको छोड़कर अन्य स्थान में रहूँ तो मेरी कभी कुशल न होगी ॥ ३८२ ॥ सो मेरा मन आपके पास ही रहने का है जिसमें इस दुष्ट (अहंकार) से मेरा मन अन्य प्रकार का न हो जावे ॥ ३८३ ॥ इतने पर यदि आप मुझे अपना दास मानते हैं तो मुझे अपने क्षेत्र में एक स्थान दीजिये ॥ ३८४ ॥ आपके श्रीमुख से क्षेत्र की महिमा सुनकर वहाँ रहने की मेरी बड़ी इच्छा हो गई है ॥ ३८५ ॥ प्रभो! निकृष्ट होकर आपकी सेवा करूँगा, हे प्रभु! मेरे लिये वहाँ एक तिल मात्र स्थान दीजिये।।३८६।।क्षेत्र में वास करने की मेरी बड़ी उत्कंठा है सो ऐसा कहकर महेश्वर (शिव) रुदन करने लगे ॥ ३८७ ॥ चन्द्रमा के समान मुखाकृति वाले श्रीप्रभु, शिव के वचन सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए तथा उन्हें आलिङ्गन करके बोले-॥ ३८८ ॥ हे शिवजी सुनो तुम मेरे निज देह के समान हो जो तुम्हारे प्रिय हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ३८९ ॥ जहाँ तुम हो वहाँ मैं हूँ इसमें अन्य बात नहीं हैं मैं तुम्हें समस्त क्षेत्र में स्थान देता हूँ ॥ ३९० ॥ तुम मेरे क्षेत्र के सदा के लिये पालक (रक्षक) हो-मैं तुम्हें सब क्षेत्र का अधिकार देता हूँ ॥ ३९१ ॥ मैंने तुमको जो एकाम्रक वन दिया है तुम परिपूर्ण रूप से वहीं रहो ॥ ३९२ ॥ वह क्षेत्र मेरा अत्यन्त प्रिय है मेरी प्रसन्नता के लिये सर्वदा वहीं रहो ॥ ३९३ ॥ जो मेरा भक्त होकर तुम्हारा आदर नहीं करेगा सो (भक्ति दिखाकर) मेरी विडम्बना मात्र ही करता ॥ ३९४ ॥ इस प्रकार शिवजी को वह स्थान प्राप्त हुआ जो आज तक भुवनेश्वर नाम से विख्यात है ॥ ३९५ ॥ यह दिखाने के लिये कि शिवजी कृष्ण

'शिव राम गोविन्द' वलिया गौर-राय । हाथे तालि दिया नृत्य करेन सदाय ॥३६८॥
आपने भुवनेश्वर गिया गौरचन्द्र । शिव पूजा करिलेन लइ भक्तवृन्द ॥३६९॥
शिक्षागुरु ईश्वरेर शिक्षा ये ना माने । निज-दोषे दुख पाय सेइ सव जने ॥४००॥
सेइ शिवग्रामे प्रभु भक्तगण सङ्गे । शिवलिङ्ग देखि देखि भ्रमिलेन रङ्गे ॥४०१॥
परम निभृत एक देखि शिवस्थान । सुखी हैला श्रीगौर सुन्दर भगवान् ॥४०२॥
सेइ ग्रामे यतेक आछये देवालय । सकल देखिला श्रीगौराङ्ग महाशय ॥४०३॥
एइमते सर्व-पथे सन्तोषे आसिते । उत्तरिला आसि प्रभु कमल पुरेते ॥४०४॥
श्री देउलध्वज मात्र देखिलेन दूरे । प्रवेशिला प्रभु निज-आनन्द-सागरे ॥४०५॥
अकथ्य अद्भुत प्रभु करेन हुङ्कार । विशाल गर्जन कम्प सर्व-देह-भार ॥४०६॥
प्रासादेर दिगे मात्र चा'हिते चा'हिते । चलिलेन प्रभु श्लोक पढ़िते पढ़िते ॥४०७॥
श्रीमुखेर अर्द्ध-श्लोक शुन सावधाने । ये लीला करिला गौरचन्द्र भगवाने ॥४०८॥
"प्रासादाग्रे निवसति पुरः स्मेरवक्त्रारविन्दो । मामालोक्य स्मितसुवदनो बालगोपालमूर्त्तिः" ॥१॥
प्रभु बोले "देख प्रासादेर अग्रमूले । हासेन आमारे देखि श्रीबाल गोपाले ॥४०९॥
एइ श्लोक पुनः पुन पढ़िया पढ़िया । आछाड़ खायेन प्रभु विवश हइया ॥४१०॥
से दिनेर ये आछाड़ ये आर्ति क्रन्दन । अनन्तेर जिह्वाय वा से हय वर्णन ॥४११॥
चक्र प्रति दृष्टि मात्र करेन सकले । सेई श्लोक पढ़िया पड़ेन भूमितले ॥४१२॥

को बड़े प्रिय हैं श्रीगौरचन्द्र ने शिवजी के आगे नृत्य किया ॥ ३९६ ॥ जो कुछ श्रीकृष्ण ने पुराणों में कहा है उस समय वह सब स्वयं साक्षात् दिखाय रहे थे ॥ ३९७ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने शिव, राम, गोविन्द कहकर हाथ से ताली दे-देकर ही सदा नृत्य करते थे ॥ ३९८ ॥ स्वयं गौरचन्द्र ने भक्तवृन्दों के साथ भुवनेश्वर गये और वहाँ सबने शिवजी की पूजा की ॥ ३९९ ॥ जो शिक्षागुरु-भगवान् की शिक्षा नहीं मानते वे सब लोग अपने दोष से दुख पाते हैं ॥ ४०० ॥ उस शिव ग्राम में भक्तवृन्दों के साथ गौरचन्द्र शिवलिङ्गों के दर्शन करते-करते बड़े आनन्द में उमड़ रहे थे ॥ ४०१ ॥ एक बड़े एकान्त स्थान में एक शिव मन्दिर को देख-कर श्रीगौरसुन्दर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४०२ ॥ उस ग्राम में जितने देवालय थे उन सबको श्रीगौराङ्ग सुन्दर ने देखा ॥ ४०३ ॥ इस प्रकार सब मार्ग बड़ी प्रसन्नता से चलकर प्रभु कमलपुर में आये ॥ ४०४ ॥ श्री देव-मन्दिर की ध्वजा दूर ही से देखते ही श्रीप्रभु अपने प्रेमानन्द सागर में डूब गये ॥ ४०५ ॥ श्रीगौर-चन्द्र प्रभु अकथनीय व अद्भुत हुङ्कार करने लगे, विशाल गर्जन के साथ शरीर में कम्प व सात्विक भार प्रगट किये ॥ ४०६ ॥ प्रभु (प्रासाद) मन्दिर की ओर देखते-देखते तथा श्लोक पढ़ते-पढ़ते प्रेमानन्द से चल रहे थे ॥ ४०७ ॥ श्रीमुख से निकले आधे श्लोक को सावधानी से सुनो, गौरचन्द्र भगवान् ने तत्पश्चात् जो लीला की, वह सुनो ॥ ४०८ ॥ सुन्दर हँस मुख बालगोपाल मूर्ति विकसित कमल नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए प्रासाद (मन्दिर) के आगे ही उपस्थित है ॥ १ ॥ प्रभु ने कहा "देखो मन्दिर के अग्रभाग में बैठकर श्रीबालगोपाल कृष्ण मुझको देखकर हँस रहे हैं ॥ ४०९ ॥ इस श्लोक को बारंबार पाठ करके गौरसुन्दर विवश होकर पछाड़ खाने लगे ॥४१०॥ उस दिन की पछाड़ खाना व आर्ति क्रन्दन क्या अनन्त

एइ मत दण्डवत् हइते हइते । सर्व पथे आइसेन प्रेम प्रकाशिते ॥४१३॥
इहारे से बलि प्रेममय अवतार । ए शक्ति चैतन्य वइ दुइ नाइ आर ॥४१४॥
पथे यत देखये सुकृति नर गण । तारा बोले एइ त साक्षात् नारायण ॥४१५॥
चतुर्दिगे वेढ़िया आइसे भक्तगण । आनन्द धाराय पूर्ण सभार नयन ॥४१६॥
सबे चारि दण्डेर पथ प्रेमेर आवेशे । प्रहर-तिनेते आसि हइला प्रवेशे ॥४१७॥
आइलेन मात्र प्रभु आठार नालाय । सर्व भाव सम्बरण कैला गौरराय ॥४१८॥
स्थिर हइ वसिलेन प्रभु सभा लैया । सभारे बोलेन अति विनय करिया ॥४१९॥
तोमरा त आमार करिला बन्धु-काज । देखाइला आनि जगन्नाथ महाराज ॥४२०॥
एबे आगे तोमरा चलह देखिबारे । आमि वा याइब आगे, ताहा बोल मोरे ॥४२१॥
मुकुन्द बोलेन तबे तुमि आगे जाओ । 'भाल' बलि चलिलेन श्रीगौराङ्ग राओ ॥४२२॥
मत्त सिंह-गति जिनि चलिला सत्वर । प्रविष्ट हइला आसि पुरीर भितर ॥४२३॥
प्रवेश हइला गौरचन्द्र नीलाचले । इहा ये शुनये से भासये प्रेम जले ॥४२४॥
ईश्वर-इच्छाय सार्वभौम सेइ काले । जगन्नाथ देखिते आछेन कुतूहले ॥४२५॥
हेन काले गौरचन्द्र जगत जीवन । देखिलेन जगन्नाथ सुभद्रा सङ्कर्षण ॥४२६॥
देखि मात्र प्रभु करे परम हुंकार । इच्छा हैल जगन्नाथ कोले करिबार ॥४२७॥
लाफ देन महाप्रभु आनन्दे विह्वल । चतुर्दिगे छूटे सब नयनेर जल ॥४२८॥

(शेष) की जिह्वा द्वारा वर्णन हो सकता है? ॥४११॥ चक्र के प्रति सबने दृष्टिमात्र की और उस श्लोक का पाठ करके सब भूमि पर गिर पड़े ॥ ४१२ ॥ इस प्रकार दण्डवत् करके गिरते पड़ते सब मार्ग में प्रेम प्रकाश करते हुए आये ॥ ४१३ ॥ प्रेममय अवतार इसी को ही कहते हैं यह शक्ति चैतन्यचन्द्र के अतिरिक्त और किसी में नहीं है ॥ ४१४ ॥ मार्ग में जितने पुण्यात्मा स्त्री-पुरुष देखते थे वे कहते "यही तो साक्षात् नारायण हैं" ॥ ४१५ ॥ भक्तवृन्द उन्हें चारों ओर से घेरे हुए आ रहे थे और प्रेमानन्द अश्रुधारा से सबके नेत्र पूर्ण थे ॥ ४१६ ॥ केवल चार घड़ी का मार्ग था, जो प्रेमावेश से तीन प्रहर में पूरा हुआ ॥ ४१७ ॥ श्रीप्रभु गौरसुन्दर ने अठारह नाला पर आते ही सब भावों को रोक (सम्वरण) कर लिया ॥ ४१८ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र सबको लेकर स्थिर होकर बैठे और अत्यन्त विनय पूर्वक सबसे बोले ॥ ४१९ ॥ तुम लोगों ने तो मेरे साथ सगे भाई का जैसा काम किया जो मुझे लाकर श्रीजगन्नाथजी महाराज के दर्शन कराये ॥ ४२० ॥ अब दर्शन करने के लिये तुम लोग आगे जाओगे कि मैं आगे जाऊँ सो मुझसे कहो ॥ ४२१ ॥ श्रीमुकुन्द ने कहा "तब तो तुम ही आगे जाओ" यह सुनते ही 'अच्छा' कहकर श्रीगौराङ्गराय ने गमन किया ॥४२२॥ मत्त सिंह की गति से तेज चलकर पुरी में आकर प्रवेश किया ॥ ४२३ ॥ नीलाचल में गौरचन्द्र के प्रवेश की कथा जो सुनेंगे वे प्रेमजल में डूब जायेंगे ॥ ४२४ ॥ ईश्वर की इच्छा से श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य अनायास ही श्रीजगन्नाथ दर्शन के लिये उसी समय आये थे ॥ ४२५ ॥ उसी समय जगत् जीवन श्रीगौरचन्द्र ने जगन्नाथ, सुभद्रा व सङ्कर्षण (बलराम) के दर्शन किये ॥ ४२६ ॥ देखते मात्र ही श्रीप्रभु विशेष जोर से हुङ्कार करने लगे और जगन्नाथजी को जेट भर लें ऐसी इच्छा हुई ॥ ४२७ ॥ महाप्रभु आनन्द में विह्वल

क्षणेके पड़िला हइ आनन्दे मूर्च्छित । के बूझये ईश्वरेर अगाध चरित ॥४२६॥
अज्ञ पड़िहारी सब उठिल मारिते । आथे व्यथे सार्वभौम पड़िला पृष्ठेते ॥४३०॥
हृदये चिन्तिला सार्वभौम महाशय । एइ शक्ति मनुष्येर कोन काले नय ॥४३१॥
ए हुंकार ए गर्जन ए प्रेमेर धार । यत किछु अलौकिक शक्तिर प्रचार ॥४३२॥
एइ जन हेन बूझि-श्रीकृष्णचैतन्य । एइ मत चिन्ते सार्वभौम महा धन्य ॥४३३॥
सार्वभौम निवारणे सब-पड़िहारी । रहिलेन दूरे सभे महाभय करि ॥४३४॥
प्रभु से हइयाछेन अचेतन प्राय । देखि मात्र जगन्नाथ-निज-प्रिय-काय ॥४३५॥
कि आनन्दे मग्न हैला वैकुण्ठ-ईश्वर । बेदेओ ए सब तत्त्व जानिते दुष्कर ॥४३६॥
सेइ प्रभु गौरचन्द्र चतुर्व्यूह-रूपे । आपने वसियाछेन सिंहासने सुखे ॥४३७॥
आपनेइ उपासक हइ करे भक्ति । अतएव के बूझिवे ईश्वरेर शक्ति ॥४३८॥
आपनार तत्त्व प्रभु आपने से जाने । वेदे भागवते एइ मत से वाखाने ॥४३९॥
तथापि ये लीला प्रभु करेन जखने । ताहि कहे वेदे जीव-उद्धार-कारणे ॥४४०॥
मग्न हइलेन प्रभु वैष्णव-आवेशे । वाह्य दूरे गेल प्रेमसिन्धु-माझे भासे ॥४४१॥
आवरिया सार्वभौम आछेन आपने । प्रभुर आनन्द मूर्च्छा ना हय खण्डने ॥४४२॥
शेषे सार्वभौम युक्ति करिलेन मने । प्रभु लइ जाइवारे आपन भवने ॥४४३॥
सार्वभौम बोले 'भाइ पड़िहारि गण । सभे तुलि लह एइ पुरुष रतन' ॥४४४॥

होकर उछलने लगे थे और नेत्रों का जल चारों ओर छूट रहा था ॥ ४२८ ॥ तथा एक क्षण में ही आनन्द-विभोर हो मूर्च्छित होकर गिर पड़े अहो ईश्वर के अगाध चरित्रों को कौन समझ सकता है ॥ ४२६ ॥ मूर्ख रक्षकगण मारने को दौड़े तब सार्वभौम भट्टाचार्य जैसे-तैसे (प्रभु की) पीठ पर निवारणार्थ गिर पड़े ॥४३०॥ सार्वभौम महाशय ने हृदय में विचार किया कि इस प्रकार मनुष्य की शक्ति तो किसी काल में नहीं होती है ॥ ४३१ ॥ ऐसी हुंकार–ऐसी गर्जना–ऐसी प्रेमानन्द की अश्रुधारा आदि जो कुछ हैं सब अलौकिक शक्ति का ही प्रकाश है ॥४३२॥ "यह मनुष्य स्यात् श्रीकृष्णचैतन्य है–ऐसा समझ पड़ता है"। महा धन्य सार्वभौम इस प्रकार विचार कर रहे थे ॥४३३॥ सार्वभौम के निवारण करने पर सब रक्षकगण दूर हो गये और बड़े डरे ॥ ४३४ ॥ अपने प्रियविग्रह जगन्नाथ को देखते मात्र ही श्रीगौरचन्द्र अचेतन (जड़) के तुल्य ही हो गये ॥ ४३५ ॥ बैकुण्ठनाथ श्रीगौर ने न जाने किस आनन्द में मग्न हुए ? इन सब तत्त्वों को जानना वेदों को भी दुष्कर है ॥ ४३६ ॥ गौरचन्द्र प्रभु ही चतुर्व्यूह रूप से स्वयं सिंहासन पर सुख से विराज रहे थे और ॥ ४३७ ॥आप ही उपासक होकर भक्ति कर रहे थे इसी कारण ले ईश्वर की शक्ति को कौन समझ सके ॥ ४३८ ॥ अपने तत्त्व को प्रभु आप ही जानते हैं वेद व भागवत इस प्रकार व्याख्या करते हैं ॥४३९॥ तथापि जिस समय प्रभु जो लीला करते हैं उसे वेद जीवों के उद्धार का कारण ही बतलाते हैं ॥४४०॥ गौर-चन्द्र वैष्णव आवेश में मग्न हो गये–वाह्य ज्ञान जाता रहा तथा प्रेमसिन्धु में डूब गये ॥ ४४१ ॥ सार्वभौम स्वयं आवरण (सम्हाल) कर रहे थे परन्तु प्रभु की आनन्द मूर्च्छा नहीं टूटती थी ॥ ४४२ ॥ तब अन्त में सार्वभौम ने प्रभु को अपने भवन में ले जाने के लिये मनमें विचार किया ॥ ४४३ ॥ प्रहरियों को सम्बोधन

पाण्डु विजयेर यत निज भृत्य गण। सभे प्रभु कोले करि करिला गमन ॥४४५॥
के बुझिवे ईश्वरेर चरित्र गहन। हेन रूपे सार्वभौम मन्दिरे गमन ॥४४६॥
चतुर्दिगे हरिध्वनि करिया-करिया। वहिया आनेन सभे हरिष हइया ॥४४७॥
हेनइ समये सर्व-भक्त सिंहद्वारे। आसिया मिलिला सभे हरिष-अन्तरे ॥४४८॥
परम अद्भुत सभे देखेन आसिया। पिपीलिका गणे येन अन्न जाय लैया ॥४४९॥
एइ मत प्रभुके अनेक लोक धरि। लइया जायेन सभे महानन्द करि ॥४५०॥
सिंह द्वार नमस्करि सर्व भक्तगण। हरिषे प्रभुर पाछे करिला गमन ॥४५१॥
सर्व-लोके धरि सार्वभौमेर मन्दिरे। आनिलेन कपाट पड़िल तबे द्वारे ॥४५२॥
प्रभुर आसिया ये मिलिला भक्तगण। देखि हैला सार्वभौम हरषित-मन ॥४५३॥
यथा योग्य-सम्भाषा करिया सभा सने। वसिलेन, सन्देह भाङ्गिल ततक्षणे ॥४५४॥
बड़ सुखी हैला सार्वभौम महाशय। आर ताँर किवा भाग्यफलेर उदय ॥४५५॥
जार कीर्तिमात्र सर्व वेदे व्याख्या करे। अनायासे ईश्वर आइला मन्दिरे ॥४५६॥
नित्यानन्द देखि सार्वभौम महाशय। लइला चरण धूलि करिया विनय ॥४५७॥
मनुष्य दिलेन सार्वभौम सभा सने। चलिलेन सभे जगन्नाथ-दरशने ॥४५८॥
ये मनुष्य जाय देखाइते जगन्नाथ। निवेदन करे से करिया जोड़ हाथ ॥४५९॥
स्थिर हइ जगन्नाथ सभेइ देखिवा। पूर्व-गोसाञिर मत केहो ना करिवा ॥४६०॥

करके कहा "हे भाई ! इस पुरुष रत्न को सब मिलकर उठा लो" ॥ ४४४ ॥ पाण्डु विजय (रथयात्रा) समय के डोरी खींचने वाले जितने अपने खास भृत्य हैं उन्होंने प्रभु को गोदी में लेकर गमन किया ॥ ४४५ ॥ ईश्वर के गहन (गम्भीर) चरित्रों को कौन समझ सके ? देखो इस प्रकार सार्वभौम के मन्दिर में प्रभु ने गमन किया ॥ ४४६ ॥ चारों ओर हरिध्वनि करते-करते सब अति प्रसन्न चित्त से वहन करके ले जा रहे थे ॥ ४४७ ॥ उसी समय सिंह द्वार पर सब भक्त आकर मिले तथा सबके मन प्रसन्न हुआ ॥४४८॥ सबने परम अद्भुत दृश्य आकर देखा—जैसे पिपीलिका (चींटी) गण अन्न लेकर जा रही हों ॥ ४४९ ॥ इस प्रकार प्रभु को अनेक लोग उठाकर बड़े आनन्द पूर्वक ले जा रहे थे ॥ ४५० ॥ सिंह द्वार पर नमस्कार करके सब भक्त-वृन्दों ने प्रसन्न हो प्रभु के पीछे-पीछे गमन किया ॥ ४५१ ॥ जब सब लोग प्रभु को उठाकर सार्वभौम के मन्दिर में ले आये तब दरवाजे में किवाड़ लगा दी ॥४५२॥ यह देखकर कि प्रभु के भक्तगण भी आ गये हैं (आकर मिल गये हैं) सार्वभौम का मन प्रसन्न हुआ ॥ ४५३ ॥ सबसे यथायोग्य प्रणाम व सम्भाषण करके बैठ गये और तत्क्षण सब सन्देह मिट गया ॥४५४॥ महाशय सार्वभौमजी बड़े सुखी हुए, देखो कैसा भाग्योदय हुआ ॥ ४५५ ॥ कि जिनकी केवल कीर्ति मात्र का ही सब वेद व्याख्या करते हैं वे ईश्वर स्वयं बिना प्रयास के उनके मन्दिर में आ गये ॥४५६॥ महाशय सार्वभौम श्रीनित्यानन्द को देखकर अति विनय पूर्वक उनकी चरण धूलि ली ॥ ४५७ ॥ सार्वभौमजी ने उन सबके साथ एक मनुष्य कर दिया तब जगन्नाथ दर्शन के लिये सब गये ॥४५८॥ जो मनुष्य जगन्नाथ दर्शन कराने को गया था उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया ॥ ४५९ ॥ सब लोग स्थिर होकर जगन्नाथ के दर्शन करना और पहिले गुसाँई की तरह कोई मत

कि रूपे तोमरा, किछु ना पारि बूझिते । स्थिर हइ देख, तबे जाइ देखाइते ॥४६१॥
जे रूप तोमार करिलेन एक जने । जगन्नाथ दैवे रहिलेन सिंहासने ॥४६२॥
विशेषे वा कि कहिब ये देखिल तान । से आछाड़े अन्येर कि देहे रहे प्राण ॥४६३॥
ए तेके तोमरा सब अचिन्त्य कथन । सम्वरिया देखिबा, करिलूँ निवेदन ॥४६४॥
शुनि सभे हासिते लागिला भक्तगण । 'चिन्ता नाहि' बलि सभे करिला गमन ॥४६५॥
आसि देखिलेन चतुर्व्यूह जगन्नाथ । प्रकट-परमानन्द भक्तगण-साथ ॥४६६॥
देखि सभे लागिलेन करिते क्रन्दन । दण्डवत् प्रदक्षिण करेन स्तवन ॥४६७॥
प्रभुर गलार माला ब्राह्मण आनिया । दिलेन सभार गले सन्तोषित हैया ॥४६८॥
आज्ञा-माला पाइ सभे आनन्दित-मने । आइला सत्त्वरे सार्वभौमेर भवने ॥४६९॥
प्रभुर आनन्द मूर्च्छा हइल ये मते । वाह्य नाहि तिलेक, आछेन सेइ मते ॥४७०॥
बसिया आछेन सार्वभौम पद तले । चतुर्दिगे भक्तगण 'राम-कृष्ण' बोले ॥४७१॥
अचिन्त्य अगम्य गौरचन्द्रेर चरित । तिन-प्रहरेओ वाह्य नहे कदाचित ॥४७२॥
क्षणेके उठिला सर्व-जगत-जीवन । हरिध्वनि करिते लागिला भक्तगण ॥४७३॥
स्थिर हइ प्रभु जिज्ञासेन सभा स्थाने । कह देखि आजि मोर कोन् विवरणे ॥४७४॥
शेषे नित्यानन्द प्रभु कहिते लागिला । जगन्नाथ देखि मात्र तुमि मूर्च्छा गेला ॥४७५॥
दैवे सार्वभौम आछिलेन सेइ स्थाने । धरि तोमा आनिलेन आपन-भवने ॥४७६॥

करना ॥ ४६० ॥ तुम लोग किस प्रकार हो कुछ समझ में नहीं आता यदि स्थिर होकर दर्शन करो तो मैं दर्शन कराने जाऊँ ॥ ४६१ ॥ तुम्हारे एक जन ने जैसा किया उससे जगन्नाथजी दैववश ही सिंहासन पर स्थित रहे ॥ ४६२ ॥ और अधिक क्या कहूँ जिसने देखा वे ही जाने; देखो ऐसी पछाड़ खाने से क्या दूसरे की देह में प्राण रह सकता ? ॥४६३॥ तुम सबके इतना अचिन्त्य कथन है, इसीलिये मैं निवेदन करता हूँ कि जरा सम्हल कर दर्शन करना ॥ ४६४ ॥ सब भक्तवृन्द सुनकर हँसने लगे और 'चिन्ता मत करो' यों कहकर सबने गमन किया ॥ ४६५ ॥ सबने आकर जगन्नाथ–चतुर्व्यूह का दर्शन किया तथा भक्तगणों को परम आनन्द (मूर्तिमान्) हुआ ॥४६६॥ देखकर सब रोने लगे तथा बार-बार दण्डवत् प्रदक्षिणा व अनेक प्रकार से स्तुति की ॥ ४६७ ॥ सन्तुष्ट होकर प्रभु (जगन्नाथ) के गले की माला ब्राह्मण ने लाकर सबके गले में दी ॥ ४६८ ॥ माला रूप प्रभु आज्ञा पाकर सब लोग आनन्दित मन से शीघ्र सार्वभौम के भवन में आये ॥४६९॥ प्रभु को जैसी आनन्द मूर्च्छा हुई थी उसी प्रकार थी उन्हें तिलमात्र भी वाह्य ज्ञान नहीं था ॥४७०॥ सार्वभौम तो प्रभु के चरणों के नीचे बैठ गये तथा भक्तगण चारों ओर घेरकर 'रामकृष्ण' बोलने लगे–॥४७१॥ श्रीगौरचन्द्र के चरित्र चिन्तन के परे व मन बुद्धि के अगोचर हैं सो प्रभु को तीन पहर में भी कदाचित् वाह्य ज्ञान नहीं हुआ ॥ ४७२ ॥ तब तुरन्त ही एक क्षण में सब जगत् के जीवन श्रीगौर उठ बैठे तथा सब भक्तगण हरिध्वनि करने लगे ॥ ४७३ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने स्थिर होकर सबसे पूँछा कि मेरे आज के विवरण को कुछ कहो तो, देखें ॥ ४७४ ॥ अन्त में श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा कि आप जगन्नाथ को देखते मात्र ही मूर्च्छित हो गये ॥ ४७५ ॥ दैवयोग से सार्वभौम [वहाँ थे सो आपको उठवाकर भवन में

आनन्द-आवेशे तुमि हइ परवश । वाह्य ना जानिला तिन-प्रहर दिवस ॥४७७॥
एइ सार्वभौम नमस्करेन तोमारे । आथे व्यथे प्रभु सार्वभौम कोले करे ॥४७८॥
प्रभु बोले जगन्नाथ बड़ कृपामय । आनिलेन मोरे सार्वभौमेर आलय ॥४७९॥
परम सन्देह चित्ते आछिल आमार । किरूपे पाइव आमि संहति तोमार ॥४८०॥
कृष्ण ताहा पूर्ण करिलेन अनायासे । एत बलि सार्वभौम चाहि प्रभु हासे ॥४८१॥
प्रभु बोले शुन आजि आमार आख्यान । जगन्नाथ आमि देखिलाङ विद्यमान ॥४८२॥
जगन्नाथ देखि चित्त हइल आमार । धरि आनि वक्ष-माझे थुइ आपनार ॥४८३॥
धरिते गेलाङमात्र जगन्नाथ आमि । तवे कि हइल शेषे आर नाहि जानि ॥४८४॥
दैवे सार्वभौम आजि आछिला निकटे । अतएव रक्षा हैल ए-महा-सङ्कटे ॥४८५॥
आजि हैते आमि एइ बलि दढ़ाइया । जगन्नाथ देखिवाङ बाहिरे थाकिया ॥४८६॥
अभ्यन्तरे आर आमि प्रवेश नहिव । गरुड़ेर पाछे रहि ईश्वर देखिव ॥४८७॥
भाग्ये आमि आजि ना धरिलूँ जगन्नाथ । तवेत सङ्कट आजि हइत आमात ॥४८८॥
नित्यानन्द बोले 'बड़ एड़ाइले भाल । वेला नाहि एवे, स्नान करह सकल' ॥४८९॥
प्रभु बोले नित्यानन्द सम्बरिवा मोरे । देह आमि एइ समर्पिलाङ तोमारे ॥४९०॥
तवे कथोक्षणे स्नान करि प्रेम सुखे । वसिलेन सभार सहित हास्य मुखे ॥४९१॥
बहुविध महाप्रासाद आनिजा सत्वरे । सार्वभौम थुइलेन प्रभुर गोचरे ॥४९२॥
महाप्रसाद देखि प्रभु करि नमस्कार । बसिला भुञ्जिते लइ सब परिबार ॥४९३॥

लिवा लाये ॥ ४७६ ॥ आप प्रेमानन्द आवेश में विवश हो गये और दिन में तीन पहर तक वाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ ४७७ ॥ ये ही सार्वभौम आपको नमस्कार कर रहे हैं। श्रीप्रभु ने शीघ्र ही सार्वभौम की जेट भर ली ॥ ४७८ ॥ श्रीप्रभु ने कहा कि जगन्नाथ बड़े कृपालु हैं देखो मुझे सार्वभौम के स्थान में ले आये ॥ ४७९ ॥ मेरे चित्त में बड़ा सन्देह था कि श्रीसार्वभौम का साथ मुझे कैसे मिलेगा ॥ ४८० ॥ कृष्ण ने बिना प्रयास के ही उसे पूर्ण कर दिया इस प्रकार कहते हुए सार्वभौम की ओर देखकर प्रभु हँसे ॥ ४८१ ॥ प्रभु ने कहा मेरा प्रसङ्ग सुनो; मैंने जगन्नाथ देव को जब सम्मुख पाया ॥ ४८२ ॥ श्रीजगन्नाथदेव को देखते ही मेरे मनमें आई कि मैं अपने वक्षःस्थल के भीतर उन्हें धारण करलूँ ॥ ४८३ ॥ मैं उन्हें (जगन्नाथ को) आज पकड़ने गया ही था उसके पीछे क्या हुआ सो मुझे कुछ नहीं मालूम रहा॥४८४॥आज दैवयोग से सार्वभौम पास ही थे अतः इस महा संकट से रक्षा हो गई ॥ ४८५ ॥ मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ कि आज से श्रीजगन्नाथ दर्शन बाहिर से करूँगा ॥ ४८६ ॥ अब मैं कभी भीतर प्रवेश न करूँगा-वरन् गरुड़-स्तम्भ के पीछे से भगवद् दर्शन किया करूँगा ॥ ४८७ ॥ भाग्यवश आज मैंने श्रीजगन्नाथदेव को पकड़ा नहीं अन्यथा मेरे लिये बड़ा संकट उपस्थित हो जाता॥४८८॥नित्यानन्दजी ने कहा "यह बड़ा अच्छा हुआ जो नहीं पकड़ा अब समय नहीं है शीघ्र ही स्नान करिये ॥ ४८९ ॥ प्रभु बोले हे नित्यानन्द ! मुझे सम्हालना, यह देह मैंने तुम्हें सौंप दी है ॥ ४९० ॥ तब कुछ देर में प्रेम से सुख पूर्वक स्नान करके-हँसते हुए सबके साथ बैठे ॥ ४९१ ॥ अनेक प्रकार का महाप्रसाद लाकर सार्वभौम ने महाप्रभुजी के सम्मुख शीघ्र रख दिया ॥४९२॥

प्रभु बोले 'विस्तर लाफर मोरे देह' । पिठा पाना छेना बड़ा तोमरा सभे लह ॥४६४॥
एइ मत बलि प्रभु महा प्रेमरसे । लाफरा खायेन प्रभु भक्तगण हासे ॥४६५॥
जन्म-जन्म सार्वभौम प्रभुर पार्षद । अन्यथा अन्येर नाहि हय ए सम्पद ॥४६६॥
सुवर्ण थाली ते अन्न आनिञा आपने । सार्वभौम देन, प्रभु करेन भोजने ॥४६७॥
से भोजने यतेक हइल प्रेम रङ्ग । व्यास वर्णिवेन ताहा चैतन्येर सङ्ग ॥४६८॥
अशेष कौतुके करि भोजन-विलास । वसिलेन प्रभु, भक्तगण चारि-पाश ॥४६९॥
नीलाचले प्रभुर भोजन महारङ्ग । इहार श्रवणे हय चैतन्येर सङ्ग ॥५००॥
शेष खण्डे चैतन्य आइला नीलाचले । ए आख्यान शुनिले भासये प्रेमजले ॥५०१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥५०२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीचैतन्य-सार्वभौम-सम्मेलनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गुण धाम । जय जय नित्यानन्द स्वरूपेर प्राण ॥ १ ॥
जय जय वैकुण्ठनायक कृपासिन्धु । जय जय न्यासि चूड़ामणि दीनबन्धु ॥ २ ॥
भक्त गोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥ ३ ॥
शेषखण्ड-कथा भाइ शुन एक चित्ते । श्रीगौरसुन्दर विहरिला येन मते ॥ ४ ॥

गौरप्रभु ने महाप्रसाद को देखकर नमस्कार किया और सब परिवार को लेकर भोजन करने बैठे ॥ ४६३ ॥ प्रभु ने कहा विशेष करके लाफरा साग तो मुझको दो और सब मीठा पाना तथा छेना बड़ा तुम लोग ले लो ॥ ४६४ ॥ इस प्रकार कहकर प्रभु बड़े प्रेमरस से लाफरा खाने लगे और भक्तगण हँसने लगे ॥४६५॥ सार्वभौम पिछले जन्मों में प्रभु के पार्षद रहे हैं अन्यथा दूसरे को यह सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती ॥ ४६६ ॥ सार्वभौम स्वयं ही सुवर्ण की थाली में लाकर अन्न देते थे और प्रभु भोजन करते थे ॥४६७॥ उस भोजन पान के समय जितना प्रेमानन्द हुआ चैतन्यदेव के उस प्रसङ्ग को व्यास वर्णन करेंगे ॥ ४६८ ॥ अगणित कौतुकों के साथ भोजन विलास करके महाप्रभुजी विराज गये और भक्तवृन्द चारों ओर घेरकर बैठ गये ॥४६९॥ नीलाचल में प्रभु का भोजन विलास बड़े आनन्द से हुआ था जिसके सुनने से चैतन्यचन्द्र का सङ्ग प्राप्त होगा॥५००॥शेष खण्ड में गौरचन्द्र नीलाचल में आये इस प्रसङ्ग के सुनते ही मनुष्य प्रेमजल में डूबने लगते हैं ॥ ५०१ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र तथा नित्यानन्द को जानकर ही वृन्दावनदास उनके पद द्वन्द का गान करता है ॥ ५०२ ॥

गुणों के धाम श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो और नित्यानन्द स्वरूप के प्राण प्रभु की जय हो जय हो ॥ १ ॥ बैकुंठनायक गौरचन्द्र कृपासिन्धु की जय हो,सन्यासियों के चूड़ामणि और दीनबन्धु की जय हो जय हो ॥ २ ॥ भक्तमण्डली के सहित गौराङ्ग प्रभु की जय हो, जय हो चैतन्यचन्द्र की कथाओं के सुनने से भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ भाइयो ! शेष खंड की कथा को एकाग्र मनसे सुनो जिस भाँति श्रीगौरसुन्दर

अमृतेर अमृत चैतन्यचन्द्र कथा । ब्रह्मा शिव ये अमृत वाञ्छेन सर्वथा ।। ५ ।।
अतएव श्रीचैतन्य कथार श्रवणे । सभार सन्तोष हय, दुष्टगण बिने ।। ६ ।।
शुन शेषखण्ड-कथा चैतन्य रहस्य । इहार श्रवणे कृष्ण पाइये अवश्य ।। ७ ।।
हेन मते श्रीगौरसुन्दर नीलाचले । आत्म-सङ्गोपन करि आछे कुतूहले ।। ८ ।।
यदि तिंहा व्यक्त ना करेन आपनारे । तवे कार शक्ति आछे ताँरे जानिवारे ।। ९ ।।
दैवे एक दिन सार्वभौमेर सहिते । वसिलेन प्रभु ताँरे लइया निभृते ।। १० ।।
प्रभु बोले शुन सार्वभौम महाशय । तोमारे कहिये आमि आपन-हृदय ।। ११ ।।
जगन्नाथ देखिते ये आइलाङ आमि । उद्देश्य आमार मूल-एथा आछ तुमि ।।१२।।
जगन्नाथ आमार कि कहिवेन कथा । तुमि से आमार बन्ध छिण्डावे सर्वथा ।।१३।।
तोमाते से वैसे श्रीकृष्णेर पूर्ण शक्ति । तुमि से दिवारे पार कृष्ण प्रेम भक्ति ।।१४।।
एतेके तोमार आमि लइलूँ आश्रय । ताहा कर ये रूपे आमार भाल हय ।।१५।।
कि विधि करिमूँ मुञि, थाकिमूँ कि रूपे । के मते ना पड़ोँ मुञि ए संसार कूपे ।।१६।।
सर्व उपदेश मोरे कह अमायाय । 'तोमारि से आमि' इहा जान सर्वथाय ।।१७।।
एइ मत अनेक-प्रकार माया करि । सार्वभौम-प्रति कहिलेन गौरहरि ।।१८।।
ना जानिञा सार्वभौम ईश्वरेर मर्म्म । कहिवारे लागिला जीवेर यत धर्म ।।१९।।
सार्वभौम बोलेन कहिला यत तुमि । सकल तोमार भाल वासिलाङ आमि ।।२०।।
ये तोमार हइयाछे भक्तिर उदय । अत्यन्त अपूर्व से कहिल कभू नय ।।२१।।

ने विहार किया ।। ४ ।। चैतन्यचन्द्र की कथा अमृत है देखो ब्रह्मा व शिव भी इस अमृत की सदा वाञ्छा करते रहते हैं ।। ५ ।। अतएव इसी से श्रीचैतन्यचन्द्र की कथाओं को सुनकर बड़ा सन्तोष होता है-केवल दुष्टों को नहीं होता ।। ६ ।। श्रीचैतन्यदेव की रहस्यमयी शेष खंड कथा सुनिये-इसके सुनने से कृष्ण प्राप्ति अवश्य होगी ।। ७ ।। इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने नीलाचल में अपने को कुतूहल से ही आत्म-गोपन कर लिया ।। ८ ।। यदि वे ही अपने को प्रकाश में न लाना चाहें तो उनको जानने की किसमें सामर्थ्य है ।।९।। श्रीप्रभु दैववश एक दिन सार्वभौम के पास एकान्त में बैठे थे ।। १० ।। प्रभु ने कहा 'हे सार्वभौम महाशय सुनो मैं अपने हृदय की बात तुमसे कहता हूँ" ।। ११ ।। मैं जगन्नाथ दर्शन के लिये आया हूँ उसमें मेरा मूल उद्देश्य तो आपका यहाँ होना ही है ।। १२ ।। जगन्नाथ तो मुझसे कुछ बोलेंगे ही नहीं आप ही मेरे बन्धनों को पूर्ण रीत्या छेदन कर दोगे ।। १३ ।। आप में श्रीकृष्ण की पूर्ण शक्ति विराजती है और आप ही उस कृष्ण प्रेम भक्ति को देने में समर्थ हैं ।। १४ ।। इसी कारण मैंने आपका आश्रय लिया है अब जिसमें मेरा उपकार हो वह आप करें ।। १५ ।। मेरे लिये क्या करणीय है-मैं किस प्रकार आचरण करूँ जिससे मैं संसार-कूप में न गिरूँ, सभी उपदेश मुझे समझाकर कहें-मैं तो आप ही का हूँ पूर्ण रीत्या यही आप जानें ।। १६-१७ ।। इस भाँति श्रीगौरहरि ने अनेक प्रकार छल करके सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा ।। १८ ।। सार्वभौम भट्टाचार्य, ईश्वर (महाप्रभु) के मर्म को न जानकर जीव के समस्त धर्मों को कहने लगे ।। १९ ।। सार्वभौम ने कहा "तुमने जो कुछ कहा है सब मैंने भली प्रकार समझलिया है ।। २० ।। तुममें भक्ति का

बड़इ कृष्णेर कृपा हैयाछे तोमारे । सबे एक खानि करियाछ अव्यभारे ॥२२॥
परम सुबुद्धि तुमि हइया आपने । तबे तुमि सन्यास करिला कि कारणे ॥२३॥
बूझ देखि विचारिया कि आछे सन्यासे । प्रथमेइ बद्ध हय अहङ्कार-पाशे ॥२४॥
दण्ड धरि महाज्ञानी हय आपनारे । काहारे ओ बोल हस्त जोड़ नाहि करे ॥२५॥
जार पद धूलि लैते वेदेर विहित । हेन जन नमस्करे, तभू नहे भीत ॥२६॥
सन्यासीर धर्म वा बलिब सेहो नहे । बूझ एइ भागवते येन मत कहे ॥२७॥

तथाहि (भा० ११।२६।१६; ३।२६।३४)

"प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्"। "प्रविष्टो जीवकलया तत्रैव भगवानिति" ॥१॥

ब्राह्मणादि कुक्कुर चाण्डाल अन्त करि । दण्डवत् करिबेक बहुमान्य धरि ॥२८॥
एइ से वैष्णव धर्म-सभारे प्रणति । सेइ धर्मध्वजी, यार इथे नाहि रति ॥२९॥
शिखा सूत्र घुचाइया सबे एइ लाभ । नमस्कार करे आसि महामहा भाग ॥३०॥
प्रथमे शुनिला एइ एक अपचय । एबे आर शुन सर्वनाश बुद्धि क्षय ॥३१॥
जीवेर स्वभाव-धर्म ईश्वर भजन । ताहा छाड़ि आपनाके बोले 'नारायण' ॥३२॥
गर्भवासे ये ईश्वरेर करिलेन रक्षा । याहार प्रसादे हैल बुद्धि ज्ञान शिक्षा ॥३३॥
जार दास्य लागि शेष अज भव रमा । पाइया ओ निरवधि करेन कामना ॥३४॥
सृष्टि स्थिति प्रलय जाहार दासे करे । लाजो नाहि हेन 'प्रभु' बोले आपनारे ॥३५॥

जो उदय हुआ है वह अत्यन्त अपूर्व है ऐसा पूर्व में किसी ने कहा भी नहीं है ॥ २१ ॥ तुम पर श्रीकृष्ण की बड़ी पूर्ण कृपा है, केवल यह व्यवहार तुमने ठीक नहीं किया ॥२२॥ तुम स्वयं बड़े बुद्धिमान हो तो भी तुमने सन्यास क्यों ग्रहण किया ? ॥ २३ ॥ देखो विचार कर समझो कि सन्यास क्या वस्तु है ? क्योंकि सन्यास लेने पर मनुष्य अहङ्कार की फाँसी में पड़ जाता है ॥ २४ ॥ दण्ड धारण करके मनुष्य अपने को बड़ा ज्ञानी मान बैठता है तथा किसी को भी हाथ जोड़कर प्रणाम नहीं करता ॥ २५ ॥ जिनकी चरण धूलि लेने की वेदों में आज्ञा है ऐसे जन भी यदि नमस्कार करें तो भी उसे भय नहीं होता ॥२६॥ सन्यासी धर्म मैं कहूँ, वही नहीं, श्रीभागवत में जैसा वर्णन किया है वह भी समझना ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् जीवकला रूप से सब देहधारियों में प्रविष्ट हैं वह विचार कर कुत्ता, चाण्डाल, गौएँ, गधा पर्यन्त सबको भूमि में गिरकर दण्डवत् प्रणाम करे ॥ १ ॥ ब्राह्मण से चांडाल पर्यन्त सब प्राणियों को बहुमान करके दंडवत् करे ॥ २८ ॥ "सबको प्रणाम करना" यही वैष्णव धर्म है इसमें जिसकी रीति नहीं है वही पाखंडी है ॥ २९ ॥ शिखा व सूत्र (जनेऊ) दूर करने का केवल यह लाभ है कि बड़े २ महाभाग भी आकर नमस्कार करते हैं ॥ ॥ ३० ॥ यह पहिला अपहार सुनाया अब बुद्धिनाशक व सर्वनाशकारी दूसरा और सुनो ॥ ३१ ॥ ईश्वर का भजन जीव का स्वाभाविक धर्म है उसको छोड़कर वह अपने को "नारायण" कहता है ॥३२॥ देखो गर्भवास में जिस ईश्वर ने रक्षा की व जिसकी कृपा से बुद्धि व ज्ञान की शिक्षा हुई॥३३॥जिनकी शेष ब्रह्मा शिव व लक्ष्मी भी दास्यता को पायकर भी सेवा के लिये निरन्तर कामना करते हैं ॥ ३४ ॥ सृष्टि, पालन, संहार जिनके दास करते हैं—सो अपने को "वह प्रभु" कहने में लाज तो नहीं आती॥३५॥नींद आने

निद्रा हैले 'आपने के' इहाओ ना जाने । आपनारे 'नारायण' बोले हेन जने ॥३६॥
'जगतेर पिता कृष्ण' सर्व वेदे कहे । पितारे ये भक्ति करे से सुपुत्र हये ॥३७॥

तथाहि श्रीगीतायाम् (६।१७) "पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः" ॥२॥

गीता शास्त्रे अर्जुनेर सन्यास लक्षण । शुन एइ ये कहियाछेन नारायण ॥३८॥

तथाहि गीता (६।१)

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः । स सन्यासी च योगी च न निराग्निर्न चाक्रियः" ॥३॥

निष्काम हइया करे ये कृष्ण भजन । ताहारे से बलि 'योगी' 'सन्यासी' लक्षण ॥३९॥
विष्णु क्रिया ना करिया परान्न खाइले । किछु नहे साक्षातेइ एइ वेदे बोले ॥४०॥

तथाहि भागवते ४ स्कन्धे २९ अध्याये ४९-५० श्लोके

"तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया । हरिर्देहभृतमात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः" ॥४॥

तारारे से बलि धर्म कर्म सदाचार । ईश्वरेर प्रीति जन्मे सम्मत सभार ॥४१॥
ताहारे से बलि विद्या मन्त्र अध्ययन । कृष्ण पादपद्मेते कराय स्थिर मन ॥४२॥
सभार जीवन कृष्ण, जनक सभार । हेन कृष्ण ये ना भजे, सब व्यर्थ तार ॥४३॥
यदि बोल शङ्करेर मत सेहो नहे । ताँर अभिप्राय दास्य, ताँरि मुखे कहे ॥४४॥

तथाचाह श्रीशङ्कराचार्यप्रभुः (षट्पदी स्तोत्रे)-

"सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रोहि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः" ॥५॥

यद्यपिह जगते ईश्वरेर भेद नाञि । सर्वमय-परिपूर्ण आछे सर्व ठाञि ॥४५॥

पर "आप कौन हैं ?" यह तक तो जानते नहीं ऐसे मनुष्य अपने को "नारायण" कहते हैं ॥ ३६ ॥ जगत् पिता कृष्ण हैं ऐसा सब वेदों में कहा है सो पिता की भक्ति करते हैं वही सुपुत्र होते हैं ॥ ३७ ॥ (अर्थ पू०) गीता शास्त्र में श्रीनारायण ने अर्जुन से जो सन्यास का लक्षण कहा है वह सुनो ॥ ३८ ॥ स्वर्गादि कर्म फल की कामना न करके जो शास्त्र विहित अवश्य कर्तव्य कर्म करता है, वही प्रकृत सन्यासी व यथार्थ योगी है, अग्निहोत्र प्रभृति कर्म परित्यागी यती वेशधारी सन्यासी नहीं हैं तथा शारीरिक कर्म परित्यागी भी योगी नहीं हैं ॥ ३ ॥ निष्काम होकर जो कृष्ण का भजन करता है उसी को योगी व सन्यासी का लक्षण कहते हैं ॥ ३९ ॥ विष्णु क्रिया न करके दूसरों का अन्न खाने वाले कुछ नहीं हैं अर्थात् उसकी कोई संज्ञा नहीं है, वेद ऐसा स्पष्ट कहते हैं ॥४०॥ जिससे हरि सन्तुष्ट हों वह कर्म है तथा जिसके द्वारा श्रीहरि में बुद्धि लगे वही विद्या है, क्योंकि श्रीहरि देहधारी मात्रों के आत्मा व ईश्वर हैं कारण वे स्वयं स्वतन्त्र रूप से सब प्राणियों के कारण स्वरूप माता पिता हैं ॥ ४ ॥ उसी को सर्व सम्मत धर्म कर्म व सदाचार कहते हैं जिससे ईश्वर में प्रीति उत्पन्न हो ॥ ४१ ॥ विद्या मन्त्र व अध्ययन उसी को कहते हैं जिससे श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों में मन स्थिर हो ॥ ४२ ॥ कृष्णचन्द्र सब प्राणियों के जीवन व पिता हैं ऐसे कृष्ण को जो नहीं भजते उनका सब किया हुआ व्यर्थ है ॥ ४३ ॥ यदि कहो कि शङ्कराचार्य का यह मत है, सो भी नहीं है उनका अभिप्राय तो प्रभु के दास्य पद में है-यह उनके मुख की उक्ति है ॥ ४४ ॥ हे नाथ ! जगत् और आप में भेद न रहने पर भी मैं जानता हूँ कि मैं आपके अधीन हूँ, किन्तु आप मेरे आधीन नहीं हो । तरङ्ग व तरङ्गमय समुद्र परस्पर अलग नहीं है यह सुनिश्चित है; परन्तु तरङ्ग समुद्र की हैं किन्तु समुद्र तरङ्गों का

तभो तोमा हइते से हइयाछि आमि । आमा हैते नाहि कभू हइयाछ तुमि ॥४६॥
येन समुद्रेर से तरङ्ग लोके बोले । 'तरङ्गेर समुद्र' ना हय कोन-काले ॥४७॥
अतएव जगत तोमार, तुमि पिता । इहलोके परलोके तुमि से रक्षिता ॥४८॥
याहा हैते हय जन्म, ये करे पालन । तारे ये ना भजे, वर्ज्य हय सेइ जन ॥४९॥
एइ शङ्करेर श्लोक—एइ अभिप्राय । इहा ना जानिञा माथा कि कार्ये मुड़ाय ॥५०॥
सन्यासी हइया निरवधि 'नारायण' । बलिवेक प्रेम भक्ति योगे अनुक्षण ॥५१॥
ना बूझिया शङ्कराचार्येर अभिप्राय । भक्ति छाड़ि माथा मुड़ाइया दुःख पाय ॥५२॥
अतएव तोमारे से कहिलाङ आमि । हेन पथे प्रविष्ट हइला केने तुमि ॥५३॥
यदि कृष्ण भक्तियोगे करिव उद्धार । तवे शिखा-सूत्र-त्यागे कोन लभ्य आर ॥५४॥
यदि बोल माधवेन्द्र-आदि महाभाग । ताँराओ करियाछेन शिखा-सूत्र-त्याग ॥५५॥
तथापिह तोमार सन्यास करिवार । ए समये केमते हइल अधिकार ॥५६॥
से सब महान्तगण त्रिभाग-वयसे । ग्राम्य-रस भुञ्जिया से करिला सन्यासे ॥५७॥
यौवन-प्रवेश मात्र सकले तोमार । केमते हइल सन्यासेर अधिकार ॥५८॥
परमार्थे सन्यासे कि करिव तोमारे । येइ भक्ति हइयाछे तोमार शरीरे ॥५९॥
योगेन्द्रादि-सभेर ये दुर्लभ प्रसाद । तवे केने करियाछ ए मत प्रमाद ॥६०॥
शुनि भक्तियोग सार्वभौमेर वचन । बड़ सुखी हैला गौरचन्द्र नारायण ॥६१॥
प्रभु बोले शुनि सार्वभौम महाशय । 'सन्यासी' आमारे नाहि जानिह निश्चय ॥६२॥

कदापि नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥ यद्यपि जगत् व ईश्वर में भेद नहीं है तथापि सर्वमय भगवान् सब जगह परिपूर्ण रूप से विराजमान हैं ॥ ४५ ॥ तभी मैं आपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ और मुझसे आप उत्पन्न नहीं हुए हो ॥ ४६ ॥ जैसे 'समुद्र की तरङ्ग' मनुष्य कहते हैं परन्तु 'तरङ्गों का समुद्र' कभी नहीं होता ॥ ४७ ॥ अतः जगत् आपका है आप पिता हो और इस लोक व परलोक में तुम ही रक्षा करने वाले हो ॥ ४८ ॥ जिससे जन्म हो तथा जो पालनकर्त्ता है उसका जो भजन नहीं करता है वह मनुष्य (वर्ज्य) पाखण्डी है ॥ ४९ ॥ यह श्लोक श्रीशङ्कराचार्य का है इसका अर्थ न जानकर माथा किस लिये मुड़ाते हैं ? ॥ ५० ॥ सन्यासी होकर निरन्तर प्रेम-भक्ति से क्षण २ में नारायण का नाम बोलें ॥ ५१ ॥ श्रीशङ्कराचार्य के इस अभिप्राय को न जानकर भक्ति को छोड़कर माथा मुड़ाकर दुख पाते हैं ॥ ५२ ॥ अतः मैं तुमसे कहता हूँ कि इस मार्ग में क्यों प्रविष्ट हुए (घुसे ?) ॥ ५३ ॥ यदि श्रीकृष्णचन्द्र भक्तियोग के द्वारा उद्धार करते तो शिखा-सूत्र त्यागने से क्या लाभ ॥५४॥ यदि कहो कि श्रीमाधवेन्द्रपुरी आदि महाभागों ने भी शिखा-सूत्र का त्याग किया है ? ॥ ५५ ॥ तथापि इस समय तुम्हें सन्यास करने का अधिकार कैसे हुआ ? ॥ ५६ ॥ उन सब महात्माओं ने आयु के तीसरे "भाग में-विषय सुख भोगकर सन्यास" ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ तुम्हारा तो अभी यौवन में ही प्रवेश मात्र है कहो सो किस प्रकार सन्यास का अधिकार हुआ ? ॥५८॥ सन्यास तुम्हारा क्या परमार्थ सिद्ध करेगा ? तुम्हारे शरीर में तो यह भक्ति उदय हुई है॥५९॥ जो अनुग्रह योगेन्द्रादि को भी दुर्लभ है वह तुम्हें प्राप्त है तब ऐसा प्रमाद क्यों किया ? ॥६०॥ भक्तियोग पूर्ण सार्वभौम के वचनों

कृष्णेर विरहे मुञि बिक्षिप्त हइया । बाहिर हइलूँ शिखा सूत्र मुड़ाइया ॥६३॥
'सन्यासी' करिया ज्ञान छाड़ मोर प्रति । कृपा कर येन मोर कृष्णे हय मति ॥६४॥
प्रभु हइ निज-दास मोहे हेन मते । ए मायाय दासे प्रभु जानिब केमते ॥६५॥
यदि तिंहो नाहि जानायेन आपनारे । तबे कार शक्ति आछे जानिते ताँहारे ॥६६॥
ना जानिआ सेवके यतेक कथा कय । ताहातेओ ईश्वरेर महाप्रीति हय ॥६७॥
सर्व काल भृत्य सङ्गे प्रभु क्रीड़ा करे । सेवकेर निमित्ते आपने अवतरे ॥६८॥
ये मते सेवके भजे कृष्णेर चरणे । कृष्ण सेइमत दास भजेन आपने ॥६९॥
एइ ताँर स्वभाव ये-सेवक-वत्सल । इहा ताँरे निवारिते कार आछे बल ॥७०॥
हासे प्रभु सार्वभौम चाहिया-चाहिया । ना बूझेन सार्वभौम माया मुग्ध हैया ॥७१॥
सार्वभौम बोलेन आश्रमे बड़ तुमि । शास्त्र मते तुमि वन्द्य, उपासक आमि ॥७२॥
तुमि ये आमारे स्तव कर युक्त नहे । इहाते आमार पाछे अपराध हये ॥७३॥
प्रभु बोले 'छाड़' मोरे ए सकल माया । सर्वभावे तोमार लइलूँ मुञि छाया ॥७४॥
हेन मते प्रभु भृत्य सङ्गे करे खेला । के बूझिते पारे गौर सुन्दरेर लीला ॥७५॥
प्रभु बोले मोर एक आछे मनोरथ । तोमार श्रीमुखे शुनिबाङ भागवत ॥७६॥
यतेक संशय चित्ते आछये आमार । तोमा बइ घुचाइब हेन नाहि आर ॥७७॥
सार्वभौम बोले तुमि सकल विद्याय । परम प्रवीण, आमि जानि सर्वथाय ॥७८॥
कोन् भागवत-अर्थ ना जान वा तुमि । तोमारे वा कोन् रूपे प्रबोधिब आमि ॥७९॥

को सुनकर गौरचन्द्र नारायण बड़े प्रसन्न हुए ॥६१॥ गौरचन्द्र ने कहा सार्वभौम महाशय सुनो मुझे निश्चय ही सन्यासी मत जानो ॥६२॥ में तो कृष्ण के विरह में विक्षिप्त होकर शिखा सूत्र मुड़ाय कर घर से बाहिर हुहा हूँ ॥६३॥ मेरे प्रति सन्यासी का भाव छोड़ दो तथा और ऐसी कृपा करो जिससे मेरी बुद्धि कृष्ण में लगे ॥६४॥ प्रभु होकर अपने दास को इस प्रकार मोहित करते हैं ऐसी माया से दासगण कैसे प्रभु को जानें ? ॥६५॥ यदि प्रभु अपने को न जनावें तो किस की शक्ति है कि उन्हें जान सके ? ॥६६॥ प्रभु को न पहिचान कर सेवक जो कुछ कहते हैं उससे भी प्रभु को बड़ी प्रसन्नता (प्रीति) होती है ॥६७॥ प्रभु सब समय दास के साथ क्रीड़ा करते हैं और सेवक के निमित्त से ही स्वयं अवतार भी धारण करते हैं ॥६८॥ जिस प्रकार सेवक श्रीकृष्ण के चरणों को भजते हैं उसी प्रकार कृष्ण स्वयं दासों का भजन करते हैं॥६९॥यह उनका स्वभाव है कि आप भक्तवत्सल हैं इससे उनको निवारण करने में कौन समर्थ है ॥७०॥ सार्वभौम की ओर देख-देख कर प्रभु गौरचन्द्र हँस रहे थे और सार्वभौम माया मुग्ध हो नहीं समझे हैं ॥७१॥ सार्वभौम ने कहा आश्रम में तुम बड़े हो और शास्त्रानुसार से तुम पूज्य हो तथा मैं उपासक हूँ ॥७२॥ तुम जो मेरी स्तुति करते हो यह योग्य नहीं है इससे मुझे अपराध लगेगा ॥७३॥ प्रभु ने कहा मेरे प्रति इन सब माया को छोड़ो मैं सब प्रकार से तुम्हारे पीछे हूँ ॥७४॥ प्रभु दासों के साथ इस प्रकार खेल करते हैं ऐसे गौरसुन्दर की लीला को कौन समझ सकेगा ? ॥ ७५ ॥ प्रभु ने कहा मेरा एक मनोर्थ है कि तुम्हारे श्रीमुख से भागवत श्रवण करूँ ॥ ७६ ॥ मेरे मनमें जितने संशय हैं तुम्हारे बिना ऐसा दूसरा नहीं है जो उनको दूर करें ॥ ७७ ॥ सार्वभौम

तथापिह अन्योन्ये भक्तिर विचार । करिवेक-सुजनेर स्वभाव व्यभार ॥८०॥
बोल देखि सन्देह तोमार कोन् स्थाने । आछे ताहा यथा-शक्ति करिव वाखाने ॥८१॥
तबे श्रीवैकुण्ठनाथ ईषत् हासिया । वलिलेन एक श्लोक अष्ट-आखरिया ॥८२॥

तथाहि भागवते १ स्कन्धे ७ अध्याये १० श्लोके--

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः" ॥६॥

सरस्वती पति गौरचन्द्रेर अग्रेते । कृपाय लागिला सार्वभौम बाखानिते ॥८३॥
सार्वभौम बोले श्लोकार्थ एइ सत्य । कृष्ण पद भक्ति से सभार मूल तत्त्व ॥८४॥
सर्वकाल परिपूर्ण हय ये-ये जन । अन्तरे बाहिरे जार नाहिक वन्धन ॥८५॥
सर्व विध मुक्त सब करे कृष्ण भक्ति । हेन कृष्ण गुणेर स्वभाव महाशक्ति ॥८६॥
हेन कृष्ण-गुण-नाम मुक्त-सवो गाय । इथे अनादर जार, से-इ नाश जाय ॥८७॥
एइ मत नाना मत पक्ष तोलाइया । व्याख्या करे सार्वभौम आविष्ट हइया ॥८८॥
त्रयोदश प्रकार श्लोकार्थ वाखानिया । रहिलेन 'आर शक्ति नाहिक' वलिया ॥८९॥
ईषत् हासिया गौरचन्द्र प्रभु कहे । यत बाखानि ला तुमि, सब सत्य हये ॥९०॥
एवे शुन आमि किछु करिये व्याख्यान । बूझ देखि बिचारिया-हय कि प्रमाण ॥९१॥
तखने विस्मित सार्वभौम महाशय । आरो अर्थ मनुष्येर शक्तिते कि हय ॥९२॥
आपनार अर्थ प्रभु आपने वाखाने । याहा केहो कोनो कल्पे उद्देश ना जाने ॥९३॥

ने कहा तुम सर्व विद्याओं में परम प्रवीण हो मैं अच्छी तरह से जानता हूँ ॥ ७८ ॥ तुम भागवत के कौन से अर्थ नहीं जानते मैं तुम्हें किस प्रकार ज्ञात करा सकूँ ? ॥ ७९ ॥ तथापि परस्पर में भक्ति का विचार करेंगे यही सज्जनों के चित्त में स्वाभाविक व्यवहार है ॥८०॥ अच्छा कहो ! देखें तो तुम्हारे किस स्थान में सन्देह है उसको यथाशक्ति व्याख्यान करूँगा ॥ ८१ ॥ ताके पीछे वैकुण्ठनाथ ने कुछ हँसकर आठ अक्षर में विश्राम वाला एक श्लोक (अनुष्टुप छन्द में) कहा ॥ ८२ ॥ जो विधि निषेष के अतीत हैं तथा जिनकी अहङ्कार ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो गई हैं ऐसे अपने ही में रमण वाले आत्माराम मुनिगण भी अमित पराक्रम भगवान् में फल की कामना से शून्य भक्ति का अनुष्ठान करते हैं क्योंकि श्रीहरि के गुण ही इस प्रकार के हैं ॥ ६ ॥ सरस्वती पति श्रीगौरचन्द्र के सम्मुख कृपा पूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्यजी व्याख्या करने लगे ॥८३॥ सार्वभौम ने कहा श्लोक का सत्य अर्थ यह है कि कृष्णचन्द्र के चरणों में भक्ति हो यही सबका मूल तत्त्व हैं ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य सदा परिपूर्ण हैं जिनके भीतर-बाहिर का कोई बन्धन नहीं है इस प्रकार के मुक्त पुरुष भी कृष्ण भक्ति करते हैं श्रीकृष्ण के गुण व स्वभाव की ऐसी ही महाशक्ति है ॥ ८५-८६ ॥ ऐसे कृष्ण के गुण व नामों को मुक्त पुरुष भी गाते हैं इसमें जिसकी आदर बुद्धि नहीं है वे नष्ट हो जावेंगे ॥ ८७ ॥ यों अनेक प्रकार का पक्ष उठाकर आवेश में आकर सार्वभौम ने व्याख्या की ॥ ८८ ॥ तेरह प्रकार से श्लोक के अर्थ की व्याख्या करके और सामर्थ्य नहीं है ऐसा कहकर रुक गये ॥८९॥ कुछ हँसकर श्रीगौरचन्द्र प्रभु ने कहा कि तुमने जितने प्रकार से व्याख्या की सब सत्य है ॥ ९० ॥ सुनो अब मैं कुछ व्याख्या करता हूँ, विचार करके देखो कि ठीक प्रमाण है या नहीं ? ॥९१॥ तब तो सार्वभौम महाशय बड़े विस्मित होकर

व्याख्या शुनि सार्वभौम परम विस्मित । मने गणे एइ किवा ईश्वर विदित ॥९४॥
श्लोक व्याख्या करे प्रभु करिया हुङ्कार । आत्मभावे हइला षड्भुज-अवतार ॥९५॥
प्रभु बोले सार्वभौम कि तोर विचार । सन्यासे कि आमार नाहिक अधिकार ॥९६॥
'सन्यासी' कि आमि हेन तोर चित्ते लय । तोर लागि एथा मुञि हइलूँ उदय ॥९७॥
बहु जन्म मोर प्रेमे तेजिलि जीवन । अतएव तोरे मुञि दिलूँ दरशन ॥९८॥
सङ्कीर्तनारम्भे एइ मोर अवतार । अनन्त-ब्रह्माण्डे मुञि वइ नाहि आर ॥९९॥
जन्म-जन्म तुमि मोर शुद्ध-प्रेम-दास । अतएव तोरे मुञि हइलूँ प्रकाश । १००॥
साधु उद्धारिमु दुष्ट विनाशिमु सव । चिन्ता किछु नाहि तोर, पढ़ मोर स्तव ॥१०१॥
अपूर्व षड्भुज-मूर्ति-कोटि सूर्यमय । देखि मूर्च्छा गेला सार्वभौम महाशय ॥१०२॥
शंख चक्र गदा पद्म श्रीहल मूषल । रत्न-मणि-परिपूर्ण श्रीअङ्ग उज्वल ॥१०३॥
श्रीवत्स कौस्तुभ हार वक्षे शोभा करे । वाम-कक्षे शिंगा वेत्र मुरली जठरे ॥१०४॥
बिशाल करेन प्रभु हुंकार गर्जन । आनन्दे षड्भुज गौरचन्द्र नारायण ॥१०५॥
बड़ सुखी प्रभु सार्वभौमेरे अन्तरे । 'उठ' वलि श्रीहस्त दिलेन ताँर शिरे ॥१०६॥
श्रीहस्त परशे विप्र पाइला चेतन । तथापि आनन्दे जड़, ना स्फुरे वचन ॥१०७॥
करुणा समुद्र प्रभु श्रीगौरसुन्दर । पादपद्म दिला ताँर हृदय-उपर ॥१०८॥

बोले "क्या मनुष्य की शक्ति से और भी अर्थ हो सकते हैं ? ॥ ९२ ॥ अपना अर्थ प्रकाश करने में श्रीप्रभु ने ऐसी व्याख्या की जिसका आभास मात्र ही किसी कल्प में किसी को नहीं मिला था ॥ ९३ ॥ सार्वभौम व्याख्या सुनकर विस्मित हुए और मनमें विचारने लगे "क्या यह ईश्वर प्रगट हुए हैं ?" ॥ ९४ ॥ श्रीप्रभु हुङ्कार करते हुए श्लोक की व्याख्या कर रहे थे तथा ईश्वर भाव में आकर षड्भुज स्वरूप प्रगट किया ॥९५॥ प्रभु ने कहा "हे सार्वभौम ! तुम्हारा क्या विचार है ? क्या सन्यास में मेरा अधिकार नहीं है ?" ॥ ९६ ॥ तुम तो यही सोचते होगे कि क्या मैं सन्यासी हूँ ? परन्तु मैं तो तुम्हारे लिये ही यहाँ प्रगट हुआ हूँ ॥९७॥ तुमने अनेक जन्मों से मेरे प्रेम में प्राण त्यागे हैं इस कारण मैंने तुम्हें दर्शन दिये ॥ ९८ ॥ मेरा यह अवतार नाम संकीर्तन आरम्भ कराने के लिये हुआ है अनन्त ब्रह्माण्डों में मेरे अतिरिक्त दूसरा नहीं है ॥ ९९ ॥ तुम मेरे जन्म-जन्मान्तर के शुद्ध प्रेमिक दास हो इसी कारण मैं तुम्हारे निमित्त प्रगट हुआ हूँ ॥१००॥ मैं साधु उद्धार तथा सब दुष्टों का विनाश करूँगा तुम कुछ चिन्ता न करके मेरी स्तुति पाठ करो ॥ १०१ ॥ कोटि सूर्य प्रकाशमय षड्भुज मूर्ति को देखते ही सार्वभौम महाशय मूर्च्छित हो गये ॥१०२॥ हाथों में शंख-चक्र-गदा-कमल हल व मूसल शोभा पा रहे थे तथा उज्वल श्रीअङ्ग में रत्न व मणियाँ प्रचुर मात्रा में शोभित थं वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह तथा कौस्तुभ हार शोभित थे, बाईं बगल में शींग और वेत्र, उदर में वंशी खोंस रक्खी थी ॥ १०३-१०४ ॥ श्रीषड्भुज नारायण प्रभु आनन्दित हो विशाल हुङ्कार व गर्जना कर रहे थे ॥ १०५ ॥ श्रीप्रभु सार्वभौम के प्रति मनमें बड़े प्रसन्न थे और 'उठो' यों कहकर उनके मस्तक पर श्रीहस्त रख दिया ॥ १०६ ॥ श्रीहस्त कमल के स्पर्श से ब्राह्मण को चेतना प्राप्त हुई तथापि अति आनन्द से जड़वत हो रहे थे और मुख से शब्द नहीं निकलते थे ॥ १०७ ॥ करुणासिन्धु प्रभु श्रीगौरसुन्दर ने सार्वभौम के

पाइ श्रीचरण सार्वभौम महाशय । हइला केवल परानन्द प्रेममय ॥१०९॥
दृढ़ करि पादपद्म धरि प्रेम फान्दे । आजि से पाइलूं चित्तचोर बलि कान्दे ॥११०॥
आर्तनादे सार्वभौम करेन रोदन । धरिया अपूर्व पादपद्म रमा-धन ॥१११॥
प्रभुरे ! श्रीकृष्णचैतन्य प्राणनाथ । मुञि-अधमेरे प्रभु कर दृष्टिपात ॥ ११२ ॥
तोमारे से मुञि पापी शिखाइलूं धर्म । ना जानिञा तोमार अचिन्त्य शुद्ध कर्म ॥११३॥
हेन केवा आछे प्रभु तोमार मायाय । महायोगेश्वर-आदि मोह नाहि पाय ॥११४॥
से तुमि जे आमारे मोहिबा कोन् शक्ति । एवे देह तोमार चरणे प्रेम भक्ति ।११५॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य प्राणनाथ । जय जय शची-पुण्यवती-गर्भ जात ॥११६॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य सर्व प्राण । जय जय वेद-विप्र-साधु-धर्म-त्राण ॥११७॥
जय जय वैकुण्ठादि लोकेर ईश्वर । जय जय शुद्ध सत्त्व रूप न्यासीवर ॥११८॥
परम सुबुद्धि सार्वभौम महामति । श्लोक पढ़ि-पढ़ि पुनः पुन करे स्तुति ॥११९॥

तथाहि (श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटके षष्ठाङ्के)—
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा ।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥७॥

काल वशे भक्ति लुकाइया दिने-दिने । पुनर्वार निज भक्ति-प्रकाश-कारणे ॥१२०॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नाम प्रभु अवतार । ताँर पादपद्मे चित्त रहुक आमार ॥१२१॥

ऊपर चरण-कमल स्पर्श करा दिया ॥ १०८ ॥ श्रीचरन-कमल पाकर सार्वभौम महाशय शुद्ध प्रेमानन्द में निमग्न हो गये ॥ १०९ ॥ प्रेमपाश में चरन-कमलों को दृढ़ करके पकड़ लिया और बोले कि अहो आज मैंने उस चित्त चोरा को पाया" यों कहकर रुदन करने लगे ॥।११० ॥ लक्ष्मी के प्राणधन अपूर्व चरण-कमलों को पकड़ कर आर्त स्वर से सार्वभौम रुदन करने लगे ॥१११। हे प्रभो ! प्राणनाथ ! श्रीकृष्णचैतन्य मुझ अधम के ऊपर शुभ दृष्टिपात करो ॥ ११२ ॥ तुम्हारे अचिन्त्य शुद्ध कर्म को न जानकर मैं पापी तुम्हें धर्म सिखाने लगा ॥ ११३ ॥ हे प्रभो ! ऐसा कौन है जो तुम्हारी माया से मोहित न हो—महायोगेश्वरादि भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ सो भला मुझे मोहने में आपकी क्या शक्ति प्रदर्शन है ? मुझे तो अपने श्रीचरणों की प्रेम-भक्ति दीजिये ॥ ११५ ॥ प्राणनाथ श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो, पुण्यवती शची के गर्भजात श्रीप्रभु की जय हो २ ॥ ११६ ॥ सब चराचर जीवों के प्राण श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २, वेद, विप्र, साधु व धर्म के रक्षक की जय हो २ ॥ ११७ ॥ वैकुण्ठादिक लोकों के ईश्वर की जय हो २, शुद्ध सत्त्वरूप सन्यासी श्रेष्ठ प्रभु की जय हो जय हो ॥ ११८ ॥ बड़े सुबुद्धि व महामति सार्वभौम बारम्बार पढ़-पढ़कर स्तुति कर रहे हैं ॥ ११९ ॥ जो काल के प्रभाव से लुप्त प्राय अपने असाधारण भक्तियोग को पुनः प्रगट करने के लिये श्रीकृष्णचैतन्य नाम धारण करके आविर्भूत हुए हैं उनके चरण-कमलों में मेरा चित्तरूप भौंरा प्रगाढ़ रूप से लिपट जावे ॥ ७ ॥ समय के वश से जो भक्ति दिनोदिन लुप्त प्राय होती गई उस अपनी भक्ति के प्रकाश करने के लिये प्रभु श्रीकृष्णचैतन्य नाम से पुनः अवतीर्ण हुए हैं उनके चरण-कमलों में मेरा

तथाहि (श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटके षष्ठाङ्के)--
"वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये" ॥ ८ ॥

वैराग्य सहिते निज भक्ति बुझाइते । ये प्रभु कृपाय अवतीर्ण पृथिवीते ॥१२२॥
श्रीकृष्णचैतन्य-तनु-पुरुष पुराण । त्रिभुवने नाहि याँर अधिक समान ॥१२३॥
हेन कृपासिन्धुर चरण-गुण-नाम । स्फुरुक् आमार हृदयेते अविराम ॥ १२४ ॥
एइ मत सार्वभौम शतश्लोक करि । काकु करे चैतन्येर पादपद्म धरि ॥ १२५ ॥
पतित तारिते से तोमार अवतार । मुञि-पतितेरे प्रभु करह उद्धार ॥ १२६ ॥
बन्दी करियाछ मोरे अशेष बन्धने । विद्या धने कुले-तोमा जानिमु केमने ॥ १२७ ॥
एवे एइ कृपा कर सर्व जीव-नाथ । अहर्निश चित्त येन रहये तोमात ॥ १२८ ॥
अचिन्त्य अगम्य प्रभु तोमार विहार । तुमि ना जानाइले जानिते शक्ति कार ॥ १२९ ॥
आपनेइ दारु ब्रह्मरूपे नीलाचले । बसिया आछह भोजनेर कुतूहले ॥ १३० ॥
आपन प्रसाद कर आपने भोजन । आपने आपना देखि करह क्रन्दन ॥ १३१ ॥
आपने आपना देखि हओ महामत्त । एतेके के बूझे प्रभु तोमार महत्त्व ॥ १३२ ॥
आपने से आपनारे जान तुमि मात्र । आर जाने ये जन तोमार कृपापात्र ॥ १३३ ॥
मुञि छार तोमारे वा जानिमु केमने । याते मोह माने अज-भव-देवगणे ॥ १३४ ॥
एइ मत अनेक करिया काकुवाद । स्तुति करे सार्वभौम पाइया प्रसाद ॥ १३५ ॥

चित्त निरन्तर स्थिर रहे ॥ १२०-१२१ ॥ जो एक करुणासागर पुराण (प्राचीन) पुरुष वैराग्य—विद्या एवं अपने भक्तियोग की शिक्षा देने के निमित्त श्रीकृष्णचैतन्य रूप से प्रगट हुए हैं मैं उन्हीं के शरणापन्न हूँ ॥ ८ ॥ वैराग्य सहित अपनी भक्ति समझाने के लिये जो प्रभु कृपा करके पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं॥१२२॥ जो श्रीकृष्णचैतन्य विग्रहधारी पुराण पुरुष हैं तीनों लोकों में कोई जिनसे अधिक है और न समान ही है ॥१२३॥ उन कृपासिन्धु श्रीकृष्णचैतन्य चरण के गुण व नाम मेरे हृदय में निरन्तर स्फुरण होते रहें॥१२४॥ इस प्रकार सार्वभौम ने सौ श्लोक द्वारा चैतन्य के चरण-कमलों को पकड़कर विनती की ॥ १२५ ॥ पतितों को तारन के लिये आपका अवतार है सो प्रभो ! मुझ पतित का भी उद्धार करो ॥ १२६ ॥ विद्या धन कुल आदि अनेक बन्धनों से मैं बन्दी हो रहा हूँ—इसलिये मैं आपको कैसे जान सकता हूँ ? ॥ १२७ ॥ हे सर्व प्राणेश्वर ! अब ऐसी कृपा करो जिसमें मेरा यह मन रात-दिन आपही में रहे ॥ १२८ ॥ हे प्रभो ! आपका विहार चिन्ता के परे है अर्थात् मन बुद्धि का भी विषय नहीं है—आपके बिना जताये किसकी शक्ति है जो जान ले ॥ १२९ ॥ आप ही नीलाचल में दारु ब्रह्मरूप में (काष्ठ मूर्ति से) भोजन के निमित्त लीला से ही विराजमान हो ॥ १३० ॥ आप ही प्रसाद प्रस्तुत करते हो तथा आप ही भोजन करते हो और आपही अपने को देखकर क्रन्दन भी करते हो ॥ १३१ ॥ अपने को आपही देखकर बड़े मत्त होते हो, प्रभो ! इस कारण आपके महत्त्व को कौन समझ सके ? ॥ १३२ ॥ अपने को केवल आप ही जानते हो अथवा वे दास जानते हैं जिन्हें आपकी कृपा है ॥ १३३ ॥ जिनके जानने में ब्रह्मा शिव व देवगण भी मोहित होते हैं, आपको मैं तुच्छ जीव किस प्रकार जान सकूँगा ॥ १३४ ॥ इस प्रकार सार्वभौम प्रभु-अनुग्रह

शुनिञा षड्भुज गौरचन्द्र नारायण । हाँसि सार्वभौम प्रति बलिला वचन ॥ १३६ ॥
शुन सार्वभौम तुमि आमार पार्षद । एतेके देखिला तुमि एतेक सम्पद ॥१३७॥
तोमार निमित्त मोर एथा आगमन । अनेक करिया आछ मोर आराधन ॥१३८॥
भक्तिर महिमा तुमि यतेक कहिला । इहाते आमारे बड़ सन्तोष करिला ॥१३९॥
यतेक कहिला तुमि-सब सत्य कथा । तोमार मुखेते केने आसिबे अन्यथा ॥१४०॥
शत श्लोक करि तुमि ये कैले स्तवन । ये जन करये इहा श्रवण पठन ॥१४१॥
आमाते ताहार भक्ति हइबे निश्चय । 'सार्वभौम शतक' बलि लोके येन कय ॥१४२॥
ये किछु देखिला तुमि प्रकाश आमार । सङ्गोप करिबा पाछे जाने केहो आर ॥१४३॥
यतेक दिवस मुजि थाकों पृथिवीते । तावत् निषेध कैलूँ काहारे कहिते ॥१४४॥
आमार द्वितीय देह-नित्यानन्द चन्द्र । भक्ति करि सेविह ताँहार पद द्वन्द ॥१४५॥
परम निगूढ़ तिंहो केहो नाहि जाने । आमि यारे जानाइ से-इसे जाने ताने ॥१४६॥
एइ सब तत्त्व सार्वभौमेर कहिया । रहिलेन आपन ऐश्वर्य सम्वरिया ॥१४७॥
चिनि निज प्रभु सार्वभौम महाशय । बाह्य आर नाहि हैला परमानन्दमय ॥१४८॥
ये शुनये ए सब चैतन्य-गुण-ग्राम । से जाय संसार तरि श्रीचैतन्य धाम ॥१४९॥
परम निगूढ़ ए सकल कृष्ण कथा । इहार श्रवणे कृष्ण पाइये सर्वथा ॥१५०॥
हेन मते करि सार्वभौमेरे उद्धार । नीलाचले करे प्रभु कीर्त्तन-विहार ॥१५१॥

पाकर अनेक रूप से नम्रतापूर्वक स्तुति करने लगे ॥ १३५ ॥ षड्भुज नारायण श्रीगौरचन्द्र विनती सुनकर सार्वभौम से हँसकर बोले—॥ १३६ ॥ हे सार्वभौम सुनो ! तुम मेरे पार्षद हो इसी से यह सम्पत्ति रूप दर्शन तुम्हें मिला है ॥ १३७ ॥ यहाँ मेरा आगमन तुम्हारे ही निमित्त हुआ है क्योंकि पूर्व में मेरा बहुत आराधन तुमने किया था ॥१३८॥ तुमने भक्ति की जो महिमा वर्णन की है उससे मैं अति प्रसन्न हूँ॥१३९॥ तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है तुम्हारे मुख से अन्यथा असत्य क्यों आवेगा ? ॥ १४० ॥ जिन सौ श्लोकों द्वारा तुमने मेरा स्तवन किया है उन्हें जो प्राणी पाठ अथवा श्रवण करेगा ॥ १४१ ॥ उसकी भक्ति मुझमें निश्चय होगी संसार में "सार्वभौम शतक" के नाम से यह प्रसिद्ध होगा ॥ १४२ ॥ तुमने जो कुछ मेरा प्रकाश देखा है उसे भली प्रकार से गुप्त रखना-पीछे से कोई और न जानें ॥ १४३ ॥ मैं पृथ्वी पर जितने दिन रहूँ तब तक किसी से कहने का मैं निषेध करता हूँ ॥ १४४ ॥ मेरा दूसरा देह नित्यानन्दचन्द्र हैं उनके चरण-कमलों की भक्ति पूर्वक सेवा करना ॥१४५॥ वे भी बड़े निगूढ़ गम्भीर हैं, उनको भी कोई नहीं जानता ? जिसे जनाता हूँ केवल वे ही उन्हें जानते हैं ॥ १४६ ॥ सार्वभौम के प्रति इन सब तत्त्वों को कह कर तथा अपने ऐश्वर्य को सम्वरण करके थम गये ॥ १४७ ॥ सार्वभौम महाशय अपने प्रभु को पहिचानकर परम आनन्द मग्न हो गये तथा वाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ १४८ ॥ चैतन्य प्रभु के इन सब गुणों को जो सुनेंगे वे संसार पार कर श्रीचैतन्य के धाम को प्राप्त होंगे ॥१४९॥ कृष्ण की यह सब कथा परम गुप्त व गम्भीर है, इसके सुनने से कृष्णचन्द्र की सर्वथा प्राप्त होगी ॥१५०॥ इस प्रकार प्रभु सार्वभौम का उद्धार करके नीलाचल में कीर्तन विहार करने लगे ॥ १५१ ॥ निरन्तर नृत्य गीत व प्रेमानन्द रस के आवेश से प्रभु को रात-

निरवधि नृत्य-गीत-आनन्द आवेशे । रात्रि दिना ना जानेन प्रभु प्रेमरसे ॥१५२॥
नीलाचल वासी यत अपूर्व देखिया । सर्वलोक 'हरि' बोले डाकिया-डाकिया ॥१५३॥
'एइ त सचल जगन्नाथ' सभे बोले । हेन नाहि ये प्रभुरे देखिया ना भोले ॥१५४॥
जे पथे जायेन चलि श्रीगौरसुन्दर । सेइ दिगे हरिध्वनि शुनि निरन्तर ॥१५५॥
जेखाने पड़ये प्रभुर चरण युगल । से स्थानेर धूलि लूट करेन सकल ॥१५६॥
धूलि लुटि पाय मात्र ये सुकृति जन । ताहार आनन्द हय अकथ्य कथन ॥१५७॥
कि से श्री बिग्रहेर सौन्दर्य अनुपाम । देखिते सभार चित्त हरे अविराम ॥१५८॥
निरवधि श्रीआनन्दधार श्रीनयने । 'हरेकृष्ण' नाम मात्र शुनि श्रीवदने ॥१५९॥
चन्दन मालाय परिपूर्ण कलेकर । मत्तसिंह जिनि गति परम सुन्दर ॥१६०॥
पथे चलितेओ ईश्वरेर बाह्य नाञि । भक्ति-रसे विहरेन चैतन्य गोसाञि ॥१६१॥
कथो दिन बिलम्बे परमानन्दपुरी । आसिया मिलिला तीर्थ-पर्यटन करि ॥१६२॥
दूरे प्रभु देखिया परमानन्दपुरी । सम्भ्रमे उठिला प्रभु गौराङ्ग श्रीहरि ॥१६३॥
प्रिय भक्त देखि प्रभु परम-सन्तोषे । नृत्य करे स्तुति करे महा प्रेमावेशे ॥१६४॥
बाहु तुलि बलिते लागिला हरि-हरि । देखिलाङ नयने परमानन्दपुरी ॥१६५॥
आजि धन्य लोचन, सफल आजि जन्म । सफल आमार आजि हैल सर्व धर्म ॥१६६॥
प्रभु बोले आजि मोर सफल सन्यास । आजि माधवेन्द्र मोरे हइला प्रकाश ॥१६७॥
एत बलि प्रिय भक्त लइ प्रभु कोले । सिञ्चिलेन अङ्ग तान पद्मनेत्र जले ॥१६८॥

दिन कब बीतते हैं नहीं जान पड़ता॥१५२॥समस्त नीलचलवासी अपूर्वता देखकर ऊँचे स्वर से हरि २ कहते थे॥ १५३ ॥ सब लोग कहते थे ये ही तो सचल जगन्नाथ हैं, इतना कहने पर भी ऐसा नहीं जो प्रभु को देखकर भ्रान्त हो जावे ॥ १५४ ॥ श्रीगौरसुन्दर जिस मार्ग में भी चले जाते थे उसी ओर से निरन्तर हरि-ध्वनि सुनाई देती थी ॥ १५५ ॥ जिस जगह में भी श्रीप्रभु के युगल चरण पड़ते थे उस स्थान की धूलि को सब लूट लेते थे ॥१५६॥ धूलि का कणिकामात्र पाते ही सुकृतिजन को अकथनीय आनन्द होता था ॥१५७॥ श्रीविग्रह का कैसा अनुपमेय सौन्दर्य हैं जिसे देखने पर तुरन्त ही सबका मन खो जाता था ॥ १५८ ॥ श्रीमुख से केवल "हरे कृष्ण" नाम ही निरन्तर सुन पड़ता था तथा श्रीनेत्रों से निरन्तर प्रेमाश्रु की आनन्द-धारा बह रही थी ॥ १५९ ॥ चन्दन व माला से श्रीविग्रह भरा परिपूर्ण था तथा उनकी चाल मत्त सिंह की चाल जैसी थी ॥ १६० ॥ मार्ग चलने में भी प्रभु को वाह्य ज्ञान नहीं रहता था श्रीचैतन्य गुसाईं केवल भक्तिरस में ही विहार करते थे ॥१६१॥ कुछ दिन पश्चात् श्रीपरमानन्दपुरी तीर्थ पर्यटन करके मिले ॥१६२॥ श्रीगौराङ्ग प्रभु दूर से ही श्रीपरमानन्दपुरी को देखकर शीघ्रता से उठे ॥ १६३ ॥ श्रीप्रभु प्रियभक्त को देखकर परम सन्तुष्ट हुए तथा बड़े प्रेमावेश में आकर नृत्य व स्तुति करने लगे ॥ १६४ ॥ बाहु उठाकर 'हरि-हरि" कहने लगे और बोले अहो नेत्रों से परमानन्दपुरी के दर्शन हुए ॥ १६५ ॥ आज मेरे नेत्र धन्य हुए तथा मेरा जन्म सफल हुआ और मेरे सब धर्माचरण सफल हुए ॥ १६६ ॥ प्रभु ने कहा आज मेरा सन्यास लेना सफल हुआ अहो आज मुझे श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी का प्रकाश प्राप्त हुआ ॥ १६७ ॥ यों कहकर प्रभु ने प्रिय-

पुरी प्रथमेइ मात्र श्रीमुख देखिया । आनन्दे आछेन आतमविस्मृत हइया ॥१६६॥
कथोत्तणे अन्योन्ये करेन प्रणाम । परमानन्द पुरी-चैतन्येर प्रियधाम ॥१७०॥
परम-सन्तोष प्रभु ताँहारे पाइया । राखिलेन निजसङ्गे पार्षद करिया ॥१७१॥
निज प्रभु चिनिञा परमानन्द पुरी । रहिला आनन्दे पादपद्म सेवा करि ॥१७२॥
माधव पुरीर प्रिय शिष्य महाशय । श्रीपरमानन्दपुरी-तनु प्रेममय ॥१७३॥
दामोदर स्वरूप मिलिला कथोदिने । रात्रि दिन याँहार विहार प्रभु-सने ॥१७४॥
दामोदर स्वरूप सङ्गीत रसमय । यांर ध्वनि शुनिले प्रभुर नृत्य हय ॥१७५॥
दामोदर स्वरूप परमानन्द पुरी । शेषे खण्डे एइ दुइ सङ्गे अधिकारी ॥१७६॥
एइमत अल्पे अल्पे यत भक्तगण । नीलाचले आसि सभे हइला मिलन ॥१७७॥
ये ये पार्षदेर जन्म उत्कले हइला । ताहाराओ अल्पे अल्पे आसिया मिलिला ॥१७८॥
मिलिला प्रद्युम्नमिश्र-प्रेमेर शरीर । परमानन्द रामानन्द-दुइ महाधीर ॥१७६॥
दामोदर पण्डित श्रीशङ्कर पण्डित । कथोदिने आसिया हइला उपनीत ॥१८०॥
श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी-नृसिंहेर दास । यांहार शरीरे श्रीनृसिंह-परकाश ॥१८१॥
'कीर्तन विहारी नरसिंह न्यासीरूपे' । जानिञा रहिला आसि प्रभुर समीपे ॥१८२॥
भगवान् आचार्य आइला महाशय । कर्णेतेओ यांरे नाहि परशे विषय ॥१७३॥
एइमत यतेक सेवक यथाछिला । सभेइ प्रभुर पाशे आसिया मिलिला ॥१८४॥

भक्त को गोदी में लिया और उनके अङ्ग को अपने नेत्र कमलों के जल से सींच दिया ॥ १६८ ॥ श्रीमुख पर प्रथम दृष्टि पड़ते ही श्रीपुरी महाशय आनन्द में अपने ही को भूल गये ॥ १६६ ॥ कुछ देर तक परस्पर प्रणाम करते रहे श्रीपरमानन्दपुरी श्रीचैतन्य प्रभु के प्रिय पात्र हैं ॥ १७० ॥ उनको पायकर प्रभु बड़े सन्तुष्ट हुए और अपने पार्षद रूप में अपने साथ में रख लिया ॥ १७१ ॥ श्रीपरमानन्दपुरी जी श्रीमहाप्रभु को अपना स्वामी पहिचानकर आनन्द से चरण-कमलों की सेवा करने के लिये वहीं ठहर गये ॥ १७२ ॥ श्री-माधवेन्द्रपुरी के प्रिय शिष्य श्रीपरमानन्दपुरी महाशय का शरीर प्रेममय था ॥ १७३ ॥ कुछ दिन पश्चात् श्रीस्वरूप दामोदर आकर मिले, प्रभु के साथ जिनका विहार दिन राति होता था ॥१७४॥ श्रीदामोदरस्वरूप संगीत रसमय थे, जिनकी ध्वनि सुनते ही प्रभु नृत्य करने लगते थे ॥ १७५ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप व परमा-नन्दपुरी दोनों ही एक साथ शेषखण्ड की लीलाओं के प्रधानपात्र हैं ॥ १७६ ॥ इस प्रकार धीरे-धीरे सभी भक्तवृन्द का नीलाचल में आकर श्रीप्रभु से मिलन हुआ ॥ १७७ ॥ जिन पार्षदों का जन्म उत्कल देश में हुआ था वे सब भी धीरे-धीरे आकर मिलने लगे ॥१७८॥प्रेममय शरीरधारी प्रद्युम्न मिश्र तथा दो बड़े धीर परमानन्द व रामानन्द भी आयकर मिले ॥ १७६ ॥ श्रीदामोदर पण्डित व श्रीशङ्कर पण्डित भी कुछ दिन पश्चात् आयकर उपस्थित हुए ॥१८०॥ श्री प्रद्युम्न ब्रह्मचारी नृसिंहदेव के सेवक थे—उनके शरीर में नृसिंह देव का प्रकाश था ॥१८१॥ कीर्तनबिहारी श्रीप्रभु को सन्यासी रूप में नृसिंहदेव समझ कर ही उनके समीप रहने लगे ॥ १८२ ॥ श्री भगवान् आचार्य महाशय भी जिनके कानों को भी विषय ने स्पर्श नहीं किया था ॥ १८३ ॥ इस प्रकार जहाँ-जहाँ भी प्रभु के सेवक थे वे सभी प्रभु के पास आकर मिलने लगे ॥ १८४ ॥

प्रभु देखि सभार हइल दुख नाश । सभे करे प्रभु सङ्गे कीर्तन विलास ॥१८५॥
सन्यासीर रूपे वैकुण्ठेर अधिपति । कीर्तन करेन सर्वभक्तेर संहति ॥१८६॥
श्रीचैतन्य रसे नित्यानन्द महाधीर । परम उद्यम-एक स्थाने नहे स्थिर ॥१८७॥
जगन्नाथ देखिया जायेन धरिवारे । पड़ि हारि गणे केहो राखिते ना पारे ॥१८८॥
एकदिन उठिया सुवर्ण सिंहासने । बलराम धरिया करिला आलिङ्गने ॥१८९॥
उठितेइ पड़िहारी धरिलेक हाथ । धरिते पड़िल गिया हाथ पांच सात ॥१९०॥
नित्यानन्द प्रभु बलरामेर गलार । माला लइ परिलेन गले आपनार ॥१९१॥
माला परि चलिलेन गजेन्द्र गमने । पड़िहारी उठिया चिन्तये मने मने ॥१९२॥
ए अवधूतेर कभू मानुषी शक्ति नय । बलराम-स्पर्शे कि अन्येर देह रय ॥१९३॥
मत्तहस्ती धरि मुञि पारों राखिवारे । मुञि धरिलेओ कि मनुष्य याइते पारे ॥१९४॥
हेन मुञि हस्त दृढ़ करिया धरिलूँ । तृण प्राय हइ गिया कोथाय पड़िलूँ ॥१९५॥
एइमत चिन्ति पड़िहारी महाशय । नित्यानन्द देखिलेइ करये विनय ॥१९६॥
नित्यानन्द स्वरूप स्वभाव-बाल्यभावे । आलिङ्गन करेन परम-अनुरागे ॥१९७॥
तबे कथोदिने गौरचन्द्र लक्ष्मीपति । समुद्र कूलेते आसि करिल वसति ॥१९८॥
सिन्धुतीरे स्थान अति रम्य मनोहर । देखिया सन्तोष बड़ श्रीगौरसुन्दर ॥१९९॥
चन्द्रवती रात्रि वहे दक्षिण-पवन । वैसेन समुद्रकूले श्रीशचीनन्दन ॥२००॥
सर्वअङ्ग श्रीमस्तक शोभित चन्दने । निरवधि 'हरेकृष्ण' बोले श्रीवदने ॥२०१॥

प्रभु दर्शन करके सबके दुख नाश हो गये तथा सब ही प्रभु के साथ कीर्तन विलास करने लगे ॥ १८५ ॥ वैकुण्ठनाथ सन्यासी वेष में सब भक्तों के साथ कीर्तन करते थे ॥ १८६ ॥ श्रीनित्यानन्दजी श्रीचैतन्य प्रेम-रस में महाधीर होते हुए भी बड़े उद्दण्ड हो जाते थे—कभी एक स्थान पर ठहरते न थे ॥१८७॥ श्रीजगन्नाथ का दर्शन कर उन्हें पकड़ते दौड़ते—प्रहरीगण भी रोक नहीं पाते थे ॥ १८८ ॥ एक दिन सोने के सिंहासन पर चढ़कर श्रीबलराम विग्रह को पकड़कर आलिङ्गन करने लगे ॥ १८९ ॥ चढ़ते ही द्वारपालों ने उनका हाथ पकड़ लिया—पकड़ते ही वे पाँच-सात हाथ दूर उछलकर कूद गये ॥ १९० ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीबलराम जी के गले की माला लेकर अपने गले में पहिन ली ॥ १९१ ॥ माला पहरकर गजेन्द्र की चाल से चल दिये—प्रहरी उठकर मन ही मन विचार करने लगा ॥१९२॥ इस अवधूत में मानुषिक शक्ति कदापि नहीं है कारण कि श्रीबलराम के स्पर्श से क्या किसी अन्य का शरीर रह सकता है ? ॥ १९३ ॥ मतवाले हाथी को भी मैं पकड़कर रोकने की सामर्थ्य रखता हूँ क्या मेरे पकड़ने पर मनुष्य जा सकता है ॥१९४॥ मैंने इतना दृढ़ता से हाथ पकड़ा तथापि तृण के तुल्य कहाँ जा पड़ा ? ॥ १९५ ॥ इस प्रकार वह द्वारपाल विचार करके श्री-नित्यानन्द को देखते ही विनय करने लगा ॥ १९६ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के स्वभाव की बाल्यभाव से उसे बड़े अनुराग पूर्वक आलिङ्गन किया ॥ १९७ ॥ उसके कुछ दिन पीछे लक्ष्मीपति श्रीगौरचन्द्र ने समुद्र तट पर आकर निवास किया ॥ १९८ ॥ श्रीगौरसुन्दर समुद्र तट पर अति मनोहर रम्य स्थान देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ १९९ ॥ चाँदनी रात में दक्षिणी पवन चल रही थी तब श्रीशचीनन्दन समुद्र तट पर बिराजे ॥२००॥

मालाय पूर्णित वक्ष-अति मनोहर । चतुर्दिगे वेढ़िया आछये अनुचर ॥२०२।
समुद्रेर तरङ्ग निशाय शोभे अति । हासि दृष्टि करे प्रभु तरङ्गेर प्रति ॥२०३॥
गङ्गा यमुनार यत भाग्येर उदय । एवे ताहा पाइलेन सिन्धु महाशय ॥२०४॥
हेन मते सिन्धुतीरे वैकुण्ठ-ईश्वर । वसति करेन लइ सब अनुचर ॥२०५॥
सर्वरात्रि सिन्धुतीरे परम-विरले । कीर्तन करेन प्रभु महा कुतूहले ॥२०६॥
ताण्डव पंडित प्रभु निज-प्रेम-रसे । ताण्डव करेन देखि सभे सुखे भासे ॥२०७॥
रोमहर्ष, अश्रु, कम्प, हुङ्कार, गर्जन । स्वेद बहुविध वर्ण हय क्षणे क्षण ॥२०८॥
यत भक्ति विकार-सकल एकेवारे । परिपूर्ण हय आसि प्रभुर शरीरे ॥२०९
यत भक्ति विकार-सभेइ मूर्तिमन्त । सभेइ ईश्वर कला-महा ज्ञानवन्त ॥२१०॥
आपने ईश्वर नाचे वैष्णव-आवेशे । जानि सभे निरवधि थाके प्रभु-पाशे ॥२११॥
अतएव तिलार्द्धो विच्छेद प्रेम-सने । नाहिक श्रीगौरसुन्दर कोनोक्षणे ॥२१२॥
यत शक्ति ईषत लीलाय करे प्रभु । सेह आर अन्ये सम्भावना नहे कभू ॥२१३॥
इहाते से तान शक्ति सम्भावना हय । सर्ववेदे ईश्वरेर एइ तत्त्व कय ॥२१४॥
ये प्रेम प्रकाशे' प्रभु चैतन्य गोसाञि । ताँहा वइ अनन्त ब्रह्माण्डे आर नाञि ॥२१५॥
एतेके श्रीगौरचन्द्र प्रभुर उपमा । ताँहा वइ आर काहों दिते नाहि सीमा ॥२१६॥

श्रीमस्तक तथा सर्वाङ्ग में चन्दन शोभित था व श्रीमुख से निरन्तर "हरे कृष्ण २" उच्चारण कर रहे थे ॥ २०१ ॥ अति मनोहर वक्षस्थल मालाओं से परिपूर्ण हो रहा था तथा भक्तवृन्द चारों ओर घेरकर बैठे थे ॥ २०२ ॥ रात्रि में समुद्र की तरंगें अत्यन्त शोभा दे रही थीं प्रभु ने हँसते हुए तरङ्गों की ओर देखा॥२०३॥ (भगवत सांनिध्य से) गंगा-यमुना का जो सौभाग्य उदय हुआ था इस समय वही भाग्योदय समुद्र महाशय को प्राप्त हुआ ॥ २०४ ॥ इस भाँति वैकुण्ठनाथ श्रीगौरचन्द्र समुद्र तट पर सब भक्तों को लेकर निवास करते थे ॥ २०५ ॥ समस्त रात्रि समुद्र के तट पर बड़े एकान्त में महाप्रभु अति आनन्द में कीर्तन करते थे ॥ २०६ ॥ ताण्डवाचार्य्य प्रभु अपने प्रेमरस में ताण्डव (उद्दण्ड नृत्य) कर रहे और तथा सब भक्तवृन्द देखकर सुख में डूब जाते थे ॥ २०७ ॥ क्षण क्षण में रोमहर्ष (रोंमटा खड़ा होना) अश्रु-कम्प-हुङ्कार-गर्जन-स्वेद आदि अनेक प्रकार का वर्ण बदलता था ॥ २०८ ॥ भक्ति के समस्त विकार एक ही साथ श्रीप्रभु के शरीर में पूर्णरूप से विकसित होते थे ॥ २०९ ॥ भक्ति के समस्त विकार स्पष्ट ही मूर्त्तरूप धारण कर लिये थे क्योंकि सभी तो भगवत् कला तथा ज्ञानस्वरूप हैं ॥ २१० ॥ स्वयं प्रभु वैष्णव वेश में नाचते थे यही जानकर सभी प्रभु के पास ही निरन्तर वास करते थे ॥ २११ ॥ इस कारण प्रभु श्रीगौरसुन्दर को आधे तिलमात्र समय के लिये भी प्रेम प्रसंग से बिछोह नहीं था ॥ २१२ ॥ जो शक्ति भी प्रभु लीलामात्र में प्रकाश करते थे किसी अन्य पुरुष में उसकी कभी सम्भावना भी नहीं होती ॥ २१३ ॥ इसी से उनकी समस्त शक्ति का अन्दाज किया जा सकता है—सम्पूर्ण वेद ईश्वर के इसी तत्त्व को कहते हैं ॥२१४॥ प्रेमावतार श्रीचैतन्यचन्द्र गुसाईं जैसा प्रेम प्रकाशित करते थे वैसा तो अनन्त ब्रह्माण्डों में उनके अतिरिक्त दूसरा नहीं कर सकता ॥ २१५ ॥ इसी कारण श्रीप्रभु गौरचन्द्र की उपमा उनके अतिरिक्त अन्य किसी से

सबे यारे शुभ दृष्टि करेन आपने । से-इसे ताहान शक्ति धरे तत्वो जाने ॥२१७॥
अतएव सर्वभावे ईश्वर-शरण । लइले से भक्तिहय, खराड़ये वन्धन ॥२१८॥
ये प्रभुरे अज-भव-आदि ईशगणे । पूर्ण हइया ओ निरवधि भावे मने ॥२१९॥
हेन प्रभु आपने सकल-भक्त-सङ्गे । नृत्य करे आपनार प्रेमयोग-रङ्गे ॥२२०॥
से सब भक्तेर पा'य मोर नमस्कार । गौरचन्द्र सङ्गे याँर कीर्तन-विहार ॥२२१॥
हेन मते सिन्धुतीरे श्रीगौरसुन्दर । सर्वरात्रि नृत्य करे अति मनोहर ॥२२२॥
निरवधि गदाधर थाकेन संहति । प्रभु-गदाधरेर विच्छेद नाहि कति ॥२२३॥
कि भोजने कि शयने किवा पर्यटने । गदाधर प्रभुरे सेवेन अनुक्षणे ॥ २२४ ॥
गदाधर पढ़ेन सम्मुखे भागवत । शुनि प्रेमरसे प्रभु हय महामत्त ॥ २२५ ॥
गदाधर-वाक्ये मात्र प्रभु सुखी हय । भ्रमे गदाधर सङ्गे वैष्णव आलय ॥ २२६ ॥
एक दिन प्रभु पुरी गौसाञिर मठे । वसिलेन गिया तान परम निकटे ॥ २२७ ॥
परमानन्दपुरीरे प्रभुर वड़ प्रीत । पूर्वे येन श्रीकृष्ण-अर्जुन दुइ मीत ॥ २२८ ॥
कृष्ण कथा वाक्ये-वाक्ये रहस्य-प्रसङ्गे । निरवधि पुरी-सङ्गे थाके प्रभु रङ्गे ॥ २२९ ॥
पुरी गोसाञिर कूपे भाल नैल जल । अन्तर्यामी प्रभु ताहा जानिल सकल ॥ २३० ॥
पुरी गोसाञिरे प्रभु पूछिला आपनि । 'कूपे जल केमत हइल ताहा शुनि' ॥ २३१ ॥
पुरी बोले 'प्रभु बड़ अभागिया कूप' । जल हैल येन घोल कर्दमेर रूप ॥ २३२ ॥

देने में मर्य्यादा नहीं रहती ॥ २१६ ॥ जिस पर वे शुभ दृष्टि करें वही उनकी शक्ति के द्वारा भागवत्-तत्त्व को जान सकता है ॥ २१७ ॥ अतएव सर्व भाव से ईश्वर शरण लेने पर भक्ति उदय होकर बन्धन नष्ट कर देती है ॥ २१८ ॥ जिन प्रभु की ब्रह्मा, शिव आदि ईशगण अपने में पूर्ण होकर भी निरन्तर अपने मनमें भावना करते रहते हैं ॥ २१९ ॥ वे ही प्रभु अपने सब भक्तों के साथ अपने ही प्रेमरङ्ग में स्वयं नृत्य करते थे ॥ २२० ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र के साथ जिनका कीर्तन विहार हुआ उन सब भक्तों के चरणों में मेरी नमस्कार है ॥ २२१ ॥ इस प्रकार सिन्धु के तट पर श्रीगौरसुन्दर सब रात्रि अति मनोहर नृत्य करते थे ॥२२२॥ श्रीगदाधरजी साथ सदा ही रहते थे, गौर गदाधर का विच्छेद कभी नहीं होता था ॥ २२३ ॥ क्या भोजन क्या शयन अथवा पर्यटन में श्रीगदाधरजी हर समय प्रभु की सेवा में रहते थे ॥ २२४ ॥ श्रीगदाधरजी सामने ही बैठकर भागवत पाठ करते और श्रीगौरचन्द्र प्रेमरस में बड़े मत्त होकर सुनते थे ॥ २२५ ॥ श्रीप्रभु श्रीगदाधरजी के वाक्यों से ही सुख पाते थे तथा उन्हीं के साथ वैष्णव स्थानों में भ्रमण भी करते थे ॥२२६॥ एक दिन श्रीगौरचन्द्र पुरी गुसाईं के मठ में जाकर उनके बहुत समीप में आकर बैठ गये ॥ २२७ ॥ श्रीपरमानन्दपुरी पर श्रीप्रभु का बड़ा प्रेम था जैसी पूर्व में श्रीकृष्ण व अर्जुन में मित्रता थी ॥ २२८ ॥ श्रीप्रभु कृष्ण कथा रहस्य प्रसंग में उत्तर प्रत्युत्तर के आनन्द के निमित्त ही पुरी के संग निरन्तर रहते थे ॥ २२९ ॥ अन्तर्यामी प्रभु यह सब जान गये कि पुरी गोस्वामी के कूप का जल अच्छा नहीं रहा ॥२३०॥ पुरी गुसाईं से श्रीप्रभु ने स्वयं पूछा कि कुए का जल कैसा हो गया यह तो बताओ ? ॥ २३१ ॥ श्रीपुरी ने कहा "प्रभो कुँआ बड़ा अभागा है–देखिये कीचड़ घुला जैसा जल हो रहा है" ॥ २३२ ॥ सुनकर प्रभु हाय-हाय करने

शुनि प्रभु 'हाय-हाय' करिते लागिला । प्रभु बोले जगन्नाथ कृपण हइला ॥ २३३ ॥
पुरीर कूपेर जल परशिवे ये । सर्व पाप थाकितेओ तरिबेक से ॥ २३४ ॥
अतएव जगन्नाथ देवेर मायाय । नष्ट जल हैल-येन केहो नाहि खाय ॥ २३५ ॥
एत बलि महाप्रभु आपने उठिला । तुलिया श्रीभुज दुइ कहिते लागिला ॥ २३६ ॥
महाप्रभु जगन्नाथ मोरे एइ वर । गङ्गा प्रवेशुक एइ कूपेर भितर ॥ २३७ ॥
भोगवती गङ्गा येन बहे पातालेते । ताँरे आज्ञा कर एइ कूपे प्रवेशिते ॥ २३८ ॥
सर्व भक्तगण श्रीमुखेर वाक्य शुनि । उच्च करि वलिते लागिला हरिध्वनि ॥ २३९ ॥
तवे कथोक्षणे प्रभु वासाय चलिला । भक्तगण सभे गिया शयन करिला ॥ २४० ॥
सेइ क्षणे गङ्गादेवी आज्ञा करि शिरे । पूर्ण हइ प्रवेशिला कूपेर भितरे ॥ २४१ ॥
प्रभाते उठिया सभे देखेन अद्भुत । परम निर्मल-जले परिपूर्ण कूप ॥ २४२ ॥
आश्चर्य देखिया 'हरि' बोले भक्तगण । पुरी गोसाञि हइला आनन्दे अचेतन ॥२४३॥
गङ्गार विजय सभे बूझिया कूपते । कूप प्रदक्षिण सभे लागिला करिते ॥ २४४ ॥
महाप्रभु शुनिञा आइला सेइ क्षणे । जल देखि परम आनन्द युक्त मने ॥ २४५ ॥
प्रभु बोले शुनह सकल भक्तगण । ए कूपेर जले कैले स्नान वा भक्षण ॥ २४६ ॥
सत्य सत्य हैव तार गङ्गा स्नान फल । कृष्णे भक्ति हैव तार परम निर्मल ॥२४७॥
सर्व भक्तगण श्रीमुखेर वाक्य शुनि । उच्च करि वलिते लागिला हरिध्वनि ॥२४८॥
पुरी गोसाञिर प्रीते सेइ दिव्य जले । स्नान-पान करे प्रभु महाकुतूहले ॥ २४९ ॥

लगे और बोले कि 'जगन्नाथ कृपण हो गये' ॥२३३॥ "श्रीपुरी के कूँए का जल जो छुएगा वह सब पापयुक्त होकर भी पापों से रहित हो जायगा" ॥२३४॥ इसी कारण जगन्नाथदेव की माया से जल नष्ट होगया जिसमें कोई पी न सके ॥२३५॥ इतना कहकर श्रीमहाप्रभु स्वयं उठे और दोनों श्रीभुजा ऊपर उठाकर कहने लगे ॥ २३६ ॥ "हे महाप्रभो ! हे जगन्नाथ !" मुझे यही वर दो कि इस कूँए में गङ्गा का प्रवेश हो जाय ॥२३७॥ "भोगवती गंगा जो पाताल में बहती हैं उन्हें इस कूए में प्रवेश करने की आज्ञा दो" ॥२३८॥ सब भक्तवृन्द श्रीमुख के वाक्य सुनकर ऊँचे स्वर से हरिध्वनि करने लगे ॥२३९॥ तब कुछ क्षण पीछे श्रीगौर प्रभु अपने निवास स्थान को चले गये और सब भक्तगण शयन करने चले गये ॥ २४० ॥ उसी क्षण में गंगादेवी आज्ञा के शिर पर धारण करके कूँऐ के भीतर पूर्ण रूप से प्रविष्ट हो गईं ॥ २४१ ॥ प्रभात में सबने उठकर अचम्भे में देखा कि अति निर्मल जल से कुआ परिपूर्ण हो रहा है ॥२४२॥ इस आश्चर्य घटना को देखकर भक्तगण "हरि-हरि" ध्वनि करने लगे–तथा श्रीपुरी गुसाईं तो आनन्द से अचेतन हो गये ॥ २४३ ॥ सब लोग कूप में गंगा का आगमन समझकर उसकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ २४४ ॥ सुनते ही महाप्रभुजी उसी क्षण आये और जल को देखकर मनमें बड़े आनन्दित हुए ॥ २४५ ॥ प्रभु ने कहा "हे भक्तवृन्द सुनो ! इस कूए के जल में स्नान व पान करने पर गंगा स्नान का फल होगा तथा उसकी कृष्ण में परम निर्मल भक्ति होगी यह मैं सत्य ही कहता हूँ ॥ २४६-२४७ ॥ सब भक्तगण श्रीमुख के वचन सुनकर "हरि-हरि" ध्वनि ऊँचे स्वर से करने लगे ॥२४८॥ पुरी गुसाईं के प्रीत्यर्थ श्रीप्रभु उसी दिव्य जल में बड़े आनन्द से स्नान व

प्रभु बोले आमि ये आछिये पृथिवीते । जानिह केवल पुरी गोसाञिर प्रीते ॥ २५० ॥
पुरी गोसाञिर आमि-नाहिक अन्यथा । पुरी वेचिलेइ आमि विकाइ सर्वथा ॥२५१॥
सकृत ये देखे पुरी गोसाञिरे मात्र । सेहो हइवेक श्रीकृष्णेर प्रेम पात्र ॥ २५२ ॥
पुरीर महिमा प्रभु कहिया सभारे । कूप धन्य करि प्रभु चलिला वासारे ॥ २५३ ॥
ईश्वरे से जाने भक्त महिमा बाढाइते । हेन प्रभु ना भजे कृतघ्न केन-मते ॥ २५४ ॥
भक्त रक्षा लागि प्रभु करे अवतार । निरवधि भक्त सङ्गे करेन विहार ॥ २५५ ॥
अकर्तव्यो करे प्रभु सेवक राखिते । तार साक्षी बालि-वध सुग्रीव निमित्ते ॥ २५६ ॥
दास्य प्रभु सेवकेर करे निजानन्दे । अजय चैतन्यसिंह जिने भक्तवृन्दे ॥ २५७ ॥
भक्तगण सङ्गे प्रभु समुद्रेर तीरे । सर्व वैकुण्ठादिनाथ कीर्तने विहरे ॥ २५८ ॥
वासा करिलेन प्रभु समुद्रेर तीरे । विहरेन प्रभु भक्ति-आनन्द-सागरे ॥ २५९ ॥
एइ अवतारे समुद्र कृतार्थ करिते । अतएव लक्ष्मी जन्मि लेन ताहा हैते ॥ २६० ॥
नीलाचल वासीर ये किछु पाप हय । अतएव सिन्धु स्नाने सब जाय क्षय ॥ २६१ ॥
अतएव गङ्गादेवी वेगवती हैया । सेइ भाग्ये सिन्धु-माझे मिलिला आसिया ॥ २६२ ॥
हेन मते सिन्धु तीरे श्रीकृष्णचैतन्य । वैसेन सकल मते सिन्धु करि धन्य ॥ २६३ ॥
जे समये ईश्वर आछिला नीलाचले । तखने प्रताप रुद्र नाहिक उत्कले ॥ २६४ ॥
युद्धरसे गियाछेन बिजया नगरे । अतएव प्रभु ना देखिलेन सेइ वारे ॥ २६५ ॥

पान करने लगे ॥ २४६ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "मैं जो पृथ्वी पर केवल पुरी गुसाईं की प्रीति के कारण ही हूँ-यही समझो ॥ २५० ॥ मैं कदापि पुरी गुसाईं के बाहर नहीं हूँ यदि वे मुझे बेच भी दें तो मैं अवश्य बिक जाऊँ ॥ २५१ ॥ यदि कोई श्रीपुरी गोस्वामी को एक बार भरके देखें वह श्रीकृष्ण प्रेम का अधिकारी हो जावेगा ॥ २५२ ॥ सबके सम्मुख पुरी गोस्वामी की महिमा बखान कर श्रीप्रभु पाद उस कूऐ को धन्य करके अपने निवास स्थान को चले गये ॥ २५३ ॥ भक्ति की महिमा बढ़ाना तो ईश्वर ही जानता है। हाय ! ऐसे प्रभु को भी कृतघ्न जीव क्यों नहीं भजते थे ॥ २५४ ॥ भक्तों की रक्षा के लिये प्रभु-अवतार धारण करते हैं और भक्तों के साथ ही निरन्तर बिहार करते हैं ॥ २५५ ॥ दास की रक्षा के लिये प्रभु अकर्तव्य कर्म भी करते हैं, सुग्रीव के निमित्त बालि का बध इस बात के प्रमाण में साक्षी है ॥ २५६ ॥ प्रभु अपने आनन्द में सेवकों की दास्यता करते हैं-अजय चैतन्य सिंह को भक्तवृन्द जीत लेते हैं ॥ २५७ ॥ सब बैकुण्ठादिकों के स्वामी श्रीगौरचन्द्र समुद्र के तट पर सब भक्तों के साथ कीर्तन में बिहार करते थे ॥ २५८ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र के निवास समुद्र तट पर रहा हुआ था तथा वे भक्ति के आनन्द सागर में विहार करते थे ॥२५९॥ इस अवतार में प्रभु ने समुद्र को कृतार्थ किया इसी कारण लक्ष्मी ने समुद्र से जन्म लिया ॥ २६० ॥ अतएव नीलाचलवासियों का जो कुछ भी पाप वह समुद्र में स्नान करने से सब क्षय हो जाता था ॥ २६१ ॥ इसी कारण से गंगाजी शीघ्रगामी बनकर उसी पाप-प्रक्षालन के भाग्य से समुद्र में आयकर मिलती हैं ॥ २६२ ॥ इस भाँति श्रीकृष्णचैतन्य ने सब प्रकार से समुद्र को धन्य करने के लिये सिन्धु तट पर आकर वास किया ॥ २६३ ॥ जिस समय श्रीगौरचन्द्र प्रभु नीलाचल आये उस समय प्रताप रुद्र (राजा) उत्कल देश में नहीं

ठाकुरो थाकिया कथो दिन नीलाचले । पुन गौड़ देशे आइलेन कुतूहले ।। २६६ ।।
गङ्गा प्रति महा अनुराग बाढाइया । अति शीघ्र गौड़देशे आइला चलिया ।। २६७ ।।
सार्वभौम भ्राता विद्यावाचष्पति नाम । शान्त दान्त धर्मशील महा भाग्यवान् ।।२६८।।
सर्व-परिषद सङ्गे श्रीगोरसुन्दर । आचम्बिते आसि उत्तरिला ताँर घर ।। २६९ ।।
वैकुण्ठनायक गृहे अतिथि पाइया । पड़िलेन वाचष्पति दण्डवत् हइया ।। २७० ।।
हेन से आनन्द हैल विप्रेर शरीरे । कि विधि करिव ताहा किछुइ ना स्फुरे ।। २७१ ।।
प्रभुओ ताँहारे करिलेन आलिङ्गन । प्रभु बोले शुन किछु आमार वचन ।। २७२ ।।
चित्त मोर हइयाछे मथुरा देखिते । कथो दिन गङ्गा स्नान करिमू एथाते ।। २७३ ।।
निभृते आमारे एक खानि दिवा स्थान । येन कथोदिन मुञि करों गङ्गा स्नान ।।२७४।।
तबे शेषे मोरे मथुराय चालाइवा । मोरे चाह तबे इहा अवश्य करिवा ।। २७५ ।।
शुनिञा प्रभुर वाक्य विद्यावाचष्पति । लागिलेन कहिते हइया नम्र मति ।। २७६ ।।
विप्र बोले भाग्य सर्व वंशेर आमार । यथाय चरण धूलि आइल तोमार ।। २७७ ।।
मोर घर द्वार यत-सकल तोमार । सुखे थाक तुमि केहो ना जानिब आर ।। २७८ ।।
शुनि ताँर वाक्य प्रभु सन्तोष हइला । तान भाग्ये कथोदिन तथाइ रहिला ।। २७९ ।।
सूर्येर उदय कि कखनो गोप्य हय । सर्वलोकशुनिलेक चैतन्य-विजय ।। २८० ।।
नवद्वीप-आदि सर्वदिगे हैल ध्वनि । 'वाचष्पति घरे आइला न्यासी चूड़ामणि' ।।२८१।।
शुनिञा लोकेर हैल चित्तेते उल्लास । सशरीरे येन हैल वैकुण्ठेते वास ।।२८२।।

थे ।। २६४ ।। युद्ध के निमित्त विजय नगर गये थे इसी कारण उस समय प्रभु दर्शन न कर सके ।। २६५ ।। ठाकुर भी कुछ दिन नीलाचल में रहकर फिर कुतूहल पूर्वक गौड़ देश में आ गये ।। २६६ ।। गंगा के प्रति बड़ा अनुराग बढ़ाकर अति शीघ्र चलकर गौड़ देश में आये ।। २६७ ।। विद्या वाचस्पति नामक श्रीसार्वभौम के एक भाई महाभाग्यवान् शान्त-दान्त व धर्मशील थे ।।२६८।। श्रीगौरसुन्दर सब पार्षदों के साथ अकस्मात् उनके घर पर आकर उतरे ।। २६९ ।। श्रीविद्यावाचस्पतिजी वैकुण्ठनायक को अतिथि रूप से अपने घर पर पाकर दण्डवत् होकर गिरे ।। २७० ।। उन ब्राह्मण के शरीर में इतना आनन्द हुआ कि क्या सेवा करें वह कुछ भी स्फुरण नहीं हुआ ? ।। २७१ ।। प्रभु ने भी उनको आलिङ्गन किया और बोले कि मेरी कुछ बात सुनो ।। २७२ ।। मथुरा देखने को मेरा मन है, परन्तु कुछ दिन यहाँ रहकर गंगा स्नान करूँगा ।। २७३ ।। मुझे कोई एकान्त स्थान दो जहाँ कुछ दिन रहकर मैं गंगा स्नान करूँ ? ।। २७४ ।। तब अन्त में मुझे मथुरा भिजवा देना—जो मुझे प्रेम करते हो तो इतना प्रबन्ध अवश्य कर दो ।। २७५ ।। श्रीप्रभु के वाक्य सुनकर श्रीविद्यावाचस्पति जी नम्रतापूर्वक यों बोले—।।२७६।। ब्राह्मण ने कहा मेरे सब वंश के अहोभाग्य जो आपकी चरण धूलि का यहाँ आगमन हुआ ।। २७७ ।। जो कुछ मेरा घर-द्वार है सब आपही का है, आप सुखपूर्वक रहें—किसी अन्य व्यक्ति को आपका पता न लगेगा ।। २७८ ।। उनके बचन सुनकर प्रभु को सन्तोष हुआ तथा उनके भाग्य से कुछ दिन वहीं रहे ।। २७९ ।। क्या कभी सूर्य का उदय भी गुप्त रूप से हो सकता था ? श्रीचैतन्यदेव का शुभागमन सब लोगों को विदित हो गया ।। २८० ।। नवद्वीप आदि सब दिशाओं में

आनन्दे सकल लोक बोले 'हरि-हरि'। स्त्री पुत्र देह गेह सकल पासरि ॥ २८३ ॥
अन्योन्ये सर्वलोके करे कोलाहल। 'चल देखि गिया तान चरण युगल' ॥२८४॥
एत बलि सर्वलोक परम-उल्लासे। चलिलेन केहो कारो रहि ना सम्भाषे ॥२८५॥
अनन्त अर्बुद लोक बलि 'हरि-हरि'। चलिलेन देखिवारे गौराङ्ग श्रीहरि ॥२८६॥
पथ नाहि पाय केहो लोकेर गहले। वन डाल भाङ्गि लोक दश दिगे चले ॥२८७॥
शुन-शुन आरे भाइ चैतन्य-आख्यान। ये रूपे करिला सर्वलोक परित्राण ॥२८८॥
वन डाल कन्टक भाङ्गिया लोक जाय। तथापि आनन्दे केहो दुःख नाहि पाय ॥२८९॥
लोकेर गहले यत अरण्य आछिल। क्षणेके सकल दिव्य पथमय हैल ॥२९०॥
शेषे सर्व लोक सर्व दिगे पथे जाय। हेन रङ्ग करे प्रभु श्रीगौराङ्ग राय ॥२९१॥
केहो बोले मुञि तान धरिया चरण। मागिमु येमते मोर खण्डये बन्धन ॥ २९२ ॥
केहो बोले मुञि ताने देखिले नयने। तवेइ सकल पाङ मागिमु वा केने ॥ २९३ ॥
केहो बोले मुञि तान ना जानों महिमा। यत निन्दा करियाछो, तार नाहि सीमा ॥२९४॥
एवे तान पादपद्म धरिया हृदये। मागिमु-किरूपे मोर से पाप घूचये ॥ २९५ ॥
केहो बोले "पुत्र मोर परम जुयार। मोर एइ वर येन ना खेलाइ आर ॥ २९६ ॥
केहो बोले मोर एइ वर काय मने। ताँर पादपद्म येन ना छाड़ों कखने ॥ २९७ ॥
केहो बोले धन्य-धन्य मोर एइ वर। कभू येन ना पासरों श्रीगौरसुन्दर ॥ २९८ ॥

ध्वनि हो गई कि न्यासी चूड़ामणि (गौर) वाचस्पति के घर में आये हैं ॥ २८१ ॥ सुनकर लोगों के चित्त में बड़ी प्रसन्नता हुई—मानो शरीर से ही बैकुण्ठ में पहुँच गये हों ॥ २८२ ॥ स्त्री-पुत्र देह-गेह आदि सबको भूलकर आनन्द से सब लोग हरि-हरि बोलने लगे—॥ २८३ ॥ परस्पर में सब लोग कोलाहल करने लगे कि चलकर उनके चरण-कमलों के दर्शन करें ॥ २८४ ॥ इस प्रकार कहकर सब लोग उल्लास से चल दिये—कोई किसी से बोलता भी नहीं है ॥ २८५ ॥ असंख्यों मनुष्य हरि-हरि बोलते हुए श्रीगौराङ्ग हरि के दर्शन के लिये चल पड़े ॥ २८६ ॥ लोगों की भीड़ के कारण किसी को मार्ग नहीं मिलता था वन की डालियाँ तोड़-तोड़कर दशों ओर को चलने लगे ॥ २८७ ॥ हे भाई सुनो ! श्रीचैतन्य कथा सुनो जिस तरह से सब लोगों का उद्धार हुआ था ॥ २८८ ॥ मनुष्य वन के डाली व काँटें तोड़ते हुए जा रहे थे तो भी कोई दुःख नहीं मानते थे, सभी आनन्दित थे ॥ २८९ ॥ मनुष्यों की भीड़ के कारण तुरन्त ही वन में सुन्दर मार्ग बन गया ॥ २९० ॥ अन्त में लोगों की भीड़ मार्ग में सब ओर से चलने लगी है अहो श्रीप्रभु गौराङ्गराय ने ऐसा खेल किया ॥२९१॥ कोई कहता कि मैं उनके चरण पकड़कर यह मागूँगा जिसमें मेरा बन्धन नष्ट हो जाय ॥२९२॥ कोई कहता कि उनको नेत्र भर से देखलूँ तो सब मिल जायगा-मुख से क्या माँगू ? ॥ २९३ ॥ कोई कहता कि मैं तो उनकी महिमा नहीं जानता था न जाने कितनी निन्दा मैंने उनकी की थी,जिसकी कुछ सीमा नहीं ॥२९४॥ "अब उनके चरण-कमलों को हृदय में धारण करके मागूँगा कि वह पाप किस प्रकार दूर होगा ?" ॥ २९५ ॥ कोई कहता कि मेरा पुत्र बड़ा जुवारी है मुझे यह वर दो कि वह और न खेले ॥ २९६ ॥ कोई कहता कि तन-मन से मैं यही वर माँगता हूँ कि उनके चरण-कमल किसी काल में विस्मरण न हों ॥ २९७ ॥

एइ मत बलिया आनन्दे सर्व जन । चलिया जायेन सभे परानन्द मन ॥ २९९ ॥
क्षणेके आइल सब लोक खेया घाटे । खेयारि करिते पार पड़िल सङ्कटे ॥ ३०० ॥
सहस्र-सहस्र लोक एको नाये चढ़े । बड़-बड़ नौका सेइ क्षणे भाङ्गि पड़े ॥ ३०१ ॥
नाना दिगे लोक खेयारि रे वस्त्र दिया । पार हइ जाय सभे आनन्दित हैया ॥ ३०२ ॥
नौका ये ना पाय, तारा नाना बुद्धि करे । घट बूके दिया केहो गङ्गाय सांतरे ॥ ३०३ ॥
केहो वा कलार गाछ वान्धि करे भेला । केहो केहो साँतरिया जाय करि खेला ॥ ३०४ ॥
चतुर्दिगे सर्वलोक करे हरिध्वनि । ब्रह्माण्ड भेदये येन हेन मत शुनि ॥ ३०५ ॥
सत्वरे आसिला वाचस्पति महाशय । करिलेन अनेक नौकार समुच्चय ॥ ३०६ ॥
नौकार अपेक्षा आर केहो नाहि करे । नाना मते पार हय ये जेमते पारे ॥ ३०७ ॥
हेन आकर्षिल मन श्रीचैतन्यदेवे । एहो कि ईश्वर-विने अन्येते सम्भवे ॥ ३०८ ॥
हेन मते गङ्गा पार हइ सर्वजन । सभेइ धरेन वाचस्पतिर चरण ॥ ३०९ ॥
परम सुकृति तुमि महाभाग्यवान् । जार घरे आइला चैतन्य भगवान् ॥ ३१० ॥
एतेके तोमार भाग्य के बलिते पारे । एखने निस्तार कर आमा सभा कारे ॥ ३११ ॥
भव कूपे पतित पापिष्ठ आमि-सव । एक ग्राने-ना जानिल तान अनुभव ॥ ३१२ ॥
एखने देखाओ तान चरण युगल । तवे आमि पापी सब पाइये सकल ॥ ३१३ ॥
देखिया लोकेर आर्ति विद्यावाचस्पति । सन्तोषे रोदन करे विप्र महामति ॥ ३१४ ॥

कोई कहता कि मुझे तो धन्याति धन्य यह वर मिले जैसे मैं श्रीगौरसुन्दर को कभी न भूलूँ ॥ २९८ ॥ इस प्रकार आनन्द से कहते हुए सब लोग आनन्दातिरेक मन से चले जा रहे थे ॥ २९९ ॥ तत्काल ही सब लोग गङ्गा पर जाने के लिये खेवा घाट पर पहुँच गये तब मल्लाह पार करने के लिये संकट में पड़ गये ॥ ३०० ॥ हजारों २ लोक एक ही नौका में चढ़ जाते जिससे बड़ी २ नाव भी टूट गई ॥३०१॥ अनेक ओर से मनुष्य मल्लाहों को वस्त्र देकर सब बड़े प्रसन्न मन से पार हो-होकर जा रहे थे ॥ ३०२ ॥ जिसे नौका नहीं मिली वे अनेक प्रकार की युक्ति करते थे–कोई घड़ा छाती के नीचे लगाकर पार होते थे ॥ ३०३ ॥ कोई केले के वृक्षों को बाँधकर नौका बनाते अथवा कोई अन्य खेल (खेल में ही) तैर जाते थे ॥३०४॥ चारों ओर से सब मनुष्य हरिध्वनि कर रहे थे–ऐसा सुन पड़ता था मानों ब्रह्माण्ड ही फोड़ दिया हो ॥ ३०५ ॥ वाचस्पति महाशय ने शीघ्र आकर बहुत सी नौकाएँ इकट्ठी की ॥ ३०६ ॥ नौका की अपेक्षा कोई नहीं कर रहा था क्योंकि जिसको जो उपाय सूझता विविध प्रकार से पार हो रहा था ॥ ३०७ ॥ इस प्रकार श्रीचैतन्यदेव ने सबके मन खींच लिये यह भी ईश्वर के बिना क्या अन्य से सम्भव है ॥ ३०८ ॥ इस प्रकार सब लोगों ने गङ्गा पार होकर श्रीवाचस्पति जी के चरण छूए ॥ ३०९ ॥ तुम महाभाग्यवान् व परम पुण्यशाली हो जिनके घर श्रीचैतन्य भगवान् पधारे ॥ ३१० ॥ इसी से तुम्हारे भाग्य का कौन वर्णन कर सकता है–अब हम सब का निस्तार करो ॥ ३११ ॥ हम सब पापी भवकूप में पड़े हैं एक गाँव में रहकर भी उनका (श्रीचैतन्यदेव का) अनुभव न कर सके ? ॥ ३१२ ॥ अब उनके श्रीयुगल चरणों का दर्शन करवा दीजिये तभी तो हम सब पापियों को सब कुछ मिल जावेगा ॥ ३१३ ॥ महाबुद्धिमान् ब्राह्मण श्रीविद्यावाचस्पति मनुष्यों की

सभा लइ आइलेन आपन मन्दिरे । लक्ष कोटि लोक महा हरिध्वनि करे ॥ ३१५ ॥
हरिध्वनि मात्र शुनि सभार वदने । आर वाक्य केहो नाहि बोले नाहि शुने ॥ ३१६ ॥
करुणासागर प्रभु श्रीगौरसुन्दर । सभा उद्धारिते हइयाछेन गोचर ॥ ३१७ ॥
हरिध्वनि शुनि प्रभु परम सन्तोषे । हइलेन बाहिर लोकेर भाग्यवशे ॥ ३१८ ॥
कि से श्रीविग्रहेर सौन्दर्य मनोहर । से रूपेर उपमा-सेइ से कलेवर ॥ ३१९ ॥
सर्वदाय प्रसन्न श्रीमुख विलक्षण । आनन्द धाराय पूर्ण दुइ श्रीनयन ॥ ३२० ॥
भक्तगणे लेपियाछे सर्वाङ्गे चन्दन । मालाय पूर्णित वक्ष, गजेन्द्र गमन । ३२१ ॥
आजानुलम्बित दुइ श्रीभुज तुलिया । 'हरि' वलि सिंहनाद करेन गर्जिया ॥ ३२२ ॥
देखिया प्रभुरे चतुर्दिगे सर्व लोके । 'हरि' बलि नृत्य सभे करेन कौतुके ॥ ३२३ ॥
दण्डवत् हइ सभे पड़े भूमि तले । आनन्दे हइया मग्न 'हरि-हरि' बोले ॥ ३२४ ॥
दुइ बाहु तुलि सर्व लोक स्तुति करे । 'उद्धारह प्रभु आमि-सब-पापिष्ठेरे ॥ ३२५ ॥
ईषत् हासिया प्रभु सर्वलोक प्रति । आशीर्वाद करेन कृष्णेते हउ मति ॥ ३२६ ॥
बोल कृष्ण भज कृष्ण शुन कृष्ण नाम । कृष्ण हउ सभार जीबन धन प्राण ॥ ३२७ ॥
सब लोक 'हरि' बोले शुनि आशीर्वाद । पुनः पुन सभेइ करेन स्तुति वाद ॥ ३२८ ॥
जगत-उद्धार-लागि तुमि गूढ़ रूपे । अवतीर्ण हैला शची गृहे नवद्वीपे ॥ ३२९ ॥
आमि-सब पापिष्ठ तोमारे ना चिनिया । अन्धकूपे पड़िलाङ आपना खाइया ॥ ३३० ॥

आर्त दशा देखकर शान्त होकर रुदन करने लगा ॥३१४॥ सबको लेकर अपने स्थान पर आये वहाँ असंख्यों मनुष्य ऊँचे स्वर से हरिध्वनि करने लगे ॥३१५॥ सबके मुख से केवल हरिध्वनि ही सुनाई पड़ती थी दूसरा वाक्य न कोई बोलता न सुनता था ॥३१६॥ करुणासिन्धु श्रीगौरसुन्दर प्रभु सबका उद्धार करने के निमित्त प्रत्यक्ष हुए ॥ ३१७ ॥ हरिध्वनि सुनकर प्रभु बड़े प्रसन्न हुए और लोगों के भाग्य से ही बाहिर आये ॥३१८॥ श्रीविग्रह का कैसा मनोहर सौन्दर्य था–उस रूप की उपमा वही कलेवर ही है ॥ ३१९ ॥विलक्षण श्रीमुख हर समय प्रसन्न रहता तथा दोनों श्रीनयन कमल आनन्दधारा से पूर्ण रहते थे ॥३२०॥ भक्तगणों ने उनके सब अङ्गों में चन्दन लेपन किया हुआ था वक्षस्थल मालाओं से पूर्ण हो रहा था तथा उनकी गती गजेन्द्र जैसी थी ॥ ३२१ ॥ वे अपनी घुटनों तक लम्बी दोनों भुजाओं को उठाकर हरि-हरि बोलकर गर्जना करके सिंहनादकर रहे थे ॥ ३२२ ॥ श्रीप्रभु के दर्शन करके चारों ओर से घिरकर सब लोग हरि-हरि कहते हुए अति कौतुक से नृत्य करने लगे ॥ ३२३ ॥ दण्डवत् होकर सब भूमि पर गिर पड़ते तथा आनन्द में मग्न होकर "हरि-हरि" बोलते थे ॥ ३२४ ॥ दोनों भुजा उठाकर सब मनुष्य स्तुति करते कि प्रभो ! हम सब पापियों का उद्धार करो ॥ ३२५ ॥ कुछ हँसकर प्रभु ने सब लोगों के प्रति आशीर्वाद किया कृष्ण में तुम्हारी बुद्धि होय ॥ ३२६ ॥ कृष्ण कहो, कृष्ण भजो व कृष्ण नाम सुनो सबके प्राण-जीवन धन श्रीकृष्णचन्द्र होय ॥३२७॥ यह आशीर्वाद सुनकर सब लोग "हरि-हरि" बोलने लगे तथा सब बार-बार स्तुति करने लगे ॥ ३२८ ॥ जगत् उद्धार करने के लिये आप गुप्त रूप से नवद्वीप धाम में श्रीशचीदेवी के घर में अवतीर्ण हुए ॥ ३२९ ॥ हम पापियों ने आपको नहीं पहिचाना और अपने को खाकर (आत्म हत्या करके) अन्धकूप में गिरे ॥ ३३० ॥ और पर-

करुणा सागर तुमि परहितकारी । कृपा कर आर येन तोमा ना पासरि ॥ ३३१ ॥
एइ मत सर्वदिगे लोक स्तुति करे । हेन रङ्ग करेन श्रीगौराङ्ग सुन्दरे ॥ ३३२ ॥
मनुष्ये हइल परिपूर्ण सर्व ग्राम । नगर चत्वर प्रान्तरेओ नाहि स्थान ॥ ३३३ ॥
देखिते सभार पुनः पुन इच्छा बाढ़े । सहस्र-सहस्र लोक एको-वृक्षे चढ़े ॥ ३३४ ॥
गृहेर उपरे वा कतेक लोक चढ़े । ईश्वर-इच्छाय घर भाङ्गिया ना पड़े ॥ ३३५ ॥
देखि मात्र सर्वलोक श्रीचन्द्रवदन । 'हरि' बलि सिंहनाद करे घने घन ॥ ३३६ ॥
नाना दिग थाकि लोक आइसे सदाय । श्रीमुख देखिया केहो घर नाहि जाय ॥३३७॥
नाना रङ्ग जाने प्रभु श्रीगौरसुन्दर । लुकाइया गेला प्रभु कुलिया नगर ॥ ३३८ ॥
नित्यानन्द-आदि जन कथो सङ्ग लैया । चलिलेन वाचस्पतिरेओ ना कहिया ॥ ३३९ ॥
कुलियाय आइलेन वैकुण्ठ-ईश्वर । एथा सर्वलोक हैल परम कातर ॥ ३४० ॥
चतुर्दिगे वाचस्पति लागिला चाहिते । कोथा गेला प्रभु, नाहि पायेन देखिते ॥ ३४१ ॥
विचार करिया विप्र प्रभु ना पाइया । कान्दिते लागिला ऊर्द्ध वदन करिया ॥ ३४२ ॥
विरले आछेन प्रभु बाड़ीर भितरे । एइ ज्ञान हइयाछे सभार अन्तरे ॥ ३४३ ॥
बाहिर हयेन प्रभु हरिनाम शुनि । अतएव सभे बोले महा हरिध्वनि ॥ ३४४ ॥
कोटि-कोटि लोक हेन हरिध्वनि करे । स्वर्ग-मर्त्य-पातालादि सर्वलोक पूरे ॥ ३४५ ॥
कथोक्षणे वाचस्पति आसिया बाहिरे । प्रभुर वृत्तान्त सब कहिला सभारे ॥ ३४६ ॥
कत राज्ये कोन दिगे हेन नाहि जानि । मुञि-पापिष्ठेरे वंचि गेला न्यासि मणि ॥३४७॥

हितकारी करुणा सागर आप ऐसी कृपा करो जिससे आपको फिर न भूलें ॥ ३३१ ॥ इस प्रकार सब ओर से मनुष्य स्तुति कर रहे थे–श्रीगौरसुन्दर ने ऐसी प्रेम लीला की ॥ ३३२ ॥ मनुष्यों से सम्पूर्ण गाँव इतना पूरी तरह से भर गया कि मुहल्ले, चौराहे बाहर मैदानों में भी स्थान नहीं रहा ॥ ३३३ ॥ सभी की इच्छा दर्शन करने के लिये बारम्बार होती थी इस कारण हजारों २ लोग एक-एक वृक्ष पर चढ़े थे ॥ ३३४ ॥ घरों के ऊपर कितने मनुष्य चढ़े हुए थे, परन्तु ईश्वर इच्छा से घर टूटकर नहीं गिरे ॥ ३३५ ॥ सब लोग श्रीचन्द्र-मुख दर्शन करते ही "हरि-हरि" बोलकर बड़े जोर से सिंहनाद करने लगे ॥ ३३६ ॥ मनुष्य अनेक ओरों से बराबर चले ही आ रहे थे, परन्तु श्रीमुख दर्शन करके कोई भी अपने घर के नहीं जाता था ॥ ३३७ ॥ श्री-गौरसुन्दर प्रभु अनेक प्रकार से खेल करते थे–सोई प्रभु छुपकर कुलिया नगर को चले गये ॥३३८॥ श्रीवाच-स्पति से भी नहीं कहा और श्रीनित्यानन्द आदि कुछ जनों को साथ लेकर चल दिये ॥ ३३९ ॥ वैकुण्ठनाथ तो कुलिया नगर पहुँच गये, परन्तु यहाँ सब लोग बड़े कातर हो रहे थे ॥ ३४० ॥ श्रीवाचस्पति चारों ओर देखने लगे "प्रभु कहाँ चले–देखते नहीं पड़ते ?" ॥ ३४१ ॥ ढूँढ़ने पर प्रभु जब नहीं मिले तो वे ब्राह्मण ऊपर मुख करके रोने लगे ॥३४२॥ सबको यह जान पड़ता था कि श्रीप्रभु घर में भीतर एकान्त में हैं ॥३४३॥ श्रीप्रभु हरि नाम सुनकर बाहर निकलेंगे इसीलिये सब जोर २ से हरिध्वनि करने लगे ॥ ३४४ ॥ असंख्यों मनुष्य इतनी हरिध्वनि कर रहे थे जिससे स्वर्ग-मृत्युलोक व पाताल आदि सब लोक भर गये ॥ ३४५ ॥ कुछ देर में वाचस्पतिजी बाहर आकर प्रभु का सब वृत्तान्त सबसे कहा ॥ ३४६ ॥ मुझ पापी को छोड़कर श्रीप्रभु

सत्य कहि भाइ सब तोमा सभा स्थाने। ना जानि चैतन्य गियाछेन कोन् खाने ॥३४८॥
यत-मते वाचस्पति कहेन लोकेरे। प्रतीत काहारो नाहि जन्मये अन्तरे॥ ३४६ ॥
लोकेर गहल देखि आछेन विरले। एइ ज्ञाने सभेइ आछेन कुतूहले॥ ३५० ॥
केहो केहो साधे वाचस्पतिरे विरले। आमारे देखाओ आमि केवल एकले॥ ३५१ ॥
सर्वलोक साधे वाचस्पतिरे चरणे। एक वार मात्र ताँरे देखिले नयने॥ ३५२ ॥
तवे सभे घर जाइ आनन्दित हैया। एइ वाक्य प्रभु-स्थाने जानाइवा गिया॥ ३५३ ॥
कभू ना लंघिव प्रभु तोमार वचन। ये मते आमरा पापी पाइ दरशन॥ ३५४ ॥
यत-मते वाचस्पति प्रबोधिया कय। काहारो चित्तेते आर प्रत्यय ना हय॥ ३५५ ॥
कथोत्तणे सर्व लोक देखा ना पाइया। वाचस्पतिरेओ बोले मुखर हइया॥ ३५६ ॥
घरे लुकाइया वाचस्पति न्यासि मणि। आमा सभा भाण्डिला कहिया मिथ्या वाणी ॥३५७॥
आमरा तरिले वा उहान कौन दुःख। आपनेइ तरि मात्र एइवा कोन् सुख ॥३५८॥
केहो बोले सुजनेर एइ से धर्म हय। सभार उद्धार करे हइया सदय ॥ ३५६ ॥
आपनार भाल हउ ये-ते-जन देखे। सुजने आपना छाड़ियाओ पर राखे॥ ३६० ॥
केहो बोले व्यवहारे मिष्ट द्रव्य आनि। एका उपभोग कैले अपराध गणि॥ ३६१ ॥
एत मिष्ट त्रिभुवने अति अनुपाम। एकेश्वर इहा कि करिते योग्य पान॥ ३६२ ॥
केहो बोले 'विप्र किछु कपट-हृदय। पर-उपकारे तत नहेन सदय॥ ३६३ ॥

न जाने कितनी रात्रि में किस ओर चल दिये ? ॥ ३४७॥ हे भाइयो ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ न मालूम श्रीचैतन्यदेव किधर चले गये॥ ३४८॥ श्रीवाचस्पति जितने प्रकार से भी मनुष्यों से कहते, परन्तु किसी के मनमें विश्वास नहीं होता था॥ ३४६॥ प्रभु मनुष्यों की भीड़ देखकर एकान्त में हैं ऐसा समझकर सब लोग कुतूहल में खड़े रहे॥ ३५०॥ कोई २ श्रीवाचस्पति से एकान्त में प्रार्थना करते, मैं तो अकेला ही हूँ मुझे दर्शन करा दीजिये॥ ३५१॥ सर्व लोग वाचस्पति के चरणों में प्रार्थना करते थे कि नेत्रों से केवल एक बार देखते ही आनन्दित होकर सब लोग घर को चले जाँयगे, ये वाक्य प्रभु के पास जाकर बताइये ॥३५२-३५३॥ "प्रभु आपके वचनों का कभी उलंघन नहीं करेंगे" जैसे भी हो हम पापियों को दर्शन मिले॥३५४॥ जितने प्रकार से भी वाचस्पति समझाकर कहते थे, परन्तु किसी के चित्त में फिर भी विश्वास नहीं होता था॥ ३५५॥ कुछ क्षण में सब लोग दर्शन न पाने पर मुखर (अप्रिय वक्ता) होकर वाचस्पति से दुर्वचन कहने लगे॥ ३५६॥ "वाचस्पति ने गौरचन्द्र को घर में छिपाकर हमसे झूँठ कहकर सबको धोखा दिया है"॥ ३५७॥ हमारे तर जाने से उन्हें क्या दुःख है तथा अपने मात्र तरने में क्या सुख है ?॥ ३५८॥ किसी ने कहा कि सज्जनों का तो यह धर्म है कि सदय होकर सबका उद्धार ही करा करें ॥३५६॥ साधारण जन अपना ही भला देखते हैं, परन्तु सुजन अपनी छोड़ दूसरे की रक्षा करते हैं॥ ३६०॥ कोई कहता— "व्यवहार में मीठी द्रव्य लाकर अकेले ही उपभोग करना अपराध में गणना है"॥ ३६१॥ परन्तु यह पदार्थ तो तीनों लोकों में अभूतपूर्व मीठा है इसका अकेले ही आस्वादन करना क्या उचित है ? ॥ ३६२॥ कोई कहता "ब्राह्मण के हृदय में कुछ कपट है, परोपकार में उतनी दया नहीं है"॥ ३६३॥ एक तो वाचस्पतिजी

एके वाचस्पति दुखी प्रभुर विरहे । आरे सभे एमत दुर्यश-वाणी कहे ॥ ३६४ ॥
दुइ मते दुखी विप्र परम उदार । ना जानेन कोन् मते हय प्रतिकार ॥ ३६५ ॥
हेनइ समये एक आसिया ब्राह्मण । वाचस्पति-कर्णमूले कहिल वचन ॥ ३६६ ॥
चैतन्य गोसाञि गेला कुलिया नगर । एबे जे जुयाय ताहा करह सत्त्वर ॥ ३६७ ॥
शुनि मात्र वाचस्पति परम-सन्तोषे । ब्राह्मणेर आलिङ्गन दिलेन हरिषे ॥ ३६८ ॥
ततक्षणे आइलेन सर्वलोक यथा । सभारेइ आसि कहिलेन गोप्य कथा ॥ ३६९ ॥
तोमरा सकल लोक तत्त्व ना जानिया । दोष देओ आमारे 'थुइयाछि लुकाइया' ॥३७०॥
एबे एइ शुनिलाङ कुलिया नगरे । आछेन आसिया कहिलेन विप्रवरे ॥ ३७१ ॥
सभे चल, यदि सत्य हय ए वचन । तबे से आमारे सभे वलिह ब्राह्मण ॥३७२ ।
सर्वलोक 'हरि' वलि वाचस्पति-सङ्गे । सेइक्षणे सभे चलिलेन महारङ्गे ॥ ३७३ ॥
'कुलिया नगरे आइलेन न्यासि मणि' । सेइक्षणे सर्वदिगे हैल महाध्वनि ॥ ३७४ ॥
सबे गङ्गा मध्ये नदियाय कुलियाय । शुनि मात्र सर्वलोके महानन्दे धाय ॥ ३७५ ॥
वाचस्पति-ग्रामे छिल यतेक गहल । तार कोटि-कोटि गुणे पूरिल सकल ॥ ३७६ ॥
कुलियार आकर्षण ना जाय कथन । ताहा वर्णिवारे शक्त सहस्र वदन ॥ ३७७ ॥
लक्ष-लक्ष नौका वा आइल कोथा हैते । ना जानि कतेक पार हय कत-मते ॥३७८॥
कतेक वा नौका डूबे गङ्गार भितरे । तथापि सभेइ तरे केहो नाहि मरे ॥ ३७९ ॥
नौका डूबिलेइ मात्र गङ्गा हय स्थल । हेन चैतन्येर अनुग्रह इच्छा बल ॥ ३८० ॥

प्रभु विरह में दुखी थे दूसरे सब लोग ऐसी अनुपयुक्त वाणी बोल रहे थे ॥३६४॥ परम उदार ब्राह्मण दोनों प्रकार से दुखी थे किस प्रकार प्रतीकार होगा यह समझ नहीं पड़ता था ॥ ३६५ ॥ ऐसे समय में एक ब्राह्मण ने श्रीवाचस्पति के कान में यों कहा—॥ ३६६ ॥ श्रीचैतन्यदेव तो कुलिया नगर पहुँच गये अब जो उचित हो वह शीघ्र करो ॥ ३६७ ॥ श्रीवाचस्पतिजी सुनते ही बड़े सन्तुष्ट हुए और प्रसन्न हो ब्राह्मण को आलिङ्गन किया ॥ ३६८ ॥ जहाँ भीड़ थी तुरन्त ही वहाँ आये और सबसे गुप्त प्रसंग की बात कह सुनाई ॥ ३६९ ॥ तुम लोग तत्त्व बात न जानकर मुझे दोष दे रहे हो कि प्रभु को छुपा रक्खा है ॥ ३७० ॥ मैंने अभी यह सुना है कि प्रभु कुलिया नगर में हैं इस ब्राह्मण ने आकर कहा है ॥ ३७१ ॥ वहीं सब चलो—मेरी यह बात जब सत्य निकले तभी मुझे ब्राह्मण कहना ॥ ३७२ ॥ उसी क्षण सब लोग "हरि-हरि" बोलते हुए श्रीवाचस्पति को साथ लेकर बड़े आनन्द से चल पड़े ॥ ३७३ ॥ सन्यासी-चूड़ामणि कुलिया नगर में आये हैं यह महाध्वनि उसी क्षण सब ओर फैल गई ॥ ३७४ ॥ "नवद्वीप कुलिया के बीच में केवल गङ्गाजी तो हैं" यह सुनते मात्र ही सब लोग बड़े आनन्द से दौड़े ॥ ३७५ ॥ श्रीवाचस्पतिजी के ग्राम में जितनी भीड़ थी उससे करोड़ गुनी अधिक सब ओर भर गई ॥ ३७६ ॥ कुलिया नगर का आकर्षण कहा नहीं जाता उसका वर्णन करने में शेषजी को सामर्थ्य है ॥ ३७७ ॥ न जाने कहाँ से लाखों नौकाएँ आ गईं और न जाने कितने मनुष्य किस २ प्रकार से पार हो रहे थे ॥ ३७८ ॥ न जाने कितनी नावें गङ्गा में डूब गईं तो भी पार सब ही हो रहे थे-कोई मरा नहीं ॥३७९॥ नौका डूबते ही गङ्गा स्थल हो जाती थी ऐसा श्रीचैतन्यदेव की इच्छा

ये प्रभुर नाम गुण सकृत ये गाय । से संसार अब्धि तरे वत्सपद प्राय ॥३८१॥
हेन प्रभु देखिते साक्षाते ये आइसे । ताहारा जे गङ्गा तरिबेन चित्र किसे ॥ ३८२ ॥
लक्ष-लक्ष लोक भासे जाह्नवीर जले । सभे पार हयेन परम-कुतूहले ॥ ३८३ ॥
गङ्गाय हइया पार आपना आपनि । कोलाकोलि करि सभे करे हरिध्वनि ॥ ३८४ ॥
खेयारिर कत वा हइल उपार्जन । कत-कत हाट वा वसिल सेइ क्षण ॥ ३८५ ॥
चतुर्दिगे जार ये इच्छा से-इ किने । हेन नाहि जानि इहा करे कोन् जने ॥ ३८६ ॥
क्षणेके कुलिया ग्राम नगर प्रान्तर । परिपूर्ण हैल, स्थल नाहि अवसर ॥ ३८७ ॥
अनन्त अर्बुद लोक करे हरिध्वनि । बाहिर ना हय, गुप्ते आछे न्यासि मणि ॥३८८॥
क्षणेके आइला महाशय वाचस्पति । तिंहो नाहि पायेन प्रभुर कोथा स्थिति ॥३८९॥
कथोक्षणे वाचस्पति मात्र एकेश्वर । डाकि आनाइला प्रभु श्रीगौरसुन्दर ॥३९०॥
देखि मात्र प्रभु विशारदेर नन्दन । दण्डवत् हइया पड़िला सेइ क्षण ॥ ३९१ ॥
चैतन्येर अवतार वर्णिया-वर्णिया । श्लोक करि पढ़े विप्र प्रणति करिया ॥ ३९२ ॥
संसार-उद्धार-लागि ये चैतन्य रूपे । तारि लेन यतेक पतित भव-कूपे ॥ ३९३ ॥
से गौर सुन्दर कृपा समुद्रेर पाय । जन्म-जन्म मोर चित्त वसुक सदाय ॥ ३९४ ॥
संसार-सागरे मग्न जगत देखिया । निरवधि वर्षे प्रेम कृपायुक्त हैया ॥ ३९५ ॥
हेन से अतुल कृपामय गौर धाम । स्फुरुक आमार हृदये ते अविराम ॥ ३९६ ॥

का अनुग्रह था ॥ ३८० ॥ जो एक बार भी श्रीप्रभु के नाम गुण-गान करता है वह संसार रूपी समुद्र को गोवत्स पद की तरह तर जाता है ॥ ३८१ ॥ जो एसे प्रभु के साक्षात् दर्शनों को ही आयेंगे उनके भला गङ्गा तरने में क्या विचित्रता थी ॥ ३८२ ॥ लाखों ही मनुष्य गंगाजल में प्रवेश करते थे और सब ही बड़े कुतूहल से पार होते थे ॥ ३८३ ॥ गंगाजी को पार करके परस्पर आलिङ्गन करके सब लोग प्रेमानन्द से हरिध्वनि करते थे ॥ ३८४ ॥ मलाहों ने न जाने कितना उपार्जन किया तथा उसी क्षण कितने हाट बाजार लग गये ॥ ३८५ ॥ चारों ओर जिसकी जो इच्छा है वही मोल ले रहा है परन्तु यह मालूम नहीं पड़ता कि कौन क्या कर रहा है ? ॥ ३८६ ॥ एक क्षण में कुलिया ग्राम के गली, बाजार, मैदानों की जगह सब भर गई कि वहाँ तिल धरने को जगह नहीं रही ॥ ३८७ ॥ असंख्य मनुष्य हरिध्वनि कर रहे थे तथा न्यासिमणि (गौर) प्रभु गुप्त हो रहे थे बाहिर नहीं होते थे ॥ ३८८ ॥ क्षण में ही श्रीवाचस्पति महाशय भी आ गये परन्तु उन्हें भी पता नहीं लगा कि प्रभु कहाँ हैं ? ॥ ३८९ ॥ कुछ क्षण में ही श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने अकेले वाचस्पति को ही टेर कर बुलाया ॥ ३९० ॥ विशारद पुत्र श्रीवाचस्पतिजी श्रीगौर प्रभु को देखते ही तत्क्षण दण्डवत् प्रणाम की ॥ ३९१ ॥ चैतन्यावतार का बखान श्लोक बद्ध रचना करते करते जाते और दण्डवत् प्रणाम करते जाते अर्थात् प्रत्येक श्लोक पाठ पर दण्डवत् प्रणाम करते थे ॥३९२॥ जिनने संसार के उद्धार के लिये चैतन्यरूप से प्रगट होकर संसार-कूप में सभी गिरे हुओं को तार दिया ॥३९३॥ उन कृपासिन्धु श्रीगौरसुन्दर के चरण-कमलों में मेरा चित्त जन्म-जन्म में सर्वदा निवास करे ॥ ३९४ ॥ जो जगत् के मनुष्यों को संसार समुद्र में मग्न देखकर कृपा करके निरन्तर प्रेम की वर्षा करते हैं ॥ ३९५ ॥ ऐसे वे अतुल कृपामय धाम श्री-

एइ मत श्लोक पढ़ि करे विप्र स्तुति । पुनः पुन दण्डवत् हय वाचस्पति ॥ ३६७ ॥
विशारद-चरणे आमार नमस्कार । सार्वभौम विद्या वाचस्पति पुत्र याँर ॥३६८॥
वाचस्पति देखि प्रभु श्रीगौरसुन्दर । कृपादृष्ट्ये वसिवारे वलिला उत्तर ॥३६९॥
डाण्डाइया कर जुड़ि बोले वाचस्पति । मोर एक निवेदन शुन महामति ॥४००॥
स्वच्छन्द परमानन्द तुमि दयामय । सर्व कर्म तोमार आपन इच्छामय ॥४०१॥
आपन इच्छाय 'थाक चलह आपने । आपने जानाह, सेजि लोके तोमा' जाने ॥४०२॥
एतेके तोमार कर्मे तुमिसे प्रमाण । विधिवा नेषेध के तोमारे दिवे आन ॥४०३॥
सबे मोरे सर्वलोक तत्त्व ना जानिया । दोषेन अन्तरे क्रूर आमारे वलिया ॥४०४॥
तोमारे आपन घरे मुञि लुकाइया । थुइयायों लोके बोले तत्त्व ना जानिया ॥४०५॥
तुमि प्रभु । तिलार्द्धेक वाहिर हइले । तवे मोरे 'ब्राह्मण' करिया लोके बोले ॥४०६॥
हासिते लागिला प्रभु विप्रेर वचने । तांर इच्छा पालिया चलिला सेइक्षणे ॥४०७॥
येइ मात्र महाप्रभु बाहिर हइला । सेइ सभे आनन्द सागरे मग्न हैला ॥४०८॥
चतुर्दिगे लोक दण्डवत् हइ पड़े । यार येन-मत स्फुरे, सेइ स्तुति पढ़े ॥४०९॥
अनन्त अर्बुद लोक हरि धनि करे । भासिल सकल लोक आनन्दसागरे ॥४१०॥
सहस्र-सहस्र कीर्तनीआ-सम्प्रदाय । स्थाने-स्थाने सभेइ परमानन्दे गाय ॥४११॥
अहर्निश परमानन्द कृष्णनाम ध्वनि । सकल भुवन पूर्ण कैला न्यासिमणि ॥४१२॥

गौरसुन्दर मेरे हृदय में निरन्तर (सर्वदा) स्फुरण हों ॥ ३६६ ॥ ब्राह्मण इस प्रकार श्लोक पाठ करके स्तुति कर रहे थे । श्रीवाचस्पतिजी ने इस प्रकार बारम्बार दण्डवत् प्रणाम की ॥ ३६७ ॥ पण्डित महेश्वर विशारदजी के चरणों में मेरा नमस्कार है अहो सार्वभौम व विद्यावाचस्पति जिनके पुत्र हैं ॥ ३६८ ॥ श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने वाचस्पतिजी को देखकर कृपादृष्टि करके बैठने के लिये कहा ॥ ३६६ ॥ खड़े होकर वाचस्पति ने हाथ जोड़कर कहा—महामति प्रभो ! मेरा एक निवेदन सुनिये ॥ ४०० ॥ आप स्वच्छन्द, परम आनन्दमय व दयामय हो आपके सब कर्म आपकी इच्छा से ही होते हैं ॥ ४०१ ॥ अपनी इच्छा से ही रहते हो अथवा अपनी इच्छा से ही चले जाते हो और जिन मनुष्यों पर अपने को प्रगट करने हों वे जान पाते हैं ॥ ४०२ ॥ अतः अपने कर्मों के आप ही साक्षी हो—आपको विधि निषेध और कौन करेगा ॥ ४०३ ॥ सच्ची बात न जानकर सब लोग अपने मनमें मुझे क्रूर कहकर मेरे ऊपर दोषारोपण करते थे ॥ ४०४ ॥ अपने घर में तुम्हें छुपाकर मैंने रख लिया—सब ही मनुष्य असली बात न जानकर ही ऐसा कहते थे ॥४०५॥ हे प्रभो ! आप आधे तिल मात्र समय के लिये थोड़ा बाहर आ जाँय तभी (आपको देखकर) मनुष्य मुझे ब्राह्मण कहेंगे ॥ ४०६ ॥ प्रभु ब्राह्मण के वचन सुनकर हँसे और उनकी इच्छा पूरी करने को तुरन्त बाहर आ गये ॥ ४०७ ॥ श्रीमहाप्रभु के बाहर होते ही उसी क्षण सब मनुष्य आनन्द सागर में डूब गये ॥ ४०८ ॥ चारों ओर मनुष्य दण्डवत् होकर गिरे जिसको जो भी स्तुति फुरन होती वही पाठ करता था ॥ ४०६ ॥ असंख्य मनुष्य हरिध्वनि करते थे सभी मनुष्य आनन्दसागर में डूब गये ॥ ४१० ॥ हजारों २ कीर्तनियों की टोलियाँ सब जगह-जगह बड़े आनन्द में गान कर रही थी ॥ ४११ ॥ दिन राति परम आनन्दमय कृष्ण नाम ध्वनि से

ब्रह्मलोक शिवलोक आदि यत लोक । ये सुखेर कलालेशे सभेइ अशोक ।।४१३।।
योगीन्द्र मुनीन्द्र मत्त ये सुखेर लेशे । ताहा करायेन पृथिवीते न्यासि वेशे ।।४१४।।
हेन सर्व शक्ति समन्वित भगवान् । ये पापिष्ठ मायावशे बोले अप्रमाण ।।४१५।।
तार जन्म कर्म विद्या ब्रह्मण्य आचार । सब मिथ्या सेइ पापी शोच्य सभाकार ।।४१६।।
भज-भज अरे भाइ चैतन्य चरणे । अविद्या बन्धन खण्डे याहार श्रवणे ।।४१७।।
जाहार स्मरणे सर्व-ताप-विमोचन । भज-भज हेन न्यासि मणिर चरण ।।४१८।।
एइ मत चतुर्दिगे देखि सङ्कीर्तन । आनन्दे भासेन प्रभु लइ सर्व-गण ।।४१९।।
आनन्दधाराय पूर्ण श्रीगौरसुन्दर । येन चतुर्दिगे बहे जाह्नवीर जल ।।४२०।।
बाह्य नाहि परानन्द सुखे आपनार । सङ्कीर्तन-आनन्द-विह्वल-अवतार ।।४२१।।
येइ सम्प्रदाय प्रभु देखेन सम्मुखे । ताहातेइ नृत्य करे परानन्द-सुखे ।।४२२।।
ताहारा कृतार्थ हेन माने आपनारे । हेन मते रङ्ग करे श्रीगौरसुन्दरे ।।४२३।।
विह्वलेर अग्रगण्य नित्यानन्द-राय । कखनो धरिया ताँरे आपने नाचाय ।।४२४।।
आपने कखनो नृत्य करे ताँर सङ्गे । आपने विह्वल आपनार प्रेम रङ्गे ।।४२५।।
नृत्य करे महाप्रभु करि सिंहनाद । ये नाद श्रवणे खण्डे सकल विषाद ।।४२६।।
यार रसे मत्त-वस्त्र ना जाने शङ्कर । हेन प्रभु नाचे सर्वलोकेर भितर ।।४२७।।
अनन्त ब्रह्माण्ड हय यार शक्तिवशे । से प्रभु नाचये पृथिवीते प्रेमरसे ।।४२८।।

सन्यासी चूड़ामणि ने सब भुवन (लोक) पूर्ण कर दिये ।। ४१२ ।। ब्रह्मलोक शिवलोक आदि जितने लोक हैं वे सब जिस सुख की कला के लेश मात्र से ही शोक रहित हैं ।। ४१३ ।। जिस सुख के लेश मात्र अंश से योगीन्द्र व मुनीन्द्र मतवाले हो जाते हैं उसी सुख को पृथ्वी पर सन्यासी वेश से प्रसारित करा रहे थे ।। ४१४ ।। ऐसे सर्व शक्तियुक्त भगवान् हैं, जो पापी माया के वशीभूत हो, उनको अप्रमाण कहता है।।४१५।। उसके जन्म कर्म विद्या ब्राह्मणत्व व आचार-विचार सब मिथ्या हैं वह पापी सबसे अधिक शोचनीय है ।। ४१६ ।। भजो ! भजो ! हे भाई श्रीचैतन्य चरणों को भजो, जिनके यश-श्रवण से अविद्या का बन्धन नष्ट हो जाता है ।। ४१७ ।। जिनके स्मरण करने से सब दाह मिट जाते हैं ऐसे सन्यासी शिरोमणि (गौरचन्द्र) के चरण-कमलों का भजन करो ।। ४१८ ।। इस प्रकार चारों ओर संकीर्तन होते देखकर सब भक्तों के साथ प्रभु आनन्द-विभोर हो गये ।। ४१९ ।। जिस प्रकार गंगाजी का जल चारों ओर बढ़ता है, उसी प्रकार श्री-गौरसुन्दर आनन्दधारा से परिपूर्ण हो रहे थे ।। ४२० ।। निज परमानन्द सुख में उन्हें बाह्य ज्ञान नहीं रहा, क्योंकि वे संकीर्तन आनन्द के विह्वल अवतार थे ।। ४२१ ।। श्रीप्रभु जिस टोली को सामने देखते उसी के साथ नाचते हुए परमानन्द सुख पाते थे ।। ४२२ ।। वे टोलियाँ भी अपने को कृतार्थ मानती थीं इस भाँति श्रीगौरसुन्दर खेल करते थे ।। ४२३ ।। विह्वलों के अग्रगण्य श्रीनित्यानन्दराय कभी उनको पकड़कर स्वयं नचाने लगते थे ।। ४२४ ।। कभी उनके साथ आप भी नृत्य करते और प्रेमरङ्ग में आपही विह्वल हो जाते ।। ४२५ ।। श्रीमहाप्रभु सिंहनाद करके नृत्य करते थे उस नाद के सुनने से सब विषाद नष्ट हो जाते थे।।४२६।। जिनके रस से मतवाले होकर शिवजी वस्त्र नहीं पहिनते वही प्रभु सब लोगों की टोलियों में भी नाचते थे

ये प्रभु देखिते सर्व वेदे काम्य करे। से प्रभु नाचये सर्वजनेर गोचरे ॥४२६॥
एइ मत सर्वलोक महानन्दे भासे। संसार तरिल चैतन्येर परकाशे ॥४३०॥
यतेक आइसे लोक चतुर्दिग हैते। सभेइ आसिया देखे प्रभुरे नाचिते ॥४३१॥
वाह्य नाहि प्रभुर विह्वल प्रेमरसे। देखि सर्वलोक सुख-सिन्धु-माझे भासे ॥४३२॥
कुलियार प्रकाशे यतेक पापी छिल। उत्तम मध्यम नीच-सभे पार हैल ॥४३३॥
कुलिया ग्रामेते चैतन्येर परकाश। इहार श्रवणे छिण्डे सर्व-कर्म-पाश ॥४३४॥
सकल जीवेरे प्रभु दरशन दिया। सुखमय चित्तवृत्ति सभार करिया। ४३५॥
तवे सब आपन पार्षद गण लैया। बसिलेन महाप्रभु वाह्य प्रकाशिया ॥४३६॥
हेनइ समये एक आसिया ब्राह्मण। दृढ़ करि धरिलेन प्रभुर चरण ॥४३७॥
विप्र बोले प्रभु मोर एक निवेदन। आछे, ताहा कहों यदि खाणि देह मन ॥ ४३८ ॥
भक्तिर प्रभाव मुञि पापी ना जानिया। बहु निन्दा करियाछों आपना खाइया ॥ ४३६ ॥
कलियुगे किसेर वैष्णव, कि कीर्तन। एइ मत अनेक वल्गिलुँ अनुक्षण ॥ ४४० ॥
एवे प्रभु! से पापिष्ठ कर्म स्मङरिते। अनुक्षण चित्त मोर दहे सर्व मते ॥४४१॥
संसार-उद्धार-सिंह तोमार प्रताप। कह मोर केमते खण्डये सेइ पाप ॥ ४४२ ॥
शुनि प्रभु अकैतव विप्रेर वचन। हासिया उपाय कहे श्रीशचीनन्दन ॥ ४४३ ॥
शुन विप्र विष करि ये मुखे भक्षण। सेइ मुखे करि यदि अमृत-ग्रहण ॥ ४४४ ॥

॥ ४२७ ॥ अनन्त ब्रह्माण्ड जिनकी शक्ति के वश में रहते हैं वे ही प्रभु प्रेमरस में आकर पृथ्वी पर नाचते थे ॥ ४२८ ॥ जिन प्रभु के दर्शन के लिये सब वेद कामना करते हैं वे ही प्रभु सब जनों के सामने नाच रहे थे ॥ ४२६ ॥ इस प्रकार सब लोग बड़े प्रेमानन्द में डूब रहे थे अहो श्रीचैतन्यदेव के प्रकाश में संसार तर गया ॥ ४३० ॥ जितने मनुष्य चारों ओर से आ रहे थे वे सब ही प्रभु को नाचते हुए देखते थे ॥ ४३१ ॥ प्रभु को वाह्य ज्ञान नहीं था, प्रेमरस में विह्वल हो रहे थे यह देखकर सब लोग सुख-सिन्धु में डूब गये॥४३२॥ कुलिया ग्राम के आस-पास जितने उत्तम-मध्यम व नीच प्रकार के पापी मनुष्य थे वे सब ही पार हो गये ॥ ४३३ ॥ कुलिया ग्राम में श्रीचैतन्यदेव का प्रकाश हुआ सुनकर सब कर्मों का बन्धन टूट जाते हैं ॥४३४॥ सब जीवों को प्रभु ने दर्शन देकर उनकी चित्तवृत्ति सुखमय कर दी ॥ ४३५ ॥ तब श्रीप्रभु वाह्य दशा में आकर अपने सब पार्षदों के साथ बैठ गये ॥ ४३६ ॥ उसी समय एक ब्राह्मण ने आकर प्रभु के चरण दृढ़ता से पकड़ लिये ॥ ४३७ ॥ ब्राह्मण ने कहा "प्रभो मेरा एक निवेदन है यदि क्षमा मात्र देओ तो कहूँ?" ॥ ४३८ ॥ भक्ति का प्रभाव न जानकर मुझ पापी ने (आत्म-हत्या करके) बहुत निन्दा की ॥ ४३६ ॥ "कलि-युग में कैसा वैष्णव और कैसा कीर्तन है?" इसी प्रकार हर समय बकता रहता था ॥ ४४० ॥ हे प्रभो! उन पाप कर्मों को अब स्मरण करते हुए क्षण-क्षण में मेरा चित्त सब तरह से जलता है ॥४४१॥ आपका प्रताप संसार उद्धार करने के लिये सिंहरूप हैं, सो मेरा वह पाप किस प्रकार नाश होगा—बताइये ? ॥ ४४२ ॥ ब्राह्मण के अकपट वचन सुनकर श्रीशचीनन्दन हँसकर उपाय बताने लगे ॥ ४४३ ॥ हे ब्राह्मण! सुनो जिस जिस मुख से विष भक्षण किये हो यदि उसी मुख से अमृत भी ग्रहण करो तो विष जीर्ण होकर देह अमर

विषो हय जीर्ण, देह हयत अमर । अमृत प्रभावे एवे शुनह उत्तर ॥ ४४५ ॥
ना जानिञा यत तुमि करिले निन्दन । से केवल विष तुमि करिले भोजन ॥ ४४६ ॥
परम-अमृत एवे कृष्ण-गुण-नाम । निरवधि सेह मुखे कर तुमि पान ॥ ४४७ ॥
ये मुखे करिले तुमि वैष्णव निन्दन । सेइ मुखे कर तुमि वैष्णव बन्दन ॥ ४४८ ॥
सभा हैते भक्तिर महिमा बाढ़ाइया । गीत कवित्त्व विप्र कर तुमि गिया ॥ ४४९ ॥
कृष्ण-यश-परानन्द-अमृते तोमार । निन्दा-विष यत सब करिव संहार ॥ ४५० ॥
एइ कहि सभारे, तोमारे ना केवल । ना जानिञा निन्दा करिलेक ये सकल ॥४५१॥
आर यदि निन्दा-कर्म कभू ना आचरे । निरवधि विष्णु-वैष्णवेर स्तुति करे ॥४५२॥
ए सकल पाप घूचे एइशे उपाये । कोटि प्रायश्चित्ते ओ अन्यथा नाहि जाये ॥४५३॥
चल विप्र कर गिया भक्तिर वर्णन । तबे से तोमार सर्व-पाप-विमोचन ॥४५४॥
सकल वैष्णव श्रीमुखेर वाक्य शुनि । आनन्दे करेन जय-जय हरिध्वनि ॥४५५॥
निन्दा पातकेर एइ प्रायश्चित्त सार । कहिलेन श्रीगौरसुन्दर अवतार ॥४५६॥
एइ आज्ञा ये ना माने, निन्दे साधुजन । दुख सिन्धु-माझे भासे सेइ पापिगण ॥४५७॥
चैतन्येर आज्ञा ये मानये वेद सार । सुखे सेइ गण हय भवसिन्धु-पार ॥४५८॥
विप्रेरे करिते प्रभु तत्त्व-उपदेश । क्षणेके पण्डित-देवानन्देर प्रवेश ॥ ४५९ ॥
गृहवासे जखने आछिला गौरचन्द्र । तखने जतेक करिलेन परानन्द ॥ ४६० ॥
से समये देवानन्द पण्डितेर मने । नहिल विश्वास, ना देखिला ते-कारणे ॥४६१॥

हो जायगा, सुनो यही इसका उत्तर ॥ ४४४-४४५ ॥ अनजाने में जानकर तुमने जितनी निन्दा की वह तुमने केवल विष ही खाया ॥ ४४६ ॥ अब उसी मुख से परम अमृतमय कृष्ण के गुण व नामों का पान (गान) करो ॥४४७॥ जिन मुख से तुमने वैष्णवों की निन्दा की थी, उसी मुख से तुम वैष्णव बन्दना करो ।४४८॥ हे विप्र ! सबके सामने भक्ति की महिमा का विस्तार करो तथा पद रचना करके गान करो ॥ ४४९ ॥ कृष्ण यश का परानन्द अमृत तुम्हारे निन्दारूप विष का सम्पूर्ण नाश कर देगा ॥४५०॥ यह बात मैं केवल तुम्हारे लिये ही नहीं वरन उन सभी के लिये कहता हूँ जिनने भी अनजान में वैष्णव निन्दा की हो ॥ ४५१ ॥ यदि निन्दा कर्म फिर कभी आचरण नहीं करोगे तथा विष्णु व वैष्णवों की निरन्तर स्तुति करते रहोगे तो॥४५२॥ इसी उपाय से यह सब पाप दूर हो जावेंगे अन्यथा करोड़ों प्रायश्चित्त करने पर भी वे नहीं जाँयगे ॥४५३॥ हे विप्र ! जाओ भक्ति का वर्णन करो तब ही तुम्हारे सब पाप दूर होंगे ॥ ४५४ ॥ श्रीमुख के वाक्य सुनकर सब वैष्णव आनन्द से जय हो, जय हो कहकर हरिध्वनि करने लगे ।४५५॥श्रीगौरसुन्दर अवतार ने वैष्णव निन्दा के पाप के प्रायश्चित्त का यह सार कहा ॥ ४५६ ॥ इस आज्ञा को न मानकर जो पापी साधु-भक्त की निन्दा करेगा वह दुःख समुद्र में ही डुबकी लगावेगा ॥४५७॥ जो श्रीचैतन्यदेव की आज्ञा को वेदों का सार रूप मानेगा वह भक्त होकर सुख-पूर्वक संसार समुद्र पार हो जावेगा ॥ ४५८ ॥ श्रीप्रभु ब्राह्मण को तत्त्व उपदेश कर ही रहे थे कि उसी क्षण में देवानन्द पण्डितजी का आगमन हुआ ॥ ४५९ ॥ जिस समय श्री-गौरचन्द्र गृहस्थ थे उस समय परम आनन्द के जितने खेल प्रभु ने किये थे ॥ ४६० ॥ उस समय पंडित

देखिवार योग्यता आछये पुनि तान । तवे केने ना देखिला, कृष्ण से प्रमाण ॥४६२॥
सन्यास करिया यदि ठाकुर चलिला । तान भाग्ये वक्रेश्वर आसिया मिलिला ॥४६३॥
वक्रेश्वर पण्डित-चैतन्य,प्रियपात्र । ब्रह्माण्ड पवित्र जाँर स्मरणेइ मात्र ॥४६४॥
निरवधि कृष्णप्रेम-विग्रह विह्वल । जाँर नृत्ये देवासुर-मोहित सकल ॥४६५॥
अश्रु, कम्प, स्वेद, हास्य, पुलक, हुङ्कार । वैवर्ण्य,आनन्द मूर्च्छा-आदि ये विकार ॥४६६॥
चैतन्य कृपाय मात्र नृत्ये प्रवेशिले । सकल आसिया वक्रेश्वर-देहे मिले ॥४६७॥
वक्रेश्वर पण्डितेर उद्दाम विकार । सकल कहिते शक्ति आछये काहार ॥४६८॥
दैवे देवानन्द पण्डितेर भाग्यवशे । रहिलेन ताँहार आश्रमे प्रेमरसे ॥ ४६९ ॥
देखिया ताँहार तेजःपूर्ण कलेवर । त्रिभुवने अतुलित विष्णुभक्ति घर ॥ ४७० ॥
देवानन्द पण्डित परम सुखी मने । अकैतवे प्रेमभावे करेन सेवने ॥ ४७१ ॥
वक्रेश्वर पण्डित नाचेन यतक्षण । वेत्र हस्ते आपने बुलेन ततक्षण ॥ ४७२ ॥
आपने करेन सब लोक एक भिते । रहिले आपने धरि राखेन कोलेते ॥ ४७३ ॥
ताँहार अङ्गेर धूला वड़ भक्ति-मने । आपनार सर्व-अङ्गे करेन लेपने ॥ ४७४ ॥
ताँर सङ्गे थाकि, ताँर शुनिञा प्रकाश । तखने जन्मिल प्रभु चैतन्ये विश्वास ॥४७५॥
वैष्णव सेवार फल कहये पुराणे । तार साक्षी एइ सभे देख विद्यमाने ॥ ४७६ ॥
आजन्म धार्मिक उदासीन ज्ञानवान् । भागवत अध्यापना विने नाहि आन ॥४७७॥

देवानन्द के मनमें विश्वास नहीं होता था उसी कारण से दर्शन भी नहीं किये थे ॥ ४६१ ॥ उनकी देखने की योग्यता थी फिर भी क्यों नहीं देखा—यह तो कृष्ण ही जाने ॥४६२॥ जब श्रीगौरचन्द्र सन्यास लेने चले गये, तब उनके भाग्य से श्रीवक्रेश्वरजी आकर मिल गये ॥ ४६३ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डितजी श्रीचैतन्यदेव के प्रियपात्र थे जिनके स्मरण मात्र करने से ब्रह्माण्ड पवित्र हो जाता है ॥ ४६४ ॥ जिनका कृष्ण-प्रेममय विग्रह निरन्तर विह्वल रहता था तथा जिनके नृत्य पर देवता व असुर सभी प्रकृति के मनुष्य मोहित हो जाते थे ॥ ४६५ ॥ अश्रु-कम्प-स्वेद-हास्य-पुलक-हुङ्कार-वैवर्ण्य-आनन्द मूर्च्छा आदि प्रेम के जितने विकार हैं, वे श्री-चैतन्यदेव की कृपा से उनके नृत्य आरम्भ करते ही श्रीवक्रेश्वरजी के देह में सब आकर प्रगट हो जाते थे ॥ ४६६-४६७ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डितजी के उद्दाम प्रेम विकार को सम्पूर्ण रीति से कहने की कौन की सामर्थ्य है ? ॥ ४६८ ॥ दैवयोग से देवानन्द पण्डित के भाग्य से ही वे उनके आश्रम में प्रेमरस में विभोर हो (कुछ काल के लिये) ठहरे ॥ ४६९ ॥ त्रिभुवन में तुलना रहित विष्णुधारी उनके तेजः पूर्ण शरीर को देखकर श्री-देवानन्द पण्डित मनमें प्रसन्न हुए और उनने कपट शून्य प्रेमभाव से उनकी सेवा की ॥ ४७०-४७१ ॥ श्री-वक्रेश्वर पण्डित जितनी देर नाचते रहे उतनी देर तक स्वयं हाथ में वेत लेकर घूमते रहे ॥ ४७२ ॥ आपही कभी दर्शकों को एक ओर करते तो कभी अपनी जेट में उन्हें भरते थे ॥ ४७३ ॥ उनके अंग की धूलि को विशेष भक्ति पूर्वक मनसे अपने सब अङ्गों में लेपन करते थे तथा ॥ ४७४ ॥ उनके संग में रहकर तथा उनके भाव प्रकाशन को देख-सुन कर ही उन्हें उन दर्शकों को श्रीचैतन्यदेव में विश्वास उत्पन्न हुआ ॥४७५॥ वैष्णव सेवा का जो फल पुराणों में कहा है वह सब प्रत्यक्ष देखलो यही सब उसके साक्षी उपस्थित हैं

शान्त दान्त जितेन्द्रिय निर्लोभ निर्विषय। प्राय आर कतेक वा गुण ताने हय ॥४७८॥
तथापिह गौरचन्द्रे नहिल विश्वास। वक्रेश्वर-प्रसादे से कुबुद्धि-विनाश ॥४७९॥
'कृष्णसेवा हैतेओ वैष्णवसेवा बड़'। भागवत-आदि सर्वशास्त्रे कैल दढ़ ॥४८०॥
तथाहि "सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम्। निःसंशयस्तु तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम्" ॥६॥
एतेके वैष्णवसेवा परम उपाय। भक्तसेवा हैते से सभेइ कृष्ण पाय ॥४८१॥
वक्रेश्वर पण्डितेर सङ्गेर प्रभावे। गौरचन्द्र देखिते चलिला अनुरागे ॥४८२॥
वसिया आछेन गौरचन्द्र भगवान्। देवानन्द पण्डित हइला विद्यमान ॥४८३॥
दण्डवत् देवानन्द पण्डित करिया। रहिलेन एक-भिते संकोचित हैया ॥४८४॥
प्रभुओ ताहाने देखि सन्तोष हइला। विरल हइया ताने लइया वसिला ॥४८५॥
पूर्व तान यत किछु छिल अपराध। सकल क्षमिया प्रभु करिला प्रसाद ॥४८६॥
प्रभु बोले "तुमि ये सेविला वक्रेश्वर। अतएव हैला तुमि आमार गोचर ॥४८७॥
वक्रेश्वर पण्डित-कृष्णेर पूर्ण शक्ति। से-इ कृष्ण पाय, ये ताहारे करे भक्ति ॥४८८॥
वक्रेश्वर-हृदये कृष्णेर निज घर। कृष्ण नृत्य करेन नाचिते वक्रेश्वर ॥४८९॥
ये ते-स्थाने यदि वक्रेश्वर-सङ्ग हय। सेइ स्थान सर्वतीर्थ-श्रीवैकुण्ठमय ॥४९०॥
शुनि विप्र-देवानन्द प्रभुर वचन। जोड़हस्ते लागिलेन करिते स्तवन ॥४९१॥
"जगत-उद्धार लागि तुमि कृपामय। नवद्वीप-माझे आसि हइला उदय ॥४९२॥

॥४७६॥ जो जन्म से ही बड़े धार्मिक ज्ञानवान् व जगत् से उदासीन थे भागवत पठन पाठन के अतिरिक्त और कुछ न करते थे ॥ ४७७ ॥ तथा शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, निर्लोभ व विषय शून्य भी थे-प्राय और भी कितने ही गुण उनमें थे ॥ ४७८ ॥ तथापि श्रीगौरचन्द्र में उन्हें विश्वास नहीं हुआ था अब श्रीवक्रेश्वर अनुग्रह से उनकी वह कुबुद्धि नष्ट हो गई ॥ ४७९ ॥ कृष्ण सेवा से भी वैष्णवों की सेवा श्रेष्ठ है इसको भागवत आदि सब शास्त्रों ने पुष्ट किया है ॥ ४८० ॥ जो केवल मात्र अच्युत भगवान् की सेवा करते हैं, उनको सिद्धि होती है अथवा नहीं होती उनके विषय में ऐसा संशय है, परन्तु जिनका चित्त उस भगवान् के भक्तों की सेवा में निरत है उनके लिये इस प्रकार का संशय कदापि होता ही नहीं ॥ ६ ॥ इसी से वैष्णव सेवा ही परम उपाय है जो भक्तों की सेवा करेंगे वे सब ही कृष्णचन्द्र को प्राप्त होंगे ॥ ४८१ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डित के सङ्ग के प्रभाव से श्रीदेवानन्दजी गौरचन्द्र के दर्शन करने को बड़े अनुराग से चले ॥ ४८२ ॥ श्रीगौरचन्द्र भगवान् विराजमान थे तब ही देवानन्द पण्डित सामने आ उपस्थित हुए तथा ॥ ४८३ ॥ (देवानन्द पण्डित ने) दण्डवत् की और संकुचित होकर एक ओर को खड़े हो गये ॥ ४८४ ॥ श्रीगौरचन्द्र भी उनको देखकर सन्तुष्ट हुए तथा उनके साथ एकान्त में बैठे ॥ ४८५ ॥ उनका जो कुछ पहिला अपराध था वह श्रीगौरचन्द्र ने क्षमा करके अनुग्रह किया ॥ ४८६ ॥ श्रीप्रभु बोले "तुमने जो श्रीवक्रेश्वर की सेवा की है, इसी से तुम मेरे सम्मुख हो ॥ ४८७ ॥ श्रीपण्डित वक्रेश्वरजी कृष्ण की पूर्ण शक्ति हैं जो उनकी भक्ति करता है वही कृष्ण (दर्शन) लाभ करता है ॥ ४८८ ॥ श्रीवक्रेश्वर का हृदय श्रीकृष्ण का निज घर है वक्रेश्वर के नाचने पर कृष्ण भी नृत्य करते हैं ॥ ४८९ ॥ जिस जिस स्थान में श्रीवक्रेश्वर का संग होय वह सब स्थान श्रीभागवतमय तीर्थ हैं ॥ ४९० ॥ देवानन्द ब्राह्मण श्रीप्रभु के वचन सुनकर हाथ जोड़कर

मुञि पापी दैव दोषे तोमा ना जानिलूँ । तोमार परमानन्दे वंचित हइलूँ ॥४६३॥
सर्व-भूत-कृपालुता तोमार स्वभाव । एइमागों 'तोमाते हउक अनुराग' ॥४६४॥
एक निवेदन मोर तोमार चरणे । करिमू उपाय तार वलिवा आपने ॥४६५॥
मुञि अ-सर्वज्ञ-सर्वज्ञेर ग्रन्थ लैया । भागवत पढ़ाङ आपने अज्ञ हैया ॥४६६॥
किवा बाखानिमु पढ़ाइमु 'वा केमने । इहा प्रभु आज्ञा मोरे करिवा आपने ॥४६७॥
शुनि तान वाक्य गौरचन्द्र भगवान् । कहिते लागिला भागवतेर प्रमाण ॥४६८॥
"शुन विप्र भागवते एइ वाखानिवा । 'भक्ति' बिनु आर किछु मुखे ना आनिवा ॥४६९॥
आद्य-मध्य-अन्त्ये भागवते एइ कय । विष्णुभक्ति नित्य सिद्ध अक्षय अव्यय ॥५००॥
अनन्त ब्रह्माण्डे सवे सत्य विष्णुभक्ति । महाप्रलये ओ यार थाके पूर्ण शक्ति ॥५०१॥
मोक्ष दिया भक्ति गोप्य करे नारायणे । हेन भक्ति ना जानि कृष्णेर कृपा विने ॥५०२॥
भागवत शास्त्रे से भक्तिर तत्त्व कहे । तेञि भागवतसम कोन शास्त्र नहे ॥५०३॥
येन रूप मत्स्य-कूर्म-आदि अवतार । आविर्भाव तिरोभाव येन ता' समार ॥५०४॥
एइमत भागवत कारो कृत नय । आविर्भाव तिरोभाव आपनेइ हय ॥५०५॥
भक्ति योगे भागवत व्यासेर जिह्वाय । स्फुर्ति से हइल मात्र कृष्णेर कृपाय ॥५०६॥
ईश्वरेर तत्त्व येन बूझये ना याय । एइ मत भागवत-सर्व शास्त्रे गाय ॥५०७॥
'भागवत बूझि' हेन यार आछे ज्ञान । से-इ नाहि बूझे भागवतेर प्रमाण ॥५०८॥

स्तुति करने लगे-॥ ४६१ ॥ हे कृपामय तुम जगत् उद्धार के निमित्त नवद्वीप में आकर प्रगट हुए हो ॥४६२॥ मैं पापी अपने दुर्दैव के दोष से आपको पहिचान नहीं सका तथा आपकी परम आनन्दमयी लीलाओं से वंचित रहा ॥ ४६३ ॥ आपका स्वभाव तो सब जीवों पर दया करने का है अब मैं आपसे यही माँगता हूँ कि आप में मेरा अनुराग हो ॥ ४६४ ॥ आपके चरणों में एक और निवेदन करता हूँ उसका भी उपाय कृपा करके आप स्वयं बतावें ॥ ४६५ ॥ "मैं तो सर्वज्ञ नहीं हूँ परन्तु सर्वज्ञों का ग्रन्थ भागवत पढ़ाता हूँ" और स्वयं मूर्ख हूँ ? ॥ ४६६ ॥ तो कैसे उसकी व्याख्या करूँ व किस प्रकार पढ़ाऊँ ? प्रभो यह मेरे लिये स्वयं आज्ञा कीजिये ॥ ४६७ ॥ गौरचन्द्र भगवान् उनके वाक्य सुनकर भागवत के ही प्रमाण कहने लगे ॥ ४६८ ॥ हे विप्र ! सुनो भागवत की इस प्रकार व्याख्या करो कि भक्ति के अतिरिक्त मुख से कुछ मत कहना ॥ ४६९ ॥ भागवत के आदि मध्य व अन्त में यही कहा है अक्षय तथा व्यय रहित विष्णु भक्ति ही नित्य सिद्ध है ॥ ५०० ॥ अनन्त ब्रह्माण्डों में केवल विष्णु-भक्ति ही सत्य है महाप्रलय में भी उसकी पूर्ण शक्ति रहती है ॥ ५०१ ॥ नारायण मोक्ष देकर भक्ति को छुपा लेते हैं ऐसी भक्ति को कृष्ण की कृपा बिना नहीं जान सकते ॥ ५०२ ॥ भागवत शास्त्र में उसी भक्ति का तत्त्व कहा है इसी भागवत के समान कोई शास्त्र नहीं है ॥ ५०३ ॥ जिस प्रकार मत्स्य कूर्म आदि होते हैं तथा उन सब का आविर्भाव तिरोभाव जैसे होता है ॥ ५०४ ॥ इसी प्रकार भागवत भी किसी की रचित नहीं है अपनी इच्छा से ही प्रगट व अप्रगट होते हैं ॥५०५॥ कृष्ण की कृपा से ही भक्ति-योग के द्वारा श्रीव्यासजी की जिह्वा पर श्रीभागवत का स्फुरण मात्र हुआ था ॥ ५०६ ॥ ईश्वर का तत्त्व जिस प्रकार समझा नहीं जाता उसी प्रकार का भागवत तत्त्व भी

अज्ञ हइ भागवते ये लय शरण । भागवत-अर्थ तार हय दरशन ॥५०९॥
प्रेममय भागवत-कृष्णेर श्रीअङ्ग । याहाते कहेन यत योग्य कृष्ण-रङ्ग ॥५१०॥
वेदशास्त्र पुराण कहिया वेदव्यास । तथापि चित्तेर नाहि पायिला प्रकाश ॥५११॥
यखने श्रीभागवत जिह्वाय स्फुरिल । ततक्षणे चित्तवृत्ति प्रसन्न हइल ॥५१२॥
हेन ग्रन्थ पढ़ि केहो पड़ये सङ्कटे । शुन विप्र तोमारे कहिये अकपटे ॥५१३॥
आद्य-मध्य-अवसाने तुमि भागवते । भक्तियोग मात्र वाखानिह सर्वमते ॥५१४॥
तवे आर तोमार नहिव अपराध । सेइक्षणे चित्तवृत्त्ये पाइव प्रसाद ॥५१५॥
सकल शास्त्रेर मात्र 'कृष्णभक्ति' कय' । विशेषत भागवत-भक्तिरस मय ॥५१६॥
चल तुमि याह अध्यापना कर' गिया । कृष्णभक्ति-अमृत सभारे बुझाइया ॥५१७॥
देवानन्द पण्डित प्रभुर वाक्य शुनि । दण्डवत् प्रणाम करिला भाग्य' मानि ॥४१८॥
प्रभुर चरण काय-मने करि ध्यान । चलिलेन विप्र करि अनेक प्रणाम ॥५१९॥
सभारेइ एइ भागवतेर व्याख्यान । कहिलेन श्रीगौरसुन्दर भगवान् ॥५२०॥
'भक्तियोग' मात्र भागवतेर व्याख्यान । आद्य-मध्य-अन्त्ये कभू ना बूझाने आन ॥५२१॥
ना वाखाने भक्ति, भागवत ये पढाय । व्यर्थ वाक्य व्यय करे, अपराध पाय ॥५२२॥
मूर्तिमन्त भागवत-भक्तिरस मात्र । इहा बूझे-ये हय कृष्णेर कृपापात्र ॥५२३॥
भागवत पुस्तको थाकये यार घरे । कौन अमङ्गल नाहि याय तथाकारे ॥५२४॥

है, यही सर्व शास्त्र कहते हैं ॥ ५०७ ॥ "मैं भागवत को समझता हूँ" जो ऐसा समझता है वही भागवत के तथ्य प्रमाण को नहीं समझता ॥ ५०८ ॥ जो मूर्ख बनकर भागवत की शरण लेगा उसी को भागवत का दिव्य अर्थ देख पड़ेगा ॥ ५०९ ॥ भागवत प्रेममय है तथा श्रीकृष्ण का श्रीअङ्ग ही है जिसमें कृष्ण के समस्त शुभ प्रेमरङ्ग वर्णन हुआ है॥५१०॥वेदव्यासजी ने वेद-शास्त्र व पुराणों की रचना की परन्तु चित्त में प्रकाश नहीं हुआ ॥ ५११ ॥ जिस समय श्रीमद्भागवत जीभ पर स्फुरण हुई उसी क्षण चित्तवृत्ति खिल उठी॥५१२॥ ऐसे ग्रन्थ को भी पढ़कर कोई २ सङ्कट में पड़ जाते हैं, हे विप्र ! सुनो तुमसे निष्कपट होकर कहता हूँ॥५१३॥ तुम सब प्रकार से भागवत के आदि मध्य व अन्त में एक मात्र भक्ति-योग की व्याख्या करना ॥ ५१४ ॥ तब तुमसे और अपराध नहीं होगा तथा उसी क्षण चित्तवृत्ति में प्रसन्नता पाओगे ॥ ५१५ ॥ वैसे तो सब ही शास्त्रों में केवल कृष्ण-भक्ति का ही वर्णन है, परन्तु भागवत तो विशेष रूप से भक्ति रसमय ग्रन्थ है ॥५१६॥ कृष्ण-भक्ति का अमृत सब को समझाओ-बस इसी प्रकार जाकर सबको भागवत पढ़ाना ॥५१७॥ देवानन्द पण्डित ने प्रभु के वाक्य सुनकर अपना बड़ा भाग्य माना और दण्डवत् प्रणाम की ॥ ५१८ ॥ प्रभु के चरणों को शरीर व मन से ध्यान करके तथा अनेक प्रणाम करके पंडित देवानन्द चल दिये ॥ ५१९ ॥ श्रीगौरसुन्दर भगवान ने श्रीमद्भागवत की यह प्रशंसा सब ही से कही ॥ ५२० ॥ भागवत की व्याख्या के आदि मध्य व अन्त में एक मात्र भक्ति-योग के सिवाय अन्य कुछ भी कभी बोध मत कराना ॥ ५२१ ॥ जो भागवत पढ़ाते और भक्ति का वर्णन नहीं करते वे शब्दों का व्यर्थ व्यय तो करते ही हैं-साथ ही अपराध कमाते हैं ॥ ५२२ ॥ श्रीभागवत तो साकार भक्तिरस ही है इसे तो वही समझेगा जो (भागवत का)

भागवत पूजिले कृष्णेर पूजा हय। भागवत-पठन-श्रवणे भक्ति पाय ।। ५२५ ।।
दुइ स्थाने 'भागवत' नाम शुनि मात्र। ग्रन्थ भागवत आर कृष्ण कृपापात्र ।। ५२६ ।।
नित्य पूजे पढ़े शुने चाहे भागवत। सत्य-सत्य सेहो हइबेक सेइ मत ।। ५२७ ।।
हेन भागवत कोन दुष्कृति पढ़िया। नित्यानन्द निन्दा करे तत्त्व ना जानिया ।। ५२८ ।।
भागवत रस-नित्यानन्द मूर्तिमन्त। इहा जाने-ये हय परम भाग्यवन्त ।। ५२९ ।।
निरबधि नित्यानन्द सहस्र बदने। भागवत रस से गायेन अनुक्षणे ।। ५३० ।।
आपनेइ नित्यानन्द अनन्त यद्यपि। तथापिह पार नाहि पायेन अद्यापि ।। ५३१ ।।
हेन भागवत हेन अनन्त अपार। इहाते कहिल सबे भक्तिरस सार ।। ५३२ ।।
देवानन्द पण्डितेर लक्ष्ये सभा कारे। भागवत अर्थ बुझाइलेन ईश्वरे ।। ५३३ ।।
एइ मत ये-ये जन आइसे बूझिते। सभारेइ प्रतिकार करिला सु-रीते ।। ५३४ ।।
कुलिया ग्रामेते आसि श्रीकृष्णचैतन्य। हेन नाहि जारे प्रभु ना करिला धन्य ।।५३५।।
सर्व लोक सुखी हैला प्रभुरे देखिया। पुनः पुन सभे देखे नयन भरिया ।।५३६।।
मनोरथ पूर्ण हैल देखि सर्वलोक। आनन्दे भासये पासरिया दुःख-शोक ।।५३७।।
ए सब विलास ये शुनये हर्ष-मने। श्रीचैतन्य सङ्ग पाय सेइ सब जने ।।५३८।।
यथा तथा जन्मुक-सभार श्रेष्ठ हय। कृष्ण-यश शुनिले कखनो मन्द नय ।।५३९।।
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ।।५४०।।

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे नीलाचलविलासादि-वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

कृपापात्र होगा ।। ५२३ ।। जिसके घर में भागवत की पोथी विराजमान है उसके होने से ऐसा कौन अमङ्गल है जो न जावे ।। ५२४ ।। भागवत की पूजा करने से श्रीकृष्ण की पूजा हो जाती है तथा भागवत के पाठ व श्रवण करने से भक्ति लाभ होती है ।। ५२५ ।। "भागवत" शब्द दो बातों ही के लिये सुना जाता है-एक तो ग्रन्थ भागवत दूसरा कृष्ण-भक्त ।। ५२६ ।। जो नित्य भागवत पूजन-पाठ व श्रवण करता है वह सत्य में भागवत ही हो जाता है मैं सत्य कहता हूँ ।। ५२७ ।। ऐसी भागवत को कोई पापी मनुष्य पढ़कर तत्त्व न समझने से निन्दानन्द की निन्दा करते हैं ।। ५२८ ।। भागवत का रस तो मूर्तिमान नित्यानन्द है इसको जो जानता है वह बड़ा भाग्यवान है ।। ५२९ ।। श्रीशेषजी सहस्र मुखों से निरन्तर भागवत रस को आदर से गान करते रहते हैं ।। ५३० ।। यद्यपि श्रीशेषजी स्वयं नित्यानन्द स्वरूप ही हैं तथापि आज तक इसका पार नहीं पा सके ।। ५३१ ।। भागवत ऐसी अनन्त अपार है इसमें केवल भक्ति रस का सार ही वर्णन किया है ।। ५३२ ।। श्रीप्रभु पाद ने देवानन्द पण्डित को लक्ष्य करके सभी को भागवत के अर्थ ज्ञान कराया ।।५३३।। इस प्रकार जितने भी मनुष्य पूछने आते हैं उन सभी को अच्छी प्रकार से समझाते थे ।। ५३४ ।। कुलिया ग्राम में आने पर ऐसा कोई नहीं हुआ जिसे श्रीचैतन्य प्रभु ने धन्य न किया हो ।।५३५।। प्रभु के दर्शन करके सब मनुष्य सुखी हुए सब मनुष्य नेत्र भरकर बारम्बार दर्शन कर रहे थे ।। ५३६ ।। दर्शन करके सब मनुष्य पूर्ण मनोरथ हो गये आनन्द में डूब गये तथा दुःख-शोक जाता रहा ।। ५३७ ।। जो इन सब विलासों को प्रसन्न मनसे सुनेगा वे सभी श्रीचैतन्यचन्द्र सङ्ग लाभ करेंगे ।। ५३८ ।। चाहे कहीं भी जन्म हो वे सभी श्रेष्ठ हैं क्योंकि कृष्ण-यश सुनना कभी बुरा नहीं होता ।।५३९।। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) श्रीकृष्ण-चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को हृदय में धारण करके उनके युगल चरण-कमल की महिमा गान करते हैं।।५४०।।

चतुर्थोऽध्यायः

जय जय जय कृपासिन्धु गौरचन्द्र । जय जय सकल-मङ्गल-पद द्वन्द ॥ १ ॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य न्यासिराज । जय जय चैतन्येर भकत समाज ॥ २ ॥
हेन मते प्रभु सर्व जीव उद्धारिया । मथुराय चलिलेन भक्तगोष्ठी लैया ॥ ३ ॥
गङ्गा तीरे-तीरे प्रभु लइलेन पथ । स्नान-पाने गङ्गार पूरिल मनोरथ ॥ ४ ॥
गौड़ेर निकटे गङ्गा तीरे एक ग्राम । ब्राह्मण समाज-तार 'रामकेलि' नाम ॥ ५ ॥
दिन-चारि-पाँच प्रभु सेइ पुण्य स्थाने । आसिया रहिला येन केहो नाहि जाने ॥ ६ ॥
सूर्येर उदय कि कखनो गोप्य हय । सर्वलोक शुनिलेन चैतन्य विजय ॥ ७ ॥
सर्वलोक देखिते आइसे हर्ष-मने । स्त्री-बालक-वृद्ध-आदि सज्जन-दुर्जने ॥ ८ ॥
निरवधि प्रभुर आवेशमय अङ्ग । प्रेमभक्ति बिनु आर नाहि कोनो रङ्ग ॥ ९ ॥
हुङ्कार, गर्जन, कम्प, पुलक, क्रन्दन । निरन्तर आछाड़ पड़ये घने घन ॥ १० ॥
निरवधि भक्तगण करेन कीर्तन । तिलार्द्धेको अन्य कार्य नाहि कोनो क्षण ॥ ११ ॥
हेन से क्रन्दन प्रभु करेन डाकिया । लोके शुने क्रोशेकेर पथे त थाकिया ॥ १२ ॥
यद्यपिह भक्तिरसे अज्ञ सर्वलोक । तथापिह प्रभु देखि सभार सन्तोष ॥ १३ ॥
दूरे थाकि सर्वलोक दण्डवत करि । सभे मेलि उच्च करि बोले 'हरि-हरि' ॥ १४ ॥
शुनि मात्र प्रभु हरिनाम लोक मुखे । विशेषे उल्लास बाढ़े परानन्द सुखे ॥ १५ ॥
'बोल बोल बोल' प्रभु बोले बाहु तुलि । विशेषे बोलेन सभे हइ कुतूहली ॥ १६ ॥

कृपासिन्धु गौरचन्द्र की जय हो ३ सकल मंगलस्वरूप आपके युगल चरणों की जय हो जय हो ॥१॥ सन्यासिराज श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो और चैतन्यचन्द्र के भक्त समाज की जय हो २ ॥२॥ इस प्रकार गौरचन्द्र सब जीवों का उद्धार करके भक्तमण्डली के साथ मथुरा को चल दिये ॥ ३ ॥ गौरचन्द्र ने गङ्गा के किनारे २ मार्ग गहण किया और स्नान-पान करके गङ्गा के मनोरथ पूर्ण किये ॥ ४ ॥ गौड़ नगर के निकट गङ्गा के किनारे रामकेलि नामक एक ग्राम उसमें ब्राह्मण समाज रहती थी ॥५॥ श्रीप्रभु उस पुण्य स्थान में चार-पाँच दिन इस प्रकार आकर रहे जिसमें कोई पहिचान न ले ॥ ६ ॥ सूर्य का उदय भी भला कभी गुप्त रह सकता है, सो सब लोगों को श्रीचैतन्यदेव का आगमन ज्ञात हो गया ॥ ७ ॥ स्त्री, बालक,वृद्ध आदि सभी तरह के भले-बुरे मनुष्य प्रसन्न मन से दर्शन करने को आने लगे ॥८॥ श्रीप्रभु का शरीर निरन्तर आवेश में रहा था–प्रेम-भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई भाव नहीं था ॥९॥ हुङ्कार-गर्जन-कम्प-पुलक व क्रन्दन होता रहता–पछाड़ खा-खाकर बारम्बार गिरते थे ॥ १० ॥ भक्तगण निरन्तर कीर्तन करते रहते थे अर्ध तिल मात्र समय के लिये भी किसी समय दूसरा काम नहीं करते थे ॥११॥ श्रीप्रभु ऐसे ऊँचे स्वर से रुदन करते थे कि एक कोस दूर मार्ग में खड़े होकर मनुष्य सुन लेते ॥ १२ ॥ यद्यपि जन साधारण भक्तिरस से अभिज्ञ ही थे तथापि श्रीप्रभु को देखकर सब प्रसन्न होते थे ॥ १३ ॥ सब मनुष्य दूर से ही दण्डवत् प्रणाम करते थे तथा सब मिलकर ऊँचे स्वर से हरि २ बोलने लगते ॥ १४ ॥ मनुष्यों के मुख से हरि नाम सुनने पर ही

हेन से आनन्द प्रकाशेन गौर-राय। यवनेओ बोले 'हरि' अन्येर कि दाय ॥ १७ ॥
यवनेओ दूरे थाकि करे नमस्कार। हेन गौरचन्द्रेर कारुण्य अवतार ॥ १८ ॥
तिलार्द्धेको प्रभुर नाहिक अन्य कर्म्म। निरन्तर लओयायेन सङ्कीर्तन धर्म्म ॥१९॥
चतुर्दिगे थाकि लोक आइसे देखिते। देखिया काहारो चित्त ना लय जाइते ॥२०॥
सभे मेलि आनन्दे करेन हरिध्वनि। निरन्तर चतुर्दिगे आर नाहि शुनि ॥ २१ ॥
निकटे यवन राजा-परम दुर्व्वार। तथापिह चित्ते भय ना जन्मे काहार ॥ २२ ॥
निर्भय हइया सर्वलोक बोले 'हरि'। दुःख-शोक घर-द्वार सकल पासरि ॥ २३ ॥
कोटोयाल गिया कहिलेक राजा स्थाने। एक न्यासी आसियाछे रामकेलि ग्रामे ॥२४॥
निरवधि करये हिन्दुर सङ्कीर्तन। ना जानि ताँहार स्थाने मिले कत जन ॥२५॥
राजा बोले 'कह-कह सन्यासी केमन। कि खाय, कि नाम, कैछे देहेर गठन ॥२६॥
कोटोयाल बोले 'शुन शुनह गोसाञि। ए मत अद्भुत कभु देखि शुनि नाञि ॥२७॥
सन्यासीर शरीरेर सौन्दर्य देखिते। कामदेव-सम हेन ना पारि वलिते ॥ २८ ॥
जिनिञा कनक कान्ति, प्रकाण्ड शरीर। आजानुलम्बित भुज नाभि सुगभीर ॥ २९ ॥
सिंह-ग्रीव, गजस्कन्ध, कमल-नयान। कोटि चन्द्रो से मुखेर ना करि समान ॥ ३० ॥
सुरङ्ग अधर, मुक्ता जिनिञा दशन। काम-शरासन येन भ्रू भङ्ग-पत्तन ॥ ३१ ॥
सुन्दर सुपीन बक्ष लेपित-चन्दन। महाकटितटे शोभे अरुण-वसन ॥ ३२ ॥

महाप्रभु को परानन्द-सुख के कारण विशेष प्रसन्नता होती थी ॥१५॥ प्रभु भुजाएँ उठाकर "बोल-बोल-बोल" कहते और कुतूहलवश सभी ओर जोर-जोर से हरिध्वनि करते ॥ १६ ॥ श्रीगौरराय ने ऐसा आनन्द प्रकाशित किया कि दूसरों की तो क्या बात है यवन भी हरि २ कह रहे थे ॥ १७ ॥ यवन भी दूर खड़े होकर नमस्कार कर रहे थे श्रीगौरचन्द्र का ऐसा करुणाशील अवतार है ॥ १८ ॥ श्रीप्रभु अर्ध तिल समय को भी अन्य कर्म से नहीं बिताते थे-निरन्तर संकीर्तन धर्म का ही पालन कराते रहते थे॥१९॥चारों ओर से मनुष्य देखने को चले आ रहे थे और दर्शन करके किसी का चित्त जाने को नहीं होता था ॥ २० ॥ सब मनुष्य एक साथ मिलकर हरिध्वनि कर रहे थे चारों ओर निरन्तर और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था ॥ २१ ॥ पास में ही अति दुर्दमनीय यवन राज का स्थान था तथापि किसी के मनमें भय नहीं होता था ॥२२॥ सब मनुष्य दुःख-शोक-घर-द्वार आदि को भूलकर निर्भय होकर हरि २ बोल रहे थे ॥ २३ ॥ कोतवाल ने राज-दर्बार में जाकर कहा कि रामकेलि ग्राम में एक सन्यासी आया है ॥ २४ ॥ निरन्तर हिन्दू-संकीर्तन कराता है न मालूम उसके पास कितने आदमी आ जाते हैं ? ॥ २५ ॥ राजा ने पूँछा कहो सन्यासी कैसा है ? क्या खाता है, क्या नाम है तथा उसकी देह गठन कैसी है ॥ २६ ॥ कोतवाल बोला "प्रभो ! सुनो, ऐसा अद्भुत पुरुष कभी देखा न सुना" ॥ २७ ॥ सन्यासी के शरीर की सुन्दरता कामदेव के समान दीखती है-कुछ कहा नहीं जाता ॥ २८ ॥ स्वर्ण की कान्ति को भी जीतने वाला बड़े आकार का शरीर है, भुजाएँ घुटनों तक हैं तथा नाभि देश गम्भीर है ॥ २९ ॥ सिंह की सी ग्रीवा, हाथी के से कन्धे व कमल समान नेत्र हैं करोड़ों चन्द्रमा भी उसके मुख के समानता नहीं करते ॥३०॥ सुन्दर रङ्गीन होंठ हैं, मोतियों की पंक्ति को

अरुण कमल येन चरण युगल । दश नख येन दश दर्पण निर्मल ॥ ३३ ॥
कोनो वा राज्येर कोनो राजार नन्दन । ज्ञान पाइ न्यासी हइ करये भ्रमण ॥ ३४ ॥
नवनीत हैते ओ कोमल सब अङ्ग । ताहाते अद्‌भुत शुन आछाड़ेर रङ्ग ॥ ३५ ॥
एक दण्डे पड़ेन आछाड़ शत-शत । पाषाण भाङ्गये तभूँ अङ्ग नहे क्षत ॥ ३६ ॥
निरन्तर सन्यासीर उर्द्ध रोमावली । पनसेर प्राय अङ्गे पुलक मण्डली ॥ ३७ ॥
क्षणे-क्षणे सन्यासीर हेन कम्प हय । सहस्र जनेओ धरिवारे शक्त नय ॥ ३८ ॥
दुइ लोचनेर जल अद्‌भुत देखिते । कत नदी वहे हेन ना पारि बलिते ॥ ३९ ॥
कखनो वा सन्यासीर हेन हास्य हय । अट्ट-अट्ट हास्ये प्रहरेक क्षमा नय ॥ ४० ॥
कखनो मूर्च्छित हय शुनिञा कीर्तन । सभे भय पाय, किछु ना थाके चेतन ॥४१॥
बाहु तुलि निरन्तर वोले हरिनाम । भोजन शयन आर नाहि किछु काम ॥ ४२ ॥
चतुर्दिगे हैते लोक आइसे देखिते । काहारो ना लय चित्त घरेरे जाइते ॥४३॥
कत देखियाछे आमि-सब योगी ज्ञानी । ए मत अद्‌भुत कभू नाहि देखि शुनि ॥४४॥
कहिलाङ एइ महाराज तोमा स्थाने । देश धन्य हैल ए पुरुष आगमने ॥४५॥
ना खाय ना लय कारो, ना करे सम्भाष । सबे निरवधि एक कीर्तन विलास ॥४६॥
यद्यपि यवन राजा परम दुर्वार । कथा शुनि चित्ते बड़ हैल चमत्कार ॥ ४७ ॥
केशव-खाने राजा डाकि आनाइया । जिज्ञासये राजा बड़ विस्मय हइया ॥४८॥

जीतने वाले दाँत हैं, कामदेव के धनुष के समान उसके भौंओं का चलना है ॥ ३१ ॥ चन्दन लगाये हुए-सुन्दर अति स्थूल वक्षस्थल है तथा सुन्दर कमर में गेरुआ वस्त्र शोभा पा रहा है॥३२॥ रक्त कमल जैसे दोनों चरण हैं दसों नख दसों दर्पण जैसे थे ॥३३॥ किसी राज्य के किसी राज-पुत्र जान पड़ते हैं जो सन्यासी बन कर भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ शरीर के सब अङ्ग माखन से भी कोमल हैं उस पर भी अद्‌भुत पछाड़ें खाता है यह विलक्षणता सुनो ॥ ३५ ॥ एक दण्ड में सौ-सौ बार पछाड़ें खाते हैं जिससे पत्थर टूट जाते हैं तो भी शरीर में चोट नहीं करती ॥ ३६ ॥ उस सन्यास के शरीर में पुलक होने पर रोमावली (बाल) बराबर खड़ी रहती हैं जैसे कटहल पर बाल खड़े होते हैं ॥ ३७ ॥ क्षण-क्षण में उस सन्यासी को ऐसी कम्प होती है कि हजारों भी पकड़ने में सामर्थ नहीं होते ॥ ३८ ॥ दोनों नेत्रों को जल अभूतपूर्व दीखता है-कह नहीं सकते कितनी नदियाँ बहती हैं ॥ ३९ ॥ कभी २ सन्यासी को ऐसी हँसी आती है कि एक पहर (३ घंटे) तक अट्टहास रुकता ही नहीं ॥४०॥ कभी कीर्तन सुनकर मूर्च्छित हो जाता है-सब डर जाते हैं कि चेतना ही नहीं रही ॥ ४१ ॥ भुजाएँ उठाकर निरन्तर हरि नाम बोलते रहते हैं-भोजन शयन से कुछ काम ही नहीं है ॥ ४२ ॥ चारों ओर से मनुष्य देखने चले आते हैं, कोई घर लौटने का मन नहीं करता है ॥ ४३ ॥ न जाने कितने जोगी ज्ञानी (सन्यासी) हम सबने देखे हैं-परन्तु ऐसा अद्‌भुत न तो कभी देखा न सुना ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! आपसे यह इसलिये कहता हूँ कि इस पुरुष के आने से देश धन्य हो गया ॥ ४५ ॥ न कुछ खाता है न किसी से कुछ लेता है और न किसी से कुछ बोलता ही है केवल निरन्तर एक कीर्त्तन का ही आनन्द लेता है ॥ ४६ ॥ यवन राजा बड़ा दुर्दमनीय है तथापि यह कथा सुनकर मनमें बड़े अचम्भे

कहत केशवखान केमत तोमार । 'श्रीकृष्णचैतन्य' बलि नाम बोल यार ॥४६॥
केमत ताँहार कथा, केमत मनुष्य । केमत गोसाञि तिंहो कहिबा अवश्य ॥५०॥
चतुर्दिगे थाकि लोग ताँहारे देखिते । कि निमित्त आइसे, कहिबे भालमते ॥५१॥
शुनिञा केशवखान-परम सज्जन । भय पाइ लुकाइया कहेन कथन ॥५२॥
के बोले 'गोसाञि' एक भिक्षुक सन्यासी । देशान्तरि गरीब वृक्षेर तलवासी ॥५३॥
राजा बोले गरीब ना बोल कभू ताने । महादोष हय इहा शुनिलेओ काणे ॥५४॥
हिन्दु जारे बोले 'कृष्ण' 'खोदाय' यवने । से-इ तिंहो, निश्चय जानिह सर्व जने ॥५५॥
आपनार राज्ये से आमार आज्ञा रहे । ताँर आज्ञा सर्व देशे शिरे करि बहे ॥५६॥
एइ निज राज्येइ आमारे कत जने । मन्द करिबारे लागियाछे मने-मने ॥ ५७ ॥
ताँहारे सकल देशे काय-वाक्य-मने । ईश्वर नहिले बिना-अर्थे भजे केने ॥५८॥
छय मास आजि आमि जीविका ना दिले । नाना युक्ति करिबेक सेवक-सकले ॥५६॥
आपनार खाइ लोक ताहाने सेविते । चाहे ताहा केहो नाहि पाय भाल मते ॥६०॥
अतएव तिंहो सत्य जानिह ईश्वर । 'गरीब' करिया ताँरे ना बोल उत्तर ॥६१॥
राजा बोले एइ मुञि बलिलूँ सभारे । केहो पाछे उपद्रव करये ताँहारे ॥६२॥
येखाने ताहान इच्छा, थाकुन सेखाने । आपनार शास्त्र मत करुन विधाने ॥६३॥
सर्वलोक लइ सुखे करुन कीर्तन । कि विरले थाकुन, ये लय ताँर मन ॥६४॥

में पड़ गया ॥४७॥ राजा ने केशवखान को बुलवाया और विस्मित होकर पूँछने लगा ॥४८॥ "केशवखान ! जिसे 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम से पुकारते हैं उसके विषय में तुम्हारी क्या राय है बताओ ?" ॥ ४६ ॥ उसकी क्या कथा है, वह कैसा है, वह कैसा गुसाईं है ? यह सब ठीक-ठीक अवश्य कहो ॥ ५० ॥ उसे देखने को मनुष्य चारों ओर से (आकर) उपस्थित हैं ? वह किस निमित्त आया है ? अच्छी तरह से कहो ? ॥५१॥ परम सज्जन केशवखान राजा के शब्द सुनकर भयभीत हुआ और यथार्थ तथ्य छुपाकर बोला—॥ १५२ ॥ "गुसाईं कौन कहता है ? वह तो एक भीख माँगने वाला गरीब परदेशी सन्यासी है जो वृक्षों के नीचे रहता है" ॥५३॥ राजा ने कहा उसे गरीब कभी मत कहो, यह तो कान से सुनकर भी बड़ा दोष होगा ॥५४॥ जन-साधारण का ऐसा निश्चय है कि हिन्दू जिसे कृष्ण कहते हैं व यवन खुदा कहते हैं यह वह ही हैं ॥५५॥ हमारी आज्ञा तो अपने ही राज्य में चलती है परन्तु उनकी आज्ञा को सब देशों में शिर पर धारण करते हैं ॥ ५६ ॥ अपने ही राज्य में कितने ही मनुष्य मन ही मन मेरा बुरा करने को लगे हुए हैं ॥ ५७ ॥ ईश्वर हुए बिना सभी देशवासी बिना स्वार्थ के मन-वचन शरीर से भला उसकी क्यों सेवा करते ? ॥ ५८ ॥ यदि छः महीने तक मैं सेवकों को वेतन न दूँ तो (मेरे विरुद्ध) अनेक युक्तियाँ प्रयोग करने लगेंगे ॥ ५६ ॥ परन्तु मनुष्य अपना खाकर उसकी सेवा करते हैं–फिर भी उन्हें भली प्रकार सेवा कर नहीं मिलती ॥६०॥ अतः उसे सचमुच ईश्वर ही जानो सो उसके लिये "गरीब" शब्द मत प्रयोग करो ॥ ६१ ॥ राजा ने कहा यह मैं इसलिए सबसे कहता हूँ कि पीछे कोई उसके साथ उपद्रव करे ॥ ६२ ॥ वह जहाँ रहना चाहे इच्छा-नुसार रहे और अपने शास्त्र के अनुसार व्यवहार करे ॥ ६३ ॥ चाहे सब मनुष्यों को लेकर सुख से कीर्तन

काजी वा कोटाल वा ताँहाके कोनो जने । किछु बलिलेइ तार लइमुँ जीवने ॥६५॥
एइ आज्ञा दिया राजा गेला अभ्यन्तर । हेन रङ्ग करायेन श्रीगौरसुन्दर ॥ ६६ ॥
जे हुसेन-साहा सर्व उड़ियार देशे । देवमूर्ति भाङ्गिलेक देउल-विशेषे ॥ ६७ ॥
हेन यवने ओ मानिलेक गौरचन्द्र । तथापिह एवे ना मानये यत अन्ध ॥ ६८ ॥
माथा मुड़ाइया सन्यासीर वेश धरे । चैतन्येर यश शुनि पोड़ये अन्तरे ॥ ६९ ॥
जार यश अनन्त-ब्रह्माण्डे परिपूर्ण । जार यशे अविद्या समूह करे चूर्ण ॥ ७० ॥
जार यशे शेष रमा अज भव मत्त । जार यश गाय चारि वेदे करि तत्त्व ॥ ७१ ॥
हेन श्रीचैतन्य-यशे यार असन्तोष । सर्वगुण थाकिलेओ तार सर्व दोष ॥ ७२ ॥
सर्व-गुण-हीन यदि चैतन्य चरणे । स्मरण करिले पाय वैकुण्ठ भुवने ॥ ७३ ॥
शुन-शुन आरे भाइ मंगल आख्यान । जाहा गाय आदि देव शेष भगवान् ॥ ७४ ॥
शुन-शुन अरे भाइ शेषखण्ड लीला । ये रूपे खेलिला कृष्ण सङ्कीर्तन खेला ॥ ७५ ॥
शुनिआ राजार मुखे सुसत्य वचन । तुष्ट हइलेन यत सज्जनेर गण ॥ ७६ ॥
सभे मेलि एक स्थाने बसिया निभृते । लागिलेन युक्तिवाद-मन्त्रणा करिते ॥ ७७ ॥
स्वभावेइ राजा महा-काल-यवन । महा तमोगुण बुद्धि जन्मे घनेघन ॥ ७८ ॥
ओड्र देशे कोटि-कोटि प्रतिमा प्रासाद । भाङ्गिलेक कत कत करिल प्रमाद ॥ ७९ ॥
दैवे आसि सत्त्वगुण उपजिल मने । तेजि भाल कहिलेक आमा सभा स्थाने ॥ ८० ॥

करे अथवा एकान्त में रहे जैसा उसका मन हो सो करे ॥ ६४ ॥ काजी अथवा कोतवाल अथवा कोई अन्य मनुष्य ही यदि उसको कुछ कहेगा तो मैं उसको प्राण दण्ड दूँगा ॥ ६५ ॥ यह आज्ञा देकर राजा भीतर चला गया, श्रीगौरसुन्दर ऐसा खेल कराते रहते हैं ॥ ६६ ॥ जिस हुसेनशाह ने सब उड़िया देश में मन्दिरों में देवमूर्तियों को विशेष रूप से भंग की थी ॥ ६७ ॥ ऐसा यवन भी श्रीगौरचन्द्र को मान गया तो भी अब जितने अन्धे सांसारिक हैं वे नहीं मानते ॥ ६८ ॥ मस्तक मुड़ाकर सन्यासी का वेश धारण करके श्रीचैतन्य-देव का यश सुनकर मनमें डाह करते हैं ॥ ६९ ॥ जिनका यश अनन्त ब्रह्माण्डों में परिपूर्ण हो रहा है—जिनका यश अविद्या के समूह को चूर्ण कर देता है ॥७०॥ जिसके यश से श्रीशेषजी, श्रीलक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, शिव मत्त हैं और जिसके यश को चार वेद तत्त्व करके गान करते हैं ॥७१॥ ऐसे श्रीचैतन्यदेव के यश से जिसे प्रसन्नता नहीं होती उसमें सर्व सद्‌गुण होने पर भी उसका यह बहुत बड़ा दोष है ॥ ७२ ॥ और यदि सर्व गुणहीन होते हुए भी श्रीचैतन्य चरण का स्मरण करता है तो वैकुण्ठ प्राप्त होगा ॥ ७३ ॥ हे भाई सुनो ! जिस मङ्गलस्वरूप आख्यान को आदिदेव शेष भगवान् गाते हैं, उसे सुनो ॥७४॥ हे भाई (श्रीचैतन्य प्रभु की) अन्तिम लीला का भाग सुनो जिस प्रकार उन्होंने कृष्ण संकीर्त्तन का खेल खेला था वह सुनो॥७५॥ राजा के मुख से सुन्दर सत्य वचन सुनकर जितने सज्जन मनुष्य थे सभी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ७६ ॥ सब मिलकर एक गुप्त स्थान में बैठकर युक्ति करके सलाह करने लगे ॥ ७७ ॥ राजा स्वभाव से ही बड़ा काल-यवन स्वरूप था उसको विशेष रूप से महातमोगुण बुद्धि बड़ी जल्दी उत्पन्न होती थी ॥ ७८ ॥ उड़ीसा देश में करोड़ों मूर्ति व मन्दिर तुड़वा दिये और कितना उत्पात किया था ॥७९॥ दैववश ही उसके मनमें सत्त्व-

आर कोन पात्र आसि कुमन्त्रणा दिले । आर वार कुबुद्धि आसिया पाछे मिले ॥ ८१ ॥
जानि कदाचित कहे केमन गोसाञि । आन गिया सभे चाहे देखि एइ ठाञि ॥ ८२ ॥
अतएव गोसाञिरे पाठाइ कहिया । 'राजार निकट-ग्रामे कि कार्य रहिया' ॥ ८३ ॥
एइ युक्ति करि सभे एक सुब्राह्मण । पाठाइया सङ्गोपे दिलेन ततक्षण ॥ ८४ ॥
निजानन्दे महाप्रभु मत्त सर्वक्षण । प्रेमरसे निरवधि हुङ्कार गर्जन ॥ ८५ ॥
लक्ष कोटि लोक मेलि करे हरिध्वनि । आनन्दे नाचेन माझे प्रभु न्यासीमणि ॥ ८६ ॥
अन्य कथा अन्य कार्य नाहि कोनक्षण । अहर्निश बोलेन बोलान सङ्कीर्तन ॥ ८७ ॥
देखिया विस्मित बड़ हइला ब्राह्मण । कथा कहिवारे अवसर नाहि क्षण ॥ ८८ ॥
अन्य-जन-सहित कथार कोन् दाय । निज पारिषदेइ सम्भाषा नाहि पाय ॥ ८९ ॥
किवा दिवा किवा निशि किवा निज पर । किवा जल किवा स्थल कि ग्राम प्रान्तर ॥९०॥
किछुइ ना जाने प्रभु निज-प्रेमरसे । अहर्निश निज-प्रेम-सिन्धु-माझे भासे ॥ ९१ ॥
प्रभु-सङ्गे कथा कहिवारे नाहि क्षण । भक्तगण-स्थाने कथा कहिल ब्राह्मण ॥ ९२ ॥
विप्र बोले तुमि-सब गोसाञिरगण । समय पाइले एइ कहिओ कथन ॥ ९३ ॥
'राजार निकट-ग्रामे कि कार्य रहिया । एइ कथा सभे पाठाइलेन कहिया ॥ ९४ ॥
एइ कथा कहि विप्र गेला निज स्थाने । प्रभुरे करिया कोटि-दण्ड परणामे ॥ ९५ ॥
कथा शुनि ईश्वरेर पारिषदगणे । सभे किछु चिन्तायुक्त हइलेन मने ॥ ९६ ॥

गुण उत्पन्न हो गया इसी कारण वह हम लोगों के सम्मुख अच्छी तरह बोला ॥ ८० ॥ परन्तु यदि पीछे से उसे कोई कुमन्त्रणा देवे और फिर पीछे से उसमें कुबुद्धि हो जावे ॥ ८१ ॥ न जाने कदाचित् यह कह वसे कि "वह गुसाईं कैसा है ? यहीं बुला लाओ–सब यहीं देखलें" ॥८२॥ इसलिये गुसाईं को यों कहला भेजें कि "राजा के ग्राम (राजधानी) के पास आपको रहने का क्या काम है ?" ॥ ८३ ॥ ऐसी युक्ति करके सबने उसी समय गुप्त रूप से एक योग्य ब्राह्मण को (उन गोसाईं के साथ) भेज दिया ॥ ८४ ॥ श्रीमहाप्रभुजी तो अपने ही आनन्द में सब समय मस्त रहते थे तथा निरन्तर प्रेमरस में हुङ्कार व गर्जन करते रहते थे ॥ ८५ ॥ असंख्यों मनुष्य (लाखों करोड़ों) मिलकर हरिध्वनि करते और सन्यासी शिरोमणिजी प्रभु उनके बीच में आनन्द से नाच रहे थे ॥ ८६ ॥ दिन रात सङ्कीर्त्तन ही करते और कराते थे, इसके अतिरिक्त किसी क्षण भी न कुछ कहना और न कुछ करना ही था ॥८७॥ ब्राह्मण यह–देखकर बड़ा विस्मित हुआ कि बात करने के लिये कोई समय ही नहीं मिलता ॥ ८८ ॥ जब उन्ही के पार्षद (साथी) ही सम्भाषण का अवसर नहीं पाते तो किसी अन्य व्यक्ति को उनसे बात करने का दाँव कैसे मिले ? ॥ ८९ ॥ क्या दिन क्या रात क्या अपना क्या पराया, क्या जल क्या स्थल क्या ग्राम क्या मैदान ? अपने प्रेमरस में श्रीप्रभु को कुछ भी समझ नहीं पड़ता था–दिन राति अपने ही प्रेमसिन्धु में डूबे रहते थे ॥ ९०-९१ ॥ श्रीप्रभु से बात कहने का अवसर ब्राह्मण को नहीं मिला तब उसने भक्तों से ही कहा ॥ ९२ ॥ ब्राह्मण ने कहा हे भाई आप सब प्रभु के सेवक हो समय पाते ही यह बात उनसे कहना कि ॥ ९३ ॥ राजा के सभी सेवकों ने यह कहला भेजा है कि राजधानी के पास रहने का उनका क्या काम है ? ॥९४॥ यह बात कहकर व प्रभु को करोड़ों दण्डवत

ईश्वरेर स्थाने से कहिते नाहि क्षण । वाह्य नाहि प्रकाशेन श्रीशचीनन्दन ॥ ६७ ॥
बोल-बोल हरि बोल हरि बोल हरि । एइ मात्र बोले प्रभु दुइ बाहु तुलि ॥ ६८ ॥
चतुर्दिगे महानन्दे कोटि-कोटि लोके । तालि दिया 'हरि' बोले परम कौतुके ॥ ६६ ॥
यार सेवकेर नाम करिले स्मरण । सर्व विघ्न दूर हय, खण्डये बन्धन ॥ १०० ॥
याहार शक्तिते जीव बोले करे चले । 'परंब्रह्म नित्य-शुद्ध' यारे वेदे बोले ॥ १०१ ॥
याहार मायाय जीव पासरि आपना । बद्ध हइ पाइयाछे संसार वासना ॥ १०२ ॥
से प्रभु आपने सर्वजीव उद्धारिते । अवतरियाछे भक्तिरसे पृथिवीते ॥ १०३ ॥
कोन् वा ताहाने राजा, कारे ताँर भय । 'यम-काल-आदि याँर भृत्य' वेदे कय । १०४॥
स्वच्छन्दे करेन सभा लइ सङ्कीर्तन । सर्व-लोक-चूड़ामणि श्रीशचीनन्दन ॥१०५॥
आछुक ताहान भय, ताँहाने देखिते । यतेक आइसे लोक चतुर्दिग हैते ॥१०६॥
ताहाराइ केहो भय ना करे राजारे । हेनसे आनन्द दियाछेन सभाकारे ॥१०७॥
यद्यपिह सर्वलोक परम-अज्ञान । तथापिह देखिया चैतन्य भगवान् ॥ १०८ ॥
हेन से आनन्द जन्मे लोकेर शरीरे । 'यम' करि भय नाहि, कि दाय राजारे ॥१०६॥
निरन्तर सवलोक बोले हरिध्वनि । कारो मुखे आर कोनो शब्द नाहि शुनि ॥११०॥
हेन मते महाप्रभु वैकुण्ठ-ईश्वर । सङ्कीर्तन करे सर्वलोकेर भितर ॥ १११ ॥
मने किछु चिन्ता पाइलेन भक्तगण । जानिलेन अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन ॥ ११२ ॥

प्रणाम करके ब्राह्मण अपने स्थान को लौट गया ॥ ६५ ॥ श्रीप्रभु-पार्षद यह बात सुनकर मनमें सभी कुछ चिन्तायुक्त हो गये ॥ ६६ ॥ श्रीप्रभु से यह बात कहने को अवकाश नहीं मिलता था क्योंकि श्रीशचीनन्दन को वाह्य ज्ञान होता ही न था ॥६७॥ "बोलो-बोलो, हरि बोलो ! हरि बोलो ! अरे हरि बोलो !" बस इतना ही श्रीप्रभु दोनों भुजा उठाकर बोलते थे ॥ ६८ ॥ चारों ओर बड़े आनन्दपूर्वक असंख्यों मनुष्य परम कौतुक से तालियाँ बजा २ कर हरि बोल रहे थे ॥ ६६ ॥ जिसके सेवकों के नाम स्मरण करने से सब विघ्न दूर हो बन्धन नष्ट हो जाते हैं॥१००॥जिसकी शक्ति से जीव बोलता चलता और काम करता है-वेद जिसे परमब्रह्म नित्य शुद्ध कहते हैं ॥ १०१ ॥ जिसकी माया में गिरकर जीव अपने स्वरूप को भूलकर संसार-वासनाओं में पड़ता और बँध जाता है ॥१०२॥ वे ही प्रभु स्वयं सब जीवों को भक्तिरस द्वारा उद्धार करने के लिये पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥ १०३ ॥ वेद, यमराज व काल (मृत्यु) आदि को जिनका सेवक बताते हैं, उनको कैसा वह राजा ? किसका भय ? ॥ १०४ ॥ सर्वलोक चूड़ामणि श्रीशचीनन्दन स्वतन्त्रता पूर्वक सबको साथ लेकर कीर्त्तन करते थे ॥ १०५ ॥ चारों ओर से जितने मनुष्य उन्हें देखने को आते थे उनको तो भय की सम्भावना थी॥१०६॥परन्तु सबको ऐसा आनन्द मग्न कर दिया था कि वे भी कोई राजा को भय नहीं करते थे ॥ १०७ ॥ यद्यपि सब मनुष्य बड़े अज्ञानी थे तथापि श्रीचैतन्य भगवान को देखकर मनुष्यों के शरीरों में ऐसा आनन्द होता था कि राजा की तो बात ही क्या यमराज का भी भय नहीं था॥१०८-१०६॥ सब मनुष्य निरन्तर हरिध्वनि कर रहे थे किसी के मुख से दूसरा शब्द सुन नहीं पड़ता था ॥ ११० ॥ इस प्रकार वैकुण्ठ-नाथ श्रीमहाप्रभु सब मनुष्यों में घिरकर हरिनाम संकीर्तन कर रहे थे ॥१११॥ अन्तर्यामी प्रभु श्रीशचीनन्दन

ईषत हासिया किछु वाह्य प्रकाशिया । लागिला कहिते प्रभु माया घुचाइया ॥ ११३ ॥
प्रभु बोले तुमि-सब भय पाओ मने । राजा आमा देखिवारे निवेक कारणे ॥ ११४ ॥
'आमा' चाहे हेन जन आमिओ ता चाङ । सबे आमा चाहे हेन कोथाओ ना पाङ॥११५॥
तोमरा इहाते केने भय पाओ मने । राजा आमा चाहे मुञि जाइमुँ आपने ॥ ११६ ॥
राजा वा आमारे केने वलिव चाहिते । कि शक्ति राजार एवा बोल उच्चारिते ॥११७॥
आमि यदि बोलाइ से राजार मुखेते । तबे से बलिव राजा आमारे चाहिते ॥ ११८ ॥
आमा देखिवारे शक्ति कोन् वा ताहार । वेदे अन्वेषिया देखा ना पाय आमार ॥११९॥
देव-ऋषि राज-ऋषि पुराणे भारते । आमा अन्वेषषे, केहो ना पाय देखिते ॥ १२० ॥
संकीर्तन-आरम्भे मोहोर अवतार । उद्धार करिमुँ सर्व पतित संसार ॥ १२१ ॥
ये दैत्य यवने मोरे कभू नाहि माने । ए-युगे ताराओ कान्दिवेक मोर नामे ॥ १२२ ॥
यतेक अस्पृश्य दुष्ट यवन चण्डाल । स्त्री-शूद्र आदि यत अधम राखाल ॥ १२३ ॥
हेन भक्तियोग दिमुँ ए-युगे सभारे । सुर मुनि सिद्ध ये निमित्त काम्य करे ॥ १२४ ॥
विद्या-धन-कुल-आदि तपस्यार मदे । ये मोर भक्तेर स्थाने करे अपराधे ॥ १२५ ॥
सेइ-सब जन हवे ए-युगे वंचित । सबे तारा ना मानिवे आमार चरित ॥ १२६ ॥
पृथिवी-पर्यन्त यत आछे देश ग्राम । सर्वत्र संचार हइवेक मोर नाम ॥ १२७ ॥
पृथिवीते आसिया आमिह इहा चाङ । खोजे हेन जन मोरे कोथा ओ ना पाङ ॥१२८॥

ने जान लिया कि भक्तों को कुछ चिन्ता हो गई है ॥ ११२ ॥ श्रीप्रभु माया को दबाकर बाहर में चेत करके कुछ थोड़े हँसे ॥ ११३ ॥ प्रभु ने कहा कि तुम लोग मनमें डर रहे हो कि राजा मुझे देखने को बुलावेगा ॥ ११४ ॥ जो मुझे ढूँढ़ता हो ऐसे आदमी को में भी ढूँढ़ता हूँ, परन्तु मुझ ही को जो चाहता हो ऐसा मनुष्य कहीं नहीं मिलता ॥११५॥ इस विषय में तुम लोग मनमें क्यों भय मानते हो यदि राजा मुझे चाहेगा तो मैं स्वयं चला जाऊँगा ॥ ११६ ॥ मुझे क्यों देखना चाहेगा ? उसकी क्या शक्ति है जो वह मुझे बुलावे ॥११७॥यदि मैं राजा के मुख से बुलवाऊँगा तभी तो वह मुझे देखने को बुलावेगा ॥११८। वेद मुझे ढूँढ़ने पर भी देख नहीं पाते उसकी क्या सामर्थ्य है ? चारों वेद तक भी मुझको अन्वेषण करते हैं, परन्तु साक्षात दर्शन नहीं प्राप्त हुए हैं ॥ ११९ ॥ देवर्षि राजर्षि पुराण व महाभारत आदि मुझे ढूढ़ते हैं परन्तु कोई देख नहीं पाया ॥ १२० ॥ संकीर्त्तन आरम्भ करने को मेरा अवतार हुआ है अतः संसार के सब पतितों का मैं उद्धार करूँगा ॥ १२१ ॥ जो दैत्य यवन मुझे कभी नहीं मानते थे वे भी इस युग में मेरा नाम लेकर प्रेम में रोवेंगे ॥ १२२ ॥ जितने अस्पृश्य (अछूत) दुष्ट यवन चण्डाल स्त्री-शूद्र ग्वालों आदि नीच जाति वाले हैं उन सबको इस युग में ऐसी भक्ति दान करूँगा जिसकी देवता मुनि व सिद्धगण भी कामना करते हैं ॥ १२३-१२४ ॥ विद्या-धन-कुल-तपस्या आदि के अहङ्कार में जो मेरे भक्तों के प्रति अपराध करते हैं ॥१२५॥ केवल वे ही सब लोग इस युग में वंचित होंगे व मेरे चरित्रों को नहीं मानेंगे ॥१२६॥ पृथ्वी के ऊपर जितने देश व ग्राम हैं सब जगह मेरे नाम का प्रचार होगा ॥१२७॥ पृथ्वी पर आकर मैं भी ऐसे मनुष्यों की इच्छा करता हूँ कि जो मेरा खोज करें परंतु वे कहीं नहीं मिलते हैं ॥ १२८॥सो राजा मुझे क्यों देखना चाहेगा-यह

राजा मोरे कोथा चाहिबेक देखिवारे । ए कथा सकल मिथ्या, कहिल सभारे ॥१२६॥
वाह्य प्रकाशिला प्रभु एतेक कहिया । भक्त-सबो सन्तोषित हइला शुनिया ॥१३०॥
एइ मत प्रभु कथो दिन सेइ ग्रामे । निर्भये आछेन निज-कीर्तन-विधाने ॥१३१॥
ईश्वरेर इच्छा बूझिवारे शक्ति कार । ना गेलेन मथुरा, फिरिला आर बार ॥१३२॥
भक्त-गण-स्थाने एहि कहिलेन कथा । आमि चलिलाङ नीलाचल चन्द्र यथा ॥१३३॥
एत वलि स्वतन्त्र परमानन्द राय । चलिला दक्षिण मुखे कीर्तन-लीलाय ॥१३४॥
निजानन्दे रहिया-रहिया गङ्गा तीरे । कथोदिने आइलेन अद्वैत-मन्दिरे ॥१३५॥
पुत्रेर महिमा देखि अद्वैत आचार्य । आविष्ट हइ आछेन छाड़ि सर्व कार्य ॥ १३६ ॥
हेनइ समये गौरचन्द्र भगवान् । अद्वैतेर गृहे आसि हैला अधिष्ठान ॥ १३७ ॥
ये निमित्त अद्वैत आविष्ट पुत्र सङ्गे । से बड़ अद्भुत कथा, कहि शुन रङ्गे ॥१३८॥
योग्य पुत्र अद्वैतेर-सेइ से उचित । 'श्रीअच्युतानन्द' नाम-जगत-विदित ॥१३६॥
दैवे एक दिन एक उत्तम सन्यासी । अद्वैत-आचार्य-स्थाने मिलिलेन आसि ॥१४०॥
अद्वैत देखिया न्यासी संकोचे रहिला । अद्वैत न्यासीरे नमस्करि वसाइला ॥१४१॥
अद्वैत बोलेन 'भिक्षा करह गोसाञि' । न्यासी बोले 'भिक्षा देह' आमि याहा चाइ ॥१४२॥
किछु मोर जिज्ञासा आछये तोमा स्थाने । सेइ भिक्षा मोर, ताहा कहिवा आपने ॥१४३॥
आचार्य बोलेन आगे करह भोजन । शेषे ये जिज्ञासा ताहा कहिव कथन ॥ १४४ ॥
न्यासी बोले 'आगे आछे जिज्ञासा आमार' । आचार्य बोलेन 'बोल जे इच्छा तोमार'॥१४५॥

बात सब झूँठ है–सबसे प्रभु ने कह दिया॥१२६॥श्रीप्रभु ने इतना कहकर वाह्य चेतना प्रकाशित की, यह सुनकर भक्तगण भी प्रसन्न हुए॥१३०॥इस प्रकार श्रीप्रभु ने उसी ग्राम में कुछ दिन रहकर नियमित से अपना कीर्त्तन कार्य चलाते रहे ॥ १३१ ॥ ईश्वर की इच्छा जान लेने की किसमें सामर्थ्य है सो वे मथुरा को नहीं गये,दूसरी बार में लौटकर गये॥१३२॥भक्तों से इतना ही कहा कि मैं नीलाचलचन्द्र के पास जाता हूँ(अर्थात् पुरी जाता हूँ) ॥ १३३ ॥ परम आनन्द के अधिष्ठाता (श्रीगौर प्रभु) यों कहकर लीला से हरि कीर्त्तन करते हुए दक्षिण को चल दिये ॥ १३४ ॥ अपने आनन्द में गंगा के किनारे ठहरते ठहरते कुछ दिन में श्रीअद्वैताचार्य्य जी घर पर पहुँच गये ॥१३५॥ श्रीअद्वैताचार्य्य जी सब काम छोड़कर अपने पुत्र के खेल में आविष्ट हो रहे थे ॥ १३६ ॥ ऐसे ही समय पर श्रीभगवान् गौरचन्द्र श्रीअद्वैतजी के घर पर उपस्थित हुए ॥ १३७ ॥ जिस कारण से श्रीअद्वैताचार्य्यजी, पुत्र में आविष्ट हो रहे थे वह बड़ी अद्भुत कथा है उसे कहता हूँ प्रेम से सुनो ॥ १३८ ॥ श्रीअद्वैत के योग्य पुत्र को ऐसा ही उचित था–उनका जगत् विख्यात "अच्युतानन्द" नाम था ॥ १३६ ॥ दैवयोग से एक दिन एक उत्तम सन्यासी अद्वैताचार्य के स्थान पर आया ॥१४०॥ श्री-अद्वैताचार्य को देखकर सन्यासी संकोच से खड़ा रहा तब श्रीअद्वैतजी ने सन्यासी को नमस्कार करके बैठाया ॥१४१॥ अद्वैत ने कहा "हे गुसाईं जी भिक्षा (भोजन) करो, सन्यासी ने कहा मैं जो चाहूँ सो भिक्षा दो ॥ १४२ ॥ आपसे मुझे कुछ पूँछना है उसे ही आप बतादें, बस यही मेरी भिक्षा है ॥१४३॥ श्री-आचार्यजी ने कहा पहिले भोजन कीजिये तब जो पूछना हो उसे कहिये ॥ १४४ ॥ सन्यासी बोला "पहिले

सन्यासी बोलेन एइ केशव भारती । चैतन्येर के हयेन कह मोर प्रति ॥ १४६ ॥
मने-मने चिन्तेन अद्वैत महाशय । व्यवहार परमार्थ-दुइ पक्ष हय ॥ १४७ ॥
यद्यपिह ईश्वरेर माता-पिता नाई । तथापिह 'देवकीनन्दन' करि गाई ॥ १४८ ॥
परमार्थे गुरुओ ताहार केहो नाइ । तथापिह ये करे प्रभु, ताइ सभे गाइ ॥ १४९ ॥
प्रथमेइ परमार्थ कि कार्य कहिया । व्यवहार कहियाइ याइ प्रबोधिया ॥ १५० ॥
एत भावि बलिलेन अद्वैत महाशय । केशव भारती चैतन्येर गुरु हय ॥ १५१ ॥
देखितेछ गुरु तान केशव भारती । आर केने तवे जिज्ञासह आमा प्रति ॥१५२॥
एइ मात्र अद्वैत बलिते सेइक्षणे । धाइया अच्युतानन्द आइला सेइ स्थाने ॥१५३॥
पाँच-वर्ष वयस-मधुर दिगम्बर । खेला खेलि सर्व अङ्ग धूलाय धूसर ॥ १५४ ॥
अभिन्न-कार्तिक येन सर्वाङ्ग सुन्दर । सर्वज्ञ परम भक्त सर्वशक्ति धर ॥ १५५ ॥
'चैतन्येर गुरु आछे' वचन शुनिया । क्रोधावेशे कहे किछु हासिया-हासिया ॥१५६॥
कि बलिला बाप ! बोल देखि आरवार । 'चैतन्येर गुरु आछे' विचार तोमार ॥१५७॥
कोन् वा साहसे तुमि ए मत वचन । जिह्वाय आनिला एत अद्‌भुत कारण ॥१५८॥
तोमार जिह्वाय यदि एमत आइल । हेन बूझि-एखने से कलिकाल हैल ॥ १५९ ॥
अथवा चैतन्य माया-परम दुस्तर । याहाते पायेन मोह ब्रह्मादि शङ्कर ॥ १६० ॥
बूझिलाङ विष्णु माया हइल तोमारे । केबा चैतन्येर माया तरिवारे पारे ॥१६१॥

मुझे पूँछना है" तब आचार्यजी ने कहा 'जो आपकी इच्छा कहिये ?' ॥ १४५ ॥ सन्यासी ने पूँछा कि यह केशव भारती श्रीचैतन्यदेव के कौन हैं ? सो मुझसे कहिये ? ॥१४६॥ श्रीअद्वैताचार्य महाशय मन ही मन विचार करने लगे कि व्यवहार और परमार्थ दो पक्ष हैं ॥ १४७ ॥ यद्यपि भगवान् के माता-पिता नहीं है तथापि "देवकीनन्दन" कहकर गान किये जाते हैं ॥ १४८ ॥ इसी प्रकार यद्यपि परमार्थ में उनका कोई गुरु नहीं है तथापि प्रभु ने जो लीला की है, उसी को सब गान करते हैं ॥१४९॥ अतः परमार्थ विषय को प्रथम ही क्यों कहूँ ? इसे व्यावहारिक बात कहकर ही प्रबोध कराऊँ ॥१५०॥ यह विचार करके श्रीअद्वैत महाशय ने कहा कि केशव भारतीजी श्रीचैतन्यदेव के गुरु होते हैं ॥१५१॥ यह देखते हुए भी कि केशवभारती उनके गुरु हैं फिर मुझसे क्यों पूँछते हो ? ॥ १५२ ॥ श्रीअद्वैताचार्य के इतना कहते ही उसी क्षण दौड़कर अच्युतानन्द उसी स्थान पर आ गये ॥ १५३ ॥ सुन्दर दिगम्बर वेष था पाँच वर्ष की अवस्था थी, खेल में सब अङ्ग धूलि से धूसरित हो रहे थे ॥ १५४ ॥ स्वयं कार्त्तिकेय के समान उनके सर्वाङ्ग सुन्दर थे-सब तत्त्वों के ज्ञाता परमभक्त तथा सर्व शक्ति वाले थे ॥ १५५ ॥ "चैतन्य के गुरु हैं" यह वचन सुनते ही कुछ हँसते हुए क्रोध के आवेश में बोले—॥ १५६ ॥ पिताजी, आपने क्या कहा-फिर दुबारा तो कहिये ? श्रीचैतन्यदेव के गुरु हैं-क्या यही आपका निर्णय है ? ॥ १५७ ॥ किस साहस के कारण यह शब्द आप अपनी जिह्वा पर लाये यह तो बड़ी विलक्षण बात है ॥ १५८ ॥ अब आपकी जिह्वा पर ऐसी बात आ गई तो मेरे विचार में इस समय कलिकाल ही आ उपस्थित हुआ ॥ १५९ ॥ अथवा श्रीचैतन्यदेव की माया बड़ी ही दुस्तर है, जिससे ब्रह्मा शंकर आदि भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं ॥१६०॥ समझ में आता है कि आपको भी विष्णु

'चैतन्येर गुरु आछे' बलिला यखने । मायावश बिने इहा कहिला केमने ॥ १६२ ॥
अनन्त ब्रह्माण्ड यबे चैतन्य-इच्छाय । सब चैतन्येर लोम कूपेते मिशाय ॥ १६३ ॥
जल क्रीड़ा परायन चैतन्य गोसाञि । विहरेन आत्मक्रोड़ आर दुइ नाञि ॥ १६४ ॥
यत-यत महामुनि-महा-अभिमान । उद्देशो ना थाके कारो कोथाकार नाम ॥ १६५ ॥
पुन सेइ चैतन्येर अचिन्त्य-इच्छाय । नाभि-पद्म हैते ब्रह्मा हयेन लीलाय ॥ १६६ ॥
हइयाओ नाथा के देखिते किछु शक्ति । तवे शेषे करेन एकान्त भावे भक्ति॥ १६७ ॥
तवे भक्तिवशे तुष्ट हइया ताहाने । तत्त्व-उपदेश प्रभु कहेन आपने ॥ १६८ ॥
तबे सेइ ब्रह्मा प्रभु-आज्ञा करि शिरे । सृष्टि करि सेइ ज्ञान कहेन सभारे ॥ १६९ ॥
सेइ ज्ञान सनकादि पाइ ब्रह्मा हैते । प्रचार करेन तबे कृपाय जगते ॥ १७० ॥
याहा हैते हय आसि ज्ञानेर प्रचार । तान गुरु केमते बोलह आछे आर ॥ १७१ ॥
बाप तुमि, तोमा हैते शिखिबाङ कोथा । शिक्षा गुरु हइ केने बोलह अन्यथा ॥ १७२ ॥
एत बलि श्रीअच्युतानन्द मौन हैला । शुनिञा अद्वैत परानन्दे प्रवेशिला ॥ १७३ ॥
'बाप-बाप' वलि धरि करिलेन कोले । सिञ्चिलेन अच्युतेर अङ्ग प्रेमजले ॥ १७४ ॥
तुमिसे जनक बाप मुञि से तनय । शिखाइते पुत्र रूपे हइले उदय ॥ १७५ ॥
अपराध करिलूँ, क्षमह बाप मोरे । आर ना बलिमु, एइ कहिलूँ तोमारे ॥१७६॥
आत्म स्तुति शुनि श्रीअच्युत महाशय । लज्जाय रहिला प्रभु माथा ना तोलाय ॥१७७॥

माया लग गई है, श्रीचैतन्यदेव की माया को कौन तर सकता है ॥१६१॥ जिस समय यह बोले कि "चैतन्य के गुरु हैं" यह शब्द बिना माया के वशवर्त्ती हुए कह ही कैसे सकते थे ॥ १६२ ॥ जब श्रीचैतन्यदेव की इच्छा से ही अनन्त ब्रह्माण्ड उनके रोमकूप से मिल जाते हैं ॥ १६३ ॥ श्रीचैतन्य प्रभु जलक्रीड़ा परायण हैं, वे अपने से आप ही क्रीड़ा करते हैं कोई दूसरा नहीं है ॥ १६४ ॥ जितने भी बड़े २ अभिमानी महामुनि हैं उनका पता भी नहीं रहता किसका क्या नाम है ॥१६५॥ फिर उन्हीं चैतन्यदेव की अचिन्त्य इच्छा से जब लीला से ही नाभि कमल से ब्रह्मा का जन्म होता है ॥ १६६ ॥ जन्म होने पर भी जब देखने की उनमें कुछ शक्ति नहीं हुई तब अन्त में एकनिष्ट भाव से भक्ति की ॥१६७॥ तब उनकी भक्ति से सन्तुष्ट हो स्वयं प्रभु ने उन्हें तत्त्व उपदेश किया ॥१६८॥ तब उन्हीं ब्रह्मा ने प्रभु आज्ञा शिरोधार्य करके सृष्टि रचना की और सबसे उसी ज्ञान का कथन किया ॥ १६९ ॥ उसी ज्ञान को सनकादि ऋषियों ने ब्रह्मा से प्राप्त करके कृपावत्सल हो संसार में प्रचार किया ॥ १७० ॥ जिनके अस्तित्त्व से ही ज्ञान की उत्पत्ति होकर प्रचार होता है उन्हीं का कोई दूसरा व्यक्ति गुरु है यह कैसे कह दिया ॥ १७१ ॥ आप तो पिता हैं—आपको मैं क्या शिक्षा दूँ ? आप शिक्षा गुरु (आचार्य्य) होकर ऐसे क्यों कहते हैं ? ॥ १७२ ॥ इतना कहकर श्रीअच्युतानन्द मौन हो गये, परन्तु श्रीअद्वैत प्रभु यह सुनकर परम आनन्द में प्रविष्ट हो गये ॥१७३॥ बाप ! बाप ! कहकर उठाकर गोद में ले लिया और अच्युतजी के श्रीअङ्ग को प्रेमजल से सिंचन करने लगे ॥ १७४ ॥ हे बाप ! तुम ही जनक (पिता) हो मैं तनय हूँ केवल शिक्षा देने को पुत्र रूप से उदय हुए हो ॥ १७५ ॥ अपराध हो गया, बाप ! मुझे क्षमा करो तुम्हारे आगे प्रतिज्ञा करता हूँ फिर न कहूँगा ॥ १७६ ॥ महाशय श्रीअच्युतानन्दजी

शुनिञा सन्यासी श्रीअच्युत वचन । दण्डवत् हइया पड़िला सेइक्षण ॥ १७८ ॥
न्यासी बोले योग्य-योग्य अद्वैत नन्दन । येन पिता, तेन पुत्र-अचिन्त्य-कथन ॥ १७९ ॥
ए त ईश्वरेर शक्ति बिने अन्य नहे । बालकेर मुखे कि एमत कथा हये ॥ १८० ॥
शुभ लग्ने आइलाङ अद्वैत देखिते । अद्भुत महिमा देखिलाङ नयनेते । १८१॥
पुत्रेर सहिते अद्वैतेरे नमस्करि । पूर्ण हइ सन्यासी चलिलेन बलि 'हरि' ॥ १८२ ॥
इहाने से बलि योग्य अद्वैतनन्दन । ये चैतन्येर-पादपद्मे एकान्त शरण ॥ १८३ ॥
अद्वैतेरे भजे, गौरचन्द्रे करे हेला । पुत्र हउ अद्वैतेर, तभू तिंहो गेला ॥ १८४ ॥
पुत्रेर महिमा देखि अद्वैत आचार्य । पुत्र कोले करि कान्दे छाड़ि सर्व कार्य ॥१८५॥
पुत्रेर अंगेर धूला आपनार अङ्गे । लेपेन अद्वैत अति परानन्द रङ्गे ॥१८६॥
'चैतन्येर पार्षद जन्मिला मोर घरे' । एत वलि नाचे प्रभु तालि दिया करे ॥१८७॥
पुत्र कोले करि नाचे अद्वैत गोसाञि । त्रिभुवने याँहार भक्तिर सम नाञि ॥१८८॥
पुत्रेर महिमा देखि अद्वैत विह्वल । हेन काले उपसन्न सर्व-सुमङ्गल ॥१८९॥
सपार्षदे श्रीगौरसुन्दर सेइ क्षणे । आसि आविर्भाव हैला अद्वैत-भवने ॥ १९० ॥
प्राणनाथ इष्टदेव-देखिया अद्वैत । दण्डवत हैया पड़िलेन पृथिवीत ॥ १९१ ॥
'हरि' बलि श्रीअद्वैत करेन हुङ्कार । परानन्दे देह पासरिला आपनार ॥ १९२ ॥
जय जयकार-ध्वनि करे नारी गणे । उठिल परमानन्द अद्वैत-भवने ॥ १९३ ॥

अपनी स्तुति सुनकर लज्जित हो गये व ऊपर को सिर नहीं उठाया ॥ १७७ ॥ सन्यासी ने श्रीअच्युतानन्द के वचन सुनकर उसी क्षण दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १७८ ॥ सन्यासी ने कहा श्रीअद्वैत के पुत्र अति ही योग्य है जैसे पिता वैसे ही पुत्र, दोनों की बात अचिन्त्य है ॥ १७९ ॥ क्या बालक के मुख से ऐसी बात निकल सकती है, यह तो ईश्वर शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १८० ॥ मैं श्रीअद्वैत दर्शन के लिये शुभ लग्न में आया जो नेत्रों से ऐसी अद्भुत महिमा देखी ॥ १८१ ॥ सन्यासीजी पुत्र के सहित श्रीअद्वैत को नमस्कार करके हरि २ कहकर आनन्द मग्न होकर चल दिये॥१८२॥अच्युतानन्दजी श्रीचैतन्य चरण-कमल के एकान्तिक शरण हैं इसी से तो, उनको श्रीअद्वैत के योग्य पुत्र कहते हैं ॥१८३॥ यदि श्रीअद्वैत का भजन कर और श्रीगौरचन्द्र की अवहेलना करे तो वह नष्ट हो गया फिर चाहे वह अद्वैत का ही पुत्र क्यों न हो ? ॥ १८४ ॥ श्रीअद्वैताचार्यजी ने पुत्र की महिमा देखकर सब काम छोड़कर गोदी में ले लिया और रोने लगे ॥ १८५ ॥ और पुत्र के अङ्ग की धूलि अपने अङ्ग में बड़े प्रेम से लेपन करने लगे ॥ १८६ ॥ "मेरे घर में श्रीचैतन्य-पार्षद ने जन्म लिया है" यों कहकर प्रभु ताली बजाकर नाचने लगे ॥१८७॥ श्रीअद्वैत गुसांई पुत्र को गोद में लेकर नाच रहे थे, उनकी भक्ति की समानता त्रिभुवन में नहीं है ॥ १८८ ॥ पुत्र की महिमा देखकर श्रीअद्वैतजी विह्वल हो रहे थे ऐसे समय में सर्व सुमङ्गल आकर उपस्थित हुए ॥ १८९ ॥ पार्षदों सहित श्रीगौरसुन्दर उसी क्षण श्रीअद्वैत के भवन में आकर उपस्थित हुए ॥ १९० ॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने अपने प्राणनाथ इष्टदेव (गौरचन्द्र) को देखकर पृथ्वी में दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया ॥ १९१ ॥ श्रीअद्वैताचार्य हरि २ कहकर हुङ्कार करने लगे तथा परमानन्द में अपनी देह को भूल गये ॥ १९२ ॥ नारीगण ने जय-

प्रभुओ करिया अद्वैतेरे निजकोले । सिञ्चिलेन अङ्ग ताँर प्रेमानन्द जले ॥१९४॥
पादपद्म वक्षे धरि आचार्य गोसाञि । रोदन करेन अति बाह्य किछु नाञि ॥१९५॥
चतुर्दिगे भक्तगण करेन क्रन्दन । कि अद्भुत प्रेम हैल ना जाय वर्णन ॥१९६॥
स्थिर हइ क्षणेके अद्वैत महाशय । वसिते आसन दिला करिया विनय ॥१९७॥
वसिलेन महाप्रभु उत्तम-आसने । चतुर्दिगे शोभा करे पारिषद गणे ॥१९८॥
नित्यानन्द-अद्वैते हइल कोलाकोली । दुँहा देखि अन्तरे दोंहेइ कुतूहली ॥१९९॥
आचार्येरे नमस्करिलेन भक्तगण । आचार्य सभारे कैला प्रेम-आलिङ्गन ॥२००॥
ये आनन्द उपजिल अद्वैतेर घरे । वेदव्यास विने ताहा वर्णिते ना पारे ॥२०१॥
क्षणेके अच्युतानन्द-अद्वैत कुमार । प्रभुर चरणे आसि हैला नमस्कार ॥२०२॥
अच्युतेरे कोले करि श्रीगौरसुन्दर । प्रेमजले धुइलेन ताँर कलेवर ॥२०३॥
अच्युतेरे प्रभु ना छाड़ेन वक्ष हैते । अच्युतो प्रविष्ट हैला चैतन्य-देहेते ॥२०४॥
अच्युतेरे कृपा देखि सर्व भक्तगण । प्रेमे सभे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥२०५॥
यत चैतन्येर प्रिय पारिषदगण । अच्युतेर प्रिय नहे, हेन नाहि जन ॥२०६॥
नित्यानन्द स्वरूपेर प्राणेर समान । गदाधर पण्डितेर शिष्येर प्रधान ॥२०७॥
इहारे से वलि योग्य अद्वैतनन्दन । येन पिता, तेनपुत्र, उचित मिलन ॥२०८॥
एइमत श्रीअद्वैत गोष्ठीर सहिते । आनन्दे डूबिला प्रभु पाइया साक्षाते ॥२०९॥

जयकार ध्वनि की तब अद्वैत भवन में विशेष आनन्द कोलाहल हुआ ॥ १९३ ॥ प्रभु श्रीगौरचन्द्र ने भी श्रीअद्वैत को अपनी गोदी में करके प्रेमानन्द के जल से उनके अङ्गों को सिंचन कर दिया ॥ १९४ ॥ श्रीआचार्य गुसांई श्रीगौरचन्द्र के चरण-कमलों को वक्षस्थल पर धारण करके अत्यन्त रोदन करने लगे बाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ १९५ ॥ भक्तगण भी चारों ओर क्रन्दन करने लगे बड़ा अनोखा प्रेम उदय हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १९६ ॥ क्षण भर में श्रीअद्वैत महाशयजी सावधान हुए और विनय करके बैठने को आसन दिया ॥ १९७ ॥ श्रीमहाप्रभुजी उत्तम आसन पर विराजमान हुए तथा चारों ओर पार्षद-गण शोभा पा रहे थे ॥ १९८ ॥ तब श्रीनित्यानन्द व श्रीअद्वैत ने परस्पर आलिङ्गन किया दोनों एक दूसरे को देखकर मनमें आश्चर्य करते थे ॥ १९९ ॥ सब भक्तों ने श्रीआचार्य को नमस्कार किया तथा उन्होंने सब को आलिङ्गन किया ॥ २०० ॥ जो आनन्द अद्वैत गृह में हुआ उसको वेदव्यास के अतिरिक्त और कौन वर्णन कर सकता है ॥ २०१ ॥ एक क्षण में ही अद्वैत के पुत्र अच्युतानन्द ने श्रीप्रभु के चरणों में आकर नमस्कार किया ॥ २०२ ॥ श्रीगौरसुन्दर अच्युतानन्द को गोदी में लेकर उसके शरीर को प्रेमजल से धोने लगे ॥ २०३ ॥ अच्युतानन्द को प्रभु छाती से नहीं हटाते थे और अच्युत भी श्रीचैतन्यदेव के शरीर से चिपक गये ॥ २०४ ॥ अच्युत के ऊपर श्रीप्रभु की कृपा को देखकर सब भक्तवृन्द प्रेम में रोने लगे ॥ २०५ ॥ श्रीचैतन्यदेव के प्रिय पार्षदों में ऐसा कोई मनुष्य नहीं था जिसे अच्युतानन्द प्रिय न हों ॥ २०६ ॥ वे श्री-श्रीनित्यानन्दस्वरूप के प्राणों के समान थे, श्रीगदाधर पण्डित के शिष्यों में प्रधान थे ॥ २०७ ॥ इनको वे (भक्तगण) श्रीअद्वैताचार्य के योग्य पुत्र कहते थे जैसे पिता वैसे पुत्र दोनों का मिलन उचित ही था ॥२०८॥

श्रीचैतन्य कथोदिन अद्वैत-इच्छाय । रहिला अद्वैत घरे कीर्तन-लीलाय ॥२१०॥
प्राणनाथ गृहे पाइ आचार्य गोसाञि । ना जाने आनन्दे आछेन कोन् ठाञि ॥२११॥
किछु स्थिर हइया अद्वैत महा मति । आइ-स्थाने लोक पाठाइला शीघ्र गति ॥२१२॥
दोला लइ नवद्वीपे आइला सत्वरे । आइरे वृत्तान्त कहे चलिवार तरे ॥२१३॥
प्रेम-रस-समुद्रे डूबिया आछे आइ । कि बोलेन कि शुनेन बाह्य किछु नाइ॥२१४॥
सम्मुखे जाहारे आइ देखेन ताहारे । जिज्ञासेन "मथुरार कथा कह मोरे ॥२१५॥
राम कृष्ण केमत आछेन मथुराय । पापी कंस केमत वा करे व्यवसाय ॥२१६॥
चोर अक्रूरेर कथा कह जान' के । राम कृष्ण मोर चूरि करिलेक ये ॥२१७॥
शुनिलाङ पापी कंस मरिगेल हेन । मथुरार राजा कि हइल उग्रसेन ॥२१८॥
"रामकृष्ण" बलिया कखनो डाके आइ । "झाट गावी दोह' दुग्ध वेचिवारे चाइ" ॥२१९॥
हाथे वाड़ि करिया कखनो आइ धाय । "धर धर सभे, एइ ननी चोरा जाय"॥२२०॥
कोथा पलाइबा आजि एड़िमू वान्धिया । एत वलि धाय आइ आविष्ट हइया ॥२२१॥
कखनो बोलेन आइ सम्मुखे देखिया । "चल याइ यमुनाय स्नान करि गिया" ॥२२२॥
कखनो ये उच्च करि करेन क्रन्दन । संसार द्रवये ताहा करिते श्रवण ॥२२३॥
अविच्छिन्न-धारा दुइ नयनेते झरे । से काकु शुनिते काष्ठ-पाषाण विदरे ॥२२४॥
कखनो वा ध्याने कृष्ण साक्षात्कार करि । अट्ट अट्ट हासे' आइ आपना' पासरि ॥२२५॥

इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्य श्रीप्रभु को साक्षात् पाकर अपनी गोष्ठी सहित आनन्द में डूब गये ॥ २०९ ॥ श्रीअद्वैतजी की इच्छा से श्रीप्रभु ने कुछ दिन उनके घर में निवास किया ॥२१०॥ श्रीआचार्य गुसांई अपने प्राणनाथ को घर में ही पाकर आनन्द में यह नहीं जानते हैं कि मैं कहाँ हूँ ? ॥ २११ ॥ तब महामति श्री-अद्वैत ने कुछ स्थिर होकर शची माता के पास शीघ्रता से आदमी भेजे ॥ २१२ ॥ वे शीघ्र ही पालकी लेकर नवद्वीप में आये और शचीदेवी से चलने के लिये सब वृतान्त कहा ॥ २१३ ॥ श्रीशची माता तो प्रेमरस के समुद्र में डूब गईं-कौन बोला-क्या सुना-कुछ होश नहीं रहा ॥ २१४ ॥ श्रीशची माता अपने सामने जिसको देखतीं उसी से पूँछती कि मुझसे मथुरा की बात कहो ? ॥ २१५ ॥ मथुरा में रामकृष्ण किस प्रकार हैं तथा पापी कंस कैसा व्यवसाय कर रहा है ? ॥ २१६ ॥ जो जानते हो तो कोई अक्रूर चोर की बात कहो जो मेरे रामकृष्ण को चोरी करके ले गया ? ॥ २१७ ॥ सुनती हूँ कि पापी कंस मर गया, क्या मथुरा का राजा उग्रसेन हो गया ? ॥ २१८ ॥ कभी माता "रामकृष्ण" को टेरकर बुलाती थीं कि जल्दी गौ दुहो, दूध वेचने को चाहिये ॥ २१९ ॥ कभी माता हाथ में छड़ी लेकर "अरे पकड़ो-पकड़ो यह माखन-चोर भाग रहा है" ॥ २२० ॥ "कहाँ-भाग कर जायगा-आज बाँध कर ही छोड़ूँगी" यों कह आवेश में दौड़तीं थीं ॥२२१॥ कभी माता सामने किसी को देखकर कहतीं "स्नान करने जमुना जी चलो" ॥२२२॥ कभी ऊँचे स्वर से रोदन (क्रन्दन) करतीं तो उसे सुनकर संसार पिघल जाता ॥२२३॥ दोनों नेत्रों से अटूट धारा बहती थी तथा उनकी करुण ध्वनि सुनकर काष्ठ-पाषाण भी फटते थे ॥२२४॥ कभी ध्यान में कृष्ण का साक्षात्कार करके अपने को भूलकर शचीदेवी जोर से हँसती थीं॥२२५॥ ऐसा वह आनन्द-हास्य परम अद्भुत था कभी

हेन से आनन्द-हास्य-अद्भुत परम । दुइ-प्रहरेओ कभू नहे उपशम ॥२२६॥
कखनो ये आइ हये आनन्द मूर्च्छित । प्रहरेक धातु नाहि थाके कदाचित ॥२२७॥
कखनो वा हेन कम्प उपजे आसिया । पृथिवीते केहो येन तोले आछाड़िया ॥२२८॥
आइर ये कृष्णावेश-कि तार उपमा । आइ वइ अन्य आर नाहि तार सीमा ॥२२९॥
गौरचन्द्र- श्रीविग्रहे यत कृष्णभक्ति । आइरेओ प्रभु दियाछेन सेइ शक्ति ॥२३०॥
अतएव आइर ये भक्तिर विकार । ताहा वर्णिवेक सब-हेन शक्तिकार ॥२३१॥
हेन मते परानन्द समुद्र-तरङ्गे । भासेन दिवस निशि आइ महारङ्गे ॥ २३२ ॥
कदाचित आइर ये किछु वाह्य हय । सेहो विष्णु पूजा लागि-जानिह निश्चय ॥२३३॥
कृष्णेर प्रसङ्गे आइ आछेन वसिया । हेनइ समये शुभ वार्ता हैल-गिया ॥ २३४ ॥
शान्तिपुरे आइलेन श्रीगौरसुन्दर । चल आइ झाट आसि देखह सत्वर ॥ २३५ ॥
वार्ता शुनि ये सन्तोष हइलेन आइ । ताहार अवधि आर कहिवारे नाइ ॥ २३६ ॥
वार्ता शुनि प्रभुर यतेक भक्तगण । सभेइ हइला अति परानन्द-मन ॥ २३७ ॥
गङ्गादास पण्डित-प्रभुर प्रियपात्र । आइ लइ चलिलेन सेइक्षण मात्र ॥ २३८ ॥
श्रीमुरारि गुप्त-आदि यत भक्तगण । सभेइ आइर सङ्गे करिला गमन ॥ २३९ ॥
सत्वरे आइला शची-आइ शान्तिपुरे । वार्ता शुनिलेन प्रभु श्रीगौरसुन्दरे ॥ २४० ॥
श्रीगौरसुन्दर प्रभु आइरे देखिया । सत्वरे पड़िला दूरे दण्डवत हैया ॥ २४१ ॥
पुनः पुन प्रदक्षिण हइया हइया । दण्डवत हय श्लोक पढ़िया-पढ़िया ॥२४२॥

दो प्रहर के लिये भी बन्द नहीं होता था ॥ २२६ ॥ यदि कभी माता को आनन्द-मूर्च्छा हो जाती तो कदाचित् एक प्रहर तक होश ही नहीं होता था ॥ २२७ ॥ कभी ऐसा कम्प हो उठता कि जैसे कोई पृथ्वी पर पछाड़कर उठाता हो ॥ २२८ ॥ माताजी को जो कृष्णावेश है उसकी क्या उपमा है ? माता के अतिरिक्त उसकी और कोई सीमा नहीं है ॥ २२९ ॥ श्रीगौरचन्द्र के श्रीविग्रह में जितनी कृष्ण-भक्ति थी प्रभुने माताजी को भी वही शक्ति दे दी थी ॥ २३० ॥ इसी कारण माताजी में भक्ति के जितने विकार उदित होते थे उन सबको वर्णन कर सके ऐसी किस में शक्ति है ? ॥२३१॥ इस प्रकार माताजी परम आनन्द समुद्र की तरङ्गों में बड़े प्रेम से दिन-राति डूबी रहती थीं ॥ २३२ ॥ कदाचित् माताजी को कभी कुछ वाह्य ज्ञान होता तो वह केवल विष्णु-पूजा के निमित्त ही जानिये ॥ २३३ ॥ जब श्रीप्रभु के आगमन की शुभ वार्त्ता हुई तथा आप कृष्ण प्रसङ्ग में ही बैठी थीं ऐसे समय पर "श्रीगौरसुन्दर शान्तिपुर में आये हुए हैं,हे माताजी ! चलो-चल के देखलो" ? ॥२३४-२३५॥ इस वार्ता को सुनकर माताजी को जो सन्तोष हुआ उसकी अवधि कहते नहीं बनती ॥२३६॥ बात सुनकर प्रभु के जितने भक्तवृन्द हैं सब ही मनमें विशेष आनन्दित हुए ॥ २३७ ॥ प्रभु के प्रियपात्र पण्डित गङ्गादासजी माताजी को लेकर उसी क्षण तुरन्त चल दिये ॥२३८॥ श्रीमुरारी गुप्त आदि जितने भक्त थे वे सब ही श्रीमाताजी के साथ चल दिये ॥ २३९ ॥ श्रीमाताजी शीघ्र ही शान्तिपुर में आ गईं श्रीगौर प्रभु ने भी यह बात सुनी ॥ २४० ॥ प्रभु श्रीगौरसुन्दर शची माता को देखकर दूर से दण्डवत् होकर पृथ्वी पर लेट गये ॥२४१॥ बारम्बार प्रदक्षिणा करके श्लोक पढ़ते जाते थे और दण्डवत् प्रणाम

तुमि विश्व जननी केवल भक्तिमयी । तोमारे से गुणातीत-सत्त्वरूपा कहि ।। २४३ ।।
तुमि यदि शुभदृष्टि कर जीव-प्रति । तबे से जीवेर हय कृष्णे रति मति ।। २४४ ।।
तुमि से केवल मूर्तिमती विष्णु भक्ति । याहा हैते सब हय-तुमि सेइ शक्ति ।। २४५ ।।
तुमि गङ्गा देवकी यशोदा देवहूति । तुमि पृश्नि अनसूया कौशल्या अदिति ।।२४६।।
यत देखि सब तोमा हैते से उदय । पालह तुमि से तोमाते से लीनो हय ।। २४७ ।।
तोमार प्रभाव बलिबार शक्तिकार । सभार हृदये पूर्ण बसति तोमार ।। २४८ ।।
श्लोक बन्धे एइ मत करिया स्तवन । दण्डवत हय प्रभु धर्म्म-सनातन ।। २४९ ।।
कृष्ण वइ-ओ कि पितृ-मातृ-गुरु-भक्ति । करिवारे ए मत धार्ये केहो शक्ति ।। २५० ।।
आनन्दाश्रु-धारा वहे सकल अङ्गेते । श्लोक पढ़ि नमस्कार हय बहुमते ।। २५१ ।।
आइ बोल-देखि मात्र श्रीगौर वदन । परानन्दे जड़ हइलेन सेइक्षण ।। २५२ ।।
रहियाछे आइ येन कृत्रिम-पुतली । स्तुति करे वैकुण्ठ-ईश्वर कुतूहली ।। २५३ ।।
प्रभु बोले विष्णुभक्ति ये किछु आमार । केवल एकान्त सब प्रसाद तोमार ।। २५४ ।।
कोटि दास-दासेरो ये सम्बन्ध तोमार । सेह जन प्राण हैते वल्लभ आमार ।। २५५ ।।
वारे को ये जन तोमा करिब स्मरण । तार कभू नहिवेक संसार बन्धन ।। २५६ ।।
सकल पवित्र करे ये गङ्गा तुलसी । ताना ओ हयेन धन्य तोमारे परशि ।। २५७ ।।
तुमि यत करियाछ आमार पालन । आमार शक्तिये ताहा ना हय शोधन ।। २५८ ।।

करते थे ।। २४२ ।। तुम केवल भक्तिमयी विश्वजननी हो और तुम्हें तीनों गुणों से ऊपर शुद्ध सत्त्वस्वरूप कहते हैं ।। २४३ ।। यदि तुम जीवों के प्रति शुभ दृष्टि करती हो तो उनकी कृष्ण में रति व मति होती है ।। २४४ ।। तुम केवल वह मूर्तिमती विष्णु-भक्ति हो, जिसके द्वारा सब कुछ होता है तुम वही शक्ति हो ।। २४५ ।। तुम ही गङ्गा, देवकी, यशोदा व देवहूति हो तथा तुम ही पृश्नि, अनुसूया, कौशल्या व अदिति हो ।। २४६ ।। जो कुछ प्रगट में दृष्टिगोचर होता है वह सब तुम ही से उत्पन्न होता है–तुम ही पालन करती तथा तुम ही में लय हो जाता है ।। २४७ ।। तुम्हारे प्रभाव कहने की किस में शक्ति है और सब ही के हृदय में तुम निवास करती हो ।। २४८ ।। इस प्रकार श्लोक बद्ध स्तुति करके नित्य स्वरूप प्रभु ने दण्डवत् प्रणाम किया ।। २४९ ।। क्या कृष्ण के अतिरिक्त और किसी में इस प्रकार पिता-माता-गुरु भक्ति करने की सामर्थ्य है ? ।। २५० ।। सब अङ्गों से आनन्द-जल की धारा बहती थी तथा वह इस प्रकार से श्लोक पढ़ते और नमस्कार करते थे ।। २५१ ।। श्रीगौरचन्द्र का मुख देखते ही श्रीमाताजी तत्क्षण परमानन्द से जड़ हो गईं ।। २५२ ।। जब वैकुण्ठनाथ श्रीमाताजी की कुतूहल पूर्वक स्तुति कर रहे थे तो वे (माताजी) तो गढ़ी हुई पुतली के समान होकर रह गईं ।। २५३ ।। प्रभु ने कहा मेरे जो कुछ विष्णु-भक्ति है वह सब केवल एक मात्र तुम्हारे ही अनुग्रह से है ।। २५४ ।। अगणित दासानुदास से जो तुम्हारा सम्बन्ध है रखता वह सब जन मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं।।२५५।।जो मनुष्य एक बार भी तुम्हारा स्मरण करेगा उसे कभी संसार बन्धन नहीं होगा ।। २५६ ।। जो गङ्गा व तुलसी सबको पवित्र करती हैं वे भी तुम्हें स्पर्श करके धन्य होती हैं ।। २५७ ।। मेरा तुमने जितना पालन किया है अर्थात् मैं स्वयं अपने बल से उससे ऋणमुक्त नहीं हो सकता ।। २५८ ।।

दण्डे दण्डे यत स्नेह करिला आमारे । तोमार साद्गुण्य से ताहार प्रति कारे'' ॥२५६॥
एइमत प्रभु स्तुति करेन सन्तोषे । शुनिञा वैष्णवगण महानन्दे भासे ॥२६०॥
आइ जाने 'अवतीर्ण प्रभु नारायण । यखन ये इच्छा तान करेन तेमन' ॥२६१॥
कथोक्षणे आइ एइ बलिलेन मात्र । "तोमार वचन बुझे केबा आछे पात्र ॥२६२॥
प्राणहीन जन येन सिन्धुमाझे भासे । स्रोते यहिँ लये तहिँ चलये अवशे ॥२६३॥
एइमत सर्व जीव संसार सागरे । तोमार मायाय ये कराय ताहि करे ॥२६४॥
सबे एइ बोलों बाप तोमारे उत्तर । भाल हय येमते से तोमार गोचर ॥२६५॥
स्तुति प्रदक्षिण किबा कर' नमस्कार । मुञित ना बूझों किछु, ये इच्छा तोमार ॥२६६॥
शुनिञा आइर वाक्य सर्व-भागवते । महा-जय जय ध्वनि लागिला करिते ॥२६७॥
आइर भक्तिर सीमा के बूझिते पारे । गौरचन्द्र अवतीर्ण याँहार जठरे ॥२६८॥
प्राकृत-शब्दे ओ जेबा बलिबेक आइ । आइ-शब्द-प्रभावे ताहार दुखनाइ ॥२६९॥
प्रभु देखि सन्तोषे पूर्णित हैला आई । भक्तगण आनन्दे काहारो बाह्य नाई ॥२७०॥
एखने ये हइल आनन्द-समुच्चय । मनुष्येर शक्तिते कि ताहा कहा हय ॥२७१॥
नित्यानन्द महाप्रभु आइर सन्तोषे । परानन्द-सिन्धु-माझे भासेन हरिषे ॥२७२॥
देवकीर स्तुति पढ़ि आचार्य गोसाञि । आइरे करेन दण्डवत-अन्त नाञि ॥२७३॥
हरिदास मुरारी श्रीगर्भ नारायण । जगदीश-गोपीनाथ-आदि भक्तगण ॥२७४॥

घड़ी-घड़ी में मुझे जितना स्नेह किया है एक मात्र तुम्हारा सद्गुण समूह ही उसका प्रतिकार करने में समर्थ है अर्थात् सद्गुण से तुम ही मुझे क्षमा दान दे सकते हो ॥२५६॥ इस प्रकार गौरचन्द्र बड़े प्रसन्न होकर स्तुति कर रहे थे वैष्णववृन्द उसे सुनकर बड़े आनन्द में मग्न हो रहे थे ॥ २६० ॥ श्रीमाताजी यह समझती थीं कि नारायण भगवान् ही स्वयं अवतीर्ण हुए हैं और जब जो उनकी इच्छा होती है तब वैसा ही करते हैं ॥ २६१ ॥ पश्चात् श्रीमाताजी ने केवल इतना ही कहा कि तुम्हारे शब्द जो समझ सके ऐसा कौन मनुष्य है ॥ २६२ ॥ जिस प्रकार प्राणहीन मनुष्य समुद्र में गिरकर स्रोत जिधर ले जाय अवश होकर उधर ही जाता है ॥ २६३ ॥ इसी प्रकार संसार सागर में पड़े सब जीव वही करते हैं जो तुम्हारी माया उनसे कराती है ॥ २६४ ॥ हे वत्स ! तुम्हारी सब बातों के उत्तर में बस इतना ही कहती हूँ कि जिसमें भलाई होय सो तुम्हीं जानते हो ॥ २६५ ॥ तुम चाहे स्तुति करो प्रदक्षिणा अथवा नमस्कार करो मेरी तो समझ में कुछ आता नहीं है-तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो ॥ २६६ ॥ शची माता के शब्द को सुनकर सब भक्तवृन्द ऊँचे स्वर से जय जय ध्वनि करने लगे ॥ २६७ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने संसार में जिसकी कोख से जन्म लिया है उस माता की भक्ति की सीमा को कौन समझ सकता है ॥ २६८ ॥ जो कोई "आई" शब्द का उच्चारण मात्र करेगा उसको श्रीमाताजी के शब्द-बल से दुःख नहीं होगा॥२६९॥ श्रीमाताजी प्रभु को देखकर आनन्द से भरकर पूर्ण हो गईं तथा भक्तों को भी आनन्द में वाह्य ज्ञान नहीं रहा ॥ २७० ॥ उस समय जो आनन्द का समागम हुआ क्या वह मनुष्य की शक्ति से कहा जा सकता है ? ॥ २७१ ॥ श्रीमाताजी के आनन्द के प्रभाव से श्रीमहाप्रभु व श्रीनित्यानन्दजी पर आनन्द (प्रकृति के परे के आनन्द) के समुद्र में प्रसन्नता से

आइर सन्तोषे सभे हेन से हइला । परानन्दे ये हेन सभेइ मिशाइला ॥२७५॥
ए सब आनन्द पढ़े शुने येइ जन । अवश्य मिलये तारे प्रेम भक्ति धन ॥२७६॥
'प्रभुरे दिवेन भिक्षा आइ भाग्यवती । प्रभु स्थाने अद्वैत लइला अनुमति ॥२७७॥
सन्तोषे चलिला आइ करिते रन्धन । प्रेमयोगे चिन्ति 'गौरचन्द्र नारायण' ॥२७८॥
कतेक प्रकार आइ करिला रन्धन । नाम नाहि जानि हेन रान्धिला व्यञ्जन ॥२७९॥
आइ जाने-प्रभुर सन्तोष बड़ शाके । विंशति प्रकार शाक रान्धिला एतेके ॥२८०॥
एक एक व्यंजन-प्रकार दश-विशे । रान्धिलेन आइ अति चित्तेर सन्तोषे ॥२८१॥
अशेष प्रकारे आइ रन्धन करिया । भोजनेर स्थाने सब थुइलेन लैया ॥२८२॥
श्रीअन्न व्यंजन सब उपस्कार करि । सभार उपरे दिला तुलसी मंजरी ॥२८३॥
चतुर्दिगे सारि करि श्रीअन्न व्यजन । मध्ये पातिलेन अति उत्तम आसन ॥२८४॥
आइलेन महाप्रभु करिते भोजन । संहति लइया सब पारिषदगण ॥२८५॥
देखि प्रभु श्रीअन्न-व्यंजनेर उपस्कार । दण्डवत् हइया करिला नमस्कार ॥२८६॥
प्रभु बोले "ए अन्नेर थाकुक भोजन । ए अन्न देखिले हय बन्धविमोचन ॥२८७॥
कि रन्धन-इहा त कहिल किछु नय । ए अन्नेर गन्धेओ कृष्णेते भक्ति हय ॥२८८॥
बुझिलाङ-कृष्ण लइ सर्व परिवार । ए अन्न करियाछेन आपने स्वीकार" ॥२८९॥

गोते लगा रहे थे ॥ २७२ ॥ श्रीअद्वैताचार्य प्रभु (श्रीभागवत की) देवकी स्तुति पाठ करके श्रीमाताजी को दण्डवत् करने लगे–उनके दण्डवत् करने का अन्त नहीं होता था ॥ २७३ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर श्रीमुरारी-गुप्त, श्रीगर्भ, श्रीनारायण, श्रीजगदीश पण्डित, श्रीगोपीनाथ आदि भक्तवृन्द सभी श्रीमाताजी के सन्तुष्ट होने से ऐसे हो गये मानो सभी परमानन्द में मिल गये हों ॥ २७४-२७५ ॥ जो मनुष्य इस सब आनन्द-वार्ता को पढ़ेगा अथवा सुनेगा उसे प्रेम-भक्तिरूपी धन अवश्य मिलेगा ॥२७६॥ श्रीअद्वैताचार्य ने श्रीप्रभु से अनुमति ले ली कि उन्हें सौभाग्यवती माताजी भिक्षा पकावेंगी ॥ २७७ ॥ प्रसन्न होकर माताजी रन्धन करने को गईं तथा श्रीगौर नारायण का प्रेम-योग से चिंतन करती जाती थीं ॥२७८॥ श्रीमाताजी ने कितने प्रकार का रन्धन किया इन सब व्यंजनों का लेखक नाम भी नहीं जानता ॥ २७९ ॥ श्रीमाताजी ने सोचा कि श्रीप्रभु को शाकों (सागों) से बड़ा प्रेम है अतः उनके बीस प्रकार के साग रन्धन किये ॥ २८० ॥ श्री-माताजी ने अपने चित्त के अत्यन्त सन्तोष के लिये एक वस्तु को दस-बीस प्रकार से रन्धन किया ॥ २८१ ॥ श्रीमाताजी ने अनेक प्रकार से रसोई करके भोजन गृह में सबको ले जाकर रख दिया ॥ २८२ ॥ श्रीअन्न (भात) व्यंजनादि सबको एकत्र उपस्थित करके उनके ऊपर तुलसी मंजरी दे करके भोग लगाया ॥ २८३ ॥ चारों ओर श्रीअन्न व्यंजन सजाकर बीच में अति उत्तम आसन बिछा दिया ॥२८४॥ भोजन करने के लिये महाप्रभु पधारे संग में सब पार्षदों को भी लिये थे ॥२८५॥ श्रीअन्न व्यंजनों का भोग-प्रसाद देखकर श्रीप्रभु ने (श्रीठाकुर भोग को) दण्डवत् होकर नमस्कार की ॥ २८६ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "इस अन्न के भोजन तो दूर रहे केवल दर्शनमात्र से (जीव) बन्धन मुक्त हो जाँयगे ॥ २८७ ॥ क्या अद्भुत रन्धन (रसोई) हुआ है इसका कुछ कहना ही क्या इस अन्न की गन्ध मात्र से ही श्रीकृष्ण में भक्ति हो जावेगी ॥२८८॥ जान पड़ता

एत बलि प्रभु अन्न-प्रदक्षिण करि । भोजने बसिला श्रीगौराङ्ग नरहरि ॥२९०॥
प्रभुर आज्ञाय सब पारिषदगण । बसिलेन चतुर्दिगे देखिते भोजन ॥२९१॥
भोजन करेन श्रीवैकुण्ठ-अधि पति । नयन भरिया देखे आइ भाग्यवती ॥२९२॥
प्रत्येके प्रत्येके प्रभु सकल व्यंजन । महा आमोदिया नाथ करेन भोजन ॥२९३॥
सभा हैते भाग्यवन्त-श्रीशाक व्यंजन । पुनः पुन याहा प्रभु करेन ग्रहण ॥२९४॥
शाकेते देखिया बड़ प्रभुर आदर । हासेन प्रभुर यत सब अनुचर ॥२९५॥
शाकेर महिमा प्रभु सभारे कहिया । भोजन करेन प्रभु ईषत हासिया ॥२९६॥
प्रभु बोले "एइ ये अच्युता-नामे शाक । इहार भोजने हय कृष्णे अनुराग ॥२९७॥
पटोल-वास्तुक-काल-शाकेर भोजने । जन्म जन्म विहरये वैष्णवेर सने ॥२९८॥
सालिंचा-हिलंचा-शाक भक्षण करिले । आरोग्य थाकये तारे कृष्णभक्ति मिले ॥२९९॥
एइमत शाकेर महिमा कहि कहि । भोजन करेन प्रभु आनन्दित हइ ॥३००॥
यतेक आनन्द हैल ए दिन भोजने । सबे इहा जाने प्रभु-सहस्र वदने ॥ ३०१ ॥
एइ यश सहस्र-जिह्वाय निरन्तर । गायेन अनन्त आदिदेव महीधर ॥ ३०२ ॥
सेइ प्रभु कलियुगे-अवधूत-राय । सूत्रमात्र लिखि आमि ताहान आज्ञाय ॥ ३०३ ॥
वेदव्यास आदि करि यत मुनिगण । एइ सब यश सभे करेन वर्णन ॥ ३०४ ॥
ए यशेर यदि करे श्रवण पठन । तबे से जीवेर खण्डे अविद्या बन्धन ॥ ३०५ ॥

है स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र ने सपरिवार इस अन्न को ग्रहण किया है ॥ २८९ ॥ मनुष्यों में सिंहरूप श्रीप्रभु ने इस प्रकार कहकर अन्न की प्रदक्षिणा की और भोजन करने को बैठे ॥ २९० ॥ प्रभु की आज्ञा से सब पार्षदवृन्द चारों ओर बैठ गये और भोजन लीला देखने लगे ॥ २९१ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ भोजन कर रहे थे और भाग्यवती माताजी नेत्र भरकर उन्हें देख रही थीं ॥ २९२ ॥ श्रीप्रभु सभी व्यंजनों से बनी प्रत्येक वस्तु को बड़ा आनन्द प्रकाश करते हुए भोजन करने लगे ॥ २९३ ॥ उन सभी पदार्थ में श्रीशाक व्यंजन बड़े भाग्यवन्त थे जिन्हें श्रीप्रभु बारम्बार ग्रहण करते थे ॥ २९४ ॥ शागों में प्रभु का विशेष आदर को देखकर प्रभु के सभी सेवक हँसने लगे ॥ २९५ ॥ श्रीप्रभु सबसे शागों की महिमा कहते जाते और कुछ २ हँसते हुए भोजन करते जाते थे ॥ २९६ ॥ प्रभु ने कहा "यह जो 'अच्युता' नाम का शाग है इसका भोजन से कृष्ण का अनुराग होता है" ॥ २९७ ॥ पटोल-बथुआ व काल नामक शाग के भोजन करने से जन्म-जन्म में वैष्णवों के साथ विहार करने को मिलता है ॥ २९८ ॥ सालिंचा व हिलंचा नामक शागों के भक्षण करने से आरोग्य रहता है जिससे कृष्ण-भक्ति मिलती है ॥ २९९ ॥ इस प्रकार श्रीप्रभु ने शागों की महिमा कह-कह कर प्रसन्नता पूर्वक भोजन किया ॥ ३०० ॥ जितना आनन्द उस दिन भोजन में आया उसे केवल सहस्रमुखी अनन्तदेव ही जानते हैं ॥ ३०१ ॥ इसी यश को पृथ्वीधारी आदिदेव श्रीअनन्तजी सहस्र जीभों से निरन्तर गान करते रहते हैं ॥ ३०२ ॥ कलियुग में वे ही प्रभु श्रीअनन्तदेव अवधूतराय (नित्यानन्द) हैं सो मैं उन्हीं की आज्ञा से सूत्र मात्र लिख रहा हूँ ॥ ३०३ ॥ वेदव्यास से आरम्भ करके जितने मुनिगण हैं, वे सब इन्हीं यशों का वर्णन करते हैं ॥ ३०४ ॥ यदि इस यश का जो श्रवण व पाठ करेंगे तो उन जीवों का अविद्या जनित बन्धन

इन-रङ्गे महाप्रभु करिया भोजन । वसिलेन गिया प्रभु करि आचमन ।। ३०६ ।।
मुखवास हरीतकी दिल भक्तगण । पुष्पमाला-आदि दिल सुगन्धि चन्दन ।। ३०७ ।।
आचमन करि मात्र ईश्वर वसिला । भक्तगण अवशेष लूटिते लागिला ।। ३०८ ।।
केहो बोले ब्राह्मणेर इहाते कि दाय । शूद्र आमि, आमारे से उच्छिष्ट जुयाय ।।३०९।।
आर केहो बोले 'आमि नहिये ब्राह्मण' । आड़े थाकि लइ केहो करे पलायन ।।३१०।।
केहो बोले शूद्रेर उच्छिष्ट योग्य नहे । 'हय' 'नय' विचारिया बूझ-शास्त्रे कहे ।।३११।।
केहो बोले आमि अवशेष नाहि चाइ । शुधू पातखानि मात्र आमि लइ याइ ।।३१२।।
केहो बोले आमि पात फेलि सर्वकाल । तोमरा ये लह से केवल ठाकुराल ।।३१३।।
एइ मत कौतुके चपल भक्तगण । ईश्वर अधरामृत करेन भोजन ।। ३१४ ।।
आइर रन्धन-ईश्वरेर अवशेष । कार वा इहाते लोभ ना जन्मे विशेष ।। ३१५ ।।
परानन्दे भोजन करिया भक्तगण । प्रभुर सम्मुखे सभे करिला गमन ।। ३१६ ।
वसिया आछेन प्रभु श्रीगौरसुन्दर । चतुर्दिगे बसिलेन सर्व-अनुचर ।। ३१७ ।।
मुरारि गुप्तेरे प्रभु सम्मुखे देखिया । बलिलेन ताँरे किछु ईषत् हासिया ।। ३१८ ।।
पढ़ गुप्त राघवेन्द्र वर्णियाछ तुमि । अष्ट-श्लोक करियाछ शुनि आछि आमि ।।३१९।।
ईश्वरेर आज्ञा गुप्त-मुरारि शुनिया । पढ़िते लागिला श्लोक भावाविष्ट हैया ।।३२०।।

तथाहि (श्रीचैतन्यचरिते २ य प्रक्रमे ७ म सर्गे)–

"अग्रे धनुर्द्धरवरः कनकोज्ज्वलाङ्गो ज्येष्ठानुसेवनरतो वरभूषणाढ्यः ।
शेषाख्यधाम-वरलक्ष्मणनाम यस्य रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि" ।।१।।

टूट जायगा ।। ३०५ ।। श्रीमहाप्रभु ने इस प्रकार आनन्द से भोजन प्रसाद पाया और आचमन करके अपने स्थान पर जा बिराजे ।। ३०६ ।। भक्तगणों ने पुष्पमाला आदि सुगन्ध चन्दन व मुखवास (ताम्बूल) हरीतकी प्रदान की ।। ३०७ ।। आचमन करके श्रीगौरचन्द्र बिराजे ही थे कि भक्तगण अवशेष (भोजन) लूटने लगे ।। ३०८ ।। कोई कहता "इसमें ब्राह्मणों का क्या अधिकार है मैं शूद्र हूँ, हमें उच्छिष्ट मिलना युक्तियुक्त है ।। ३०९ ।। कोई कहता कि मैं ब्राह्मण ही हूँ नहीं तथा कोई बीच से ही (झपट कर) लेकर भागता था ।। ३१० ।। कोई कहता कि यह उच्छिष्ट शूद्र के योग्य नहीं है तो उत्तर मिलता कि "है या नहीं" शास्त्र क्या कहता है, उसे विचारो ? ।। ३११ ।। कोई कहता "मुझे अवशेषान्न नहीं चाहिये केवल पत्तल मात्र दे दो तो ले जाऊँ" ।। ३१२ ।। कोई कहता "हम तो सदा ही पत्तल उठाने वाले हैं,हमारा व्यवसाय है, तुम तो केवल ठकुराई के कारण लेना चाहते हो ?" ।।३१३।। इस प्रकार चंचल भक्तमण्डली श्रीप्रभु का अधरामृत प्रसाद भोजन कर रहे हैं ।। ३१४ ।। एक तो श्रीमाताजी की बनाई हुई रसोई–दूसरे महाप्रभु की अधरामृत प्रसादी–भला किसको उसमें विशेष लोभ न जन्मेगा ।। ३१५ ।। भक्तगण ने परम आनन्द से भोजन करके पश्चात् श्रीप्रभु के सम्मुख गमन किया ।।३१६।। श्रीगौरसुन्दर प्रभु विराजमान हो रहे थे तथा सेवकगण उनके चारों ओर बैठ गये ।। ३१७ ।। मुरारीगुप्त को सामने देखकर श्रीप्रभु कुछ हँसकर बोले–।। ३१८ ।। हे गुप्त जी ! मैंने सुना है कि तुमने श्री राघवेन्द्रजी के (यश में) एक अष्टक (आठ श्लोक का) की रचना की है ।।३१९।। श्री मुरारी गुप्त प्रभु की आज्ञा सुनकर भावाविष्ट हो श्लोक का पाठ करने लगे ।। ३२० ।। जिनके आगे

"हत्वा खर-त्रिशिरसौ सगणौ कवन्धं श्रीदण्डकाननमदूषणमेव कृत्वा।
सुग्रीवमैत्रमकरोद्विनिहत्य शत्रुं रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि" ॥२॥

एइ मत अष्ट श्लोक मुरारि पढ़िला। प्रभुर आज्ञाय व्याख्या करिते लागिला ॥ ३२१ ॥
"दूर्वादल श्यामल-कोदण्ड दीक्षागुरु। भक्तगण-प्रतिवाञ्छातीत-कल्पतरु ॥ ३२२ ॥
हास्य मुखे रत्नमय-राज-सिंहासने। बसिया आछेन श्रीजानकीदेवी वामे ॥ ३२३ ॥
अग्रे महाधनुर्द्धर अनुज लक्ष्मण। कनकेर प्राय ज्योति कनक भूषण ॥ ३२४ ॥
आपने अनुज हइ श्रीअनन्त धाम। ज्येष्ठेर सेवाय रत-श्रीलक्ष्मण-नाम ॥ ३२५ ॥
सर्व महागुरु हेन श्रीरघुनन्दन। जन्म-जन्म भजों मुञि ताँहार चरण ॥ ३२६ ॥
भरत शत्रुघ्न दुइ चामर ढुलाय। सम्मुखे कपीन्द्रगण पुण्य कीर्तिगाय ॥ ३२७ ॥
ये प्रभु करिला गुह-चण्डालेरे मित। जन्म-जन्म भजों मुञि ताँहार चरित ॥ ३२८ ॥
गुरु-आज्ञा शिरे धरि छाड़ि निज राज्य। बन भ्रमिलेन ये करिते सुर कार्य ॥ ३२९ ॥
बालि मारि सुग्रीवेरे राज्य भार दिया। मित्र-पद दिला ताने करुणा करिया ॥ ३३० ॥
ये प्रभु करिला अहल्यार विमोचन। भजों हेन त्रिभुवन गुरुर चरण ॥ ३३१ ॥
दुस्तर तरंग-सिन्धु-ईषत् लीलाय। कपि-द्वारे ये बान्धिल लक्ष्मण सहाय ॥ ३३२ ॥
इन्द्रादिर अजय रावण वंश-सने। ये प्रभु मारिल भजों ताहार चरणे ॥ ३३३ ॥

धनुषधारियों में अग्रगण्य, सुवर्ण के तुल्य विशेष उज्वलांग, अग्रज की अनुकूल सेवा में लगे हुए, उत्कृष्ट अलंकारों से अलंकृत, साक्षात् शेष स्वरूप एवं सबसे श्रेष्ठ, लक्ष्मण नामधारी कोई महापुरुष विराजमान हैं, मैं उस त्रिलोकी के गुरु रामचन्द्रजी का भजन करता हूँ ॥१॥ जिन्होंने स्वजन सहित खर व त्रिशिरा नामक राक्षसों को मारकर दण्डकारण्य शत्रु से शून्य किया व शत्रु को मारकर सुग्रीव से मित्रता की थी, मैं उन्हीं त्रिलोकी के गुरु श्रीरामचन्द्र का निरन्तर भजन करता हूँ ॥२॥ इस प्रकार श्रीमुरारी गुप्त ने आठों श्लोक पढ़े और प्रभु की आज्ञा से व्याख्या करने लगे॥३२१॥ दूर्वादल श्याम धनुष के दीक्षागुरु भक्तगणों के प्रति वांछातीत फल प्रदान में कल्पतरु श्रीराम हास्यमुख से रत्नमय राजसिंहासन पर विराजमान हैं। आपके बांई ओर श्रीजानकीदेवी तथा आगे बड़े धनुषधारी छोटे भाई लक्ष्मण हैं श्रीलक्ष्मण नामक श्रीअनन्तधाम आपकी द्युति कनक के तुल्य है और आप कनक वर्ण के भूषण पहर कर स्वयं अनुज होकर बड़े भाई राम की सेवा में संरत हैं ऐसे श्रीरघुनन्दन सबके प्रधान गुरु हैं, मैं उनके चरण-कमलों को जन्म-जन्म भजूँ ॥ ३२२ से ३२६॥ भरत शत्रुघ्न दोनों चँवर ढुलाते हैं सामने कपीन्द्रगण पुण्य कीर्ति का गान करते हैं और जिन प्रभु ने गुहक चाण्डाल से मित्रता की मैं उनके चरित्रों को जैसे जन्म-जन्म में भजन करूँ ॥३२७-३२८॥ पिता की आज्ञा शिर पर रखकर अपने राज्य को त्याग कर देवताओं के कार्य करने के लिये जिन्होंने वन में भ्रमण किया तथा बालि को मारकर सुग्रीव को राज्य का भार दिया, आपने करुणा करके सुग्रीव को मित्र पद प्रदान किया तथा जिन प्रभु ने अहिल्या का विमोचन किया मैं ऐसे त्रिभुवन के गुरु श्रीराम के चरण-कमलों का भजन करता हूँ ॥ ३२९ से ३३१ ॥ जिन प्रभु ने लीलामात्र से कपियों के द्वारा दुस्तर तरङ्गों युक्त समुद्र में पुल बाँधा और इन्द्र आदि देवताओं के अजेय रावण को वंश के सहित लक्ष्मण की सहायता से बध किया ऐसे प्रभु के चरण-कमलों में निरन्तर भजन करता हूँ ॥ ३३२-३३३ ॥ जिनकी कृपा से धर्मपरायण विभीषण

याहार कृपाय विभीषण धर्म पर। इच्छा नाहि तथापि हइला लंकेश्वर ॥ ३३४ ॥
यवनेओ याँर कीर्ति श्रद्धा करि शुने। भजों हेन राघवेन्द्र-प्रभुर चरणे ॥ ३३५ ॥
दुष्टक्षय लागि निरन्तर धनुर्द्धर। पुत्रेर समान प्रजा-पालने तत्पर ॥ ३३६ ॥
याँहार कृपाय सब अयोध्या निवासी। स-शरीरे हइलेन श्रीवैकुण्ठवासी ॥ ३३७ ॥
याँर नाम-रसे महेश्वर दिगम्बर। रमा याँर पादपद्म सेवे निरन्तर ॥ ३३८ ॥
'परंब्रह्म जगन्नाथ' वेदे याँरे गाय। भजों हेन जगद्गुरु-राघवेन्द्र-पाय ॥ ३३९ ॥
एइ मत अष्ट श्लोक आपनार कृत। पढ़िला मुरारि राम-महिमा-अमृत ॥ ३४० ॥
शुनि तुष्ट हइ तवे श्रीगौरसुन्दर। पादपद्म दिला ताँर मस्तक-उपर ॥ ३४१ ॥
शुन गुप्त एइ तुमि आमार प्रसादे। जन्म-जन्म रामदास हओ निर्विरोधे ॥ ३४२ ॥
क्षणेके ये करिवेक तोमार आश्रय। सेहो राम पदाम्बुज पाइव निश्चय ॥ ३४३ ॥
मुरारि गुप्तेरे चैतन्येर वर शुनि। सभेइ करेन महा-जय जय ध्वनि ॥ ३४४ ॥
एइ मते कौतुके आछेन गौरसिंह। चतुर्दिगे शोभे सब चरणेर भृङ्ग ॥ ३४५ ॥
हेनइ समये कुष्ठ रोगी एक जन। प्रभुर सम्मुखे आसि दिल दरशन ॥ ३४६ ॥
दण्डवत हइया पड़िल आर्तनादे। दुइ बाहु तुलि महा आर्ति करि कान्दे ॥ ३४७ ॥
संसार-उद्धार लागि तुमि महाशय। पृथिवीर माझे आसि हइला उदय ॥ ३४८ ॥
पर-दुःख देखि तुमि स्वभावे कातर। एतेके आइलूँ मुञि तोमार गोचर ॥ ३४९ ॥

इच्छा न होते हुए भी लंकेश्वर हुए तथा जिनकी कीर्ति यवन भी श्रद्धापूर्वक सुनते हैं ऐसे राघवेन्द्र प्रभु के चरणों का मैं भजन करता हूँ॥३३४-३३५॥ जो दुष्टों के नाश करने को निरन्तर धनुष धारण करते हैं तथा जो पुत्र समान प्रजा पालन करने में तत्पर हैं तथा जिनकी कृपा से सब अयोध्या निवासी शरीर सहित श्रीवैकुण्ठ-वासी हुए, जिनके नाम के रस से महेश्वर दिगम्बर हैं लक्ष्मीजी निरन्तर जिनके चरण-कमलों की सेवा करती हैं, वेद जिनको परमब्रह्म जगन्नाथ कहकर गान करते हैं ऐसे जगद्गुरु श्रीराघवेन्द्र के चरण-कमलों का मैं बारम्बार भजन करता हूँ ॥ ३३६ से ३३९ ॥ इस प्रकार श्रीमुरारी गुप्त ने स्वरचित राम महिमामृत रूप आठ श्लोकों के अष्टक का पाठ किया ॥ ३४० ॥ तब श्रीगौरसुन्दर सुनकर बड़े प्रसन्न हुए तथा उनके मस्तक के ऊपर अपने चरण-कमल अर्पण किये ॥ ३४१ ॥ हे गुप्त सुनो ! मेरी कृपा से तुम निर्विरोध प्रत्येक जन्म में श्रीरामदास होओगे ॥ ३४२ ॥ जो मनुष्य एक क्षण के लिये तुम्हारा आश्रय करेगा वह भी श्री रामजी के चरण-कमल निश्चय पावेगा ॥३४३॥ श्रीमुरारी गुप्त के प्रति श्रीचैतन्यदेव का वरदान सुनकर सब ऊँचे स्वर से जय २ ध्वनि करने लगे ॥ ३४४ ॥ श्रीगौरसिंह इस प्रकार कौतुक से विराजमान थे तथा उनके चरणों के चारों ओर भक्तमण्डली भौंरों की तरह शोभा पा रही थी ॥ ३४५ ॥ ऐसे ही समय एक कुष्ठ रोगी प्रभु के सामने आया ॥ ३४६ ॥ आर्तनाद करके वह दण्ड के समान गिर पड़ा तथा दोनों भुजाएं उठाकर बड़े दीन स्वर में रोने लगा ॥ ३४७ ॥ हे महाशय ! आप संसार उद्धार के निमित्त पृथ्वी पर प्रगट हुए हो॥३४८॥आप स्वभाव से ही पर दुःख देखकर कातर (द्रवित) होते हो इसी कारण से मैं आपके सम्मुख आया हूँ ॥ ३४९ ॥ कुष्ठ रोग से पीड़ित हूँ उसकी ज्वाला से मैं दिन रात जलता रहता हूँ। हे प्रभो ! इससे

कुष्ठरोगे पीड़ित, ज्वालाय मुजि मरों । बोलह उपाय प्रभु कोन् मते तरों ॥ ३५० ॥
शुनि महाप्रभु कुष्ठरोगीर वचन । बलिते लागिला क्रोधे तर्जन-वचन ॥ ३५१ ॥
घूच घूच महापापि विद्यमान हैते । तोरे देखिलेओ पाप जन्मये लोकेते ॥ ३५२ ॥
परम-धार्मिक यदि देखे तोर मुख । से दिवसे ताहार अवश्य हय दुःख । ३५३ ॥
वैष्णव निन्दक तुजि पापी दुराचार । इहा हैते दुःख तोर कत आछे आर ॥ ३५४ ॥
एइ ज्वाला सहिते ना पार दुष्ट मति । केमते करिवा कुम्भी पाकेते वसति ॥३५५॥
ये 'वैष्णव' नामे हय संसार पवित्र । ब्रह्मादि गायेन ये वैष्णव चरित्र ॥ ३५६ ॥
ये वैष्णव भजिले अचिन्त्य कृष्ण पाइ । ये वैष्णव पूजा हैते बड़ आर नाइ ॥३५७॥
शेष रमा अज भव निज देह हैते । वैष्णव कृष्णेर प्रिय कहे भागवते ॥३५८॥

तथाहि भागवते ११ स्कन्धे १४ अध्याये १५ श्लोके—

"न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः । न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्" ॥३॥

हेन वैष्णवेर निन्दा करे ये-ये जन । सेइ पाय दुःख-जन्म जीवन मरण ॥३५६॥
विद्या कुल तप-सब बिफल ताहार । वैष्णव निन्दये ये-ये पापी दुराचार ॥३६०॥
पूजाओ ताहार कृष्ण ना करे ग्रहण । वैष्णवेर निन्दा करे ये पापिष्ठ जन ॥३६१॥
ये वैष्णव नाचिते पृथिवी धन्य हय । यार दृष्टिमात्र दश-दिगे पाप क्षय ॥३६२॥
ये वैष्णव जन बाहु तुलिया नाचिते । स्वर्गेरो सकल विघ्न घूचे भालमते ॥३६३॥
हेन महाभागवत श्रीवास पण्डित । तुजि पापी निन्दा कैलि ताँहार चरित ॥३६४॥

छूटने के उपाय बतलाइये ।। ३५० ।। कुष्ठ रोगी के वचन सुनकर महाप्रभु क्रोध से फटकारते हुए बोले।।३५१।। अरे महापापी ! सामने से दूर हो दूर हो ! मनुष्यों में तुझे देखते ही पाप उदय होता है ? ।। ३५२ ।। यदि कोई परम धार्मिक भी तेरे मुख को देख लेगा तो उस दिन उसे अवश्य दुःख मिलेगा ॥ ३५३ ॥ तू वैष्णवों की निन्दा रूप बुरा आचरण करने वाला पापी है इससे तुझे अभी आगे और भी कितने ही दुःख पड़ेंगे ॥३५४॥ अरे दुष्ट बुद्धि ! इसी ज्वाला को नहीं सह पाता तो कुम्भीपाक नरक में कैसे वास करेगा । ३५५॥ जिन वैष्णवों के नाम से संसार पवित्र होता है जिन वैष्णवों के चरित्रों को ब्रह्मादि ने भी गाया है ॥३५६॥ जिन वैष्णवों की सेवा से अचिन्त्य कृष्ण भी प्राप्त होते हैं जिन वैष्णवों की पूजा से अन्य पूजा श्रेष्ठ नहीं है ॥३५७॥भागवत का वचन है कि भगवान् कृष्ण को वैष्णवगण शेष,लक्ष्मी,ब्रह्मा,शिवजी तथा अपनी देह से भी अधिक प्रिय है ॥ ३५८ ॥ हे उद्धव ! ब्रह्मा, शिव, संकर्षण, लक्ष्मी व मेरा अपना आत्मा भी उतनी प्रिय नहीं है जितने तुम प्रिय हो ॥ ३ ॥ ऐसे वैष्णवों की जो निन्दा करता है वही जन्म (जीवन) मरण के दुःखों को बार २ पाता है ॥ ३५६ ॥ जो पापी दुराचारी वैष्णवों की निन्दा करता है उसका कुल-विद्या तथा तप सब निष्फल है ॥ ३६० ॥ जो पापिष्ठ जन वैष्णवों की निन्दा करता है उसकी की हुई पूजा को भगवान् (कृष्ण) ग्रहण नहीं करते हैं ॥ ३६१ ॥ जिन वैष्णवों के नाचने से पृथ्वी धन्य होती है और जिन्हों की दृष्टि-मात्र से दशों दिशाओं के पाप नष्ट होते हैं ॥ ३६२ ॥ जिन वैष्णवों के भुजा उठाकर नाचने से स्वर्ग के सब विघ्न अच्छी तरह दूर हो जाते हैं ॥ ३६३ ॥ ऐसे भक्ति शिरोमणि श्रीवास पण्डित हैं अरे दुष्ट तूने उनके

एतेके तोहोर कुष्ठ ज्वाला कोन् काज । मूलशास्ता पश्चाते आछेन धर्मराज ॥३६५॥
एतेके आमार दृश्य योग्य नह तुमि । तोमार निष्कृति करिबारे नारि आमि ॥३६६॥
सेइ कुष्ठरोगी शुनि प्रभुर उत्तर । दन्ते तृण करि बोले हइया कातर ॥३६७॥
किछु ना जानिलूँ मुञि आपना खाइया । वैष्णवेर निन्दा कैलूँ प्रमत्त हइया ॥३६८॥
अतएव तार शास्ति पाइलूँ उचित । एखने ईश्वर तुमि-चिन्त मर हित ॥३६९॥
साधुर स्वभाव धर्म-दुखित उद्धारे । कृत-अपराधेरे साधु से दया करे ॥३७०॥
एतेके शरण मुञि लइलूँ तोमार । तुमि उपेक्षिले मोर नाहिक निस्तार ॥३७१॥
याहार ये प्रायश्चित-तुमि सर्व ज्ञाता । प्रायश्चित्त बोल मोरे-तुमि सर्व पिता ॥३७२॥
वैष्णव जनेर येन निन्दन करिलूँ । उचित ताहार बोल शास्तिओ पाइलूँ ॥३७३॥
प्रभु बोले वैष्णव निन्दये येइ जन । कुष्ठरोग कोन तार शास्तिये लिखन ॥३७४॥
आपातत किछु दुःख पाइयाछ मात्र । आर केबा आछे यम यातनार पात्र ॥३७५॥
चौराशि-सहस्र यम यातना परलोके । पुनः पुन करि भुञ्जे वैष्णव निन्दके ॥३७६॥
चल कुष्ठरोगि तुमि श्रीवासेर स्थाने । सत्त्वरे पड़ह गिया ताँहार चरणे ॥३७७॥
ताँर ठाञि तुमि करियाछ अपराध । निष्कृति तोमार तिंहो करिले प्रसाद ॥३७८॥
काँटा फूटे ये मुखे से-इसे मुखे जाय । पाये काँटा फूटिले कि कान्धे बाहिराय ॥३७९॥
एइ कहिलाङ आमि निस्तार-उपाय । श्रीवास पण्डित क्षमिले से दुःख जाय ॥३८०॥

चरित्र की निन्दा की ॥ ३६४ ॥ इसलिये तेरी देह में कुष्ठ ज्वाला का दुख क्या है ? अभी मूल दण्डदाता धर्मराज तो अन्त में दण्ड देगा ॥३६५॥ इसलिये तुम मेरे देखने योग्य नहीं हो—मैं तुम्हारे कर्म भी शेष नहीं करूँगा ॥ ३६६ ॥ वह कुष्ठ रोगी श्रीप्रभु का उत्तर सुनकर ही दाँतों से तिनुका पकड़ कर बड़ा कातर होकर बोला ॥ ३६७ ॥ प्रभो ! मतवाले मैंने ही वैष्णव निन्दा करके अपने आपको ही खाया और कुछ नहीं जाना ॥ ३६८ ॥ अतएव मैंने उसका उचित दण्ड पा लिया—अब तो हे ईश्वर आप ही मेरे (कल्याण की) चिन्ता करो ? ॥ ३६९ ॥ दुःखितों का उद्धार करना साधु का स्वाभाविक धर्म है, उनके (दुःखितों के) किये हुए अपराधों पर तो साधु दया ही करते हैं ॥३७०॥ इस कारण अब आपकी शरण हूँ—आप ही उपेक्षा करेंगे तो मेरा निस्तार नहीं है ॥ ३७१ ॥ जिसका जो प्रायश्चित है आप सब जानते हैं कृपा करके (मेरे लिये) प्रायश्चित बतावें—आप सबके पिता हैं ॥ ३७२ ॥ वैष्णवजनों की जो मैंने निन्दा की उसका उचित दण्ड भी क्या मैंने नहीं पाया—आप कहें ? ॥ ३७३ ॥ श्रीप्रभु ने कहा जो मनुष्य वैष्णवों की निन्दा करे उसके लिये क्या कोई कुष्ठ रोग ही दण्ड विधान में लिखा है ? ॥ ३७४ ॥ स्वतः कुछ दुःख मात्र पाये हो, परन्तु यम यातना का पात्र क्या कोई और होगा ? ॥ ३७५ ॥ परलोक में वैष्णव निन्दक ८४ हजार प्रकार की यम यातनाएँ एक के पीछे एक करके भोगता है ॥ ३७६ ॥ हे कुष्ठी तुम शीघ्र ही श्रीवास के स्थान को जाओ तथा उनके चरणों में पड़ो ॥ ३७७ ॥ तुमने उनका अपराध किया है, तुम्हारे कृत्य को वे ही निःशेष करके अनुग्रह करेंगे ॥ ३७८ ॥ काँटा जहाँ लगता है वहीं से बाहिर होता है—पैर में काँटा लगकर कहीं कन्धे से निकलता है ? ॥ ३७९ ॥ मैंने तुम्हारे तरण का उपाय बता दिया श्रीवास पण्डित के क्षमा करने पर ही यह

महा-शुद्ध बुद्धि तिंहो ताँर स्थाने गेले । क्षमिवेन सर्व दोष, निस्तारिवे हेले ॥३८१॥
शुनिञा प्रभुर अति सुसत्य वचन । महा जय जय ध्वनि कैला भक्तगण ॥३८२॥
सेइ कुष्ठरोगी शुनि प्रभुर वचन । दण्डवत् हइया चलिला सेइ क्षण ॥३८३॥
सेइ कुष्ठरोगी पाइ श्रीवास प्रसाद । मुक्त हैल-खण्डिल सकल अपराध ॥३८४॥
यतेक अनर्थ हय वैष्णव निन्दाय । आपने कहिला एइ श्रीवैकुंठराय ॥३८५॥
तथापिह वैष्णवेर निन्दे येइ जन । तार शास्ता आछेन चैतन्य-नारायण ॥३८६॥
वैष्णवे-वैष्णवे ये देखह गाला गालि । परमार्थे नहे इथे कृष्ण कुतूहली ॥३८७॥
सत्यभामा-रुक्मिणीये गाला गालि येन । परमार्थे एक ताना, देखि भिन्न हेन ॥३८८॥
एइ मत वैष्णवे-वैष्णवे भिन्न नाञि । भिन्न करायेन रङ्ग चैतन्य गोसाञि ॥३८९॥
इथे येइ एक वैष्णवेर पक्ष लय । आर वैष्णवेरे निन्दे सेइ जाय क्षय ॥३९०॥
एक हस्त ईश्वरेर सेवये केवल । आर हस्ते दुःख दिले तार कि कुशल ॥३९१॥
एइ मत सर्व भक्त-कृष्णेर शरीर । इहा बूझे, ये हय परम-महाधीर ॥३९२॥
अभेद दृष्टये सर्व-वैष्णव पूजिया । ये कृष्ण-चरण भजे, से जाय तरिया ॥३९३॥
ये गाय ये शुने ए सकल पुण्य-कथा । वैष्णवापराध तार ना जन्मे सर्वथा ॥३९४॥
हेन मते श्रीगौरसुन्दर शान्तिपुरे । आछेन परमानन्दे अद्वैत-मन्दिरे ॥३९५॥
माधवपुरीर आराधना पुण्य तिथि । दैवयोगे उपसन्न हैल आसि तथि ॥३९६॥

दुःख जावेगा ॥ ३८० ॥ वे भी बड़े शुद्ध बुद्धि वाले हैं उनके पास जाने पर सब दोषों को क्षमा करके अनायास ही निस्तार कर देंगे ॥ ३८१ ॥ श्रीप्रभु की अति सुन्दर व सत्य वाणी सुनकर भक्तवृन्द ऊँचे स्वर से जय जय ध्वनि करने लगे ॥ ३८२ ॥ उस कुष्ठरोगी ने प्रभु के वचन सुनकर ही दण्डवत् की और तुरन्त चल दिया ॥ ३८३ ॥ वह कुष्ठरोगी श्रीवासजी का अनुग्रह पाकर (रोग) मुक्त हो गया तथा उसके सब अपराध नष्ट हो गये ॥ ३८४ ॥ वैष्णवों की निन्दा से जितने अनर्थ होते हैं श्रीवैकुंठनाथ ने वे सब स्वयं कह दिये ॥ ३८५ ॥ तथापि जो मनुष्य वैष्णवों की निन्दा करेगा उसको दण्ड देने वाले श्रीचैतन्यनारायण ही हैं ॥ ३८६ ॥ (लेखक कहते हैं कि) वर्तमान में वैष्णवों में जो गाली-गलौज तुम देखते हो उससे परमार्थ पर कुछ हानि नहीं होती—यह सब तो कौतुकी कृष्ण ही करता है ॥ ३८७ ॥ सत्यभामा व रुक्मिणी में जैसे गाली-गलौज होती, परन्तु परमार्थ में वे दोनों एक हैं केवल देखने में ही वे अलग दीखती हैं ॥३८८॥ इसी प्रकार वैष्णव भी भिन्न नहीं है परन्तु श्रीचैतन्य प्रभु ने खेल के लिये यह भिन्नता कराई है ॥ ३८९ ॥ इसलिये जो एक वैष्णव का पक्ष ले और दूसरे वैष्णव की निन्दा करे तो वह नष्ट हो जावेगा ॥ ३९० ॥ जो ईश्वर के एक हाथ की तो सेवा करे और दूसरे हाथ को दुःख दे तो उसकी क्या कुशल होगी ? ॥ ३९१ ॥ इस प्रकार सभी भक्तगण श्रीकृष्ण के अङ्ग हैं इसे जो समझते हैं वे ही महाश्रेष्ठ धैर्यवान हैं ॥ ३९२ ॥ जो अभेद दृष्टि से सब वैष्णवों का पूजन करके कृष्ण चरण-कमलों को भजते हैं वे ही तर जाते हैं ॥३९३॥ इस सम्पूर्ण पुण्य कथा को जो गान करेंगे अथवा सुनेंगे उनमें वैष्णव अपराध कभी नहीं जन्मेगा ॥३९४॥ इस भाँति शान्तिपुर में श्रीअद्वैत मन्दिर में श्रीगौरसुन्दर बड़े आनन्द में रहे ॥ ३९५ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी

माधवेन्द्र-अद्वैते यद्यपि भेद नाञि । तथापि ताहान शिष्य-आचार्य गोसाञि ॥३६७॥
माधवपुरीर देहे श्रीगौरसुन्दर । सत्य-सत्य-सत्य विहरये निरन्तर ॥३६८॥
माधवेन्द्रपुरीर अकथ्य विष्णु-भक्ति । कृष्णेर प्रसादे सर्वकाल पूर्ण शक्ति ॥३६६॥
ये मते अद्वैत शिष्य हइलेन तान । चित्त दिया शुन सेइ मङ्गल-आख्यान ॥४००॥
ये समये ना छिल चैतन्य-अवतार । विष्णुभक्ति शून्य सब आछिल संसार ॥४०१॥
तखनेओ माधवेन्द्र चैतन्य कृपाय । प्रेम-सुखसिन्धु-माझे भासेन सदाय ॥४०२॥
निरवधि देहे रोम हर्ष, अश्रु, कम्प । हुङ्कार, गर्जन, महाहास्य, स्तम्भ, घर्म्म ॥४०३॥
निरवधि गोविन्देर ध्याने नाहि बाह्य । आपने ओ ना जानेन-कि करेन कार्य ॥४०४॥
पथे चलि जाइतेओ आपना आपनि । नाचेन परमानन्दे करि हरि ध्वनि ॥४०५॥
कखनो वा हेन से आनन्द मूर्च्छा हय । दुइ-तिन प्रहरेओ देहे बाह्य नय ॥४०६॥
कखनो वा विरहे ये करेन रोदन । गङ्गाधारा बहे येन-अद्भुत कथन ॥४०७॥
कखनो हासेन अति अट्ट-अट्ट हास । परानन्द रसे क्षणे हय दिगवास ॥४०८॥
एइ मत कृष्ण सुखे माधवेन्द्र सुखी । सबे भक्तिशून्य लोक देखि बड़ दुखी ॥४०६॥
कृष्ण यात्रा, अहो रात्रि कृष्ण-संकीर्तन । इहार उद्देशो नाहि जाने कौन जन ॥४१०॥
'धर्म-कर्म' लोक सब एइ मात्र जाने । मङ्गल चण्डीर गीते करे जागरणे ॥४११॥
देवता जानेन सबे 'षष्ठी विषहरि' । ताओ ये पूजेन सेहो महादम्भ करि ॥४१२॥

के आराधना की पुण्य तिथि दैवयोग से उसी बीच में आकर उपस्थित हुई ॥ ३६६ ॥ यद्यपि श्रीमाधवेन्द्र-पुरी व अद्वैत आचार्य में भेद नहीं है तथापि आचार्य प्रभु उनके शिष्य हैं ॥ ३६७ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी के शरीर में सत्य ही श्रीगौरसुन्दर निरन्तर विहार करते थे ॥ ३६८ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी की विष्णुभक्ति अकथनीय है, श्रीकृष्ण के अनुग्रह से उनमें सदैव पूर्ण शक्ति विराजती थी ॥३६६॥ जिस प्रकार श्रीअद्वैतजी उनके शिष्य हुए उस मङ्गल आख्यान को चित्त लगाकर सुनो ॥४००॥ जिस समय श्रीचैतन्य प्रभु का प्रकट अवतार नहीं हुआ था उस समय समस्त जगत् विष्णु भक्ति से शून्य था॥४०१॥उस समय भी श्रीचैतन्यदेव की कृपा से श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी सदा ही प्रेम सुखसिन्धु में विभोर रहते थे ॥ ४०२ ॥ उनके शरीर में रोमें खड़े होना—अश्रु, कम्प, हुङ्कार, गर्जन, महा हँसी, जड़ता व खेद होना आदि विकार निरन्तर होते रहते थे ॥ ४०३ ॥ गोविन्द के ध्यान में निरन्तर रहने से बाह्य ज्ञान नहीं रहता था तथा स्वयं भी नहीं जानते थे कि क्या कार्य करते हैं ॥ ४०४ ॥ मार्ग में जाते-जाते आप ही आप बड़े आनन्द से हरिध्वनि करके नाचने लगते ॥ ४०५ ॥ कभी २ ऐसी आनन्द मूर्च्छा होती कि दो-तीन पहर तक होश नहीं होता ॥ ४०६ ॥ कभी विरह में जो रुदन करते तो मानो गङ्गाधारा ही बहती थी, यह बड़ी अद्भुत बात है ॥४०७॥ कभी ऊँचे स्वर से अट्ट-अट्ट हँसी हँसते तो क्षण में ही परानन्द रस में दिगम्बर (नग्न) हो जाते थे ॥ ४०८ ॥ इस प्रकार माधवेन्द्रपुरी कृष्ण के सुख में सुखी थे, परन्तु संसार को भक्ति शून्य देखकर मन में बड़े दुःखी थे ॥ ४०६ ॥ कभी श्रीकृष्ण की चन्दनयात्रा आदि करते तो कभी दिन-राति कृष्ण नाम संकीर्तन ही करते—परन्तु कोई भी मनुष्य इनका उद्देश्य नहीं जान पाता था ॥ ४१० ॥ सब लोग केवल इतना ही धर्म-कर्म जानते थे कि

'धन वंश वाढुक' करिया काम्य मने । मद्य-मांसे दानव पूजये कोन जने ॥४१३॥
योगिपाल भोगिपाल महीपालेर गीत । इहाइ शुनिते सर्वलोक आनन्दित ॥४१४॥
अति बड़ सुकृति से स्नानेर समय । गोविन्द-पुण्डरीकाक्ष-नाम उच्चारय ॥४१५॥
कारे वा 'वैष्णव' बलि, कि वा सङ्कीर्तन । केने वा कृष्णेर नृत्य, केने वा क्रन्दन ॥४१६॥
विष्णु मायावशे लोक किछुइ ना जाने । सकल जगत वद्ध महातमोगुणे ॥४१७॥
लोक देखि दुःख भावे श्रीमाधवपुरी । हेन नाहि तिलार्द्ध सम्भाषा यारे करि ॥४१८॥
सन्यासीर सने वा करेन सम्भाषण । सेहो आपनारे मात्र बोले नारायण ॥४१९॥
ए दुःखे सन्यासि सङ्गे ना कहेन कथा । हेन स्थान नाहि, कृष्णभक्ति शुनि यथा ॥४२०॥
'ज्ञानी योगी तपस्वी विरक्त' ख्याति यार । कारो मुखे नाहि दास्य-महिमा-प्रचार ॥४२१॥
यत अध्यापक सब तर्क से वाखाने । तारा बोल कृष्णेर विग्रह नाहि माने ॥४२२॥
देखिते शुनिते दुःखी श्रीमाधवपुरी । मनेमने चिन्ते-वनवास गिया करि ॥४२३॥
लोक मध्ये भ्रमि केने वैष्णव देखिते । से वैष्णव-नाम बोल ना शुनि जगते ॥४२४॥
अतएव ए सकल लोक-मध्य हैते । बने जाइ यथा लोक ना पाइ देखिते ॥४२५॥
एतेके से वन भाल ए सब हइते । वने कथा नहे अवैष्णवेर सहिते ॥४२६॥
एइ मत मनो दुःख भाविते चिन्तिते । ईश्वर-इच्छाय देखा अद्वैत-सहिते ॥४२७॥

मङ्गलचण्डी के गीत गाकर रात्रि जागरण कर लेते थे ॥ ४११ ॥ षष्ठी विषहरी को ही केवल देवता जानते थे और उसे भी जो पूजते तो बड़े दम्भ से ॥ ४१२ ॥ धन व वंश बढ़े ऐसी कामना करके कोई २ मनुष्य मद्य-मांस से दानवों को पूजते थे ॥ ४१३ ॥ योगिपाल, भोगिपाल व महीपाल आदि गायनों को ही सुनकर सब संसार प्रसन्न हो जाता था ॥ ४१४ ॥ जो कोई बहुत बड़ा पुण्यात्मा सुकृति होता वह स्नान करते समय गोविन्द पुण्डरीकाक्ष आदि नाम उच्चारण कर लेता ॥ ४१५ ॥ "वैष्णव" किसे कहते हैं ? संकीर्तन क्या है ? तथा कृष्ण प्रेम में नृत्य व क्रन्दन क्यों करें ? विष्णुमाया के वश में पड़े मनुष्य कुछ भी नहीं जानते थे तथा सब संसार महा तमोगुण में बँध रहा था ॥ ४१६-४१७ ॥ मनुष्यों को देखकर माधवेन्द्रपुरी जी दुःख की भावना करते थे-ऐसा कोई नहीं था, जिससे अर्द्ध तिलमात्र समय को भी सम्भाषण करलें ॥ ४१८ ॥ यदि कभी सन्यासियों के साथ सम्भाषण करते तो वे अपने को नारायण ही कहते थे ॥ ४१९ ॥ इसी दुःख से सन्यासियों से भी बात नहीं करते थे ऐसी कोई जगह नहीं थी जहाँ कुछ कृष्ण-भक्ति भी सुनते ॥ ४२० ॥ जो विख्यात ज्ञानी, योगी व विरक्त तपस्वी थे उनमें से किसी के मुख से भी दास्य-भक्ति की महिमा का प्रचार नहीं होता था ॥ ४२१ ॥ जितने अध्यापक थे वे सब तर्क व्याख्या ही करते व तारा २ बोलते थे, कृष्ण विग्रह को नहीं मानते थे ॥ ४२२ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी यह सब देख सुनकर बड़े दुःखी थे और मन ही मन सोचते कि बन में जाकर रहें ॥ ४२३ ॥ संसार में वैष्णव ढूँढने को भ्रमण किया, परन्तु वैष्णव का नाम व शब्द भी जगत् में सुनने को नहीं मिले ॥ ४२४ ॥ इस कारण इन सब मनुष्यों के बीच वन को चला जाऊँ जहाँ यह मनुष्य देख न पड़ें ॥ ४२५ ॥ इन सबसे तो वन ही अच्छा क्योंकि वहाँ अवैष्णवों से कथा प्रसङ्ग तो न होगा ? ॥ ४२६ ॥ इस प्रकार मनमें दुःख की भावना व चिन्तन करते २

विष्णुभक्ति शून्य देखि सकल संसार । अद्वैत-आचार्य दुःख भावेन अपार ॥४२८॥
तथापि अद्वैतसिंह कृष्णेर कृपाय । प्रौढ़करि विष्णुभक्ति बाखाने सदाय ॥४२९॥
निरन्तर पढ़ायेन गीता भागवत । भक्ति बाखानेन मात्र-ग्रन्थेर ये मत ॥४३०॥
हेनइ समये माधवेन्द्र महाशय । अद्वैतेरे गृहे आसि हइला उदय ॥४३१॥
देखिया अद्वैत तान वैष्णव लक्षण । प्रणाम हइया पड़िलेन सेइक्षण ॥४३२॥
माधवेन्द्रपुरी ओ अद्वैत करि कोले । सिञ्चिलेन अङ्ग तान प्रेमानन्द जले ॥४३३॥
अन्योऽन्ये कृष्ण कथा रसे दुइ जन । आपनार देह कारो नाहिक स्मरण ॥४३४॥
माधबपुरीर प्रेम-अकथ्य कथन । मेघ-दरशने मूर्च्छा हय सेइ क्षण ॥४३५॥
कृष्ण नाम शुनिलेइ करेन हुङ्कार । दण्डेके सहस्र हय कृष्णेर बिकार ॥४३६॥
देखिया ताँहार विष्णुभक्तिर उदय । बड़सुखी हैला अद्वैत महाशय ॥४३७॥
ताँर ठाञि उपदेश करिला ग्रहण । हेन मते माधवेन्द्र-अद्वैत-मिलन ॥४३८॥
माधवपुरीर आराधनार दिवसे । सर्वस्व निःक्षेप करे अद्वैत हरिषे ॥४३९॥
दैवे सेइ पुण्य-तिथि आसिया मिलिला । सन्तोषे अद्वैत सज्ज करिते लागिला ॥४४०॥
श्रीगौरसुन्दरो सब-पारिषद सने । बड़ सुखी हइलेन सेइ पुण्य दिने ॥४४१॥
सेइ तिथि पूजिवारे आचार्य गोसाञि । यत सज्ज करिलेन, तार अन्त नाञि ॥४४२॥
नाना दिग हैते सज्ज लागिल आसिते । हेन नाहि जानि के आनये कोन् भिते ॥४४३॥

ईश्वर की इच्छा से श्रीअद्वैतजी से भेंट हो गई। ४२७ ॥ सब संसार को विष्णु भक्ति से शून्य देखकर अद्वैत आचार्य को अपार दुःख की भावना होती थी ॥ ४२८ ॥ तथापि श्रीअद्वैतसिंह कृष्ण-कृपा से विष्णु भक्ति की दृढ़ता से सदा व्याख्या करते थे ॥ ४२९ ॥ निरन्तर गीता व भागवत को पढ़ाते थे तथा ग्रन्थों के अनुसार ही ठीक व्याख्या करते थे ॥ ४३० ॥ ऐसे ही समय श्रीमहाशय माधवेन्द्रपुरीजी श्रीअद्वैतजी के घर पर आकर पहुँचे ॥४३१॥ उनमें वैष्णव लक्षण देखकर श्रीअद्वैतजी ने तत्क्षण उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४३२ ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी ने भी श्रीअद्वैत प्रभु को गोद में समेट कर उनके अङ्ग को प्रेमानन्द जल से सिंचन कर दिया ॥ ४३३ ॥ कृष्ण कथा रस से परस्पर में दोनों को अपनी-अपनी देह का किसी को स्मरण नहीं रहा ॥ ४३४ ॥ श्रीमाधवपुरीजी के प्रेम की कथा तो अकथनीय थी—वे नीलमेघ को ही देखकर तत्क्षण मूर्च्छित हो जाते थे ॥ ४३५ ॥ कृष्ण नाम सुनते ही हुङ्कार करते थे तथा एक दण्ड (समय) से कृष्णप्रेम के सहस्रों विकार होते थे ॥ ४३६ ॥ उनमें विष्णु भक्ति का ऐसा विकास देखकर श्रीअद्वैत महाशय बड़े सुखी हुए ॥ ४३७ ॥ तथा उनसे उपदेश ग्रहण किया; इस प्रकार माधवेन्द्रपुरी व अद्वैत आचार्य का मिलन हुआ ॥ ४३८ ॥ श्रीमाधवपुरी आराधन के दिन श्रीअद्वैत प्रभु प्रसन्न होकर सर्वस्व निक्षेप (लुटा देते) कर देते थे ॥ ४३९ ॥ दैवयोग से पुण्य तिथी अब फिर आई थी सो सन्तुष्ट होकर श्रीअद्वैत प्रभु सामिग्री एकत्रित करने लगे ॥ ४४० ॥ श्रीगौरसुन्दर भी अपने सब पार्षदों के साथ उस पुण्य तिथी में बड़े प्रसन्न हुए ॥४४१॥ श्रीआचार्य प्रभु ने उस तिथि की पूजा के लिये जितनी सामिग्री जुटाई उसका अन्त नहीं है॥४४२॥ अनेकन दिशाओं से सामिग्री आने लगी यह कुछ जान नहीं पड़ता कि कौन किस ओर से ला रहा है॥४४३॥

माधवेन्द्रपुरी प्रति प्रीति सभाकार। सभेइ लइलेन यथायोग्य अधिकार ॥४४४॥
आइ लइलेन यत रन्धनेर भार। आइ बेढ़ि सर्व-वैष्णवेर परिवार ॥४४५॥
नित्यानन्द-महाप्रभु सन्तोष अपार। वैष्णव पूजिते लइलेन अधिकार ॥४४६॥
केहो बोले 'आमि-सब घषिब चन्दन'। केहो बोले 'आमि माला करिब ग्रन्थन' ॥४४७॥
केहो बोले 'जल आनिवार मोर भार। केहो बोले 'मोर दाय स्थान-उपस्कार' ॥४४८॥
केहो बोले 'मुञि यत वैष्णव चरण। मोर भार सकल करिब प्रक्षालन' ॥४४९॥
केहो वान्धे पताका, चान्दोया केहो टानि। केहो वा भाण्डारी केहो द्रव्य देय आनि॥४५०॥
कथो जने लागिला करिते सङ्कीर्तन। आनन्दे करेन नृत्य आरो कथोजन ॥४५१॥
कथोजन आरो 'हरि' बोलये कीर्तने। शङ्ख घन्टा बाजायेन आरो कथोजने ॥४५२॥
कथोजन करे तिथि पूजिवार कार्य। केहो वा हइला तिथि पूजार आचार्य ॥४५३॥
एइ मत परानन्द रसे भक्तगण। सभेइ करेन कार्य-यार येन मन ॥४५४॥
खाओ पिओ आनो नेह देह हरिध्वनि। इहा वइ चतुर्दिगे आर नाहि शुनि ॥४५५॥
शङ्ख, घन्टा, मृदङ्ग, मन्दिरा करताल। सङ्कीर्तन सङ्गे ध्वनि बाजये विशाल ॥४५६॥
परानन्दे काहारो नाहिक वाह्य ज्ञान। अद्वैत भवन हैल श्रीवैकुण्ठ धाम ॥४५७॥
आपने श्रीगौरचन्द्र परम सन्तोषे। सम्भारेर सज्ज देखि बूलेन हरिषे ॥४५८॥
तण्डुल देखेन प्रभु घर-दुइ-चारि। पर्वत प्रमाण देखे काष्ठ-सारि सारि ॥४५९॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरी के प्रति सबकी प्रीति थी सो सब ही ने यथायोग्य सामिग्री जुटाने का अधिकार ग्रहण किया ॥ ४४४ ॥ श्रीमाताजी ने रसोई सिद्ध करने का समस्त भार अपने ऊपर ले लिया तथा उन्हें घेरकर सब वैष्णव परिवार जुट गया ॥ ४४५ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वैष्णव पूजन का अधिकार ग्रहण किया ॥ ४४६ ॥ कोई कहता "मैं सब चन्दन घिसूँगा" कोई कहता "मैं माला ग्रन्थन करूँगा" ॥ ४४७ ॥ कोई कहता "जल लाने का भार मेरे ऊपर है" कोई कहता "स्थान साफ करना मेरा काम है" ॥ ४४८ ॥ कोई कहता "जितने वैष्णव हैं उनके चरणों को प्रक्षालन करना मेरा काम है"॥४४९॥ कोई पताका बाँध रहा था तथा कोई चँदोवा तान रहा था और कोई भण्डारी बना तो कोई वस्तुऐं ला-ला कर दे रहा था ॥ ४५० ॥ कुछ मनुष्य सङ्कीर्तन करने लगे और कुछ जन आनन्द से नृत्य करने लगे॥४५१॥ तथा दूसरे कुछ जन सङ्कीर्तन में हरि २ बाल रहे थे तथा और भी कुछ दूसरे मनुष्य शङ्ख घन्टा बजा रहे थे ॥ ४५२ ॥ कुछ मनुष्य तिथि पूजा के लिये कार्य कर रहे थे और कोई तिथि पूजा के आचार्य बने ॥४५३॥ इस प्रकार सभी भक्तगण जिसके मन में अच्छा लगा बड़े आनन्दपूर्वक सब ही कार्यों में लगे हुए थे।.४५४॥ खाओ, पीओ, लाओ, लेओ-देओ व हरिध्वनि इनके अतिरिक्त चारों ओर और अन्य कुछ सुन नहीं पड़ता था ॥ ४५५ ॥ सङ्कीर्तन के साथ शङ्ख-घन्टा-मृदङ्ग-मँजीरा-करताल विशाल ध्वनि से बज रहे थे ॥ ४५६ ॥ किसी को प्रेमानन्द में वाह्य ज्ञान नहीं था—अद्वैत भवन श्रीवैकुण्ठधाम ही बन गया था ॥ ४५७ ॥ स्वयं श्रीगौरचन्द्र सामिग्री के आयोजन को देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए और हर्ष से फूले नहीं समाते थे ॥ ४५८ ॥ श्रीप्रभु ने दो-चार कोठों में चाँवल देखे और काष्ठ थे पर्वत जैसे ढेर के ढेर देखे ॥ ४५९ ॥ रसोई राँधने के

घर पाँच देखे घट रन्धनेर स्थाली । घर-दुइ-चारि देखे मुद्गेर वियलि ॥४६०॥
नाना विध वस्त्र देखे घर-पाँच-सात । घर-दश-बार प्रभु देखे खोला पात ॥४६१॥
घर-दुइ-चारि प्रभु देखे चिपीटक । सहस्र-सहस्र कान्दी देखे कदलक ॥४६२॥
ना जानि कतेक नारिकेल गुया पान । कोथा हैते आसिया हइल विद्यमान ॥४६३॥
पटोल वास्तुक शाक थोड़ आलू मान । कत घर भरियाछे-नाहिक प्रमाण ॥४६४॥
सहस्र-सहस्र घड़ा देखे दधि दुग्ध । क्षीर इक्षुदण्ड अंकुरेर सने मुद्ग ॥४६५॥
तैल वा लवण गुड़ देखे प्रभु यत । सकलि अनन्त-लिखिवारे पारि कत ॥४६६॥
अति-अमानुषि देखि सकल सम्भार । चिते येन प्रभु हइलेन चमत्कार ॥४६७॥
प्रभु बोले ए सम्पत्ति मनुष्येर नय । 'आचार्य महेश' हेन मोर चित्ते लय ॥४६८॥
मनुष्येरो ए मत कि सम्पत्ति सम्भवे । ए सम्पत्ति सकले सम्भवे महादेवे ॥४६९॥
बूझिलाङ-आचार्य महेश-अवतार । एइ मत हासि प्रभु बोले बार-बार ॥४७०॥
छले अद्वैतेरे तत्त्व महाप्रभु कय । ये हय सुकृति से परमानन्दे लय ॥४७१॥
तान वाक्ये अनादर अनास्था याहार । तारे श्रीअद्वैत हय अग्नि-अवतार ॥४७२॥
यद्यपि अद्वैत कोटि-चन्द्र-सुशीतल । तथापि चैतन्य विमुखेर कालानल ॥४७३॥
सकृत् ये जन बोले 'शिव' हेन नाम । सेहो कोनो प्रसङ्गे, ना जाने तत्त्व तान ॥४७४॥
सेइ क्षणे सर्व पाप हैते शुद्ध हय । वेदे शास्त्रे भागवते एइ तत्त्व कय ॥४७५॥

(हंडे व परातें) पाँच घरों में भरे देखे और दो-चार घरों में धोवा मूँग की दाल देखी ॥ ४६० ॥ पाँच-सात घरों में अनेक भाँति के वस्त्र देखे और दश-बारह घरों में प्रभु ने केला व पात देखे हैं ॥ ४६१ ॥ श्री-प्रभु ने दो-चार घरों में चिउड़ा (चावल के बने) देखे व हजारों २ केले की गहर के भौंरे देखे ॥ ४६२ ॥ न जाने कितने नारियल, सुपारी, पान कहाँ-कहाँ से आ गये ॥ ४६३ ॥ परवल, बथुआ, थोड़, आलू, मान-कचू आदि के शागों से कितने घर भरे थे इसकी कोई गिनती नहीं थी ॥ ४६४ ॥ क्षीर, इक्षुदण्ड, अंकुर-युक्त मूँग व दही-दूध के सहस्र-सहस्र घड़ा देखे हैं ॥ ४६५ ॥ तेल, नमक, गुड़ आदि जितने पदार्थ प्रभु ने देखे वे सब ही अनन्त थे कितना लिखा जाय ? ॥ ४६६ ॥ सभी सामिग्री को मनुष्य सामर्थ्य से अत्यन्त बाहर देखकर मानो प्रभु के मन में अचरज हुआ ॥ ४६७ ॥ प्रभु ने कहा यह सम्पत्ति मनुष्य की नहीं है, मेरे चित्त में ऐसा जँचता है कि आचार्य प्रभु महेश हैं ॥ ४६८ ॥ मनुष्यों में क्या ऐसा सम्पत्ति सम्भव है, यह सम्पत्ति तो केवल महादेव को ही सम्भव है ॥ ४६९ ॥ समझ गया आचार्य प्रभु महेश के अवतार हैं इस प्रकार गौरचन्द्र बार-बार हँसकर कहने लगे ॥ ४७० ॥ श्रीमहाप्रभुजी ने छल से अद्वैत के तत्त्व को कह दिया जो सुकृति मनुष्य होंगे वे परम आनन्द से ग्रहण करेंगे ॥४७१॥ प्रभु के वाक्यों में जिनको अनादर व अनास्था है उनके लिये अद्वैत प्रभु अग्नि के अवतार हैं ॥ ४७२ ॥ यद्यपि अद्वैतचन्द्र करोड़ों चन्द्रमाओं से भी सुशीतल हैं तथापि चैतन्य से विमुखों के लिये कालकूट अग्नि हैं ॥ ४७३ ॥ एक बार जो जन उनके तत्त्व को जाने बिना भी यदि किसी प्रसङ्गवश 'शिव' ऐसा नाम लेंगे तो उसी क्षण सब पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाँयगे ऐसा तत्त्व वेद भागवत शास्त्रों में कहा ॥ ४७४-४७५ ॥ शिव का नाम सुनकर जिनको दुःख

हेन शिव-नाम शुनि यार दुःख हय । सेइजन अमङ्गल समुद्रे भासय ॥४७६॥

तथाहि भागवते ४ स्कन्धे ४ अध्याये १४ श्लोके--

"यद्द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत् प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्रकीर्तिं तमलंघ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः" ॥४॥

श्रीवदने कृष्णचन्द्र बलेन आपने । शिव ये ना पूजे से वा मोरे पूजे केने ॥४७७॥
मोर प्रिय शिव प्रति अनादर यार । केमते वा मोरे भक्ति हइब ताहार ॥४७८॥

तथाहि "कथं वा मयि भक्तिं स लभतां पापपुरुषः । यो मदीयं परं भक्तं शिवं सम्पूजयेन्नहि" ॥५॥

अतएव सर्वाद्य श्रीकृष्ण पूजि तबे । प्रीते शिवपूजि पूजिबेक सर्व-देवे ॥४७९॥

तथाहि स्कन्दपुराणे--

"प्रथमं केशवं पूजां कृत्वा देवमहेश्वरम् । पूजनीया महाभक्त्या ये चान्ये सन्ति देवताः" ॥६॥

हेन 'शिव' अद्वैतेरे बोले साधुगणे । सेहो श्रीचैतन्यचन्द्र-इङ्गित-कारणे ॥४८०॥
इहाते अबुधगण महाकलि करे । अद्वैतेर माया ना बुझिया भलि मरे ॥४८१॥
सम्भार देखिया प्रभु महाहर्ष मन । आचार्येर प्रशंसा करेन अनुक्षण ॥४८२॥
एके-एके देखि प्रभु सकल सम्भार । कीर्तनस्थली ते आइलेन पुनर्बार ॥४८३॥
प्रभु मात्र आइलेन सङ्कीर्तन स्थाने । परानन्द पाइलेन सर्व भक्तगणे ॥४८४॥
ना जानि के कोन् दिगे नाचे गाय वाय । ना जानि के कोन् दिगे महानन्दे धाय॥४८५॥
नव-नव वस्तु सब देखे प्रभु यत । सकल अनन्त-लेखिवारे पारि कत ॥४८६॥

हो वे मनुष्य अमङ्गल के समुद्र में गोते लगाते हैं ॥ ४७६ ॥ शिव नाम के दो अक्षर जो समुद्भूत व सुप्रसिद्ध हैं किसी प्रसंगवश वाक्य द्वारा एक बार उच्चारण मात्र होने पर मानव समूह के सब पापों को विनाश कर देते हैं जिनकी कीर्तिकलाप परम पवित्र है तथा आज्ञा अनुलंघनीय है यदि उस शिव से आप द्वेष करते हो तो आप शिव से अतिरिक्त अमङ्गल स्वरूप हो ॥ ४ ॥ श्रीमुख से स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है कि जो शिवजी को नहीं पूजते वे मुझे क्यों पूजते हैं ? ॥४७७॥ मेरे प्रिय शिव के प्रति जो अनादर करता है उन्हें मेरी भक्ति किस प्रकार होगी ? ॥ ४७८ ॥ जो मेरे परमभक्त शिव की सम्यक् प्रकार से पूजा नहीं करते साक्षात् पापरूप वे पुरुष किस प्रकार मेरी भक्ति लाभ करेंगे अर्थात् कदापि नहीं ॥५॥ इसलिये सबसे प्रथम श्रीकृष्ण का पूजन करे तब पीछे से प्रीतिपूर्वक शिव का पूजन करे तब और सब देवताओं का पूजन ही करे ॥ ४७९ ॥ प्रथम केशव की पूजा करे तब महेश्वर की पूजा करे उसके पश्चात् अन्य सभी देवताओं की बड़ी भक्ति के साथ पूजा करना उचित है ॥ ६ ॥ यों साधुगण श्रीअद्वैत को "शिव" सम्बोधन करते हैं—यह केवल श्रीचैतन्यचन्द्र के इङ्गित (इशारे) के कारण ही है ॥ ४८० ॥ इस प्रसंग में मूर्खगण विशेष कलह करते हैं तथा अद्वैत माया न समझकर कपाल दोष से मरते हैं ॥ ४८१ ॥ श्रीप्रभु सामिग्री समुच्चय को देखकर बड़े हर्षित मन से क्षण-क्षण में आचार्य की प्रशंसा कर रहे थे ॥ ४८२ ॥ श्रीप्रभु सब सामिग्री को एक-एक करके देखकर पुनर्वार कीर्तन स्थली में आये ॥ ४८३ ॥ संकीर्तन स्थान में श्रीप्रभु के आते ही सब भक्तवृन्द परम आनन्दित हुए ॥ ४८४ ॥ न जाने कौन किस ओर नाचता, गाता अथवा बजाता था पता नहीं कौन किधर दौड़ रहा था ॥ ४८५ ॥ श्रीप्रभु ने जितने पदार्थ देखे वे सब नवीन-नवीन व अनन्त

सभे करे जय जय-महा हरिध्वनि । 'बोल बोल हरि-बोल' आर नाहि शुनि ॥४८७॥
सर्व-वैष्णवेर अङ्ग चन्दने भूषित । सभार सुन्दर वक्ष-मालाय पूर्णित ॥४८८॥
सभेइ प्रभुर पारिषदेर प्रधान । सबे नृत्य गीत करे प्रभु विद्यमान ॥४८९॥
महानन्दे उठिल श्रीहरि सङ्कीर्तन । ये शुनि पवित्र करे अनन्त भुवन ॥४९०॥
नित्यानन्द महामल्ल प्रेम सुखमय । बाल्यभावे नृत्य करिलेन अतिशय ॥४९१॥
विह्वल हइया अति आचार्य गोसाञि । यत नृत्य करिलेन-तार अन्त नाञि ॥४९२॥
नाचिलेन अनेक ठाकुर-हरिदास । सभेइ नाचेन अति पाइया उल्लास ॥४९३॥
महाप्रभु श्रीगौरसुन्दरो सर्व शेषे । नृत्य करिलेन अति अशेष विशेषे ॥४९४॥
सर्व परिषद् प्रभु आगे नाचाइया । शेषे नृत्य करेन आपने सभा लैया ॥४९५॥
मण्डली करिया नृत्य करे भक्तगण । मध्ये नाचे महाप्रभु श्रीशचीनन्दन ॥४९६॥
एइ मत सर्व दिन नाचिया गाइया । रहिलेन महाप्रभु सभारे लइया ॥४९७॥
तबे शेष आज्ञा माँगि अद्वैत-आचार्य । भोजनेर करिते लागिला सर्व कार्य ॥४९८॥
बसिलेन महाप्रभु करिते भोजन । मध्ये प्रभु-चतुर्दिगे सर्व भक्तगण ॥४९९॥
चतुर्दिगे भक्तगण येन तारामय । मध्ये कोटि-चन्द्र येन प्रभुर उदय ॥५००॥
दिव्य अन्न बहुविध पिष्टक व्यंजन । माधवेन्द्र-आराधना-आइर रन्धन ॥५०१॥
माधवपुरीर कथा कहिया-कहिया । भोजन करेन प्रभु सर्व-गण लैया ॥५०२॥
प्रभु बोले 'माधवेन्द्र-आराधना-तिथि । भक्ति हय गोविन्दे, भोजने कैले इथि' ॥५०३॥

थे कहाँ तक लिखें ? ॥ ४८६ ॥ सभी महा हरिध्वनि करके जय-जय बोल रहे थे, "बोलो, बोलो, हरि बोलो" इसके सिवाय कुछ सुन नहीं पड़ता था ॥ ४८७ ॥ सब वैष्णवों के अङ्ग चन्दन से शोभित हो रहे थे तथा सबके सुन्दर वक्षस्थल मालाओं से लदे हुए थे ॥ ४८८ ॥ सब ही श्रीप्रभु के पारिषदों में प्रधान थे तथा सब ही प्रभु के सामने नाच-गा रहे थे ॥ ४८९ ॥ श्रीहरिसंकीर्तन ध्वनि बड़े आनन्द से हो उठा जिसको सुनकर अनन्त भुवन पवित्र हो गये ॥ ४९० ॥ प्रेमसुख स्वरूप महामल्ल श्रीनित्यानन्द प्रभु ने बाल्यभाव में बहुत ही नृत्य किया ॥ ४९१ ॥ आचार्य गोस्वामी ने अत्यन्त विह्वल होकर जितना नृत्य किया उसका अन्त नहीं था ॥ ४९२ ॥ श्रीहरिदास ठाकुर तो बहुत ही नाचे और उल्लास पाकर सब ही ने अत्यन्त नृत्य किया ॥४९३॥ श्रीमहाप्रभु गौरसुन्दर ने सबके शेष में विशेष प्रकार से अति अपार नृत्य किया ॥ ४९४ ॥ श्रीप्रभु ने पहिले सब पार्षदों को नचाया तब अन्त में सबको लेकर आपने नृत्य किया ॥ ४९५ ॥ भक्तवृन्द गोलाकार मंडली बनाकर नाच रहे थे तथा उनके बीच में श्रीशचीनन्दन नाचते थे ॥ ४९६ ॥ इस प्रकार श्री महाप्रभु सबको लेकर दिन भर नाचते-गाते रहे।॥४९७॥तब अन्त में श्रीअद्वैताचार्य आज्ञा माँगकर भोजन कराने के लिये समस्त समाधान करने लगे ॥४९८॥ भोजन करने के लिये महाप्रभु बैठ गये—बीच में प्रभु व चारों ओर भक्त मंडली थी ॥ ४९९ ॥ भक्तगण चारों ओर तारों के समान थे उनके बीच में श्रीप्रभु करोड़ों चन्द्रमा के समान उदय हुए ॥ ५०० ॥ श्रीमाधवेन्द्रपुरी की आराधना तिथि पर श्रीशची माता ने अनेक प्रकार के दिव्य अन्न (चावल) पिष्टक आदि व्यंजन बनाये थे । श्रीमहाप्रभु सब भक्तों के साथ श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी का चरित्र

एइमत रंगे प्रभु करिया भोजन । वसिलेन गिया प्रभु करि आचमन ।।५०४।।
तवे दिव्य सुगन्धि चन्दन दिव्य माला । प्रभुर सम्मुखे आनि अद्वैत थुइला ।।५०५
तवे प्रभु नित्यानन्द स्वरूपेरे आगे । दिलेन चन्दन माला महा-अनुरागे ।।५०६।।
तवे प्रभु सर्व-वैष्णवेरे जने जने । श्रीहस्ते चन्दनमाला दिलेन आपने ।।५०७।।
श्रीहस्तेर प्रसाद पाइया भक्तगण । सभार हइल परानन्दमय मन ।।५०८।।
उच्चकरि सभेइ करेन हरि ध्वनि । किवा से आनन्द हैल कहिते ना जानि ।।५०९।।
अद्वैतेर ये आनन्द-अन्त नाहि तार । आपने वैकुण्ठपुर नाथ गृहे यार ।।५१०।।
ए सकल रङ्ग प्रभु करिलेन यत । मनुष्येर शक्ति इहा वर्णिवेक कत ।।५११।।
एक दिवसेर यत चैतन्य विहार । कोटि-वत्सरे ओ ताहा नारि वर्णिवार ।।५१२।।
पक्षी येन आकाशेर अन्त नाहि पाय । यत दूर शक्ति तत दूर उड़ि जाय ।।५१३।।
एइमत चैतन्य यशेर अन्त नाइ । तिंहो यत शक्ति देन सभे तत गाइ ।।५१४।।
काष्ठेर पुतली येन कुहके नाचाय । एइमत गौरचन्द्र मोरे से वोलाय ।।५१५।।
ए सव कथार अनुक्रम नाहि जानि । ये-ते-मते चैतन्येर यशसे वाखानि ।।५१६।।
सर्व-वैष्णवेर पा' ये मोर नमस्कार । इथे अपराध किछु नहुक आमार ।।५१७।।
ए सकल पुण्य कथा ये करे श्रवण । अवश्य मिलये तारे कृष्ण प्रेम धन ।।५१८।।

कहते जाते और भोजन करते जाते थे ।। ५०१-५०२ ।। श्रीमहाप्रभु ने कहा "आज श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी की आराधना तिथि है इसमें भोजन करने से गोविन्द में भक्ति होगी" ।। ५०३ ।। इस प्रकार श्रीप्रभु आनन्द से भोजन करके आचमन किया और जाकर बैठ गये ।। ५०४ ।। तब श्रीअद्वैतप्रभु ने दिव्य सुगन्धि, चन्दन व दिव्य माला श्रीमहाप्रभु के सामने लाकर रख दीं ।।५०५।। तब श्रीमहाप्रभु ने बड़े अनुराग से पहिले नित्यानन्द स्वरूप को चन्दन व माला प्रदान की ।। ५०६ ।। उसके पीछे श्रीप्रभु ने प्रत्येक वैष्णव को अपने श्रीहस्त-कमल से चन्दन व माला दीं ।। ५०७ ।। श्रीप्रभु के हाथ से प्रसाद पाकर सब भक्तों का मन पर-आनन्दमय हो गया ।। ५०८ ।। सब ही ऊँचे स्वर से हरिध्वनि करने लगे; सो कैसा अपूर्व आनन्द हुआ—कहते नहीं बनता ।। ५०९ ।। श्रीअद्वैत को जो आनन्द था उसका अन्त नहीं था क्योंकि स्वयं वैकुण्ठनाथ ही उनके घर में थे ।। ५१० ।। यह सब आनन्द जितना श्रीप्रभु ने किया—मनुष्य शक्ति उसका कितना वर्णन करेगी।।५११।। श्रीचैतन्यदेव के एक दिन के विहार का वर्णन करोड़ों वर्षों में भी नहीं कहा जा सकेगा ।।५१२।। जिस प्रकार पक्षी अपनी शक्ति भर उड़कर भी आकाश का अन्त नहीं पाता ।। ५१३ ।। इसी प्रकार श्रीचैतन्यचन्द्र के यश का अन्त नहीं है उसे भी जिसमें जितनी सामर्थ्य वे देते हैं उतना ही वह गा सकता है ।। ५१४ ।। काठ की पुतली को बाजीगर जिस तरह नचाता है, इसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र मुझसे जो बुलवाते हैं ।। ५१५ ।। मैं इन सब कथाओं का अनुक्रम (आनुपूर्विक-सम्बन्ध) नहीं जानता हूँ, बस जिस किसी प्रकार से श्रीचैतन्यदेव का यश बखान करता हूँ ।। ५१६ ।। मैं सब वैष्णवों के चरण-कमलों में नमस्कार करता हूँ—मेरा इसमें कुछ अपराध न बन जाय ।।५१७।। इन सब पवित्र कथाओं को जो श्रवण करेंगे उनको कृष्ण प्रेमरूपी धन अवश्य मिलेगा ।।५१८।। वृन्दावनदास (ग्रन्थकार) श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को समझ कर अर्थात्

श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्दजान । वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ।।५१६।।

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे अद्वैतगृहविलासवर्णनं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

पञ्चमोऽध्यायः

जय जय श्रीगौरसुन्दर सर्वगुरु । जय जय भक्तजन वांच्छा कल्पतरु ।।१।।
जय जय न्यासिमणि श्रीवैकुण्ठनाथ । जीव प्रति कर' प्रभु शुभ दृष्टिपात ।।२।।
भक्तगोष्ठी सहिते गौराङ्ग जय जय । जय जय श्रीकरुणासिन्धु दयामय ।।३।।
शेषखण्ड़ कथा भाइ शुन एकमने । श्रीगौरसुन्दर विहरिलेन येमने ।।४।।
कथोदिन थाकि प्रभु अद्वैतेर घरे । आइला कुमार हट्ट-श्रीवास मन्दिरे ।।५।।
कृष्ण-ध्यानानन्दे वसि आछेन श्रीवास । आचम्बिते ध्यानफल सम्मुखे प्रकाश ।।६।।
निज प्राणनाथ देखि श्रीवास पण्डित । दण्डवत् हइया पड़िला पृथिवीत ।।७।
श्रीचरण वक्षे करि पण्डित-ठाकुर । उच्चस्वरे दीर्घस्वासे कान्देन प्रचुर ।।८।।
गौराङ्गसुन्दर श्रीवासेरे करि कोले । सिंचिलेन अङ्ग तार निज-प्रेमजले ।।९।।
सुकृति श्रीवासगोष्ठी प्रभुर प्रसादे । सभे प्रभु देखि ऊर्द्ध्वबाहु करि कान्दे ।।१०।।
वैकुण्ठनायक गृहे पाइया श्रीवास । हेन नाहि जानेन कि जन्मिल उल्लास ।।११।।
आपने माथाय करि उत्तम आसन । दिलेन, वसिला तथि कमल लोचन ।।१२।।
चतुर्दिगे वसिलेन पारिषदगण । सभेइ गायेन कृष्ण नाम अनुक्षण ।।१३।।
गृहे जयकार करे पतिव्रतागण । आनन्दस्वरूप हैल श्रीवास भवन ।।१४।।

हृदय में धारण करके उन्हीं के युगल चरण-कमलों की महिमा गान करता है ।। ५१६ ।।

समस्त जीवों के गुरु श्रीगौरसुन्दर की जय हो २, और भक्तजनों की वाञ्छापूर्ण कल्पतरु की जय हो २ ।।१।। न्यासिमणि श्रीवैकुण्ठनाथ की जय हो २, हे प्रभो ! जीवों के प्रति शुभ दृष्टिपात करो ।। २ ।। भक्तगोष्ठी सहित श्रीगौराङ्गप्रभु की जय हो २, और दयामय श्रीकरुणासागर की जय हो २ ।।३। हे भाई ! जिस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने विहार किया था उसे शेषखण्ड की कथा में एकाग्र मन से सुनो ।। ४ ।। श्रीप्रभु कुछ दिन अद्वैतजी के घर रहकर कुमारहट्ट में श्रीवासजी के घर आये ।। ५ ।। श्रीवासजी कृष्ण के ध्यानानन्द में बैठे थे अकस्मात् ही ध्यान का फल सामने प्रगट देखा ।। ६ ।। श्रीवास पण्डित अपने प्राणनाथ को देखते ही दण्डवत् होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ।। ७ ।। श्रीवास पण्डित महाप्रभुजी के चरणों को वक्षस्थल से लगाकर लम्बी साँस लेते हुए ऊँचे स्वर से बहुत रोये ।। ८ ।। तथा श्रीगौराङ्गसुन्दर ने श्रीवासजी को गोदी में लेकर अपने प्रेमानन्द जल से उनके अङ्ग को भिगो दिया ।। ९ ।। सुकृती श्रीवास की गोष्ठी के सब साथी श्रीचैतन्यप्रभु की कृपा पाकर उन्हें देखकर भुजा उठाकर रोने लगे ।।१०।। श्रीवासपण्डित का अपने घर में वैकुण्ठनायक को पाकर कितना अपूर्व उल्लास हुआ उसे वे जान ही न पाये ।। ११ ।। स्वयं मस्तक में लाकर उत्तम आसन दिया उस पर कमल लोचन (गौर) विराजमान हो गये । १२ ।। चारों ओर पार्षदगण बैठ गये थे

प्रभु आइलेन मात्र पण्डितेर घर । वार्ता पाइ आइलेन आचार्य-पुरन्दर ॥ १५ ॥
ताहाने देखिया प्रभु 'पिता' करि बोले । महाप्रेमे प्रभु ताने करिलेन कोले ॥ १६ ॥
परम सुकृती से आचार्य-पुरन्दर । प्रभु देखि कान्दे अति हइ असम्वर ॥ १७ ॥
बासुदेवदत्त आइलेन सेइ क्षणे । शिवानन्दसेन-आदि आप्त वर्ग सने ॥ १८ ॥
प्रभुर परम प्रिय-बासुदेवदत्त । प्रभुर कृपाय से जानेन सर्व तत्त्व ॥ १६ ॥
जगतेर हितकारी-बासुदेवदत्त । सर्व भूते कृपालु-चैतन्य रसे मत्त ॥ २० ॥
गुणग्राही अदोषदरशी सभा प्रति । ईश्वरे वैष्णवे यथायोग्य रति मति ॥ २१ ॥
बासुदेवदत्त देखि श्रीगौरसुन्दर । कोले करि कान्दिते लागिला बहुतर ॥ २२ ॥
बासुदेवदत्त धरि प्रभुर चरण । उच्च स्वरे लागिलेन करिते क्रन्दन ॥ २३ ॥
बासुदेव कान्दिते के आछे हेन जन । शुष्क-काष्ठ पाषाण ये ना करे क्रन्दन ॥२४॥
बासुदेवदत्तेर यतेक गुण सीमा । बासुदेवदत्त बिनु नाहिक उपमा ॥ २५ ॥
हेन से प्रभुर प्रीति दत्तेर विषय । प्रभु बोले 'आमि बासुदेवेर निश्चय' ॥ २६ ॥
आपने श्रीगौरचन्द्र बोले बार-बार । ए शरीर बासुदेवदत्तेर आमार ॥ २७ ॥
दत्त आमा यथा बेचे तथाइ विकाइ । सत्य-सत्य इहाते अन्यथा किछु नाइ ॥ २८ ॥
बासुदेवदत्तेर बातास यार गाय । लागियाछे, तारे कृष्ण रक्षिव सहाय ॥ २६ ॥
सत्य आमि कहि-शुन वैष्णव मण्डल । ए देह आमार-बासुदेवेर केवल ॥ ३० ॥

सभी क्षण क्षण पर कृष्ण नाम का गान कर रहे थे ॥ १३ ॥ पतिव्रता स्त्रियाँ घर में जयकार कर रही थीं, श्रीवास का भवन प्रेमानन्दस्वरूप हो रहा था ॥ १४ ॥ श्रीवास के घर श्रीगौरचन्द्र आये हैं यह बात सुनते ही श्रीपुरन्दर आचार्य वहाँ शीघ्रता से आये ॥ १५ ॥ श्रीप्रभु उनको देखते ही पिता कहकर बोले तथा प्रभु ने बड़े प्रेम से उनकी जेट भर ली ॥ १६ ॥ श्रीपुरन्दराचार्य बड़े पुण्यशाली थे-श्रीप्रभु को देखकर अपने आपको सँभाल न सके ॥ १७ ॥ उसी समय श्रीवासुदेवदत्त भी आ गये, श्रीशिवानन्दसेन आदि सभी आत्मीयगण उनके साथ थे ॥१८॥ श्रीवासुदेवदत्तजी श्रीगौरचन्द के बड़े प्रिय थे प्रभु की कृपा से सब तत्त्व वे जानते थे ॥ १६ ॥ श्रीवासुदेवदत्त जगत् का हित करने वाले थे-श्रीचैतन्य रस में मत्त सब प्राणियों पर दया करते थे ॥ २० ॥ वे गुणग्राही व अदोषदर्शी थे, वे ईश्वर और वैष्णवों में यथायोग्य प्रेमबुद्धि रखते थे ॥ २१ ॥ श्रीगौरसुन्दर श्रीवासुदेव को देखकर गोदी में लेकर बहुत रोने लगे, तब ॥ २२ ॥ वासुदेवदत्त ने प्रभु के चरण को पकड़ लिया और ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे ॥ २३ ॥ श्रीवासुदेवजी के रोते समय ऐसा कौन मनुष्य है जो शुष्क काष्ठ पाषाण आदि वत् होगा जो रोया न हो ? ॥ २४ ॥ श्रीवासुदेवदत्त के गुणों की जो पराकाष्ठ है उनके सिवाय और कोई उपमा नहीं थी ॥ २५ ॥ श्रीप्रभु कहते थे कि मैं निश्चय ही वासुदेवदत्त का हूँ । देखो दत्त के विषय में प्रभु की ऐसी प्रीति थी॥२६॥श्रीगौरचन्द्र स्वयं बार-बार कहते थे कि मेरा यह शरीर वासुदेवदत्त का ही है ॥ २७ ॥ दत्त मुझे जहाँ बेचेंगे वहीं मैं बिक जाऊँगा-मैं सत्य कहता हूँ इसमें अन्यथा कुछ नहीं है ॥२८॥ वासुदेवदत्त की पवन जिसके शरीर लगेगी श्रीकृष्णचन्द्र उसकी सदा ही रक्षा करेंगे ॥ २६ ॥ हे वैष्णवों सुनो ! मैं सत्य कहता हूँ मेरा यह शरीर केवल वासुदेवदत्त का है

बासुदेवदत्तेरे प्रभुर कृपा शुनि । आनन्दे वैष्णवगण करे जयध्वनि ॥ ३१ ॥
भक्त बाढ़ाइते गौरसुन्दर से जाने । येन करे भक्त तेन करेन आपने ॥ ३२ ॥
एइ मत रङ्गे प्रभु श्रीगौरसुन्दरे । कथोदिन रहिलेन श्रीवासेर घरे ॥ ३३ ॥
चैतन्येर अति प्रिय-श्रीवास रामाञि । दुइ चैतन्येर देह, द्विधा किछु नाञि ॥३४॥
श्रीवास रामाइ-दुइ भाइ गुण गाय । विह्वल हइया नाचे श्रीवैकुण्ठराय ॥३५॥
सङ्कीर्तन-भागवत पाठ-व्यवहारे । विदूषक लीलाय कि अशेष-प्रकारे ॥ ३६ ॥
जन्मायेन प्रभुर सन्तोष श्रीनिवास । जार घरे प्रभुर सर्वाद्य-परकाश ॥ ३७ ॥
एक दिन प्रभु श्रीनिवासेर सहिते । व्यवहार-कथा किछु कहेन निभृते ॥३८॥
प्रभु बोले तुमि देखि कोथाओ ना जाओ । केमते वा कुलाइबा, केमते कुलाओ ॥३९॥
श्रीवास बोलेन प्रभु कोथाओ जाइते । नाहि लय मोर चित्त बलिलूँ तोमाते ॥४०॥
प्रभु बोले परिवार अनेक तोमार । निर्वाह केमते तबे हइवे सभार ॥४१॥
श्रीवास बोलेन यार अदृष्टे ये थाके । से-इ हइवेक, मिलिवेक ये-ते-पाके ॥४२॥
प्रभु बोले 'तुमि तबे करह सन्यास । इहा ना पारिमु मुञि बोले श्रीनिवास ॥४३॥
प्रभु बोले सन्यास ग्रहन ना करिबा । भिक्षा करितेओ कारो द्वारे ना जाइबा ॥४४॥
केमते करिबा परिवारेर पोषण । किछुइ त ना बुझोँ मुञि तोमार वचन ॥४५॥
ए काले त कोथाओ ना गेले ना आइले । बटमात्र द्वारे आसि काहुके ना मिले ॥४६॥

॥ ३० ॥ बासुदेवदत्त के ऊपर प्रभु की कृपा को सुनकर वैष्णवगण आनन्द से जय जय ध्वनि करने लगे ॥३१॥ भक्त का बढ़ावा देना तो श्रीगौरसुन्दर ही जानते हैं; जैसे भक्त करते हैं वैसे ही आप करते हैं ॥३२॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर प्रभु ने कुछ दिन तक श्रीवास के घर में आनन्द से निवास किया ॥ ३३ ॥ श्रीवास व रामाइ दोनों ही भाई गुण-गान करते थे और श्रीवैकुण्ठराय विह्वल होकर नाचते थे ॥ ३४ ॥ श्रीवास व रामाइ श्रीचैतन्यदेव को दोनों ही अत्यन्त प्रिय थे दोनों श्रीचैतन्य के देह थे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥३५॥ संकीर्तन-भागवत पाठ-विदूषक लीला आदि द्वारा अनेक प्रकार से श्रीनिवासजी प्रभु की सन्तुष्टता उदय कराते थे उन्हीं के घर में तो प्रभु का सबसे पहिले प्रकाश हुआ था ॥ ३६-३७ ॥ एक दिन प्रभु ने एकान्त में बैठकर श्रीनिवासजी से कुछ व्यवहार की बात कही ॥ ३८ ॥ प्रभु ने कहा "मैं देखता हूँ तुम कहीं भी तो नहीं जाते हो फिर कैसे निर्वाह करते हो तथा कैसे निर्वाह करोगे ? ॥ ३९ ॥ श्रीवास बोले "हे प्रभो ! आप से सत्य कहता हूँ मेरा चित्त कहीं जाने को नहीं करता ?" ॥ ४० ॥ प्रभु ने कहा "तुम्हारा परिवार भी तो बहुत है तब सबका निर्वाह कैसे होगा ?" ॥ ४१ ॥ श्रीवास ने कहा "जिसके भाग्य में जो होगा वही होगा तथा जिस किसी प्रकार से भी अवश्य मिलेगा" ॥ ४२ ॥ प्रभु ने कहा ऐसा ही है तो तुम सन्यास ग्रहण कर लो, तब श्रीवास ने कहा मैं यह भी नहीं करूँगा ॥ ४३ ॥ प्रभु बोले सन्यास भी ग्रहण करोगे नहीं और भिक्षा करने को भी किसी के द्वार पर नहीं जाओगे ॥ ४४ ॥ तब किस प्रकार से परिवार का पोषण करोगे, तुम्हारे वचनों से मैं तो कुछ भी नहीं समझा ॥ ४५ ॥ आजकल के समय में तो कहीं न जाने से तो कुछ मिलता नहीं-कहीं से आकर दरवाजे पर नहीं मिलता ? ॥ ४६ ॥ यदि तुम्हारे द्वार पर आकर न

ना मिलिल यदि आसि तोमार दुयारे । तवे तुमि कि करिवा बोल देखि मोरे ॥४७॥
श्रीवास वोलेन हाथे तिन तालि दिया । "एक दुइ तिन एइ कहिलूँ भाङ्गिया" ॥४८॥
प्रभु वोले "एक दुइ तिन ये करिला । कि अर्थ इहार कह केने तालि दिला" ॥४९॥
श्रीवास वोलेन "एइ दढान आमार । तिन-उपासेओ यदि ना मिले आहार ॥५०॥
तवे सत्य कहों-घट वान्धिया गलाय । प्रवेश करिमूँ मुञि सर्वथा गङ्गाय" ॥५१॥
एइ मात्र श्रीवासेर शुनिञा वचन । उठिला हुङ्कार करि श्रीशचीनन्दन ॥५२॥
प्रभु वोले "कि वलिलि पण्डित-श्रीवास । तोर कि अन्नेर दुःखे हइव उपास ॥५३॥
यदि कदाचित् वा लक्ष्मी ओ भिक्षा करे । तथापिह दारिद्र नहिव तोर घरे ॥५४॥
आपने ये गीता शास्त्रे वलियाछों मुञि । ताहो कि श्रीवास एवे पासरिलि तुञि ॥५५॥

तथाहि गीतायाम् ६।२२

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योग-क्षेमं वहाम्यहम्" ॥१॥

"ये ये जने चिन्ते' मोरे अनन्य हइया । तारे भक्ष्य देङ मुञि माथाय वहिया ॥५६॥
जेइ मोरे चिन्ते, नाहि जाय कारो द्वारे । आपने आसिया सर्वसिद्धि मिले तारे ॥५७॥
धर्म अर्थ काम मोक्ष-आपने आइसे । तथापिह ना चाय ना लय मोर दासे ॥५८॥
मोर सुदर्शन चक्रे राखे मोर दास । महाप्रलये ओ यार नाहिक विनाश ॥५९॥
ये मोहोर दासेरे ओ करये स्मरण । तहारेओ करों मुञि पोषण पालन ॥६०॥
सेवकेर दास से मोहोर प्रिय बड़ । अनायासे से-इसे मोहोरे पाय दढ़ ॥६१॥

मिले तो बताओ तुम क्या करोगे, देखें तो ॥४७॥ हाथ से तीन ताली बजाकर श्रीवास ने कहा; एक-दो-तीन यह स्पष्ट कह देता हूँ ॥ ४८ ॥ प्रभु बोले एक-दो-तीन जो तुमने कहा उसका क्या अर्थ है तथा ताली क्यों बजाई ? ॥ ४९ ॥ श्रीवासने कहा मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि देखिये तीन दिन उपवास होने पर भी यदि आहार नहीं मिलेगा तो मैं सत्य कहता हूँ गले में घट बाँधकर मैं गंगा में अवश्य प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ५०-५१ ॥ श्रीवास की इतनी बात सुनते ही श्रीशचीनन्दन हुङ्कार करके उठे ॥ ५२ ॥ प्रभु बोले श्रीवास पण्डित ! क्या कहा अहो तुम्हें अन्न के दुःख से क्या उपवास होगा ॥ ५३ ॥ यदि कदाचित् तुम्हारे घर में लक्ष्मी भी भिक्षा करें तो भी तुम्हारे घर में दरिद्रता नहीं होगी ॥ ५४ ॥ स्वयं मैंने ही गीताशास्त्र में जो कहा है उसे क्या श्रीवास तुम इस समय भूल गये ? ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य मेरा ही अखण्ड चिन्तन व सर्व भाव से मेरी ही उपासना करते हैं उन मुझमें नित्य अखण्ड युक्त हुए का योग (उपस्थित सामग्री की रक्षा) व क्षेम (आवश्यकीय सामग्री की उपस्थिति) मैं वहन करता हूँ ॥ १ ॥ जो भी जन अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं, अपने सिर पर रखकर मैं उनको भोजन देता हूँ ॥ ५६ ॥ तथा जो मेरा चिन्तन करता है और किसी के द्वार पर भी नहीं जाता उसे सभी सिद्धियाँ स्वयं आकर मिलती हैं ॥ ५७ ॥ धर्म अर्थ काम व मोक्ष ये चारों पदार्थ आप ही आ जाते हैं तथापि मेरा दास न तो उन्हें चाहता है और न लेता ही है ॥५८॥ मेरा सुदर्शन चक्र उसकी रक्षा करता है तथा महाप्रलय में भी उस (भक्त) का नाश नहीं होता ॥ ५९ ॥ जो मेरे दास का भी स्मरण करता है मैं उसका भी पालन पोषन करता हूँ ॥ ६० ॥ जो मेरे

कोन् चिन्ता मोर सेवकेर 'भक्ष्य' करि । मुञि यार पोष्टा आछों सकल उपरि ॥६२॥
सुखे श्रीनिवास, तुमि वसि थाक घरे । आपनि आसिव सब तोमार दुयारे ॥६३॥
अद्वैतेरे तोमारे आमार एइवर । 'जराग्रस्त नहिव दोंहार कलेवर" ॥६४॥
राम पण्डितेरे डाकि श्रीगौरसुन्दर । प्रभु बोले "शुन राम ! आमार उत्तर ॥६५॥
ज्येष्ठभाइ-श्रीवासेरे तुमि सर्वथाय । सेविवे ईश्वरबुद्धे आमार आज्ञाय ॥६६॥
प्राण सम तुमि मोर, श्रीराम पण्डित । श्रीवासेर सेवा ना छाड़िवा कदाचित् ॥६७।
शुनिञा प्रभुर वाक्य श्रीवास श्रीराम । अन्त नाहि आनन्दे, हइला पूर्णकाम ॥६८॥
अद्यापिह श्रीवासेरे चैतन्य कृपाय । द्वारे सब उपसन्न हैतेछे लीलाय ॥६९॥
कि कहिव श्रीवासेर उदार चरित्र । त्रिभुवन हय यार स्मरणे पवित्र ॥७०॥
सत्य सेविलेन चैतन्येरे श्रीनिवास । यार घरे चैतन्येर सकल विलास ॥७१॥
हेन रङ्गे श्रीवास मन्दिरे गौरराय । रहिलेन कथोदिन श्रीवास-इच्छाय ॥७२॥
ठाकुर पण्डित सर्वगोष्ठीर सहिते । आनन्दे भासेन प्रभु देखिते देखिते ॥७३॥
कथोदिन थाकि प्रभु श्रीवासेर घरे । तवे गेला पानीहाटी-राघव मन्दिरे ॥७४॥
कृष्ण कार्ये आछेन श्रीराघव पण्डित । सम्मुखे श्रीगौरचन्द्र हइला विदित ॥७५॥
प्राणनाथ देखिया श्रीराघव पण्डित । दण्डवत् हइया पड़िला पृथिवी त ॥७६॥
दृढ़ करि धरि रमावल्लभ-चरण । आनन्दे राघवानन्द करेन क्रन्दन ॥७७॥

सेवकों का दास है वह मेरा बड़ा प्रिय है; यह दृढ़ सत्य है कि वह मुझे अनायास ही पा जाता है ॥ ६१ ॥ मेरे सेवक को भक्ष्य पदार्थों की क्या चिन्ता सबसे ऊपर मैं जिसकी पोषण कर्त्ता विद्यमान हूँ ॥ ६२ ॥ हे श्रीवास ! तुम सुख से घर में बैठो—सब तुम्हारे द्वार पर आप ही आप आ जावेगा ॥ ६३ ॥ अद्वैत आचार्य व तुम्हारे लिये मेरा यह वरदान है कि तुम दोनों के शरीर जराग्रस्त नहीं होंगे ॥ ६४ ॥ श्रीगौर-सुन्दर ने रामपण्डित को बुला कर कहा "हे राम ! मेरी बात सुनो ॥ ६५ ॥ तुम अपने बड़े भाई श्रीवासजी की सेवा मेरी आज्ञा से सर्वथा ईश्वर बुद्धि से करना ॥ ६६ ॥ हे श्रीराम पण्डित ! तुम मेरे प्राणों के समान हो श्रीवास की सेवा करना कभी मत छोड़ना ॥ ६७ ॥ श्री प्रभु के वाक्य सुनकर श्रीवास व श्रीराम के आनन्द का अन्त नहीं रहा वे पूर्ण काम हो गये ॥ ६८ ॥ आज तक भी श्रीवास के द्वार पर श्रीचैतन्य कृपा से सब पदार्थ स्वतः ही उपस्थित होते हैं ।६९॥श्रीवास के उदार चरित्र के विषय में मैं क्या कहूँ जिनके स्मरण करने से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं ॥ ७० ॥ श्रीवास ने श्रीचैतन्य देव की सच्ची सेवा की है उनके घर में श्रीचैतन्यप्रभु का सब आनन्द है ॥ ७१ ॥ इस प्रकार श्रीवासजी की इच्छा से कुछ दिन श्रीगौरसुन्दर उनके घर में रहे ॥ ७२ ॥ श्रीवास पण्डित सब गोष्ठी सहित श्रीगौरचन्द्र को देख-देख कर आनन्द सागर में गोता लगाते थे ॥ ७३ ॥ श्री प्रभु कुछ दिन श्रीवास के घर में रहकर फिर पानी–हाटी ग्राम में राघव पण्डित के घर गये ॥ ७४ ॥ श्रीराघव पण्डित श्रीकृष्ण सेवा में लगे हुए थे कि श्रीगौरचन्द्र उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥७५॥ श्रीराघव पण्डित अपने प्राणनाथ को देखते ही दण्डवत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥७६॥ श्रीलक्ष्मीपति के चरणों को दृढ़ता से पकड़कर श्रीराघवानन्द आनन्द से क्रन्दन करने लगे और ॥ ७७ ॥ श्री-

प्रभुओ राघव पण्डितेरे करि कोले । सिञ्चिलेन अङ्ग तान नयनेर जले ॥७८॥
हेन से आनन्द हैल राघव शरीरे ; कोन् विधि करिबेन ताहा नाहि स्फुरे ॥७९॥
राघवेर भक्ति देखि श्रीवैकुण्ठनाथ । राघवेरे करिलेन शुभ दृष्टिपात ॥८०॥
प्रभु बोले राघवेर आलये आसिया । पासरिलूँ सब दुःख राघव देखिया ॥८१॥
गङ्गाय मज्जन कैले ये सन्तोष हय । सेइ सुख पाइलाङ राघव-आलय ॥८२॥
हासि बोले प्रभु शुन राघव पण्डित । कृष्णेर रन्धन गिया करह त्वरित ॥८३॥
आज्ञा पाइ श्रीराघव परम सन्तोषे । चलिलेन रन्धन करिते प्रेमरसे ॥८४॥
चित्तवृत्ति यतेक मानस आपनार । सेइरूपे पाक विप्र करिला अपार ॥८५॥
आइलेन महाप्रभु करिते भोजन । नित्यानन्द सङ्गे आर यत आप्तगण ॥८६॥
भोजन करेन गौरचन्द्र लक्ष्मीकान्त । सकल व्यंजन प्रभु प्रशंसे एकान्त ॥८७॥
प्रभु बोले राघवेर कि सुन्दर पाक । एमत कोथाओ आमि नाहि खाइ शाक ॥८८॥
राघवो प्रभुर प्रीति शाकेते जानिञा । रान्धिया आछेन शाक विविध आनिञा ॥८९॥
एइ मत रंगे प्रभु करिया भोजन । बसिलेन आसि प्रभु करि आचमन ॥९०॥
राघव मन्दिरे शुनि श्रीगौरसुन्दर । गदाधरदास धाइ आइला सत्वर ॥९१॥
प्रभुर परम प्रिय-गदाधरदास । भक्ति सुखे पूर्ण यार विग्रह प्रकाश ॥९२॥
प्रभुओ देखिया गदाधर सुकृतिरे । श्रीचरण तुलिया दिलेन तान शिरे ॥९३॥
पुरन्दर पण्डित परमेश्वरदास । जाहार विग्रहे गौरचन्द्रेर प्रकाश ॥९४॥

प्रभु ने भी राघव पण्डित को गोदी में करके नेत्रों के जल से उनके अङ्ग को सिंचन किया ॥ ७८ ॥ श्रीराघव के शरीर में ऐसा आनन्द हुआ है कि उन्हें यही नहीं सूझता था कि क्या करें ? ॥ ७९ ॥ श्रीवैकुंठनाथ ने राघव की भक्ति देखकर उनके ऊपर शुभ दृष्टिपात की ॥ ८० ॥ श्रीप्रभु ने कहा कि राघव के घर जाकर उन्हें देखकर सब दुःख भूल गया ॥ ८१ ॥ गङ्गाजी में स्नान करने से जो सन्तोष होता है वही सुख राघव के घर में मुझे मिला ॥ ८२ ॥ हँसकर श्रीप्रभु ने कहा कि राघव पण्डितजी सुनो ! अब शीघ्रता से तुम कृष्ण के लिये रसोई करो ॥ ८३ ॥ श्रीराघव पंडित आज्ञा पाकर बड़े सन्तुष्ट हुए और प्रेमरस से रसोई करने लगे ॥ ८४ ॥ अपने मनमें जहाँ तक भावना थी ब्राह्मण ने उसी के अनुसार अनेक प्रकार की अपार रसोई सिद्ध की ॥ ८५ ॥ श्रीनित्यानन्दजी और जितने आत्मीयगण वहाँ थे सबको साथ लेकर श्रीमहाप्रभुजी भोजन करने को आये ॥ ८६ ॥ श्रीलक्ष्मीकान्त गौरचन्द्र ने भोजन किया और सब व्यंजनों की प्रभु ने बारंबार प्रशंसा की ॥ ८७ ॥ प्रभु ने कहा "अहो राघव पंडित की कैसी सुन्दर रसोई है ऐसे शाग तो मैंने कहीं भी नहीं खाये ॥ ८८ ॥ राघव पंडित ने भी श्रीप्रभु की प्रीति शागों में जानकर अनेक प्रकार के शाग लायकर रन्धन किये थे ॥८९॥ श्रीप्रभु इस प्रकार आनन्द से भोजन करके पीछे आचमन करके विराजे हैं ॥९०॥ श्रीगौरसुन्दर राघव के मन्दिर में हैं यह सुनते ही गदाधरदासजी जल्दी से दौड़कर आये ॥ ९१ ॥ गदाधर-दासजी प्रभु के परम प्रिय थे वे प्रभु के प्रकट विग्रह की भक्ति सुख से पूर्ण थे ॥ ९२ ॥ तथा श्रीप्रभु ने भी सुकृती श्रीगदाधरजी को देखते ही अपना श्रीचरण उठाकर उनके मस्तक पर दे दिया ॥ ९३ ॥ जिनके शरीर

सत्त्वरे धाइया आइलेन सेइ क्षणे । प्रभु देखि प्रेमयोगे कान्दे दुइजने ॥९५॥
रघुनाथ वैद्य आइलेन तत्क्षणे । परम वैष्णव, अन्त नाहि यार गुणे ॥९६॥
एइ मत यथायथ वैष्णव आछिला । सभेइ प्रभुर स्थाने आसिया मिलिला ॥९७॥
पानी हाटी ग्रामे हैल परम-आनन्द । आपने साक्षाते यथा प्रभु गौरचन्द्र ॥९८॥
राघव पण्डित प्रति श्रीगौरसुन्दर । निभृते करिला किछु रहस्य-उत्तर ॥९९॥
राघव तोमारे आमि निज गोप्य कइ । आमार द्वितीय नाहि नित्यानन्द बइ ॥१००॥
एइ नित्यानन्द सेइ करायेन आमारे । सेइ करि आमि, एइ बलिल तोमारे ॥१०१॥
आमार सकल कर्म्म-नित्यानन्द-द्वारे । एइ आमि अकपटे कहिल तोमारे ॥१०२॥
येइ आमि, से-इ नित्यानन्द, भेद नाइ । तोमारे घरेइ सब जानिबा एथाइ ॥१०३॥
महा-योगेन्द्रेरो याहा पाइते दुर्लभ । नित्यानन्द हैते ताहा हइब सुलभ ॥१०४॥
एतेके हइया तुमि महा सावधान । नित्यानन्द सेविह-येहेन भगवान् ॥१०५॥
मकरध्वज कर प्रति श्रीगौरचन्द्र । बलिलेन सेविह राघव पद द्वन्द्व ॥१०६॥
राघव पण्डित प्रति ये प्रीति तोमार । से केवल सुनिश्चित जानिह आमार ॥१०७॥
हेन मते पानी हाटी-ग्राम धन्य करि । आछिलेन कथोदिन गौराङ्ग श्रीहरि ॥१०८॥
तबे प्रभु आइलेन बराह नगरे । महाभाग्यवन्त एक ब्राह्मणेर घरे ॥१०९॥
सेइ विप्र बड़ सुशिक्षित भागवते । प्रभु देखि भागवत लागिला पढ़िते ॥११०॥
शुनिला ताहान भक्तियोगेर पठन । आविष्ट हइला गौरचन्द्र नारायण ॥१११॥

में श्रीगौरचन्द्र का प्रकाश है ऐसे श्रीपुरन्दर पंडित व परमेश्वरदासजी भी उसी क्षण शीघ्र दौड़कर आये प्रभु को देखकर प्रेमयोग से दोनों रोने लगे ॥ ९४-९५ ॥ उसी क्षण रघुनाथ वैद्य भी आये जिनके गुणों का अन्त नहीं ऐसे वे परम वैष्णव थे ॥ ९६ ॥ इस प्रकार जहाँ जितने वैष्णव थे, वे सब ही श्रीप्रभु (गौरचन्द्र) के स्थान पर आ मिले ॥ ९७ ॥ पानी हाटी नामक ग्राम में बड़ा आनन्द हुआ क्योंकि श्रीगौरचन्द्र प्रभु स्वयं ही वहाँ बिराजमान थे ॥ ९८ ॥ श्रीगौरसुन्दर ने राघव पंडित से एकान्त में कुछ रहस्यमय वचन कहे॥९९॥ हे राघव ! मैं तुमसे अपनी एक गुप्त बात कहता हूँ कि श्रीनित्यानन्द के बिना मेरा कोई दूसरा नहीं है॥१००॥ यह श्रीनित्यानन्दजी मुझसे जो कराते हैं वही मैं करता हूँ ? यह मैं तुम से सत्य कहता हूँ ॥ १०१ ॥ मेरे सभी कर्म श्रीनित्यानन्द के द्वारा होते हैं यह मैंने निष्कपट रूप से तुमसे कहा ॥ १०२ ॥ जो मैं हूँ वही नित्यानन्दजी हैं इसमें भेद नहीं है; तुम अपने घर पर ही इसी जगह यह सब जान लोगे ॥ १०३ ॥ महा योगीराजों को भी जिसकी प्राप्ति दुर्लभ है, वह पदार्थ श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा सबको सुलभता से प्राप्त होगा ॥ १०४ ॥ इसलिये तुम विशेष सावधान होकर श्रीभगवान् के समान श्रीनित्यानन्दजी की सेवा करोगे ॥ १०५ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने मकरध्वज के प्रति कहा कि तुम राघव के युगल चरणों की सेवा करना ॥ १०६ ॥ राघव पण्डित के प्रति जो तुम्हारी प्रीति होगी वह निश्चय रूप से मेरे प्रति ही जानना ॥ १०७ ॥ इस प्रकार श्रीगौराङ्ग हरि ने पानी हाटी ग्राम को धन्य करने के लिये वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ १०८ ॥ तब श्री प्रभु बराह नगर में एक बड़े भाग्यवान् ब्राह्मण के घर आये ॥ १०९ ॥ वह ब्राह्मण श्रीमद्भागवत का

'बोल बोल' बोले प्रभु वैकुण्ठेर राय । हुङ्कार गर्जन प्रभु करेन सदाय ॥११२॥
सेहो विप्र पढ़े परानन्दे मग्न हैया । प्रभुओ करेन नृत्य बाह्य पासरिया ॥११३॥
भक्तिर महिमा श्लोक शुनिते शुनिते । पुनः पुन आछाड़ पड़ेन पृथिवीते ॥११४॥
हेन से करेन प्रभु प्रेमार प्रकाश । आछाड़ देखिते सर्वलोके पाय त्रास ॥११५॥
एइमत रात्रि तिनप्रहर-अवधि । भागवत शुनिञा नाचिला गुण-निधि ॥११६॥
बाह्य पाइ वसिलेन श्रीशचीनन्दन । सन्तोषे विप्रेर करिलेन आलिङ्गन ॥११७॥
प्रभु बोले "भागवत एमत पढ़िते । कभू नाहि शुनि आर काहारो मुखेते ॥११८॥
एतेके तोमार नाम भागवताचार्य । इहाबइ आर कोन ना करिह कार्य" ॥११९॥
विप्र प्रति प्रभुर पदवी योग्य शुनि । सभे करिलेन महा-जय-हरि ध्वनि ॥१२०॥
एइमत प्रति-ग्रामे ग्रामे गङ्गातीरे । रहिया रहिया प्रभु भक्तेर मन्दिरे ॥१२१॥
सभारि करिया मनोरथ पूर्ण काम । पुन आइलेन प्रभु नीलाचल धाम ॥१२२।
गौड़देशे पुनर्बार प्रभुर विहार । इहा ये शुनये तार दुख नहे आर ॥१२३॥
सब नीलाचल-देशे उपजिल ध्वनि । पुन आइलेन प्रभु न्यासि चूड़ामणि ॥१२४॥
महानन्दे सर्वलोक 'जय जय' बोले । "आइला सचल-जगन्नाथ नीलाचले" ॥१२५॥
शुनि सब उत्कलेर पारिषदगण । सार्वभौम-आदि आइलेन सेइक्षण ॥१२६॥
चिरदिन प्रभुर विरहे भक्तगण । आनन्दे प्रभुरे देखि करेन क्रन्दन ॥१२७॥

बड़ा विद्वान था श्रीप्रभु को देख कर वह भागवत पाठ करने लगा ॥ ११० ॥ उसका भक्तियोग विषय का पाठ सुनकर श्रीभगवान गौरचन्द्र प्रेमाविष्ट हो गये ॥ १११ ॥ श्रीप्रभु वैकुण्ठनाथ "बोल ! बोल !" कह कर विशेष रूप से हुङ्कार व गर्जन करने लगे ॥ ११२ ॥ वह विप्र भी विशेष आनन्द में मग्न होकर पाठ करने लगा तथा श्री प्रभु भी बाह्य ज्ञान भूलकर नाँचने लगे ॥ ११३ ॥ भक्ति की महिमा पूर्ण श्लोक सुन सुन कर बारंबार पृथ्वी पछाड़ खाकर गिरते थे ॥ ११४ ॥ श्रीप्रभु ने प्रेमाभक्ति का ऐसा प्रकाश किया कि उनकी पछाड़ा को देखकर सब दर्शक लोग दुःखी हुए ॥ ११५ ॥ इस प्रकार तीन पहर रात्रि तक श्रीगुण निधान प्रभु ने भागवत सुनकर नृत्यकिया ॥ ११६ ॥ तथा श्रीशचीनन्दन प्रभु ने बाह्य दशा प्राप्त करके सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण को आलिङ्गन किया ॥ ११७ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "श्रीमद्भागवत को इस प्रकार का पाठ कभी अन्य किसी के मुख से नहीं सुना ॥११८॥ इसलिये अब से तुम्हारा नाम भागवताचार्य हुआ, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य मत करना ॥ ११९ ॥ विप्र के प्रति प्रभु-दत्त योग्य पदवी सुनकर सब ऊँचे स्वर से जययुक्त हरि-ध्वनि करने लगे ॥ १२० ॥ इस प्रकार गंगा के किनारे के प्रत्येक ग्राम में भक्तों के घरों में निवास करते हुए तथा सबके मनोरथ व कामना पूर्ण करते करते पुनः नीलाचल में पधारे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ श्रीप्रभु के गौड़ देश में इस दूसरी बार का विहार को जो सुनेंगे उन्हें फिर दुःख नहीं होगा ॥ १२३ ॥ समग्र. नीलाचल प्रदेश में यह ध्वनि हो गई कि सन्यासियों में चूड़ामणि श्रीगौर पुनः लौटकर आ गये हैं ॥ १२४ ॥ सब जन-साधारण बड़े आनन्द से जय ध्वनि करके कह रहे थे कि "नीलाचल में सचल जगन्नाथ आगये हैं ॥ १२५ ॥ उत्कल देश वासी सार्वभौम आदि सब पारिषदगण यह सुनते ही तत् क्षण आकर उपस्थित हुए ॥ १२६ ॥

अमुओ सभारे महाप्रेमे करि कोले । सिंचिला सभार अङ्ग नयनेर जले ॥१२८॥
हेनमते श्रीगौरसुन्दर नीलाचले । रहिलेन काशीमिश्र-गृहे कुतूहले ॥१२६॥
निरन्तर नृत्य गीत आनन्द-आवेश । प्रकाशेन गौरचन्द्र, देखे सर्वदेश ॥१३०॥
कखनो नाचेन जगन्नाथेर सम्मुखे । तिलार्द्धेको वाह्य नाहि निजानन्दसुखे ॥१३१॥
कखनो नाचेन काशीमिश्रेर मन्दिरे । कखनो नाचेन महाप्रभु सिन्धु तीरे ॥१३२॥
एइमत निरन्तर प्रेमेर विलास । तिलार्द्धेको अन्य कर्म नाहिक प्रकाश ॥१३३॥
पाणिशङ्ख वाजिले उठेन सेइक्षणे । कपाट फेटिले जगन्नाथ-दरशने ॥१३४॥
जगन्नाथ देखिते ये प्रकाशेन प्रेम । अकथ्य अद्भुत-गङ्गाधारा वहे येन ॥१३५॥
देखिया अद्भुत सब उत्कलेर लोक । कारो देहे आर नाहि रहे दुख शोक ॥१३६॥
ये-दिगे चैतन्य महाप्रभु चलियाय । सेई-दिगे सर्वलोक 'हरि हरि' गाय ॥१३७॥
प्रतापरुद्रेर स्थाने हइल गोचर । "नीलाचले आइलेन श्रीगौरसुन्दर" ॥१३८॥
सेइक्षणे शुनि मात्र नृपति प्रताप । कटक छाड़िया आइलेन जगन्नाथ ॥१३६॥
प्रभुरे देखिते से राजार बड़ प्रीत । प्रभु से ना देन दरशन कदाचित् ॥१४०॥
सार्वभौम-आदि सभा' स्थाने राजा कहे । तथापि प्रभुरे केहो ना जानाय भये ॥१४१॥
राजा बोले "तुमिसब यदिकर भय । अगोचरे आमारे देखाह महाशय" ॥१४२॥
देखिया राजार आर्ति सर्व भक्तगणे । सभे मेलि एइ युक्ति भाविलेन मने ॥१४३॥

श्रीप्रभु के बहुत दिनके विरही भक्तगण उनके दर्शन करके आनन्द से रो रहे थे ॥ १२७ ॥ श्रीप्रभु ने भी बड़े प्रेम से सबको गोद में लेकर उनके अङ्गों को अपने नेत्र जल (आँसुओं) से सींच दिया ॥१२८॥ इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर नीलाचल में काशी मिश्र के घर में आनन्दपूर्वक रहे ॥१२६॥ श्रीगौरचन्द्र आनन्द के आवेश में निरन्तर नृत्य गीत प्रकाश करते और सब देश देखता था ॥ १३० ॥ कभी श्रीजगन्नाथजी के सामने नाचते तो निजानन्द सुख में अर्द्ध तिलमात्र भी वाह्य ज्ञान नहीं रहता था ॥ १३१ ॥ श्रीमहाप्रभु कभी श्री-काशी मिश्र के भवन में नाचते तो कभी समुद्र तट पर नृत्य करते थे ॥ १३२ ॥ इसी भाँति निरन्तर प्रेम के विलास में रहते थे तिलमात्र समय के लिये भी अन्य कर्म नहीं करते थे ॥ १३३ ॥ उसी समय शङ्ख बज उठे तथा जगन्नाथ दर्शन के लिये कपाट खुल गये ॥ १३४ ॥ श्रीजगन्नाथ दर्शन करके गङ्गाजी की धारा जैसे बहे इस प्रकार अकथ व अद्‌भुत प्रेम प्रदर्शन किया-॥ १३५ ॥ ऐसा अद्‌भुत प्रेम देखकर किसी उत्कलवासी के शरीर में दुःख शोक नहीं रहा ॥ १३६ ॥ श्रीचैतन्य महाप्रभु जिस ओर को जाते उसी ओर में सब मनुष्य हरि-हरि गान करने लगते थे ॥ १३७ ॥ राजा प्रतापरुद्र के स्थान में यह समाचार ज्ञात हुआ कि श्रीगौरसुन्दर नीलाचल में आ गये हैं ॥ १३८ ॥ राजा प्रतापरुद्र प्रभु आगमन सुनते ही तत्क्षण कटक राजधानी छोड़कर जगन्नाथपुरी आ गये ॥ १३६ ॥ श्री प्रभु के दर्शन करने की राजा की बड़ी इच्छा थी, परन्तु श्रीप्रभु राजा को कदाचित् दर्शन नहीं देते थे ॥ १४० ॥ राजा ने सार्वभौम आदि सबसे कहा परन्तु भय के कारण श्रीप्रभु को कोई नहीं बतलाता था ॥ १४१ ॥ राजा ने कहा 'आप लोग यदि भय करते हो तो महाप्रभु के अगोचर मुझे दर्शन करा दें ॥ १४२ ॥ सब भक्तों

ये-समये प्रभु नृत्य करेन आपने । वाह्य ज्ञान दैवे नाहि थाकये तखने ॥१४४॥
राजाओ परम भक्त-सेइ अवसरे । देखिवेन प्रभुरे, थाकिया अगोचरे ॥१४५॥
एइ युक्ति सभे कहिलेन राजा स्थाने । राजा बोले 'ये-ते-मते देखों मात्र ताने' ॥१४६॥
दैवे एक दिन नृत्य करेन ईश्वर । शुनि राजा एकेश्वर आइला सत्वर ॥१४७॥
आड़े थाकि देखे राजा नृत्य करे प्रभु । परम अद्भुत-याहा नाहि देखि कभु ॥१४८॥
अविच्छिन्न कत धारा वहे श्रीनयने । कम्प स्वेद वैवर्ण्य पुलक क्षणे-क्षणे ॥१४९॥
हेन से आछाड़ प्रभु पड़ेन भूमिते । हेन नाहि ये वा त्रास ना पाय देखिते ॥१५०॥
हेन से करेन प्रभु हुङ्कार गर्जन । शुनिआ प्रतापरुद्र धरेन श्रवण ॥१५१॥
कखनो करेन हेन रोदन विरहे । राजा देखे पृथिवीते येन नदी वहे ॥१५२॥
एइ मत कत हय अनन्त विकार । कत याय कत हय लेखा कत तार ॥१५३॥
निरवधि दुइ महाबाहुदण्ड तुलि । 'हरि बोल' बलिया नाचेन कुतूहली ॥१५४॥
एइ मत नृत्य प्रभु करि कथोक्षणे । वाह्य प्रकाशिया वसिलेन सर्व-गणे ॥१५५॥
राजाओ चलिला अलक्षिते सेइ क्षणे । देखिया प्रभुर नृत्य महानन्द मने ॥१५६॥
देखिया अद्भुत नृत्य अद्भुत विकार । राजार मने ते हैल सन्तोष अपार ॥१५७॥
सबे एक खानि मात्र धरिलेक मने । सेइ तान अनुग्रह हइवार कारणे ॥१५८॥
प्रभुर नासाय यत दिव्य धारा वहे । निरवधि नाचिते श्रीमुखे लाला हये ॥१५९॥

ने राजा की गिड़गिड़ाहट देखकर ही सब मिलकर मनमें यह युक्ति विचारी कि ॥ १४३ ॥ जिस समय श्रीगौरचन्द्र स्वयं नृत्य करते हैं उस समय दैववश उन्हें वाह्य ज्ञान नहीं रहता है सोई ॥ १४४ ॥ राजा भी बड़ा भक्त है उसी अवसर में गुप्त स्थान में रहकर प्रभु के दर्शन कर लेंगे" ॥ १४५ ॥ यह युक्ति सबने राजा से कही; यह सुनकर राजा बोला कि "जिस भाँति से भी दर्शन मात्र हो जावें" ॥ १४६ ॥ दैववश श्रीगौरचन्द्र एक दिन नृत्य करने लगे यह सुनते ही राजा अकेला ही शीघ्र आया ॥ १४७ ॥ राजा आड़ में होकर श्रीप्रभु को नृत्य करते देखने लगा, बड़ा अद्भुत था जैसा पूर्व में कभी नहीं देखा था ॥ १४८ ॥ श्रीनेत्रों से कितनी अटूट धार वह रही थी तथा क्षण २ में कम्प स्वेद पुलक व (वैवर्ण्य) शरीर का रङ्ग बदलता था ॥ १४९ ॥ श्रीप्रभु पृथ्वी पर ऐसी पछाड़ खाकर गिरते थे, जिसे देखकर दुःख न हो ऐसा कोई भी नहीं था ॥ १५० ॥ श्रीगौरचन्द्र ऐसी गर्जना व हुङ्कार करते थे, जिसे सुनकर राजा प्रतापरुद्र कान बन्द करता था ॥ १५१ ॥ कभी विरह में इतना रुदन करते थे कि राजा ने देखकर समझा मानों पृथ्वी पर नदी बहने लगी ॥ १५२ ॥ इस प्रकार न जाने कितने अनन्त विकार हो रहे थे; इसकी कुछ गिनती नहीं थी कि कितने विकार उठते व कितने शांत होते थे ॥ १५३ ॥ दोनों विशाल भुजदण्डों को निरन्तर उठाकर हरि बोल २ कहते हुए कुतूहल से नाच रहे थे ॥ १५४ ॥ इस प्रकार कुछ समय तक श्रीप्रभु नृत्य करके वाह्य ज्ञान में आ गये, सब भक्तों के साथ बैठ गये ॥ १५५ ॥ राजा भी तत्क्षण ही अलक्षित रूप से चला गया और श्रीप्रभु का नृत्य देखकर मनमें अति आनन्द पाया ॥ १५६ ॥ अद्भुत नृत्य व विकारों को देखकर राजा के मनमें सन्तोष हुआ ॥ १५७ ॥ केवल मात्र एक सन्देह मनमें उत्पन्न हुआ उसके होने का कारण भी एक मात्र

धूलाय लालाय नासिकार प्रेम धारे। सकल श्रीअङ्ग व्याप्त कीर्तन विकारे ॥१६०॥
ए सकल कृष्णभाव ना बूझि नृपति। ईषत् सन्देह तान धरिलेक मति ॥१६१॥
कारो स्थाने इहा राजा ना करि प्रकाश। परम सन्तोषे राजा गेला निज-वास ॥१६२॥
प्रभुरे देखिया राजा महासुखी हैया। थाकिलेन गृहे गिया शयन करिया ॥१६३॥
आपने श्रीजगन्नाथ न्यासिरूप धरि। निज सङ्कीर्तन क्रीड़ा करे अवतरि ॥१६४॥
ईश्वर-मायाय राजा मर्म नाहि जाने। सेइ प्रभु जानाइते लागिला आपने ॥१६५॥
सुकृति प्रतापरुद्र रात्रे स्वप्न देखे। स्वप्ने गियाछेन जगन्नाथेर सम्मुखे ॥१६६॥
राजा देखे-जगन्नाथ अङ्ग धूलामय। दुइ श्रीनयने येन गङ्गाधारा वय ॥१६७॥
दुइ नासिकाय जल पड़े निरन्तर। श्रीमुखेर लाला पड़े, तिते कलेवर ॥१६८॥
स्वप्ने राजा मने चिन्ते ए किरूप लीला। बूझिते ना पारि जगन्नाथेर कि खेला ॥१६९॥
जगन्नाथ-चरण स्पर्शिते राजा चाय। जगन्नाथ बोले राजा एत ना जुयाय ॥१७०॥
कर्पूर कस्तूरी गन्ध चन्दन कुंकुमे। लेपित तोमार अङ्ग सकल उत्तमे ॥१७१॥
आमार शरीर देख-धूला लाला-मय। आमा परशिते कि तोमार योग्य हय ॥१७२॥
आमि ये नाचिते आजि तुमि गियाछिला। घृणा कैले मोर अङ्गे देखि धूला लाला॥१७३॥
सेइ धूला लाला देख सर्वाङ्गे आमार। तुमि महाराजा-महाराजार कुमार ॥१७४॥
आमारे स्पर्शिते कि तोमार योग्य हय। एत बलि भृत्य चाहि हासे दयामय ॥१७५॥

उनका अनुग्रह था ॥ १५८ ॥ श्रीप्रभु की नाक से जितनी दिव्य धारा बह रही थी तथा निरन्तर नाचने से श्रीमुख से जो लार गिरती थी ॥ १५९ ॥ उनके श्रीअङ्ग में कीर्तन विकार तथा धूलि लार व नाक से बहा हुआ पानी आदि ही दिखाई देते थे ॥ १६० ॥ क्या यही सब कृष्ण-भावना है? राजा की बुद्धि में ऐसा कुछ सन्देह हुआ ॥ १६१ ॥ परन्तु राजा ने यह सन्देह किसी पर प्रकाशित नहीं किया और बड़े सन्तुष्ट होकर अपने निवास को चला गया ॥ १६२ ॥ प्रभु के दर्शन करके राजा बड़ा सुखी हुआ और घर पहुँचकर शयन किया ॥ १६३ ॥ स्वयं श्रीजगन्नाथ ने सन्यासी रूप धारण किया है; आप ही अवतार लेकर सङ्कीर्तन क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ ईश्वर की माया से राजा मर्म जान नहीं सका तब स्वयं ही मर्म बताने लगे ॥ १६५ ॥ सुकृति प्रतापरुद्र ने रात्रि में स्वप्न देखा कि मैं जगन्नाथ के सामने गया हूँ ॥ १६६ ॥ राजा ने देखा कि जगन्नाथजी का अङ्ग धूलिमय हो रहा है और दोनों श्रीनेत्रों से गङ्गा की धारा बह रही है ॥ १६७ ॥ निरन्तर दोनों नासिकाओं से जल व श्रीमुख से लार गिर रही है जिससे शरीर भीग रहा है ॥ १६८ ॥ स्वप्न में राजा ने मन ही मन चिन्तवन किया कि यह कैसी लीला है समझ में नहीं आती ॥ १६९ ॥ राजा ने जगन्नाथजी चरण स्पर्श करने चाहे—तब जगन्नाथ ने कहा "राजा ऐसा उचित नहीं है" ॥१७०॥ तुम्हारे अङ्ग में कर्पूर कस्तूरी सुगन्धित चन्दन व कुंकुम आदि सब उत्तम पदार्थ लेपन हो रहे हैं और ॥ १७१ ॥ मेरा शरीर तो धूलि व लारमय देखते हो मुझे स्पर्श करना क्या तुम्हें उचित है? ॥ १७२ ॥ आज मेरे नाचने के समय तुम गये थे, तब मेरे अङ्ग में धूलि व लार देखकर घृणा की थी ॥ १७३ ॥ वही धूल व लार मेरे अंग पर अब भी देख रहे हो फिर तुम तो महाराज हो तथा महाराज के कुमार हो ॥ १७४ ॥ मुझे स्पर्श करना

सेइक्षणे देखे राजा सेइ सिंहासने । चैतन्यगोसाञि वसि आछेन आपने ॥१७६॥
सेइमत सकल श्रीअङ्ग धूलामय । राजारे बोलेन हासि "एत योग्यनय ॥१७७॥
तुमि ये आमारे घृणा करि गेला मने । आर तुमि आमा' परशिवा कि कारणे" ॥१७८॥
एइमत प्रतापरुद्रेरे कृपा करि । हासेन श्रीगौराङ्ग सुन्दर नरहरि ॥१७९॥
राजार हइल कथोक्षणे जागरण । जागिया लागिला राजा करितेक्रन्दन ॥१८०॥
"महा-अपराधी मुञि पापी दुराचार । ना जानिलूँ ईश्वर चैतन्य-अवतार ॥१८१॥
जीवेर वा कोन शक्ति ताहाने जानिते । ब्रह्मादिर मोह हय याँहार मायाते ॥१८२॥
एतेके क्षमह प्रभु मोर अपराध । निज दास करि मोरे करह प्रसाद ॥१८३॥
आपने श्रीजगन्नाथ-चैतन्यगोसाञि । राजा जानिलेन, इथे किछु भेद नाञि ॥१८४॥
विशेष उत्कण्ठा हैल प्रभुरे देखिते । तथापि ना पारे केहो देखा कराइते ॥१८५॥
दैवे एकदिन प्रभु पुष्पेर उद्याने । वसिया आछेन कथो पारिषद-सने ॥१८६॥
एकाकी प्रतापरुद्र गिया सेइ स्थाने । दीर्घ हइ पड़िलेन प्रभुर चरणे ॥१८७॥
अश्रु कम्प पुल के राजार अन्त नाञि । आनन्दे मूर्च्छित हइलेन सेइ ठाञि ॥१८८॥
विष्णुभक्ति चिह्न प्रभु देखिया राजार । "उठ" वलि श्रीहस्त दिलेन अङ्गे तांर ॥१८९॥
श्रीहस्त परशे राजा पाइया चेतन । प्रभुर चरण धरि करेन क्रन्दन ॥१९०॥
"त्राहि त्राहि कृपासिन्धु सर्व जीवनाथ । मुञि-पातकीरे कर' शुभदृष्टि पात ॥१९१॥

क्या तुम्हें उचित है ? यों कहकर दास को देखकर दयामय हँस रहे हैं ॥ १७५ ॥ उसी क्षण राजा ने देखा कि उसी सिंहासन पर श्रीचैतन्य प्रभु स्वयं विराज रहे हैं और पहिली तरह ही सब श्रीअङ्ग धूलिमय हैं तब हँसकर राजा से बोले "ऐसा उचित नहीं है"॥१७६-१७७॥जब तुम मुझे मन में घृणा करके जा चुके तो फिर तुम मुझे क्यों छूना चाहते हो ? ॥ १७८ ॥ इस प्रकार प्रतापरुद्र पर कृपा करके नरहरि श्रीगौरांगसुन्दर हँस रहे थे ॥ १७९ ॥ कुछ क्षण में राजा को जागरण हो गया और जागते ही राजा क्रन्दन करने लगा ॥१८०॥ मैं महाअपराधी, पापी व दुराचारी हूँ–मैंने ईश्वरावतार श्रीचैतन्य को नहीं पहिचाना ॥ १८१ ॥ अहो जिनकी माया से ब्रह्मादिक को भी मोह होता है उनको जानने की जीव की क्या शक्ति है ॥ १८२ ॥ प्रभो ! इसी कारण मेरा अपराध क्षमा करो और तथा अपना दास मानकर मेरे ऊपर कृपा करो ॥ १८३ ॥ राजा समझ गया कि स्वयं जगन्नाथ ही श्रीचैतन्य प्रभु हैं इसमें कुछ भी भेद नहीं है ॥१८४॥ प्रभु के दर्शन करने की विशेष उत्कण्ठा हुई, परन्तु कोई दर्शन नहीं करा पाते ॥ १८५ ॥ दैववश एक दिन श्रीप्रभु फूलों के बगीचे में कुछ पारषदों के साथ विराजमान थे ॥ १८६ ॥ प्रतापरुद्र अकेला ही उस स्थान पर गया और लम्बा होकर प्रभु के चरणों में लेट गया ॥ १८७ ॥ राजा के शरीर में प्रेमाश्रु कम्प पुलकादिकों का अन्त नहीं था तथा उसी जगह आनन्द में मूर्च्छित हो गया ॥ १८८ ॥ श्रीप्रभु ने राजा के शरीर में विष्णुभक्ति के चिन्हों को देखे और अपनी श्रीहस्त उसके अंग में देकर कहा कि "उठो" ॥ १८९ ॥ श्रीहस्त के स्पर्श से राजा को चेतना आई और प्रभु चरण पकड़कर रोने लगा ॥१९०॥ हे कृपा के सागर सब जीवों के स्वामी रक्षा करो २ और मुझ पातकी के ऊपर शुभ दृष्टिपात करो ॥ १९१ ॥ हे स्वतन्त्र बिहारी ! कृपासिन्धो ! रक्षा करो २, हे

त्राहि त्राहि स्वतंत्र विहारि कृपासिन्धु । त्राहि त्राहि श्रीकृष्ण चैतन्य दीनबन्धु ॥१९२॥
त्राहि त्राहि सर्ववेद गोप्य रमाकान्त । त्राहि त्राहि भक्तजन वल्लभ एकान्त ॥१९३॥
त्राहि त्राहि महाशुद्ध सत्त्व रूप धारि । त्राहि त्राहि सङ्कीर्तन लम्पट मुरारि ॥१९४॥
त्राहि त्राहि अविज्ञात तत्त्व-गुण-नाम । त्राहि त्राहि परम कोमल गुणधाम ॥१९५॥
त्राहि त्राहि अज-भव वन्द्य-श्रीचरण । त्राहि त्राहि सन्यास धर्मेर विभूषण ॥१९६॥
त्राहि त्राहि श्रीगौरसुन्दर महाप्रभु । एइ कृपाकर' नाथ ना छाड़िवा कभु" ॥१९७॥
शुनि प्रभु प्रतापरुद्रेर काकुवाद । तुष्ट हइ प्रभु ताने करिला प्रसाद ॥१९८॥
प्रभु बोले "कृष्णभक्ति हउक तोमार । कृष्ण कार्य बिने तुमि ना करिह आर ॥१९९॥
निरन्तर गिया कर कृष्ण सङ्कीर्तन । तोमार रक्षिता-विष्णु चक्र-सुदर्शन ॥२००॥
तुमि, सार्वभौम, आर रामानन्दराय । तिनेर निमित्त मुञि आइलूँ एथाय ॥२०१॥
सबे एक खानि वाक्य करिवा आमार । मोरे ना करिवा कोथाओ प्रचार ॥२०२॥
ए से नहे आमार प्रचार कर तुमि । तबे एथा छाड़ि सत्य चलिवाङ आमि ॥२०३॥
एत वलि आपन गलार माला दिया । विदाय दिलेन ताने सन्तोष हइया ॥२०४॥
चलिला प्रतापरुद्र आज्ञा करि शिरे । दण्डवत पुनः पुन करिया प्रभुरे ॥२०५॥
प्रभु देखि नृपति हइला पूर्ण काम । निरवधि करेन चैतन्य पद-ध्यान ॥२०६॥
प्रतापरुद्रेर प्रभु-सह दरशन । इहा ये शुनये तारे मिले प्रेमधन ॥२०७॥
हेन मते श्रीगौरसुन्दर नीलाचले । रहिलेन कीर्तन विहार कुतूहले ॥२०८॥

दीनबन्धो श्रीकृष्णचैतन्यदेव रक्षा करो, रक्षा करो ॥ १९२ ॥ सब वेदों से छुपे हुए गोप्य रमाकान्त रक्षा करो २ और हे भक्तजनों के एक मात्र प्रियतम रक्षा करो २ ॥ १९३ ॥ (माया के) तीनों गुणों से अतीत, विशेष शुद्ध सत्त्वरूपधारी रक्षा करो २, हे संकीर्तन-प्रेमी मुरारी रक्षा करो २ ॥१९४॥ जिसके नाम के गुण तत्त्व को कोई नहीं जानता ऐसे आप रक्षा करो, रक्षा करो ॥ १९५ ॥ हे ब्रह्मा व शिव के वन्दनीय श्रीचरण वाले रक्षा करो २ तथा सन्यास धर्म विभूषण प्रभो रक्षा करो २ ॥ १९६ ॥ हे श्रीगौरसुन्दर महाप्रभो रक्षा करो २ और हे नाथ ऐसी कृपा करो कि मुझे कभी छोड़ मत देना ॥ १९७ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र प्रतापरुद्र की विनती सुनकर सन्तुष्ट हुए तथा उनके ऊपर अनुग्रह किया ॥ १९८ ॥ प्रभु ने कहा "तुमको कृष्ण-भक्ति होवे अब कृष्ण कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य तुम मत करना ॥ १९९ ॥ तुम जाकर निरन्तर कृष्ण संकीर्तन किया करना; विष्णु का सुदर्शन तुम्हारी रक्षक है ॥ २०० ॥ तुम सार्वभौम और रायरामानन्द के निमित्त ही मैं यहाँ आया हूँ ॥ २०१ ॥ तुम सब मेरी एक आज्ञा का अवश्य पालन करना कि तुम मेरा कहीं भी प्रचार न करोगे ॥२०२॥ ऐसा न हो कि तुम मेरा प्रचार करो तो मैं सत्य कहता हूँ कि यह स्थान छोड़कर मैं कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा ॥२०३॥ ऐसा कहकर प्रभु ने अपने गले की माला प्रदान की और उनके ऊपर सन्तुष्ट होकर विदा किया ॥ २०४ ॥ प्रभु को बारम्बार दण्डवत् प्रणाम करके व उनकी आज्ञा मस्तक पर धारण करके प्रतापरुद्र चला गया ॥२०५॥ प्रभु के दर्शन करके राजा के मनोरथ पूर्ण हो गये तथा श्रीचैतन्य चरणों का निरन्तर ध्यान करने लगा ॥ २०६ ॥ श्रीप्रतापरुद्र प्रभु के दर्शन की इस कथा को जो सुनेंगे उनको प्रेम-

उत्कले जन्मियाछिला यत अनुचर । सभे चिनिलेन निज प्राणेर ईश्वर ॥२०६॥
श्रीप्रद्युम्न मिश्र कृष्ण सुखेर सागर । आत्मपद जारे दिला श्रीगौरसुन्दर ॥२१०॥
श्रीपरमानन्द-महापात्र महाशय । जार तनु श्रीचैतन्य भक्ति रसमय ॥२११॥
काशी मिश्र परम-विह्वल कृष्ण रसे । आपने रहिला प्रभु याहार आवासे ॥२१२॥
एइ मत प्रभु सर्व भृत्य करि सङ्गे । निरवधि गोङायेन सङ्कीर्तन-रङ्गे ॥२१३॥
यत यत उदासीन श्रीचैतन्यदास । सभे करिलेन आसि नीलाचले वास ॥२१४॥
नित्यानन्द-महाप्रभु-परम उद्दाम । सर्व नीलाचले भ्रमे महाज्योति धाम ॥२१५॥
निरवधि परानन्द रसे उनमत्त । लखिते ना पारे केहो-अविज्ञात तत्त्व ॥२१६॥
सदाइ जपेन नाम-श्रीकृष्णचैतन्य । स्वप्नेओ नाहिक नित्यानन्द मुखे अन्य ॥२१७॥
येन रामचन्द्रे लक्ष्मणेर रति मति । सेइ मत नित्यानन्दो श्रीचैतन्य प्रति ॥२१८॥
नित्यानन्द प्रसादे से सकल संसार । अद्यापिह गाय श्रीचैतन्य-अवतार ॥२१६॥
हेन मते महाप्रभु चैतन्य निताइ । नीलाचले वसति करेन दुइ भाइ ॥२२०॥
एक दिन श्रीगौरसुन्दर नरहरि । निभृते वसिला नित्यानन्द सङ्गे करि ॥२२१॥
प्रभु बोले शुन नित्यानन्द महामति । सत्वरे चलह तुमि नवद्वीप-प्रति ॥२२२॥
प्रतिज्ञा करिया आछि आमि निज मुखे । मूर्ख नीच दरिद्र भासाव प्रेमसुखे ॥२२३॥
तुमिओ थाकिला यदि मुनि धर्म करि । आपन-उद्दाम-भाव सब परिहरि ॥२२४॥

धन प्राप्त होगा ।।२०७।। इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर ने नीलाचल धाम में कुतूहल पूर्वक कीर्तन बिहार से निवास किया ॥ २०८ ॥ उत्कल देश में जितने सेवकों का जन्म हुआ था उन सबने अपने प्राणनाथ को पहिचान लिया ॥ २०६ ॥ श्रीप्रद्युम्न मिश्रजी कृष्ण सुख के सागर थे जिनको श्रीगौरसुन्दर आत्म-पद प्रदान किया ॥ २१० ॥ महाशय परमानन्दजी महापात्र थे जिनका शरीर श्रीचैतन्यचन्द्र की भक्तिरस पूरित था ॥ २११ ॥ काशी मिश्र कृष्ण रस में बड़े विह्वल रहते थे उन्हीं के घर में स्वयं प्रभु ने निवास किया था ॥ २१२ ॥ इस प्रकार श्रीप्रभु गौरचन्द्र सब भृत्यों के साथ निरन्तर संकीर्तन रङ्ग में समय ही व्यतीत करते थे ॥ २१३ ॥ श्रीचैतन्यदेव के जितने उदासी दास थे उन सबने नीलाचल में आकर निवास किया ॥ २१४ ॥ महोज्योति-स्थान श्रीनित्यानन्द महाप्रभु बड़े उद्दाम स्वभाव के थे—वे समग्र नीलाचल में भ्रमण करते थे।।२१५।।वे निरन्तर परानन्द रस में उन्मत्त थे, परन्तु गुप्त तत्त्व को कोई समझ नहीं पाता था ॥ २१६ ॥ सदा ही श्रीकृष्ण-चैतन्य नाम का जप करते रहते थे तथा स्वप्न में भी उनके मुख से अन्य शब्द नहीं निकलता था ॥ २१७ ॥ जिस प्रकार लक्ष्मण की श्रीरामचन्द्रजी में प्रेम बुद्धि थी उसी प्रकार नित्यानन्दजी की श्रीचैतन्यचन्द्र में थी ॥ २१८ ॥ उन्हीं श्रीनित्यानन्द कृपा से सब संसार आज पर्यन्त श्रीचैतन्य चन्द्र का अवतार गाथा गाता है ॥ २१६ ॥ इस भाँति चैतन्यमहाप्रभु व नित्यानन्दप्रभु दोनों भाइयों ने नीलाचल में निवास किया ॥ २२० ॥ एक दिन नरहरि श्रीगौरसुन्दर नित्यानन्द के साथ एकान्त में विराजमान थे ॥ २२१ ॥ गौरचन्द्र ने कहा हे महामति नित्यानन्दजी सुनो आप शीघ्र ही नवद्वीप को जावें ॥ २२२ ॥ मैं अपने मुख से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मूर्ख नीच व दरिद्रों को भी प्रेम सुख में डुबाऊँगा ॥ २२३ ॥ यदि आप अपने सब उद्दामभाव को

तबे मूर्ख नीच यत पतित संसार। बोल देखि आर केबा करिब उद्धार ॥२२५॥
भक्तिरस दाता तुमि, तुमि सम्बरिले। तबे अबतार बा कि निमित्त करिले ॥२२६॥
एतेके आमार बाक्य यदि सत्य चाओ। तबे अविलम्बे तुमि गौड़देशे जाओ ॥२२७॥
मूर्ख नीच पतित दुखित यत जन। भक्ति दिया कर गिया सभार मोचन॥२२८॥
आज्ञा पाइ नित्यानन्दचन्द्र सेइ क्षणे। चलिलेन गौड़देशे लइ निज-गणे ॥२२९॥
रामदास गदाधरदास महाशय। रघुनाथ वैद्य-ओझा-भक्ति रसमय ॥२३०॥
कृष्णदास पण्डित परमेश्वरदास। पुरन्दर पण्डितेर परम उल्लास ॥२३१॥
नित्यानन्द स्वरूपेर यत आप्तगण। नित्यानन्द सङ्गे सभे करिला गमन ॥२३२॥
चलिलेन नित्यानन्द गौड़देश-प्रति। सब पारिषदगण करिया संहति ॥२३३॥
पथे चलितेइ नित्यानन्द महाशय। सर्व-परिषद करिलेन प्रेममय ॥२३४॥
सभार हइल आत्म विस्मृति अत्यन्त। कार देहे कत भाव नाहि हय अन्त ॥२३५॥
प्रथमेइ वैष्णवाग्र गण्य रामदास। तान देहे हइलेन गोपाल-प्रकाश ॥२३६॥
मध्य पथे रामदास त्रिभंग हइया। आछिला प्रहर-तिन बाह्य पासरिया ॥२३७॥
हइला राधिकाभाव-गदाधरदासे। दधि के के निब बलि महा अट्टहासे ॥२३८॥
रघुनाथ-वैद्य-उपाध्याय महामति। हइलेन मूर्तिमती येहेन रेवती ॥२३९॥
कृष्णदास परमेश्वरदास-दुइ जन। गोपाल-भावे है है करे सर्वक्षण ॥२४०॥
पुरन्दर पण्डित गाछेते गिया चढ़े। 'मुञिरे अङ्गद' बलि लाफ दिया पड़े ॥२४१॥

त्याग कर मौन होकर रहेंगे तो मूर्ख नीच आदि संसार में जितने पतित हैं तब उनका कौन दूसरा उद्धार करेगा ? ॥ २२४-२२५ ॥ भक्तिरस के दाता आप ही हो यदि आप ही सम्बरण करोगे तो फिर अवतार हो किसी निमित्त लिया ? ॥२२६॥ इसलिये यदि मेरे वाक्य को आप सत्य करना चाहते हो तो बिना देर किये आप गौड़देश को शीघ्र ही जावें ॥२२७॥ और जितने मूर्ख नीच दरिद्र व पतित दुखीजन हैं, उनको जाकर भक्ति प्रदान करके मुक्त करो ॥ २२८ ॥ आज्ञा पाकर तत्क्षण अपने भक्तगणों को लेकर श्रीनित्यानन्द चन्द्र गौड़देश को चल दिये ॥२२९॥ रामदास-महाशय गदाधरदास-भक्तिरसमय रघुनाथ वैद्य उपाध्याय-कृष्णदास पण्डित-परमेश्वरदास व पुरन्दर पण्डित को विशेष आनन्दोल्लास हुआ ॥ २३०-२३१ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के जितने आत्मीयगण थे उन सभी ने प्रभु के साथ ही गमन किया ॥ २३२ ॥ सब पार्षदों को संग लेकर श्रीनित्यानन्द प्रभु गौड़देश की ओर चल दिये ॥ २३३ ॥ महाशय नित्यानन्द ने मार्ग में चलते-चलते ही सब पार्षदों को प्रेममय कर दिया ॥ २३४ ॥ सबको अत्यन्त आत्म-विस्मृति हो गई और किस देह में कितने भाव होते थे सो उनका अन्त नहीं था ॥ २३५ ॥ प्रथम ही वैष्णवों में अग्रगण्य रामदासजी के शरीर में गोपाल का प्रकाश हुआ ॥ २३६ ॥ रामदासजी बीच मार्ग में त्रिभंग होकर बाह्य ज्ञान को भूलकर तीन पहर तक खड़े रहे ॥ २३७ ॥ गदाधरदासजी को राधिका (गोपिका) भाव हो गया, वे बड़े अट्टहास के साथ बोलते थे "दही लो- कोई दही" ॥ २३८ ॥ महामति रघुनाथ वैद्य ऐसे हो गये मानों मूर्तिमती रेवती महारानी हैं ॥२३९॥ कृष्णदास व परमेश्वरदास दोनों गोपालभाव में सब समय 'है ! है !' शब्द उच्चारन करते रहते थे

एइ मत नित्यानन्द श्रीअनन्तधाम । सभारे दिलेन भाव परम-उद्दाम ।।२४२।।
दण्ड-पथ छाड़ि सभे क्रोश दुइ चारि । जायेन दक्षिण-वामे आपना पासरि ।।२४३।।
कथोक्षणे पथ जिज्ञासेन लोकस्थाने । 'बोल भाइ गङ्गातीरे जाइब केमने ।।२४४।।
लोक बोले हाय-हाय पथ पासरिला । दुइ-प्रहरेर पथ फिरिया आइला ।।२४५।।
लोक वाक्ये फिरिया जायेन यथा पथ । पुन पथ छाड़िया जायेन सेइ मत ।।२४६।।
पुन पथ जिज्ञासा करेन लोकस्थाने । लोक बोले 'पथ रैल दशकोश वामे' ।।२४७।।
पुन हासि सभेइ चलेन पथ यथा । निज देह ना जानेन, पथेर का कथा ।।२४८।।
यत देह धर्म्म-क्षुधा तृष्णा भय दुख । काहारो नाहिक-पाइ परानन्द सुख ।।२४९।।
पथे यत लीला करिलेन नित्यानन्द । के बर्णिब-केवा जाने-सकलि अनन्त ।।२५०।।
हेन मते नित्यानन्द श्रीअनन्त धाम । आइलेन गङ्गातीरे पानीहाटी ग्राम ।।२५१।।
राघवपण्डित गृहे सर्वाद्य आसिया । रहिलेन सकल पार्षदगण लैया ।।२५२।।
परम आनन्द हैला राघव पण्डित । श्रीमकरध्वज-कर गोष्ठीर सहित ।।२५३।।
हेन मते नित्यानन्दे पानी हाटी ग्रामे । रहिलेन सकल-पार्षदगण-सने ।।२५४।।
निरन्तर परानन्दे करेन हुङ्कार । विह्वलता वइ देहे वाह्य नाहि आर ।।२५५।।
नृत्य करिवारे इच्छा हइल अन्तरे । गायक सकल आसि मिलिल सत्वरे ।।२५६।।
सुकृति माधव घोष-कीर्तने तत्पर । तेन कीर्तनिया नाहि पृथिवी भितर ।।२५७।।

।।२४०।। पुरन्दर पण्डित वृक्षों पर चढ़ जाते थे मैं "अङ्गद हूँ" यह कहकर कूद पड़ते थे ।। २४१ ।। इस प्रकार श्रीअनन्तधाम नित्यानन्द प्रभु ने सबको परम उद्दामभाव प्रदान कर दिया ।।२४२।। पगडण्डी छोड़कर सभी अपने आपको भूलकर २-४ कोश दाँये बाँये चले जाते थे ।। २४३ ।। थोड़ी ही देर में कभी लोगों के पास मार्ग पूँछते कि "भाई गङ्गातट को कैसे जावें" ।। २४४ ।। लोगों ने कहा "हाय ! हाय ! मार्ग भूल गये देखो दोपहर का मार्ग फिरकर आ गये हो !" ।। २४५ ।। लोगों के वाक्यों से सीधे मार्ग को फिरकर जाते, परन्तु दुवारा मार्ग छोड़कर उसी प्रकार फिर चलने लगते ।। २४६ ।। मनुष्यों से पुनर्वार मार्ग पूँछा, तब लोगों ने कहा "मार्ग तो दश कोश बाईं ओर को रह गया" ।। २४७ ।। फिर हँसकर सब लोग मार्ग की ओर चल दिये, जिनको अपने देह का ही ज्ञान नहीं है तो मार्ग की क्या बात है ? ।। २४८ ।। शरीर के जितने धर्म हैं-क्षुधा (भूख) प्यास भय दुख आदि वे कुछ भी नहीं थे-सब परानन्द सुख को प्राप्त हो रहे थे ।। २४९ ।। श्रीनित्यानन्दजी ने जितनी लीला की, वे अनन्त हैं उन्हें कौन जाने ? कौन वर्णन करे ? ।। २५० ।। इस प्रकार श्रीअनन्तधाम नित्यानन्द प्रभु गङ्गा के किनारे पर पानी-हाटी नामक ग्राम में आये ।। २५१ ।। सबसे पहिले राघव पण्डित के घर में आकर सब पार्षदों को लेकर ठहरे ।। २५२ ।। श्रीमकरध्वज-कर आदि की गोष्ठी सहित राघव पण्डित बड़े आनन्दित हुए ।। २५३ ।। इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु ने सब पार्षदों के साथ पानी हाटी नामक ग्राम में निवास किया ।। २५४ ।। तथा परानन्द में निरन्तर हुङ्कार करने लगते थे और विह्वलता के अतिरिक्त देह में अन्य वाह्य ज्ञान नहीं था ।। २५५ ।। आपके मन में नाँचने की इच्छा हुई तब सब गायक लोग भी शीघ्र ही आकर इकट्ठे हो गये ।।२५६।।सुकृती माधव घोष कीर्तन में

जाहारे कहेन-वृन्दावनेर गायन । नित्यानन्द स्वरूपेर महा प्रियतम ॥२५८॥
माधवगोविन्द बासुदेव-तिन भाइ । गाइते लागिला, नाचे ईश्वर-निताइ ॥२५६॥
हेन से नाचेन अवधूत महाबल । पद भरे पृथिवी करये टलमल ॥२६०॥
निरवधि 'हरिवलि' करेन हुङ्कार । आछाड़ देखिते लोके लागे चमत्कार ॥२६१॥
जाहारे करेन दृष्टि नाचिते-नाचिते । सेइ प्रेमे ढलिया पड़ेन पृथिवीते ॥२६२॥
परिपूर्ण प्रेमरसमय नित्यानन्द । संसार तारिते करिलेन शुभारम्भ ॥२६३॥
यतेक आछये प्रेमभक्तिर बिकार । सब प्रकाशिया नृत्य करेन अपार ॥२६४॥
कथोक्षणे वसिलेन खट्टार उपरे । आज्ञा हैल अभिषेक करिवार तरे ॥२६५॥
राघवपण्डित-आदि पारिषद्‌गणे । अभिषेक करिते लागिला सेइ क्षणे ॥२६६॥
सहस्र-सहस्र घट आनि गङ्गाजल । नाना गन्धे सुवासित करिया सकल ॥२६७॥
सन्तोषे सभेइ देन श्रीमस्तको परि । चतुर्दिगे सभेइ बोलेन 'हरि-हरि' ॥२६८॥
सभेइ पढ़ेन अभिषेक मन्त्र-गीत । परानन्दे सभेइ हइला आनन्दित ॥२६६॥
अभिषेक कराइया नूतन वसन । पराइया लेपिलेन श्रीअङ्गे चन्दन ॥२७०॥
दिव्य-दिव्य वनमाला तुलसी-सहिते । पीन-वक्ष पूर्ण करिलेन नाना मते ॥२७१॥
तवे दिव्य-खट्टा स्वर्णे करिया भूषित । सम्मुखे आनिञा करिलेन उपनीत ॥२७२॥
खट्टाय वसिला महाप्रभु नित्यानन्द । छत्र धरिलेन शिरे श्रीरावब्रानन्द ॥२७३॥
जयध्वनि करिते लागिला भक्तगण । चतुर्दिगे हैला महा आनन्द-क्रन्दन ॥२७४॥

तत्पर थे—पृथ्वी पर वैसा कीर्त्तनियाँ नहीं था ॥ २५७ ॥ जो वृन्दावन लीलाओं के गवइये कहे जाते थे-वे श्रीनित्यानन्दस्वरूप के,अत्यन्त प्रिय थे ॥ २५८ ॥ माधव, गोविन्द,बासुदेव घोष नामक तीनों भाई गाने लगे और नित्यानन्द प्रभु नाचने लगे ॥ २५६ ॥ सो महाबली अवधूत प्रभु ऐसा नाँचे कि चरणों के विन्यास से पृथ्वी डोलने लगी ॥ २६०॥ निरन्तर हरि २ कहकर हुङ्कार करते थे और पछाड़ों को देखकर तो लोगों का चमत्कार लगता था ॥ २६१ ॥ जिसके ऊपर नाचते २ कृपादृष्टि डालते वे ही प्रेम से ढुलक कर पृथ्वी पर गिर पड़ता था॥ २६२ ॥ प्रेमरस से परिपूर्ण श्रीनित्यानन्दजी ने संसार उद्धार करने का शुभारम्भ कर दिया ॥ २६३ ॥ प्रेमभक्ति के जितने विकार हैं वे सबको प्रकाश करते हुए अपार नृत्य किया ॥ २६४ ॥ कुछ देर में सिंहासन के ऊपर जाकर विराजमान हुए तब अभिषेक करने के लिये भक्तों को आज्ञा हुई ॥ २६५ ॥ सो तत्क्षण राघव पण्डित आदि जितने पार्षद थे, वे सब अभिषेक करने लगे ॥ २६६ ॥ हजारों २ घड़ा गङ्गाजल लाकर अनेक सुगन्धि द्रव्यों से सुवासित किये तथा सब लोग प्रसन्न होकर श्रीमस्तक के ऊपर देने लगे चारों ओर सब लोग "हरि-हरि" उच्चारण कर रहे थे ॥ २६७-२६८ ॥ सब ही अभिषेक के मन्त्र गीत पाठ कर रहे थे तथा सब ही प्रेमानन्द से आनन्दित हो रहे थे॥२६६॥ अभिषेक कराके नये वस्त्र धारण कराये और श्रीअङ्ग में सुगन्धित चन्दन का लेपन किया ॥ २७० ॥ तुलसी सहित दिव्य वन के फूलों की मालाऐं अनेक प्रकार से विशाल वक्षस्थल पर भर दी ॥ २७१ ॥ उसके पीछे दिव्य सिंहासन को सुवर्ण से भूषित करके सामने लाकर उपस्थित किया ॥ २७२ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु ने सिंहासन पर विराजमान हुए-श्री-

'त्राहि-त्राहि' सभेइ बोलेन बाहु तुलि । कारो बाह्य नाहि, सभे महाकुतूहली ॥२७५॥
स्वानु-भवानन्दे प्रभु नित्यानन्दराय । प्रेमदृष्टि-वृष्टि करि सर्वदिगे चाय ॥२७६॥
आज्ञा करिलेन शुन राघवपण्डित । कदम्बेर माला गांथि आनह त्वरित ॥२७७॥
बड़ प्रीति आमार कदम्ब पुष्प प्रोति । कदम्बेर बने नित्य आमार वसति ॥२७८॥
करजोड़ करिया राघवानन्द कहे । 'कदम्ब पुष्पेर योग ए समये नहे' ॥२७९॥
प्रभु बोले बाड़ी गिया चाह भाल-मने । कदाचित् फूटिया वा थाके कोनस्थाने ॥२८०॥
बाड़ीर भितरे गिया चाहेन राघव । विस्मित हइला देखि महा-अनुभव ॥२८१॥
जम्बीरेर वृक्षे सब कदम्बेर फूल । फूटिया आछये अति-परम अतुल ॥२८२॥
कि अपूर्व वर्ण सेवा कि अपूर्व गन्ध । से पुष्प देखिले क्षय याय सर्व बन्ध ॥२८३॥
देखिया कदम्ब पुष्प राघव पण्डित । बाह्य दूरे गेल, हैला महा-आनन्दित ॥२८४॥
आपना सम्बरि माला गांथिया सत्त्वरे । आनिलेन नित्यानन्द प्रभुर गोचरे ॥२८५॥
कदम्बेर माला देखि नित्यानन्दराय । परम सन्तोषे माला दिलेन गलाय ॥२८६॥
कदम्ब मालार गन्धे सकल वैष्णव । विह्वल हइला देखि महा-अनुभव ॥२८७॥
आर महा-आश्चर्य हइल कथोक्षणे । अपूर्व दनार गन्ध पाय सर्व जने ॥२८८॥
दमनक पुष्पेर सुगन्धे मनोहरे । दशदिग व्याप्त हैल सकल मन्दिरे ॥२८९॥
हासि नित्यानन्द बोले आरे भाइ सब । बोल देखि कि गन्धेर पाओ अनुभव ॥२९०॥

राघवानन्द ने उनके मस्तक पर छत्र धारण किया ॥ २७३ ॥ भक्तगण जय जय ध्वनि करने लगे तथा चारों ओर प्रेमानन्द में रोदन करने लगे ॥ २७४ ॥ सब लोग भुजाएं उठाकर त्राहि-त्राहि बोल रहे थे-किसी को बाह्य ज्ञान नहीं था, सभी प्रेममग्न थे ॥ २७५ ॥ श्रीप्रभु नित्यानन्दराय निज अनुभव के आनन्द में प्रेमदृष्टि की वृष्टि करते हुए सब ओर देख रहे थे ॥ २७६ ॥ तथा उनने आज्ञा की हे राघवपण्डित सुनो ! कदम्ब के फूलों की माला गूँथकर शीघ्र ले आओ ॥ २७७ ॥ कदम्ब के फूलों से मेरी बड़ी प्रीति है तथा कदम्ब के वन में ही मेरा नित्य निवास रहता है ॥ २७८ ॥ हाथ जोड़कर राघवानन्द ने कहा "प्रभो कदम्ब के फूलों का योग इस समय में नहीं है ॥ २७९ ॥श्रीनित्यानन्द प्रभु ने आज्ञा की कि घर में जाकर अच्छे प्रकार से देखो कदाचित् किसी स्थान पर खिल रहे ॥ २८० ॥ घर के भीतर जाकर राघवपंडित ढूँढ़ने लगे और विशेष अनुभव किया व बड़े विस्मित हुए ॥ २८१ ॥ जम्भीरी नीबू के वृक्ष में कदम्ब के ही सब फूल अति विशेष रूप से खिल रहे थे ॥ २८२ ॥ कैसा अपूर्व वर्ण था व कैसी अपूर्व सुगन्धि थी उन पुष्पों के देखते ही सब बन्धन नष्ट होते थे ॥ २८३ ॥ राघवपंडित कदम्ब के फूलों को देखकर बड़े आनन्दित हुए तथा बाह्य ज्ञान जाता रहा ॥ २८४ ॥ अपने को सम्हाल कर शीघ्र माला ग्रन्थन की और श्रीनित्यानन्द प्रभु के सम्मुख ले आये ॥ २८५ ॥ श्रीनित्यानन्दराय ने कदम्ब के फूलों की माला देखते ही बड़े सन्तुष्ट हो गले में पहिन ली ॥ २८६ ॥ कदम्ब फूलों की माला की गन्ध से सभी वैष्णव विह्वल हो गये-उन्हें नित्यानन्द-शक्ति का महा अनुभव हुआ ॥ २८७ ॥ और कुछ ही क्षण में दूसरा महा आश्चर्य हुआ कि सब लोगों को अपूर्व दौना मरुआ (दमनक) पुष्प की सुगन्धि आ रही थी ॥२८८॥ दमनक पुष्पों की सुगन्धि मन को हरण करने वाली

करजोड़ करि सभे लागिला कहिते । 'अपूर्व दनार गन्ध पाइ चारिभिते' ॥२९१॥
सभार वचन शुनि नित्यानन्दराय । कहिते लागिला गोप्य परम कृपाय ॥२९२॥
प्रभु बोले शुन सभे परम रहस्य । तोमरा सकल इहा जानिवा अवश्य ॥२९३॥
चैतन्य गोसाञि आजि शुनिते कीर्तन । नीलाचल हैते करिलेन आगमन ॥२९४॥
सर्वाङ्गे परिया दिव्य दमनक-माला । एक वृक्षे अवलम्ब करिया रहिला ॥२९५॥
सेइ श्रीअङ्गेर दिव्य-दमनक-गन्धे । चतुर्दिगे पूर्ण हइ आछये आनन्दे ॥२९६॥
तोमा सभाकार नृत्य कीर्तन देखिते । आपने आइसे प्रभु नीलाचल हैते ॥२९७॥
एतेके तोमरा सर्व कार्य परि हरि । निरवधि 'कृष्ण' गाओ आपना पासरि ॥२९८॥
निरवधि श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र-यशे । सभार शरीर पूर्ण हउ प्रेमरसे ॥२९९॥
एतवलि 'हरि' बलि करये हुङ्कार । सर्वदिगे कृष्ण प्रेम करिला विस्तार ॥३००॥
नित्यानन्दस्वरूपेर प्रेम दृष्टिपाते । सभार हइल आत्म विस्मृति देहेते ॥३०१॥
शुन शुन आरे भाइ नित्यानन्द शक्ति । ये रूपे दिलेन सर्व जगतेरे भक्ति ॥३०२॥
ये भक्ति गोपिकागणेर कहे भागवते । नित्यानन्द हैते ताहा पाइल जगते ॥३०३॥
नित्यानन्द बसिया आछेन सिंहासने । सम्मुखे करये नृत्य पारिषद गणे ॥३०४॥
केहो गिया वृक्षेर उपर-डाले चढ़े । पाते-पाते बेड़ाय, तथापि नाहि पड़े ॥३०५॥
केहो-केहो प्रेम-सुखे हुङ्कार करिया । वृक्षेर उपरे थाकि पड़े लाफ दिया ॥३०६॥

थी—सुगन्धि से मन्दिर की दशों दिशाऐं व्याप्त हो रही थीं ॥ २८९ ॥ श्रीनित्यानन्दजी ने हँसकर कहा कि "हे भाइयो बताओ किस गन्ध का अनुभव हो रहा है ? ॥ २९० ॥ सब लोग हाथ जोड़कर कहने लगे कि चारों ओर से अपूर्व दमनक पुष्प की सुगन्धि प्राप्त हो रही है ॥ २९१ ॥ श्रीनित्यानन्दराय सबके वचन सुनकर बड़ी कृपा करके गोपनीय प्रसंग कहने लगे ॥ २९२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा "सब लोग इस गुप्त रहस्य को सुनो, तुम सबको यह अवश्य जानना चाहिये॥२९३॥आज श्रीचैतन्य प्रभु ने कीर्तन सुनने के लिये नीलाचल से आगमन किया है ॥ २९४ ॥ सब अङ्ग में दिव्य दमनक पुष्पों की माला पहिनकर एक वृक्ष को अवलम्बन करके विराजमान रहे ॥ २९५ ॥ उन्हीं के श्रीअङ्ग के दोने के फूलों की दिव्य सुगन्धि चारों ओर आनन्द से पूर्ण हो रही है ॥ २९६ ॥ तुम सब का नृत्य कीर्तन देखने के लिये ही श्रीप्रभु गौरचन्द्र स्वयं नीलाचल से आये थे ॥ २९७ ॥ इसलिये तुम लोग सब काम छोड़कर व अपने आपको भुलाकर निरन्तर कृष्ण नाम व गुणगान करो ॥ २९८ ॥ श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र यश में प्रेमरस से सबके शरीर निरन्तर पूर्ण रहें ॥ २९९ ॥ इतना कहकर हरि-हरि बोलते हुए हुङ्कार करने लगे तथा सब दिशाओं में कृष्णप्रेम का विस्तार कर दिया ॥ ३०० ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के प्रेम भरी दृष्टिपात से सबको अपनी २ देह की स्मृति (याद) नहीं रही ॥ ३०१ ॥ हे भाइयो सुनो ! श्रीनित्यानन्दजी की शक्ति को मन लगाकर सुनो जिस तरह से उनने संसार को भक्ति प्रदान की थी ॥ ३०२ ॥ श्रीमद्भागवत में जिसको श्रीगोपीगण की भक्ति कहा है वही संसार में श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा मिली ॥३०३॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु सिंहासन पर विराजमान थे और सामने पार्षदगण नृत्य कर रहे थे ॥३०४॥ कोई वृक्षों की डालियों पर चढ़कर पत्ते-पत्ते पर घूमते परन्तु गिरते नहीं

केहो वा हुङ्कार करि वृक्षमूल धरि । उपाड़िया फेले वृक्ष बलि 'हरि हरि' ॥३०७॥
केह वा गुवाक वने जाय रड़ दिया । गाछ-पांच-सात गुया एकत्र करिया ॥३०८॥
हेन से देहेते जन्मियाछे प्रेमबल । तृण प्राय उपाड़िया फेलाय सकल ॥३०९॥
अश्रु, कम्प, स्तम्भ, घर्म्म, पुलक, हुङ्कार । स्वरभङ्ग, वैवर्ण्य, गर्जन, सिंहसार ॥३१०॥
श्रीआनन्द मूर्च्छा-आदि यत प्रेमभाव । भागवते कहे यत कृष्ण-अनुराग ॥३११॥
सभार शरीरे पूर्ण हइल सकल । हेन नित्यानन्दस्वरूपेर प्रेम-बल ॥३१२॥
ये दिगे देखेन नित्यानन्द महाशय । सेइ-दिगे महा प्रेमभक्ति वृष्टि हय ॥३१३॥
याहारे चा'हेन, से-इ प्रेमे मूर्च्छा पाय । वस्त्र ना सम्वरे, भूमि पड़ि गड़ि याय ॥३१४॥
नित्यानन्द स्वरूपेरे धरिवारे याय । हासे' नित्यानन्द प्रभु बसिया खट्टाय ॥३१५॥
यत पारिषद नित्यानन्देर प्रधान । सभारे हइल सर्व-शक्ति-अधिष्ठान ॥३१६॥
सवज्ञता वाक्यसिद्ध हइल सभार । सभे हइलेन येन कन्दर्प-आकार ॥३१७॥
सभे जारे परश करेन हस्त दिया । से-इ हय विह्वल सकल पासरिया ॥३१८॥
एइमत पानी हाटी ग्रामे तिन-मास । करे नित्यानन्द प्रभु भक्तिर विलास ॥३१९॥
तिन-मास कारो वाह्य नाहिक शरीरे । देह-धर्म तिलार्द्धेको काहारो ना स्फुरे । ३२०॥
तिन-मास केहो नाहि करिल आहार । सबे प्रेम सुखे नृत्य बइ नाहि आर ॥३२१॥
पानी हाटी ग्रामे यत हैल प्रेमसुख । चारिवेदे वर्णिवेन से सब कौतुक ॥३२२॥

थे, यह अद्भुत प्रेमबल था ॥३०५॥ कोई-कोई प्रेमसुख से हुङ्कार करके वृक्ष के ऊपर से कूद पड़ते हैं ॥३०६॥ कोई हुङ्कार करके वृक्ष की जड़ पकड़कर उखाड़ लेते और "हरि-हरि" कहते हुए फेंक देते थे ॥ ३०७ ॥ कोई कोई सुपारी के वन में दौड़कर जाते और पाँच-सात सुपारी वृक्षों को इकट्ठा करके सबको एक साथ तिनके की तरह उखाड़ कर फेंक रहे थे उनके शरीर में ऐसा प्रेमबल आ गया था ॥३०८-३॥ आँसू, कम्प, जड़ता, घाम, पुलक, हुंकार, स्वरभंग, वैवर्ण्य, सिंह समान गर्जन व आनन्द में मूर्च्छा होना आदि प्रेम के जितने भाव भागवत में कहे हैं वे सब कृष्ण अनुराग में एक ही साथ सबके शरीर में पूर्णरूप से उदय हुए थे, श्री-नित्यानन्द स्वरूप के प्रेम में इस प्रकार का बल था ॥ ३१० से ३१२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु जिस ओर देखते उसी ओर विशेष प्रेम-भक्ति की वर्षा हो जाती थी ॥ ३१३ ॥ जिनकी ओर देखते वही प्रेम में मूर्च्छित हो जाता वस्त्रों की सम्हाल नहीं रहती और पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाता था ॥ ३१४ ॥ (जब उठकर) नित्या-नन्दस्वरूप को पकड़ने के लिये जाते तो नित्यानन्द प्रभु सिंहासन पर बैठे हुए हँसते थे ॥३१५॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के जितने प्रधान पार्षद थे उन सब में सब शक्तियों का अधिष्ठान हो गया ॥ ३१६ ॥ सबको सर्वज्ञता व वाक्य सिद्ध शक्ति हो गई तथा जैसे कामदेव के आकार के हो गये ॥ ३१७ ॥ वे सब लोग जिसको हाथ से स्पर्श कर देते वही सब कुछ भूलकर विह्वल हो जाता था ॥ ३१८ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु ने पानी-हाटी ग्राम में तीन महीना रहकर भक्ति का विलास किया ॥ ३१९ ॥ तीन मास तक किसी के शरीर में वाह्य ज्ञान नहीं रहा और तिलमात्र भी देह धर्म किसी को स्फुरण नहीं हुआ ॥ ३२० ॥ किसी ने तीन महीने तक आहार नहीं किया केवल प्रेम-सुख से नृत्य के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं था ॥ ३२१ ॥ पानी हाटी

एको दण्डे नित्यानन्द करिलेन यत। ताहा वर्णिवार शक्ति आछे कार कत ॥३२३॥
क्षणे क्षणे आपने करेन नृत्य रङ्ग। चतुर्दिगे लइ सब पारिषद सङ्ग ॥३२४॥
कखनो वा आपने वसिया वीरासने। नाचायेन सकल सेवक जने जने ॥३२५॥
एको सेवकेर नृत्ये हेन रंग हय। चतुर्दिगे देखि येन प्रेमवन्या मय ॥३२६॥
महाझड़े पड़े येन कदलक-वन। एइमत प्रेमसुखे पड़े सर्वजन ॥३२७॥
आपने ये हेन महाप्रभु नित्यानन्द। सेइमत करिलेन सर्वभक्त वृन्द ॥३२८॥
निरवधि श्रीकृष्ण चैतन्य-सङ्कीर्तन। करायेन करेन लइया सर्व-गण ॥३२९॥
हेनसे लागिला प्रेम प्रकाश करिते। से-इ हय विह्वल ये आइसे देखिते ॥३३०॥
ये सेवक यखन ये इच्छा करे मने। से-इ आसि उपसन्न हय सेइ क्षणे ॥३३१॥
एइमत परानन्दे प्रेम सुखरसे। क्षण हेन केहो ना जानिल तिन-मासे ॥३३२॥
तवे महाप्रभु नित्यानन्द कथोदिने। अलङ्कार परिते हइल इच्छा मने ॥३३३॥
इच्छामात्र सर्व-अलंकार सेइक्षणे। उपसन्न आसिया हइल विद्यमाने ॥३३४॥
सुवर्ण रजत मरकत मनोहर। नानाविध बहुमूल्य कतेक प्रस्तर ॥३३५॥
मणि सुप्रवाल पट्टवास मुक्ताहार। सुकृति सकले दिया करे नमस्कार ॥३३६॥
कथो ना निर्मित कथो करिया निर्माण। परिलेन अलंकार-येन इच्छा तान ॥३३७॥
दुइ हस्ते सुवर्णेर अंगद वलय। पुष्ट करि परिलेन आत्म-इच्छामय ॥३३८॥
सुवर्ण मुद्रिका रत्ने करिया खिचन। दश-श्रीअंगुले शोभाकरे विभूषण ॥३३९॥

ग्राम में जितना प्रेम सुखमय कौतुक हुआ उसे चारों वेद वर्णन करेंगे॥३२२॥एक २ दण्ड में श्रीनित्यानन्दजी ने जितने प्रेममय कौतुक किये थे उन्हें वर्णन करने की किसमें सामर्थ्य है ॥ ३२३ ॥ क्षण २ में सब पापदों को साथ लेकर चारों ओर आप नृत्यरंग करते फिरते थे ॥ ३२४ ॥ कभी आप वीरासन से बैठ जाते और प्रत्येक सेवक को नृत्य कराते थे ॥ ३२५ ॥ एक ही सेवक के नाच में ऐसा रङ्ग आता जैसे चारों ओर से प्रेम की बाढ़ हो ॥ ३२६ ॥ जैसे भारी झड़ लगने से केले का वन गिर पड़ता है इसी तरह प्रेमसुख से सब लोग गिर पड़े ॥ ३२७ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु जैसे थे उसी प्रकार के सब भक्तवृन्द कर दिये ॥ ३२८ ॥ सब भक्तों को लेकर निरन्तर श्रीकृष्णचैतन्य नाम का संकीर्तन करते व कराते थे ॥ ३२९ ॥ प्रेम का ऐसा प्रकाश करने लगे कि जो दर्शन के लिये आता वही विह्वल हो जाता था ॥ ३३० ॥ उनके सेवक जिस समय मन में जो भी इच्छा करते उसी क्षण वही वस्तु आकर उपस्थित हो जाती थी ॥ ३३१ ॥ इस प्रकार परम आनन्दमय प्रेम-सुख में सब ने तीन महीने का समय एक क्षण के समान ही माना ॥ ३३२ ॥ तब कुछ दिन पीछे श्रीनित्यानन्द महाप्रभु के मन में अलंकार पहरने की इच्छा हुई ॥ ३३३ ॥ इच्छा होते ही उसी क्षण सब अलंकार सामने उपस्थित हो गये ॥ ३३४ ॥ अनेकन प्रकार के बहुमूल्य वाले अनेक ही मनोहर अलंकार सोना, चाँदी, मरकतमणि, सुन्दर मूँगा, मोतियों के हार रेशमी वस्त्र आदि मनोहर अलंकारों को पुण्यशील जन दे देकर नमस्कार कर रहे थे ॥ ३३५-३३६ ॥ अनेक बने हुए व अनेक अपनी इच्छानुसार बनवाकर अलंकार धारण किये ॥ ३३७ ॥ मोटे-मोटे सोने के अंगद व वलय दोनों हाथों में अपनी इच्छानुसार पहिरे

कण्ठे शोभाकरे बहुविध दिव्यहार । मणि-मुक्ता प्रवालादि-यत सर्वसार ॥३४०॥
रुद्राक्ष विराल अक्ष सुवर्णरजते । वान्धिया धरिला कण्ठे महेशेर प्रीते ॥३४१॥
मुक्ता-कसा-सुवर्ण करिया सुरचन । दुइ श्रुतिमूले शोभे परम शोभन ॥३४२॥
पादपद्मे रजतनूपुर विलक्षण । तदुपरि मल्ल शोभे जगतमोहन ॥३४३॥
शुक्ल पट्ट नील पीत—बहुविध वास । अपूर्व शोभये परिधानेर विलास ॥३४४॥
मालती मल्लिका जूथी चम्पकेर माला । श्रीवक्षे करये दोल-आन्दोलन-खेला ॥३४५॥
गोरोचना-सहित चन्दन दिव्यगन्धे । विचित्र करिया लेपियाछेन श्रीअङ्गे ॥३४६॥
श्रीमस्तके शोभित विविध पट्टवास । तदुपरि नानावर्ण-माल्येर विलास ॥३४७॥
प्रसन्न श्रीमुख कोटि शशधर जिनि । हासिया करेन निरवधि हरिध्वनि ॥३४८॥
ये दिगे चा'हेन दुइकमल-नयने । सेइ-दिग प्रेमरसे भासे सेइक्षणे ॥३४९॥
रजतेर प्राय लौहदण्ड सुशोभन । दुइ दिगे करि तथि सुवर्ण वन्धन ॥३५०॥
निरवधि सेइ लौहदण्ड शोभे करे । मूषल धरिला येन प्रभु हलधरे ॥३५१॥
पारिषदो सब धरिलेन अलंकार । अंगद, वलय, मल्ल, नूपुर, सुहार ॥३५२॥
शिङ्गा, वेत्र, वंशी, छांदड़ोड़ि, गुंजामाला । सभे धरिलेन गोपालेर अंश-कला ॥३५३॥
एइमत नित्यानन्द स्वानुभावरङ्गे । विहरेन सकल पार्षद करिसङ्गे ॥३५४॥
तबे प्रभु सकल पार्षदगण मेलि । भक्त-गृहे गृहे करे पर्यटन केलि ॥३५५॥

॥ ३३८ ॥ रत्नों से जटित सोने की अँगूठियाँ दशों अँगुलियों में शोभा पा रही थीं ॥ ३३९ ॥ मणिमुक्ता व प्रवालादि जो सार वस्तु हैं उनके अनेक प्रकार के दिव्य हार कण्ठ में शोभा पा रहे थे॥३४०॥शिवजी की प्रसन्नता के लिये रुद्राक्ष व विडालाक्ष सोने व चाँदी में मढ़वाकर के कण्ठ में धारण किये थे ॥३४१॥मोतियों से जड़ित सुवर्ण के कुण्डल रचना कराके दोनों कानों में पहिने हुए थे जो बड़ी सुन्दर शोभा पा रहे थे॥३४२॥ चरण-कमलों में विलक्षण चाँदी के नूपुर थे, उनके ऊपर जगत् को मोहने वाले मल्लगंडा शोभा दे रहे थे ॥३४३॥ सफेद, नील, पीत आदि अनेक प्रकार के रेशमी वस्त्रों के अपूर्व विलासमय परिधान शोभा दे रहे थे ॥ ३४४ ॥ मालती, मल्लिका, जुही व चम्पा के फूलों की मालायें श्रीवक्षस्थल पर झूल-झूलकर झूम रही थी ॥ ३४५ ॥ गोरोचन मिश्रित चन्दन व दिव्य गन्धादि विचित्र रूप से श्रीअङ्ग में लेपन किये हुए थे ॥ ३४६ ॥ विविध भाँति के रेशमी वस्त्र श्रीमस्तक पर शोभित हो रहे थे उनके ऊपर अनेक वर्ण की मालाऐं झूम रहा थीं ॥ ३४७ ॥ करोड़ों चन्द्रमाओं को जीतने वाले प्रसन्न श्रीमुख से हँसते हुए निरन्तर हरिध्वनि करते रहते थे ॥ ३४८ ॥ दोनों कमल नेत्रों से जिस दिशा को देखते उसी ओर के मनुष्य तत्क्षण प्रेमरस में डूब जाते थे॥३४९॥चाँदी के तुल्य एक अति सुन्दर लोहे के दण्ड को दोनों ओर से सुवर्ण से मंडित कराकर धारण करते थे वही हाथ में निरन्तर शोभित रहता था, जैसे प्रभु बलरामजी मूषल को धारण करते थे॥३५०-३५१॥ सब पारिषदों ने भी अङ्गद, वलय, नूपुर, मल्लगन्डा, सुन्दर हार आदि अलंकार धारण किये ॥ ३५२ ॥ गोपाल के अंश व कलारूप सब ही ने सींग, वेत, वंशी, लोभनीय छांद डोरी व गुंजा माला आदि धारण की ॥ ३५३ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु निजानन्द भाव में सब पारिषदों के साथ विहार करते थे॥३५४॥

जाह्नवीर दुइ कूले यत आछे ग्राम । सर्वत्र फिरेन नित्यानन्द ज्योतिर्धाम ॥३५६॥
दरशन-मात्र सर्व्वजीव मुग्ध हय । नाम तनु दुइ-नित्यानन्द रसमय ॥३५७॥
पाषण्डीओ देखिलेइ मात्र करे स्तुति । सर्व्वस्व दिवारे सेइक्षणे लय मति ॥३५८॥
नित्यानन्दस्वरूपेर शरीर मधुर । सभारेइ कृपादृष्टि करेन प्रचुर ॥३५९॥
कि भोजने कि शयने किवा पर्य्यटने । क्षणेको ना जाय व्यर्थ्य सङ्कीर्तन विने ॥३६०॥
येखाने करेन नृत्य कृष्ण सङ्कीर्तन । तथाय विह्वल हय शतशत जन ॥३६१॥
गृहस्थेर शिशु सब किछुइ ना जाने । ताहाराओ महा-महा-वृक्ष धरि टाने ॥३६२॥
हुङ्कार करिया वृक्ष फेले उपाड़िया । 'मुञिरे गोपाल' बलि वेड़ाय धाइया ॥३६३॥
हेन से सामर्थ्य एको शिशुर शरीरे । शत जने मिलियाओ धरिते ना पारे॥३६४॥
श्रीकृष्णचैतन्य जय नित्यानन्द बलि । सिंहनाद करे शिशु हइ कुतूहली ॥३६५॥
एइ मत नित्यानन्द-बालक जीवन । विह्वल करिते लागिलेन शिशुगण ॥३६६॥
मासेकेओ एको शिशु ना करे आहार । देखिते लोकेर चित्ते लागे चमत्कार ॥३६७॥
हइलेन विह्वल सकल भक्तवृन्द । सभार रक्षक हइलेन नित्यानन्द ॥३६८॥
पुत्र प्राय करि प्रभु समारे धरिया । करायेन भोजन आपने हस्त दिया ॥३६९॥
कारेओ वा बान्धिया राखेन निज-पाशे । मारेन बान्धेन तभू अट्टअट्ट हासे ॥३७०॥
एक दिन गदाधरदासेर मन्दिरे । आइलेन, तान प्रीति करिवार तरे ॥३७१॥

तदनन्तर श्रीनित्यानन्द व सब पार्षदों ने मिलकर भक्तों के घर-घर में पर्यटन करने का खेल किया ॥ ३५५ ॥ ज्योतिर्म्मय श्रीनित्यानन्द प्रभु ने गङ्गा के दोनों किनारों पर जितने ग्राम थे उन सब में भ्रमण किया ॥३५६॥ दर्शनमात्र से ही सब जीव मुग्ध हो जाते थे कारण कि आपके नाम व तनु दोनों ही नित्यानन्द रसमय हैं ॥ ३५७ ॥ पाखंडी मात्र केवल दर्शन करते ही स्तुति करने तथा उसी क्षण सर्वस्व देने की बुद्धि हो जाती थी ॥ ३५८ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप का शरीर मधुर था वे सब ही पर प्रचुर कृपादृष्टि करते थे ॥३५९॥ क्या भोजन, क्या शयन, क्या पर्यटन में संकीर्तन के बिना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता था ॥३६०॥ जिस स्थान में कृष्ण नाम सङ्कीर्तन व नृत्य करते उस स्थान में शत २ जन विह्वल हो जाते थे ॥ ३६१ ॥ गृहस्थियों के जो शिशु कुछ नहीं जानते वे भी बड़े वृक्षों को पकड़कर खींचते थे ॥ ३६२ ॥ तथा वृक्षों को उखाड़कर फेंकते और कहते कि मैं ही गोपाल हूँ ऐसे कहते हुए दौड़े २ फिरते थे ॥ ३६३ ॥ एक २ शिशु के शरीर में ऐसी सामर्थ्य हो रही थी, यदि सौ जने मिलकर पकड़े तो पकड़ नहीं पाते ॥३६४॥ शिशुगण जय श्रीकृष्णचैतन्य जय श्रीनित्यानन्द ऐसा कुतूहल पूर्वक जय बोलकर सिंहनाद करते थे ॥३६५॥ इस प्रकार बालकों के जीवन-स्वरूप नित्यानन्द प्रभु-शिशुगणों को विह्वल करने लगे ॥ ३६६ ॥ एक भी शिशु ने एक महीना भर आहार नहीं किया था यह देखकर मनुष्यों को चमत्कार लगता था ॥ ३६७ ॥ समस्त भक्तवृन्द विह्वल होगये, श्री-नित्यानन्द प्रभु ही सबके रक्षक थे ॥ ३६८ ॥ नित्यानन्द प्रभु ने सबको पकड़कर पुत्र की भाँति अपने हाथ से भोजन कराया ॥ ३६९ ॥ किसी २ को बाँधकर अपने पास में रखते, किसी को मारते अथवा बाँधते तो भी वे अट्ट २ हँसते थे ॥३७०॥ एक दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु, गदाधरदास के मन्दिर में उनको प्रसन्न करने

गोपीभावे गदाधरदास महाशय । हइया आछेन अति परानन्दमय ॥३७२॥
मस्तके करिया गङ्गाजलेर कलस । निरवधि डाकेन 'के निवेक गो-रस' ॥३७३॥
श्रीबालगोपाल मूर्ति तान देवालय । आछेन परम लावण्येर समुच्चय ॥३७४॥
देखि बालगोपालेर मूर्ति मनोहर । प्रीते नित्यानन्द लैला वक्षेर उपर ॥३७५॥
अनन्त हृदये देखि श्रीबालगोपाल । सर्वगणे हरिध्वनि करेन विशाल ॥३७६॥
हुङ्कार करिया नित्यानन्द-मल्ल-राय । करिते लागिला नृत्य गोपाल-लीलाय ॥३७७॥
दानखण्ड गायेन माधवानन्द घोष । शुनि अवधूतसिंह परम सन्तोष ॥३७८॥
भाग्यवन्त माधवेर हेन दिव्य-ध्वनि । शुनिते आविष्ट हय अवधूत मणि ॥३७९॥
सुकृति श्रीगदाधरदास करि सङ्गे । दानखण्ड नृत्य प्रभु करे निज रङ्गे ॥३८०॥
गोपीभावे वाह्य नाहि गदाधरदासे । निरवधि आपनारे 'गोपी' हेन वासे ॥३८१॥
दानखण्ड लीला शुनि नित्यानन्दराय । ये नृत्य करेन, ताहा वर्णन ना जाय ॥३८२॥
प्रेम भक्ति विकारेर यत आछे नाम । सब प्रकाशिया नृत्य करे अनुपाम ॥३८३॥
विद्युतेर प्राय नृत्य गतिर भङ्गिमा । किबा से अद्भुत भुज चालन-महिमा ॥३८४॥
किबा से नयन भङ्गी, कि सुन्दर हास । किबा से अद्भुत शिर-कम्पन-विलास ॥३८५॥
एकत्र करिया दुइ चरण सुन्दर । किबा जोड़े-जोड़े लाफ देन मनोहर ॥३८६॥
ये-दिगे चाहेन नित्यानन्द प्रेमरसे । सेइ-दिगे स्त्री-पुरुषे कृष्ण सुखे भासे ॥३८७॥
हेन से करेन कृपादृष्टि अतिशय । परानन्दे देह-स्मृति कारो ना थाकय ॥३८८॥

के निमित्त आये ॥ ३७१ ॥ महाशय गदाधरदासजी गोपीभाव में अत्यन्त परम आनन्दमय हो रहे थे॥३७२॥ मस्तक पर गंगाजल का कलश लेकर निरवधि चिल्लाते रहते "कोई गोरस लो, गोरस लो" ॥ ३७३ ॥ उनके देवालय में परम लावण्य राशि श्रीबालगोपाल की मूर्ति थी ॥ ३७४ ॥ बालगोपाल की मनोहर मूर्ति को देखकर श्रीनित्यानन्द ने प्रसन्नतापूर्वक अपने वक्षस्थल पर ले ली ॥ ३७५ ॥ श्रीबालगोपाल को अनन्तदेव के हृदय पर देखकर सब भक्तों ने विशाल रूप से हरिध्वनि की ॥ ३७६ ॥ मल्लों के राजा श्रीनित्यानन्द प्रभु हुङ्कार करके गोपाल लीला में नृत्य करने लगे ॥३७७॥ माधवानन्द घोष ने दान लीला का गान किया जिसे सुनकर अवधूत सिंह (नित्यानन्द) बड़े सन्तुष्ट हुए ॥ ३७८ ॥ भाग्यवान माधव घोष की ऐसी दिव्यध्वनि थी जिसे सुनते ही अवधूत शिरोमणि आविष्ट हो जाते थे ॥३७९॥ पुण्यवान श्रीगदाधरदास को संग लेकर श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने आनन्द में दानखण्डोचित नृत्य करने लगे ॥ ३८० ॥ गदाधरदास को गोपीभाव में वाह्य ज्ञान नहीं था वे निरन्तर ही गोपीभाव में रहते थे ॥ ३८१ ॥ श्रीनित्यानन्दराय ने दानखण्ड लीला सुनकर जो नृत्य किया उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३८२ ॥ प्रेम-भक्ति के जितने विकार हैं उन सबको प्रकाश करके अनुपम नृत्य किया ॥ ३८३ ॥ नृत्य गीत की भङ्गिमा बिजली के तुल्य थी उसमें भुजा सञ्चाल की महिमा भी बड़ी अद्भुत थी ॥ ३८४ ॥ कैसी अद्भुत नेत्र भङ्गी थी; कैसा सुन्दर हास था तथा कैसा अद्भुत शिर का चालन-विलास था ॥ ३८५ ॥ दोनों सुन्दर चरणों को इकट्ठा करके कैसे जोर-जोर से मनोहर उछाल ले रहे थे ॥ ३८६ ॥ प्रेमरस भरी दृष्टि से श्रीनित्यानन्द प्रभु जिस ओर देखते उसी ओर के

ये भक्ति वाञ्छेन योगीन्द्रादि-मुनिगणे । नित्यानन्दप्रसादे ता भुंजे ये-ते-जने ।।३८९।।
हस्ति सम जन ना खाइले तिन दिन । चलिते ना पारे, देह हय अति क्षीण ।।३९०।।
एक मास एको शिशु ना करे आहार । तथापिह सिंह प्राय सर्व व्यवहार ।।३९१।।
हेन शक्ति प्रकाशेन नित्यानन्दराय । तथापि ना बूझे केहो चैतन्य मायाय ।।३९२।।
एइ मत कथो दिन प्रेमानन्द रसे । गदाधरदासेर मन्दिरे प्रभु बसे ।।३९३।।
वाह्य नाहि गदाधरदासेर शरीरे । निरवधि 'हरिबोल' बोलाय सभारे ।।३९४।।
सेइ ग्रामे काजी आछे परम दुर्वार । कीर्तनेर प्रति द्वेष करये अपार ।।३९५।।
परानन्दे मत्त गदाधर महाशय । निशा भागे गेला सेइ काजीर आलय ।।३९६।।
ये काजीर भये लोक पलाय अन्तरे । निर्भये चलिला निशा भागे तार घरे ।।३९७।।
निरवधि हरि-ध्वनि करिते करिते । प्रविष्ट हइला गिया काजीर बाड़ीते ।।३९८।।
देखे मात्र रहिया काजीर सर्व-गणे । काहारो बलिते किछु ना आइसे वदने ।।३९९।।
गदाधर बोले 'अरे काजी वेटा कोथा । झाट 'कृष्ण' बोल, नहे छिण्डों एइ माथा' ।।४००।।
अग्नि-हेन क्रोधे काजी हइल बाहिर । गदाधरदास देखि मात्र हैल स्थिर ।।४०१।।
काजी बोले गदाधर तुमि केने एथा । गदाधर बोलेन आछये किछु कथा ।।४०२।।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द प्रभु अवतरि । जगतेर मुखे बोलाइला 'हरि-हरि' ।।४०३।।
सबे तुमि मात्र नाहि बोल हरिनाम । ताहा बोलाइते आइलाङ तोमा स्थान ।।४०४।।

स्त्री-पुरुष कृष्ण सुख में डूब जाते थे ।। ३८७ ।। उनने ऐसी अतिशय कृपादृष्टि की जिसके कारण किसी को भी परानन्द में अपनी देह की सुधि नहीं रही ।।३८८।। जिस भक्ति की बांछा योगीन्द्र आदि मुनिगण करते हैं वही श्रीनित्यानन्द के अनुग्रह से सर्व साधारण जन भोग रहे थे ।। ३८९ ।। तीन दिन तक न खाने से हाथी के समान मनुष्य भी नहीं चल पाता है तथा देह अत्यन्त क्षीण हो जाती है ।। ३९० ।। एक मास तक किसी शिशु ने भी आहार नहीं किया तो भी उनके सभी व्यवहार सिंह के बल के समान होते रहे ।।३९१।। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने ऐसी शक्ति का प्रकाश किया तथापि श्रीचैतन्य की माया से कोई भी समझ नहीं सका ।। ३९२ ।। इस प्रकार कुछ दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रेमानन्द रस में गदाधरदास के घर में रहे ।।३९३।। गदाधरदास के शरीर में वाह्य ज्ञान नहीं था तथा सब ही से निरन्तर "हरि बोल" इस प्रकार कहलाते रहते थे ।। ३९४ ।। उसी ग्राम में एक बड़ा दुष्ट काजी रहता था वह कीर्तन के प्रति अपार द्वेष करता था ।। ३९५ ।। महाशय गदाधरदासजी तो प्रेमानन्द में मस्त रहते सो वे एक रात्रि को उसी काजी के घर गये ।। ३९६ ।। जिस काजी के भय से मनुष्य अदृश्य होकर भाग जाते थे उसी के घर में रात को चले गये ।।३९७।। निरन्तर हरिध्वनि करते २ काजी के घर में गदाधरदासजी प्रविष्ट हो गये ।। ३९८ ।। काजी के सब लोग केवल देखते ही रह गये और किसी के मुख से कोई शब्द तक न निकला ।।३९९।। गदाधरदास ने कहा "अरे काजी बेटा कहाँ है शीघ्र कृष्ण २ बोल ! नहीं तेरा मस्तक के छेदन कर दूँगा" ।।४००।। अग्नि के तुल्य क्रोध से जलता हुआ काजी बाहिर आया, परन्तु गदाधरदास के देखते मात्र ही स्थिर हो गया ।। ४०१ ।। काजी ने कहा "हे गदाधर तुम यहाँ क्यों आये" तब गदाधर ने कहा कुछ बात है ।। ४०२ ।। श्रीचैतन्यचन्द्र व नित्यानन्द

परम-मङ्गल हरि-नाम बोल तुमि । तोमार सकल पाप उद्धारिव आमि ॥४०५॥
यद्यपिह काजी महा-हिंसक-चरित । तथापि ना बोले किछु, हइल स्तम्भित ॥४०६॥
हासि बोले काजी शुन दास-गदाधर । कालि बलिबाङ 'हरि' आजि जाह घर ॥४०७॥
हरि नाम मात्र शुनिलेन तार मुखे । गदाधरदास पूर्ण हैला प्रेम सुखे ॥४०८॥
गदाधरदास बोले आर कालि केने । एइ त बलिला 'हरि' आपन बदने ॥४०९॥
आर तोर अमङ्गल नाहि कोन क्षणे । यखने करिला हरिनामेर ग्रहणे ॥४१०॥
एत बलि परम-उन्मादि-गदाधर । हाथे तालि दिया नृत्य करे बहुतर ॥४११॥
कथोक्षणे आइलेन आपन मन्दिरे । नित्यानन्द-अधिष्ठान जाहार शरीरे ॥४१२॥
एइ मत गदाधरदासेर महिमा । चैतन्य-पार्षद-मध्ये जाहार गणना ॥४१३॥
ये काजीर बातास ना लय साधु जने । पाइलेइ मात्र जाति लय सेइक्षणे ॥४१४॥
हेन काजी दुर्वार देखिले जाति लय । हेन जने कृपादृष्टि कैला महाशय ॥४१५॥
हेन जन पासरिल सर्व हिंसा धर्म्म । इहारे से बलि कृष्ण आवेशेर कर्म्म ॥४१६॥
सत्य कृष्णभाव हय जाहार शरीरे । अग्नि-सर्प व्याघ्रे ओ लंघिते नारे तारे ॥४१७॥
ब्रह्मादिरो अभीष्ट ये सब कृष्ण भाव । गोपीगणे व्यक्त ये सकल अनुराग ॥४१८॥
इङ्गिते से सब भाव नित्यानन्दराय । दिलेन सकल प्रियगणेरे कृपाय ॥४१९॥
भज भाइ हेन नित्यानन्देर चरण । जाहार प्रसादे हय चैतन्य-शरण ॥४२०॥

प्रभु ने अवतार लेकर जगत् के मुख से हरि २ बुलवा रहे हैं ॥ ४०३ ॥ केवल मात्र तुमने ही हरिनाम नहीं बोला है वही बुलवाने को तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ४०४ ॥ तुम परम मंगलमय हरि नाम बोलो मैं तुमको सब पापों से उद्धार कर दूँगा॥४०५॥यद्यपि काजी बड़ा हिंसक चरित्र वाला था तथापि उसने कुछ नहीं कहा और स्तम्भित हो रहा ॥ ४०६ ॥ काजी ने हँसकर कहा "हे गदाधरदास सुनो आज तो तुम घर को जाओ मैं कल हरिनाम लूँगा ॥ ४०७ ॥ उसके मुख से हरिनाम मात्र सुनते ही गदाधरदासजी प्रेमानन्द सुख में पूर्ण हो गये ॥४०८॥ गदाधरदास ने कहा "कल की क्यों कहते हो ! अभी तो तुमने अपने ही मुख से 'हरि' बोला है" ॥ ४०९ ॥ जब तुमने हरिनाम ग्रहण कर लिया तो अब कभी तुम्हारा अमगल नहीं होगा ॥४१०॥ परम उन्मत्त गदाधर ने यों कहकर हाथ से ताली बजाते हुए बहुत नृत्य किया ॥ ४११ ॥ जिनके शरीर में नित्यानन्द का अधिष्ठान था ऐसे गदाधरदास कुछ समय में अपने मन्दिर में आ पहुँचे ॥ ४१२ ॥ श्रीचैतन्य-पार्षदों में जिनकी गणना थी ऐसे गदाधरदासजी की इस प्रकार की महिमा है ॥ ४१३ ॥ जिस काजी की हवा भी साधु जनों को नहीं लगती थी—उसकी हवा लगने मात्र से ही उसी क्षण जाति लय हो जाती थी ॥ ४१४ ॥ ऐसे दुष्ट काजी को देखते ही जाति भ्रष्ट होती थीं ऐसे जन पर भी श्रीगदाधरदास ने कृपादृष्टि की ॥ ४१५ ॥ जब ऐसे दुष्ट जन भी हिंसा धर्म छोड़ दें इसी को कहते हैं "कृष्णावेश का कार्य" ॥ ४१६ ॥ जिसके शरीर में सच्चा कृष्णभाव हो उसे अग्नि, सर्प व व्याघ्र भी लंघन नहीं कर सकते ॥ ४१७ ॥ ब्रह्मादिकों के अभीष्ट जो सब कृष्णभाव हैं और गोपीगणों में जो सब अनुराग व्यक्त हैं, वे सब भाव व अनुराग नित्यानन्दराय ने अपनी नयन भङ्गी से सब प्रियदासों को कृपा करके प्रदान कर दिये ॥४१८-४१९॥ हे

तबे नित्यानन्द महाप्रभु कथो दिने । शची आइ देखिवारे इच्छा हैल मने ॥४२१॥
शुभ यात्रा करिलेन नवद्वीप-प्रति । पारिषदगण सब चलिला संहति ॥४२२॥
तबे आइलेन प्रभु खड़दह ग्रामे । पुरन्दर पण्डितेर देवालय स्थाने ॥४२३॥
खड़दह ग्रामे प्रभु नित्यानन्द-राय । यत नृत करिलेन-कथन ना जाय ॥४२४॥
पुरन्दर पण्डितेर परम उन्माद । वृक्षेर उपरे चढ़ि करे सिंहनाद ॥४२५॥
बाह्य नाहि श्रीचैतन्य दासेर शरीरे । व्याघ्र ताड़ाइया जाय वनेर भितरे ॥४२६॥
कखनो चढ़ेन सेइ व्याघ्रेर उपरे । कृष्णेर प्रसादे व्याघ्र लंघिते ना पारे ॥४२७॥
महा अजगर सर्प लइ निज कोले । निर्भये चैतन्यदास थाके कुतूहले ॥४२८॥
व्याघ्रेर सहित खेला खेलेन निर्भय । हेन कृपा करे अवधूत महाशय ॥४२९॥
सेवक वत्सल प्रभु नित्यानन्द-राय । ब्रह्मार दुलभ रस ईङ्गिते भुञ्जाय ॥३३०॥
चैतन्यदासेर आत्म विस्मृति सर्वथा । निरन्तर कहेन आनन्द-मनः कथा ॥४३१॥
दुइ तिन दिन मञ्जिलेर भितरे । थाकेन, कोथाओ दुःख ना हय शरीरे ॥४३२॥
जड़ प्राय अलक्षित-वेश-व्यवहार । परम उद्दाम सिंह विक्रम अपार ॥४३३॥
चैतन्यदासेर यत भक्तिर विकार । कत वा कहिते पारि-सकल अपार ॥४३४॥
योग्य श्रीचैतन्यदास मुरारि पण्डित । यार वातासेओ कृष्ण पाइये निश्चित ॥४३५॥
एबे केहो बोलाय 'चैतन्यदास' नाम । स्वप्नेहो ना बोले श्रीचैतन्य गुण ग्राम ॥४३६॥

भाई ! ऐसे श्रीनित्यानन्दजी के चरण-कमलों की सेवा करो, अहो जिनकी कृपा से श्रीचैतन्यदेव की शरण मिलती है ॥४२०॥ उसके कुछ दिन पीछे श्रीनित्यानन्द प्रभु के मनमें श्रीशची माता के दर्शन करने की इच्छा हुई ॥ ४२१ ॥ नवद्वीप के लिये शुभ यात्रा की सब पार्षदगण भी साथ में चले ॥ ४२२ ॥ (मार्ग मे) श्रीनित्यानन्द प्रभु खड़दह ग्राम में पुरन्दर पण्डित के देव स्थान पर आ पहुँचे ॥ ४२३ ॥ खड़दह ग्राम में श्रीप्रभु नित्यानन्दराय ने जितना नृत्य किया वह कहने में नहीं आता ॥ ४२४ ॥ पुरन्दर पण्डित को ऐसा प्रेमोन्माद हुआ कि वे वृक्ष पर चढ़कर सिंह के तुल्य शब्द करने जाते थे॥४२५॥ श्रीचैतन्यदास के शरीर में बाह्य ज्ञान नहीं रहा वे व्याघ्रों को ताड़न करते हुए बन में चले जाते थे ॥४२६॥ कभी उन व्याघ्रों के ऊपर चढ़ जाते, परन्तु कृष्ण कृपा से व्याघ्र उनका लंघन नहीं करते थे॥४२७॥बड़े भयंकर अजगर सर्प को अपनी गोद में लेकर श्रीचैतन्यदास कुतूहल से निर्भय बैठ जाते थे ॥४२८॥ तथा व्याघ्रों के साथ निर्भय होकर खेल-खेलते थे-श्री अवधूत महाशय की ऐसी कृपा हुई ॥ ४२९ ॥ सेवक वत्सल श्रीनित्यानन्द प्रभु ब्रह्मादिकों के लिये भी दुर्लभ रस को अपनी इङ्गित (नेत्र भंगी) मात्र से ही भोग करा रहे थे ॥४३०॥ श्रीचैतन्यदास को आत्म विस्मृति सर्वथा रहती थी वे निरन्तर अपने प्रेमानन्द भरे मन की कथा से ही कहते रहते थे ॥ ४३१ ॥ तथा जल के भीतर डुबकी लगाकर दो-तीन दिन तक रह जाते परन्तु शरीर में कभी दुःख नहीं होता था ॥ ४३२ ॥ उनका व्यवहार जड़ तुल्य व अदृश्य वेश में होता था तथा उनका पराक्रम उद्दण्ड सिंह के समान अपार था ॥ ४३३ ॥ श्रीचैतन्यदास के शरीर में जितने भक्तिविकार थे वे कितने कहे जाँय, सभी अपार थे॥४३४॥ श्रीमुरारि पण्डित ही श्रीचैतन्यचन्द्र के योग्य दास थे जिनके शरीर के पवन लगने से भी कृष्ण-प्राप्ति

अद्वैतेर प्राणनाथ-श्रीकृष्णचैतन्य । याँर भक्ति प्रसादे अद्वैत सत्य धन्य ॥४३७॥
जय खड्ग अद्वैतेर ये चैतन्य भक्ति । याहार प्रसादे अद्वैतेर सर्व शक्ति ॥४३८॥
साधुलोक अद्वैतेर ए महिमा घोषे । केहो इहा अद्वैतेर निन्दा-हेन वासे ॥४३६॥
सेहो छार बोलाय 'चैतन्यदास' नाम । से पापी केमने जाय अद्वैतेर स्थान ॥४४०॥
ए पापीरे 'अद्वैतेर लोक' बोले ये । अद्वैतेर हृदय ना जाने कभू से ॥४४१॥
राक्षसेर नाम येन कहे 'पुण्यजन' । एइ मत ए सब चैतन्यदास गण ॥४४२॥
कथो दिन थाकि नित्यानन्द खड़दहे । सप्तग्राम आइलेन सर्व-गण-सहे ॥४४३॥
सेइ सप्तग्रामे आछे सप्त-ऋषि-स्थान । जगते विदित से 'त्रिवेणीघाट' नाम ॥४४४॥
सेइ गङ्गाघाटे पूर्वे सप्त-ऋषिगण । तप करि पाइलेन गोविन्द चरण ॥४४५॥
तिन देवी सेइ स्थाने एकत्र मिलन । जाह्नवी यमुना सरस्वतीर सङ्गम ॥४४६॥
प्रसिद्ध 'त्रिवेणीघाट' सकल-भुवने । सर्वपाप क्षय हय जार दरशने ॥४४७॥
नित्यानन्द महाप्रभु परम-आनन्दे । सेइ घाटे स्नान करिलेन सर्व-वृन्दे ॥४४८॥
उद्धारनदत्त भाग्यवन्तेर मन्दिरे । रहिलेन महाप्रभु त्रिवेणीर तीरे ॥४४६॥
काय-मनो-वाक्ये नित्यानन्देर चरण । भजिलेन अकैतवे दत्त-उद्धारन ॥४५०॥
नित्यानन्दस्वरूपेर सेवा-अधिकार । पाइलेन उद्धारण, किवा भाग्य आर ॥४५१॥
जन्म-जन्म नित्यानन्दस्वरूप ईश्वर । जन्म-जन्म उद्धारणो ताँहार किंकर ॥४५२॥

निश्चय थी ॥ ४३५ ॥ आजकल यदि कोई "चैतन्यदास" नामधारी हों तो भी "श्रीचैयन्य गुणग्राम" स्वप्न में भी नहीं कहते ॥ ४३६ ॥ श्रीअद्वैत के प्राणनाथ श्रीकृष्णचैतन्य थे जिनकी भक्ति के प्रसाद से श्री-अद्वैतचन्द्र सत्य ही धन्य हो गये ॥ ४३७ ॥ अद्वैत की श्रीचैतन्यचन्द्र में जो खड्गरूप भक्ति थी उसी की कृपा से ही श्रीअद्वैत की सब शक्ति थी ॥ ४३८ ॥ साधु लोग श्रीअद्वैत की इस महिमा का ऊँचे स्वर से घोषित करते थे, परन्तु कोई २ इसके कारण उनकी निन्दा भी करते थे ॥ ४३६ ॥ वे तुच्छ जन भी अपना नाम चैतन्यदास कहलाते थे वे पापी किस प्रकार अद्वैत के स्थान में जा सकेंगे? ॥ ४४० ॥ ऐसे पापियों को "अद्वैत के जन" कहते हैं वे कभी अद्वैत के हृदय को नहीं जानते ॥४४१॥ राक्षसों को जैसे कोई पुण्यजन कहे इसी प्रकार यह सब चैतन्यदास कहे जाते हैं॥४४२॥नित्यानन्द प्रभु कुछ दिन खड़दह ग्राम में रहकर पीछे सब भक्तों सहित सप्त ग्राम में आए ॥ ४४३ ॥ उस सप्त ग्राम में सप्त ऋषियों का स्थान है और जगत् में त्रिवेणी घाट नाम से विदित है ॥ ४४४ ॥ पहिले सप्त ऋषियों ने उसी गङ्गा घाट पर तप करके गोविन्द चरणारविन्द प्राप्त किये थे ॥४४५॥ भागीरथी (गङ्गा) जमुना व सरस्वती देवियों का उसी स्थान पर एकत्र मिलन है ॥ ४४६ ॥ सब लोकों में त्रिवेणी घाट प्रसिद्ध है जिसके दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४४७॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु ने सब भक्तों के साथ परम आनन्द से उसी घाट पर स्नान किया ॥ ४४८ ॥ त्रिवेणी के तट पर भाग्यवान उद्धारनदत्त के घर पर महाप्रभु (श्रीनित्यानन्द प्रभु) ने निवास किया ॥ ४४६ ॥ उद्धारनदत्त ने निष्कपट मन वाणी व कर्म द्वारा श्रीनित्यानन्द चरण-कमलों की सेवा की ॥४५०॥ उद्धारन-दत्त को श्रीनित्यानन्दस्वरूप की सेवा का अधिकार प्राप्त हो गया है और क्या भाग्य होगा ॥ ४५१ ॥

जतेक वणिक्-कुल उद्धारन हैते । पवित्र हइल, द्विधा नाहिक इहाते ॥४५३॥
वणिक् तारिते नित्यानन्द-अवतार । वणिकेरे दिला प्रेमभक्ति-अधिकार ॥४५४॥
सप्तग्रामे प्रति-वणिकेर घरे-घरे । आपने श्रीनित्यानन्द कीर्तन विहरे ॥४५५॥
वणिक् सकल नित्यानन्देर चरण । सर्व भावे भजिलेन लइया शरण ॥४५६॥
वणिक्-सभेर कृष्ण भजन देखिते । मने चमत्कार पाय सकल जगते ॥४५७॥
नित्यानन्द महाप्रभुर महिमा अपार । वणिक् अधम मूर्ख ये कैल उद्धार ॥४५८॥
सप्तग्रामे महाप्रभु नित्यानन्दराय । गण-सह सङ्कीर्तन करेन लीलाय ॥४५९॥
सप्तग्रामे यत हैल कीर्तन विहार । शतवत्सरे ओ ताहा नारि वर्णिवार ॥४६०॥
पूर्वे येन सुख हैल नदिया नगरे । सेइ मत सुख हैल सप्तग्राम पुरे ॥४६१॥
रात्रि दिने क्षुधा तृष्णा नाहि निद्रा भय । सर्वदिगे हैल हरि सङ्कीर्तन मय ॥४६२॥
प्रति-घरे घरे प्रति-नगरे-चत्वरे । नित्यानन्द महाप्रभु कीर्तन विहरे ॥४६३॥
नित्यानन्दस्वरूपेर आवेश देखिते । हेन नाहि ये विह्वल ना हय जगते ॥४६४॥
अन्येर किदाय, विष्णुद्रोही ये यवन । ताहाराओ पादपद्मे लइल शरण ॥४६५॥
यवनेर नयने देखिते प्रेम धार । ब्राह्मणेर आपनारे जन्मये धिक्कार ॥४६६॥
जय जय अवधूतचन्द्र महाशय । याँहार कृपाय हेन सब रङ्ग हय ॥४६७॥
एइ मत सप्तग्रामे, आम्बुया-मुलुके । विहरेन नित्यानन्दस्वरूप कौतुके ॥४६८॥

नित्यानन्दस्वरूप जन्म-जन्म के ईश्वर हैं और उद्धारनदत्त भी उनके जन्म-जन्म के दास थे ॥ ४५२ ॥ उद्धारनदत्त के सम्बन्ध से जहाँ तक वैश्य कुल था सब पवित्र हो गया इसमें द्विधा (सन्देह) नहीं है ॥ ४५३ ॥ नित्यानन्द का अवतार वणिकों के उद्धार करने को हुआ है और वणिकों के लिये प्रेम भक्ति का अधिकार दे दिया ॥४५४॥ स्वयं श्रीनित्यानन्द प्रभु ने सप्त ग्राम के प्रत्येक वैश्य के घर में कीर्तन विहार किया ॥४५५॥ सब वणिकों ने नित्यानन्द प्रभु के चरणों की शरण लेकर सब प्रकार से सेवा की ॥ ४५६ ॥ सब वैश्यों को कृष्ण भजन करते देखकर सब जगत् के मन में चमत्कार हुआ ॥ ४५७ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की अपार महिमा है जिनने अधम व मूर्खों वणिकों का उद्धार कर दिया ॥ ४५८ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु भक्तों के सहित सप्तग्राम में लीला से ही संकीर्तन करने लगे ॥ ४५९ ॥ सप्तग्राम में जितना कीर्तन विहार हुआ वह सौ वर्ष में भी वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४६० ॥ जैसे पहिले नदिया नगर में सुख हुआ था उसी प्रकार सप्तग्राम पुर में हुआ ॥४६१॥ राति अथवा दिन में भूख, प्यास, नींद, भय कुछ नहीं प्रतीत होता सब दिशाएँ हरि संकीर्तनमय हो गईं ॥ ४६२ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रत्येक घर में, बाजार-बाजार व चौराहे-चौराहे पर प्रेम से कीर्तन विहार करते थे ॥ ४६३ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के आवेश को देखकर जगत् में ऐसा कोई नहीं था जो विह्वल न हो गया हो ॥ ४६४ ॥ दूसरों की तो क्या बात है जो विष्णुद्रोही यवन थे वे भी उनके चरण-कमलों की शरण में आये ॥ ४६५ ॥ यवनों के नेत्रों की प्रेमधारा देखकर ब्राह्मण अपने को बार २ धिक्कारते थे ॥ ४६६ ॥ महाशय श्रीअवधूतचन्द्र की जय हो २ जिनकी कृपा से ऐसा आनन्द हो रहा था ॥ ४६७ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप ने सप्तग्राम व आम्बुयामुलुक (अम्बिका नगर) में कौतुकपूर्ण विहार किया

तबे कथो दिने आइलेन शान्तिपुरे । आचार्य गोसाञि प्रिय विग्रहेर घरे ॥४६९॥
देखिया अद्वैत नित्यानन्देर श्रीमुख । हेन नाहि जानेन जन्मिल कोन् सुख ॥४७०॥
'हरि' बलि लागिलेन करिते हुङ्कार । प्रदक्षिण दण्डवत् करेन अपार ॥४७१॥
नित्यानन्दस्वरूपो अद्वैत करि कोले । सिंचिलेन अङ्ग तान प्रेमानन्द जले ॥४७२॥
दोंहे दोंहा देखि बड़ हइला विवश । जन्मिल अत्यन्त अनिर्वचनीय रस ॥४७३॥
दोंहे दोंहा धरि गड़ि यायेन अङ्गने । दोंहे चाहे धरिबारे दोंहार चरणे ॥४७४॥
कोटि सिंह जिनि दोंहे करे सिंहनाद । सम्बरन नहे दुइ प्रभुर उन्माद ॥४७५॥
तबे कथोक्षणे दुइ-प्रभु हैला स्थिर । बसिलेन एक स्थाने हइ महाधीर ॥४७६॥
कर जोड़ करिया अद्वैत महामति । सन्तोषे करेन नित्यानन्द प्रति स्तुति ॥४७७॥
तुमि नित्यानन्द-मूर्ति नित्यानन्द-नाम । मूर्तिमन्त तुमि चैतन्येर गुण ग्राम ॥४७८॥
सर्व-जीव-परित्राण तुमि महा हेतु । महाप्रलयेते तुमि सत्य धर्म सेतु ॥४७९॥
तुमिसे बुझाओ चैतन्येर प्रेम भक्ति । तुमिसे चैतन्य वक्षे धर पूर्ण शक्ति ॥४८०॥
ब्रह्मा शिव नारदादि 'भक्त' नाम यार । तुमिसे परम उपदेष्टा सभाकार ॥४८१॥
विष्णु भक्ति सभेइ लयेन तोमा हैते । तथापिह अभिमान ना स्पर्शे तोमाते ॥४८२॥
पतित पावन तुमि दोष दृष्टि शून्य । तोमारे से जाने यार आछे बहु पुण्य ॥४८३॥
सर्व यज्ञमय एइ विग्रह तोमार । अविद्या बन्धन खण्डे स्मरणे याहार ॥४८४॥

॥ ४६८ ॥ उसके कुछ दिन पीछे शान्तिपुर में प्रिय विग्रह आचार्य प्रभु के घर पर आये ॥ ४६९ ॥ श्रीनित्यानन्द के श्रीमुख को देखकर श्रीअद्वैत प्रभु नहीं जानते थे कितना सुख उत्पन्न हुआ ? ॥ ४७० ॥ हरि २ कहकर हुङ्कार करने लगे और अनेक प्रदक्षिणा व दण्डवत् करने लगे ॥ ४७१ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप ने भी श्रीअद्वैत को गोद में लेकर उनके अङ्ग को प्रेमानन्द जल से सिंचन कर दिया ॥ ४७२ ॥ दोनों एक दूसरे को देखकर बड़े विवश हो गये तथा अत्यन्त अनिर्वचनीय रस उदय हो गया ॥ ४७३ ॥ दोनों एक दूसरे को पकड़कर आंगन में लोट-पोट होने लगे तथा परस्पर में चरण छूने का प्रयत्न करने लगे ॥ ४७४ ॥ दोनों कोटि सिंहों को पराजय करने वाला सिंहनाद करते थे तथा दोनों प्रभुओं का प्रेमोन्माद सम्बरण नहीं हो रहा था ॥ ४७५ ॥ तब कुछ देर पीछे दोनों प्रभु स्थिर हुए तथा महाशान्त होकर एक स्थान पर बिराजे गये ॥ ४७६ ॥ महामति श्रीअद्वैत प्रभु ने प्रसन्न होकर श्रीनित्यानन्द प्रभु की स्तुति करने लगे ॥ ४७७ ॥ आप नित्यानन्द नामधारी मूर्तिमान् नित्यानन्द हो आप ही श्रीचैतन्यदेव के गुण समूह हो ॥ ४७८ ॥ सब जीवों के परित्राणकारी प्रधान कारण आप ही हो और महाप्रलय में भी सत्य व धर्म के रक्षक स्वरूप आप ही हो ॥ ४७९ ॥ श्रीचैतन्य की प्रेम-भक्ति का प्रबोध आप ही कराते हो तथा आप ही श्रीचैतन्य की पूर्ण शक्ति को अपने वक्ष में धारण करते हो ॥ ४८० ॥ ब्रह्मा, शिव नारद आदि जितने भक्त नामधारी हैं आप ही उनके उपदेशक हो ॥ ४८१ ॥ सभी ने आप से ही विष्णु-भक्ति ली है तथापि आपको इसका अभिमान नहीं है ॥४८२॥ आप पतित पावन, दोष दृष्टि रहित हो आपको वे ही जान पाते हैं जिनके बहुत पुण्य होते हैं॥४८३॥ आपके यह श्रीविग्रह सर्व यज्ञमय है जिसके स्मरण मात्र से अविद्या का बन्धन नष्ट हो जाता है ॥ ४८४ ॥

यदि तुमि प्रकाश ना कर आपनारे । तबे कार शक्ति आछे जानिते तोमारे ॥४८५॥
अक्रोध परमानन्द तुमि महेश्वर । सहस्र वदन आदिदेव महीधर ॥४८६॥
रक्ष-कुल-हन्ता तुमि श्रीलक्ष्मणचन्द्र । तुमि गोपपुत्र हलधर मूर्तिमन्त ॥४८७॥
मूर्ख नीच अधम पतित उद्धारिते । तुमि अवतीर्ण हइयाछ पृथिवीते ॥४८८॥
ये भक्ति वाञ्छये योगेश्वर-सब मने । तोमा हैते ताहा पाइबेक ये ते-जने ॥४८९॥
कहिते अद्वैत नित्यानन्देर महिमा । आनन्द आवेशे पासारिलेन आपना ॥४९०॥
अद्वैत से ज्ञाता नित्यानन्देर प्रभाव । ए मर्म जानये कोन-कोन महाभाग ॥४९१॥
तबे ये कलह हेर अन्योऽन्ये बाजे । से केवल परानन्द, यदि जने बुझे ॥४९२॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति जार । जानिह-ईश्वर-सने भेद नाहि तार ॥४९३॥
हेन मते दुइ महाप्रभु निज रङ्गे । बिहरेन कृष्ण कथा-मङ्गल-प्रसङ्गे ॥४९४॥
अनेक रहस्य करि अद्वैत-सहित । अशेष प्रकारे तान जन्माइया प्रीत ॥४९५॥
तबे अद्वैतेर स्थाने लइ अनुमति । नित्यानन्द आइलेन नवद्वीप-प्रति ॥४९६॥
सेइ मत सर्वाद्ये आइला आइ-स्थाने । आसि नमस्करिलेन आइर चरणे ॥४९७॥
नित्यानन्दस्वरूपेरे देखिया शची आइ । कि आनन्द पाइलेन-तार अन्त नाइ ॥४९८॥
आइ बोले बाप तुमि सत्य अन्तर्यामी । तोमारे देखिते इच्छा करिलाङ आमि ॥४९९॥
मोर चित्त जानि तुमि आइला सत्वर । के तोमा चिनिते पारे संसार भितर ॥५००॥

यदि आप ही अपने को प्रकाश न करो तो आपको जानने की किसमें सामर्थ्य है ? ॥ ४८५ ॥ तुम क्रोध रहित परमानन्दमय महेश्वर हो तथा आप ही पृथ्वी को धारण करने वाले सहस्र मुख शेष हो ॥ ४८६ ॥ आपही राक्षस कुल नाशक श्रीलक्ष्मणचन्द्र हो और आपही गोप पुत्र मूर्तिमन्त बलराम हो ॥ ४८७ ॥ मूर्ख नीच अधम पतितों के उद्धार करने के लिये आप पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हो ॥ ४८८ ॥ बड़े २ योगेश्वर जिस भक्ति की केवल मन में ही वांछा करते हैं आपके द्वारा वह भक्ति जिस किसी साधारण जन को भी प्राप्त होगी ॥ ४८९ ॥ श्रीअद्वैत आचार्य श्रीनित्यानन्द प्रभु की महिमा कहते २ प्रेमानन्द आवेश में अपने को ह भूल गये ॥ ४९० ॥ श्रीअद्वैत आचार्य ही श्रीनित्यानन्द के प्रभाव को जाने हैं इस मर्म को कोई २ महाभाग ही जानते हैं ॥ ४९१ ॥ पीछे से जो परस्पर में कलह होता है वह केवल परम आनन्दमय है -यदि कोई समझे तो ॥ ४९२ ॥ श्रीअद्वैत के वाक्यों को समझने की जिसकी शक्ति है उसका ईश्वर के साथ में भेद नहीं है-ऐसा जानो ॥ ४९३ ॥ इस प्रकार दोनों महाप्रभु अपने २ रङ्ग में कृष्ण कथा रूप मंगल प्रसंगों द्वारा बिहार करते हैं ॥४९४॥ सब प्रकार से श्रीअद्वैत प्रभु को प्रीति उपजाकर उनके साथ अनेक रहस्यमय बातें की ॥ ४९५ ॥ तब श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीअद्वैतजी से आज्ञा लेकर नवद्वीप के प्रति आये ॥ ४९६ ॥ पहिले की भाँति सबसे प्रथम श्रीशची माता के पास आये और माता के चरणों में नमस्कार किये ॥४९७॥ श्रीशची माता श्रीनित्यानन्दस्वरूप को देखकर कैसे आनन्द को प्राप्त हुईं उसका अन्त नहीं है ॥ ४९८ ॥ श्रीशची माता ने कहा "हे वत्स ! तुम सत्य ही अन्तर्यामी हो कारण मैंने तुमको देखने की इच्छा की थी ॥ ४९९ ॥ मेरे मन की जानकर ही तुम शीघ्र ही आ गये हो तुम्हें संसार में कौन पहिचान सकेगा ? ॥५००॥

कथो दिन थाक बाप एइ नवद्वीपे । येन तोमा देखोँ मुञि दशे पक्षे मासे ॥५०१॥
मुञि-दुःखितेर इच्छा तोमारे देखिते । दैवे तुमि आसियाछ दुःखित तारिते ॥५०२॥
शुनिञा आइर वाक्य हासे नित्यानन्द । जे जाने आइर प्रभावेर आदि अन्त ॥५०३॥
नित्यानन्द बोले शुन आइ सर्व माता । तोमारे देखिते मुञि आसियाछों एथा ॥५०४॥
मोर इच्छा तोमा देखि थाकिब एथाय । रहिलाङ नवद्वीपे तोमार आज्ञाय ॥५०५॥
हेन मते नित्यानन्द आइ सम्भाषिया । नवद्वीपे भ्रमेन आनन्द युक्त हैया ॥५०६॥
नवद्वीपे नित्यानन्द प्रति घरे-घरे । सब पारिषद-सङ्गे कीर्तन बिहरे ॥५०७॥
नवद्वीपे आसि महाप्रभु नित्यानन्द । हइलेन कीर्तने आनन्द मूर्तिमन्त ॥५०८॥
प्रति घरे-घरे सब पारिषद-सङ्गे । निरबधि बिहरेन संकीर्तन रङ्गे ॥५०९॥
परम मोहन संकीर्तन मल्ल-वेश । देखिते सुकृति पाय आनन्द विशेष ॥५१०॥
श्रीमस्तके शोभे बहुविध पट्टवास । तदुपरि बहुविध माल्येर विलास ॥५११॥
कण्ठे बहुविध मणि-मुक्ता-स्वर्ण हार । श्रुति मूले शोभे मुक्ता काञ्चन अपार ॥५१२॥
सुवर्णेर अङ्गद वलय शोभे करे । ना जानि कतेक माला शोभे कलेवरे ॥५१३॥
गोरोचना-चन्दने लेपित सर्व अङ्ग । निरबधि बालगोपालेर प्राय रङ्ग ॥५१४॥
कि अपूर्व लौह दण्ड धरेन लीलाय । पूर्ण दश अङ्गुलि सुवर्ण मुद्रिकाय ॥५१५॥
शुक्ल नील पीत-बहुविध पट्टवास । परम विचित्र परिधानेर विलास ॥५१६॥

हे वत्स ! इस नवद्वीप में कुछ दिन तो रहो जिससे तुम्हें १०-१५ दिन व एक महीना तक तो देख सकूँ॥५०१॥ मुझ दुखिया के देखने की तुम्हें इच्छा तो हुई—अब यहाँ के दुखियों का उद्धार करने के लिये तुम दैवयोग से ही आ गये हो ॥ ५०२ ॥ जो शची माता के प्रभाव को आदि से अन्त तक जानते थे ऐसे श्रीनित्यानन्द जी माताजी के वाक्य सुनकर हँसने लगे ॥ ५०३ ॥ श्रीनित्यानन्दजी ने कहा "सर्व जगत् माता सुनो, मैं तुम्हारे दर्शन के लिये यहाँ आया हूँ" ॥ ५०४ ॥ तुम्हें देखने के लिये मेरी इच्छा है यहाँ नवद्वीप में रहें परन्तु आपकी आज्ञा की अपेक्षा है—॥ ५०५ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु श्री माताजी से वार्तालाप करके आनन्दपूर्वक नवद्वीप में भ्रमण करने लगे ॥५०६॥ सब पार्षदों के साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु नवद्वीप के अन्तर्गत प्रत्येक घर में कीर्तन बिहार करने लगे ॥ ५०७ ॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु नवद्वीप में आकर कीर्तन में मूर्तिमन्त आनन्दस्वरूप ही हो गये ॥ ५०८ ॥ सब पार्षदों के साथ प्रत्येक घर में निरन्तर संकीर्तन रङ्ग में ही बिहार करने लगे ॥ ५०९ ॥ सुकृति पुण्यात्मा जनों को उनका परममोहन संकीर्तन मल्ल वेश देखकर विशेष आनन्द होता था ॥ ५१० ॥ श्रीमस्तक के ऊपर बहुत प्रकार के रेशमी वस्त्र शोभा दे रहे थे उनके ऊपर अनेक भाँति की मालायें शोभा दे रही थीं ॥ ५११ ॥ कंठ में बहुत प्रकार के मणि-मोती व सोने के हार तथा कानों में मोती व सोने के अपार अलंकार शोभित थे ॥५१२॥ सोने के अङ्गद व वलय हाथों में शोभित थे और शरीर में न जाने कितनी मालाएँ शोभा दे रही थीं ॥५१३॥ सब अङ्ग में गोरोचनयुक्त चन्दन का लेप किये थे तो सदा बालगोपाल के तुल्य रूप रंग किये हुए थे ॥५१४॥ दशों अँगुली सोने की मुद्रिकाओं से पूर्ण थीं तथा लीला से ही लौहदंड धारण किये हुए थे ॥५१५॥ सफेद नीले व पीले वर्ण के परम विचित्र रेशमी वस्त्रों

वेत्र वंशी छरिका जठर पटे शोभे । जार दरशने ध्याने जग-मन लोभे' ॥५१७॥
रजत-नूपुर-मल्ल शोभे श्रीचरणे । परम मधुर ध्वनि, गजेन्द्र गमने ॥५१८॥
ये-दिगे चा'हेन महाप्रभु नित्यानन्द । सेइ-दिगे हय कृष्ण-रस मूर्तिमन्त ॥५१९॥
हेनमते नित्यानन्द परम-कौतुके । आछेन चैतन्य-जन्मभूमि-नवद्वीपे ॥५२०॥
नवद्वीप-येहेन मथुरा-राजधानी । कत-मत लोक आछे, अन्त नाहि जानि ॥५२१॥
हेन सब सुजन आछेन, याहा देखि । सर्वमहापाप हैते मुक्त हय पापी ॥५२२॥
तार मध्ये दुर्जनो ये कथो कथो वसे । सर्व-धर्म घूचे तार छायार परशे ॥५२३॥
ताहागाओ नित्यानन्द प्रभुर कृपाय । कृष्ण-पथे रत हैल अति अमायाय ॥५२४॥
आपने चैतन्य कथो करिला मोचन । नित्यानन्द-द्वारे उद्धारिला त्रिभुवन ॥५२५॥
चोर-दस्यु-पतित-अधम-नामयार । नाना मते नित्यानन्द करिला उद्धार ॥५२६॥
शुन शुन नित्यानन्द प्रभुर आख्यान । चोर दस्यु येमते करिला परित्राण ॥५२७॥
नवद्वीपे वैसे एक ब्राह्मणकुमार । ताहार समान चोर दस्यु नाहि आर ॥५२८॥
यत चोर दस्यु तार महासेनापति । नाम से ब्राह्मण, अति परम कुमति ॥५२९॥
पर-बधे दयामात्र नाहिक शरीरे । निरन्तर दस्युगण-संहति विहरे ॥५३०॥
नित्यानन्द स्वरूपेर अङ्गे अलङ्कार । सुवर्ण प्रवाल मणि मुक्ता दिव्य हार ॥५३१॥
प्रभुर श्रीअङ्गे देखि बहुविध धन । हरिते हइल दस्यु ब्राह्मणेर मन ॥५३२॥

के पहरकर शोभा पाते थे ॥ ५१६ ॥ वेत, वंशी व छड़ी कटि वस्त्र में शोभा दे रहे थे जिसके दर्शन व ध्यान से जगत्वासियों के मन लुभाता था ॥ ५१७ ॥ श्रीचरणों में चाँदी के नूपुर तथा मड़वाँ (कड़े) शोभा दे रहे थे जो गजेन्द्र की सी चाल चलने पर परम मधुर ध्वनि देते थे ॥५१८॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु जिस ओर देखते उसी ओर को मूर्तिमन्त कृष्ण प्रेमरस उदय हो जाता था ॥५१९॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु परम कौतुक पूर्वक चैतन्यचन्द्र की जन्मभूमि नवद्वीप में रहे ॥५२०॥ जिस प्रकार मथुरा राजधानी है उसी प्रकार नवद्वीप भी है, उसमें कितने प्रकार के मनुष्य रहते उनका अन्त नहीं जाना जा सकता ॥ ५२१ ॥ तथा सब ऐसे सज्जन रहे कि जिनके दर्शन से पापी बड़े २ पापों से मुक्त हो जाते थे ॥ ५२२ ॥ परन्तु उनके बीच में कितने ही दुर्जन भी रहते थे जिनकी छाया स्पर्श होते ही सब धर्म दूर भग जाते थे ॥ ५२३ ॥ वे दुष्ट भी श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा से अति निष्कपट भाव से कृष्ण मार्ग में रत हो गये ॥ ५२४ ॥ स्वयं श्रीचैतन्य-देव ने कितनेक प्राणियों का मोचन किया ? परन्तु श्रीनित्यानन्दजी के द्वारा तीनों भुवनों का उद्धार करा दिया ॥५२५॥ चोर, डाकू, पतित-अधम आदि जिनकी संज्ञा थी उनको श्रीनित्यानन्द प्रभु ने अनेकों प्रकार से उद्धार कर दिया ॥ ५२६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने जिस भाँति चोर, डाकुओं का परित्राण किया था उस आख्यान को सुनो ॥ ५२७ ॥ नवद्वीप में एक ब्राह्मण कुमार रहता था उसके समान चोर, डाकू दूसरा नहीं था तथा ॥ ५२८ ॥ जितने चोर व डाकू थे उनका वह प्रधान सेनापति था वह नाम लेने को तो ब्राह्मण था परन्तु अत्यन्त दुर्बुद्धि था ॥ ५२९ ॥ दूसरे के वध करने में शरीर में नाम मात्र दया नहीं थी तथा निरन्तर डाकुओं के साथ रहता था ॥ ५३० ॥ नित्यानन्दस्वरूप के अङ्ग पर सुवर्ण प्रवाल मणि मोती व दिव्य हार

माया करि निरबधि नित्यानन्द-सङ्गे । भ्रमये ताहान धन हरिवारे रङ्गे ॥५३३॥
अन्तरे परम दुष्ट बिप्र भाल नय । जानिलेन नित्यानन्द अन्तर हृदय ॥५३४॥
हिरण्य पण्डित-नामे एक सुब्राह्मण । सेई नवद्वीपे वैसे महा अकिंचन ॥५३५॥
सेइ भाग्यवन्तेर मन्दिरे नित्यानन्द । थाकिला बिरले प्रभु हइया असङ्ग ॥५३६॥
सेइ दुष्ट ब्राह्मण-परम दुष्ट मति । लइया सकल दस्यु करये युगति ॥५३७॥
अरे भाइ सभे आर केने दुःख पाइ । चण्डी माये निधि मिलाइला एक ठाँइ ॥५३८॥
एइ अवधूतेर देहेते अलङ्कार । सोणा मुक्ता हीरा कसा वइ नाइ आर ॥५३९॥
कत लक्ष टाकार पदार्थ नाहि जानि । चण्डीमाये एक ठाञि मिलाइला आनि ॥५४०॥
शून्य-बाड़ी-खाने थाके हिरण्येर घरे । काढ़िया आनिव एक दण्डेर भितरे ॥५४१॥
ढाल खांड़ा लइ सभे हओ समवाय । आजि गिया हाना दिव कथोक निशाय ॥५४२॥
एइ मत युक्ति करि सब दस्युगण । सभे निशाभाग करि करिल गमन ॥५४३॥
खांड़ा छुरि त्रिशूल लइया जने-जने । आसिया बेढ़िल नित्यानन्द येइ स्थाने ॥५४४॥
एक स्थाने रहिया सकल दस्युगण । आगे चर पाठाइया दिल एक जन ॥५४५॥
नित्यानन्द महाप्रभु करेन भोजन । चतुर्दिगे हरिनाम लय भक्तगण ॥५४६॥
कृष्णानन्दे मत्त नित्यानन्द भृत्यगण । केहो करे सिंहनाद केहो वा गर्जन ॥५४७॥
क्रन्दन करये केहो परानन्द रसे । केहो करतालि दिया अट्ट-अट्ट हासे ॥५४८॥

आदि अलङ्कार थे ॥ ५३१ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के श्रीअङ्ग पर बहुत धन को देखकर डाकू ब्राह्मण के मनमें उन्हें हरण करने की इच्छा हुई ॥५३२॥ वह निरन्तर छल करके श्रीनित्यानन्दजी के संग में उनके अलंकारों को हरने के विचार में भ्रमण करता रहता था ॥५३३॥ यह ब्राह्मण भला नहीं है अन्तर में बड़ा दुष्ट है यह अन्तर्यामी श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उसके हृदय की बात जान ली ॥ ५३४ ॥ हिरण्य पण्डित नाम के एक सज्जन व बड़े अकिंचन ब्राह्मण वहीं नवद्वीप में रहते थे ॥ ५३५ ॥ उसी भाग्यवान के घर में श्रीनित्यानन्द प्रभु अकेले ही ठहरे, सङ्गहीन होकर निवास किया ॥ ५३६ ॥ परम दुष्ट बुद्धि वाले उस दुष्ट ब्राह्मण ने सब डाकुओं के साथ युक्ति की ॥ ५३७ ॥ "अरे भाइयो ! सब लोग और क्यों दुःख पाते हो देखो माता चण्डी ने एक स्थान में ही निधि मिला दी है ॥ ५३८ ॥ इस अवधूत की देह पर सोना, मोती, हीरा, खचित अलङ्कारों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ॥ ५३९ ॥ न जाने कितने लक्ष रुपयों का माल है देखो चण्डी माता ने एक स्थान में ही लाकर मिला दिया ॥ ५४० ॥ वे हिरण्य पण्डित के घर में एक शून्य स्थान में रहते हैं सो एक घड़ी में निकलवा लावें ॥ ५४१ ॥ तुम सब लोग ढाल, तलवार लेकर इकट्ठे हो जाओ, आज कुछ रात्रि होने पर जायकर आक्रमण करेंगे ॥ ५४२ ॥ सब डाकूवृन्द ऐसी युक्ति करके रात्रि के समय में सभी ने इकट्ठे होकर गमन किया ॥ ५४३ ॥ सबने जिस स्थान में श्रीनित्यानन्द प्रभु थे वहाँ खड्ग, छुरी, त्रिशूल ले लेकर घेर लिया ॥ ५४४ ॥ सब डाकुओं ने एक स्थान में रहकर आगे एक जन जासूस भेज दिया ॥ ५४५ ॥ (वह क्या देखता है कि:-) श्रीनित्यानन्द प्रभु भोजन कर रहे हैं और चारों ओर भक्तगण हरिनाम ले रहे हैं ॥ ५४६ ॥ श्रीनित्यानन्दजी के सेवक वृन्द कृष्ण प्रेमानन्द में मत्त थे, कोई सिंहनाद कर

'हे है हाय हाय' करे कोन जन । कृष्णानन्दे निद्रा नाहि, सभेइ चेतन ॥५४९॥
चर आसि कहिलेक दस्युगण स्थाने । 'भात खाय अवधूत, जागे सर्व जने' ॥५५०॥
दस्युगण बोले सभे शुउक खाइया । आमाराओ बसि सभे हाना दिव गिया ॥५५१॥
बसिल सकल दस्यु एक-वृक्ष तले । परधन पाइवेक-एइ कुतूहले ॥५५२॥
केहो बोले 'मोहोर सोनार ताड़ वाला' । केहो बोले 'मुञि निमु मुकुतार माला' ॥५५३॥
केहो बोले 'मुञि निमु कर्ण-आभरण' । 'छरि सब निमु मुञि' बोले कोन जन ॥५५४॥
केहो बोले 'मुञि निमु रूपार नूपुर' । सभे एइ मन कला खायेत प्रचुर ॥५५५॥
हेनइ समये नित्यानन्देर इच्छाय । निद्रा भगवती आसि चापिला सभाय ॥५५६॥
सेइ क्षणे महा घुमाइया दस्युगण । सभेइ हइल अति महा अचेतन ॥५५७
निद्राय सकल दस्यु हइल मोहित । रात्रि पोहाइल, तभु नाहिक सम्बित ॥५५८॥
काक रवे जागिलेक सब दस्युगण । रात्रि नाहि देखि सभे हैल दुःखि-मन ॥५५९॥
आथे व्यथे ढाल खांड़ा फेलाइया बने । सत्त्वरे चलिल सब दस्यु गङ्गा स्नाने ॥५६०॥
शेषे सब दस्युगण निज स्थाने गेल । सभेइ सभारे गालि पाड़िते लागिल ॥५६१॥
केहो बोले 'तुइ आगे पड़िलि शुइया' । केहो बोले 'तुइ बड़ आछिलि जागिया' ॥५६२॥
केहो बोले कलह करह केने आर । लज्जा धर्म चण्डी आजि राखिल सभार ॥५६३॥
दस्यु सेनापति ये ब्राह्मण दुराचार । से बोलये कलह करह केने आर ॥५६४॥

रहे हैं व कोई कोई गर्जना कर रहे हैं ॥ ५४७ ॥ कोई परम आनन्दरस में क्रन्दन कर रहे हैं तथा कोई ताली बजा बजाकर अट्टअट्ट हँस रहे हैं ॥ ५४८ ॥ कोई जन "है-है-हाय हाय" कर रहे हैं, कृष्ण प्रेमानन्द में निद्रा नहीं है सब ही जाग रहे हैं ॥ ५४९ ॥ जासूस ने डाकुओं से जाकर कहा कि अवधूत तो भात खाय रहे हैं और सब लोग जाग रहे हैं ॥ ५५० ॥ डाकू बोले सबको खाकर सोने दो तब तक हम भी बैठे हैं पीछे जाकर आक्रमण करेंगे ॥ ५५१ ॥ दूसरे का धन प्राप्त होगा इसी लालसा में सब डाकू एक वृक्ष के नीचे बैठ गये ॥ ५५२ ॥ एक ने कहा "सोने के ताड़क वाला मैं लूँगा" दूसरा बोला मोतियों की माला तो मैं लूँगा ॥ ५५३ ॥ कोई कहता "कानों के आभरणों को मैं लूँगा" कोई बोला मैं सब छड़ी लूँगा ॥ ५५४ ॥ किसी ने कहा "मैं तो चाँदी के नूपुरों को लूँगा" इस प्रकार सब ही मनमोदक खूब ही खा रहे थे ॥५५५॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु की इच्छा से उसी समय निद्रादेवी ने आकर सब को दबा लिया ॥ ५५६ ॥ तत्क्षण विशेष नींद आ जाने से सब डाकूगण बड़े अचेत हो गये ॥ ५५७ ॥ सब डाकू निद्रा से ऐसे मोहित हुए कि सब राति बीत गई तब भी चेत नहीं हुआ ॥ ५५८ ॥ कौवाओं के शब्द से सब डाकू जगे, यह देखकर कि रात नहीं रही सब ही मन में बड़े दुःखी हुए ॥ ५५९ ॥ जैसे-तैसे ढाल,तलवार आदि को वन में फेंककर सब डाकू शीघ्र गङ्गा स्नान करने को चल दिये ॥ ५६० ॥ अन्त में सब डाकूगण अपने २ स्थान को चले गये तथा परस्पर में गाली बकते जाते थे ॥ ५६१ ॥ कोई बोला "देख तू पहिले पड़कर सो गया" कोई कहता "तू तो बड़ा जाग रहा था" ? ॥५६२॥किसी ने कहा अब कलह क्यों कर रहे आज चण्डी माता ने सबका लज्जा धर्म की रक्षा की ॥ ५६३ ॥ तब डाकुओं का सेनापति जो दुराचारी ब्राह्मण था बोला "अब और

ये हइल से हइल चण्डीर इच्छाय। एक दिन गेले कि सकल दिन जाय ।।५६५।।
बुझिलाङ चण्डी आसि मोहिला आपने। बिनि-चण्डी-पूजिया गेलाङ ये-कारणे ।।५६६।।
भाल करि आजि सभे मद्य मांस दिया। चल सभे एक ठाजि चण्डी पूजि गिया ।।५६७।।
एतेक करिया युक्ति सब दस्युगण। मद्य मांस दिया सभे करिल पूजन ।।५६८।।
आर दिन दस्युगण काचि नाना अस्त्र। आइलेक वीर-छांदे परि नील वस्त्र ।।५६९।।
महानिशा-सर्वलोक आछये शयने। हेनइ समये वेढ़िलेक दस्युगणे ।।५७०।।
बाड़ीर निकटे थाकि दस्युगण देखे। चतुर्दिगे अनेक पाइक बाड़ी राखे ।।५७१।।
चतुर्दिगे अस्त्रधारी पदातिक गण। निरवधि हरिनाम करेन ग्रहण ।।५७२।।
परम प्रकाण्ड मूर्ति-सभेइ उद्दण्ड। नाना-अस्त्रधारी सभे-परम प्रचण्ड ।।५७३।।
सर्व दस्युगण देखे तार एको जने। शत जनो मारिते पारये सेइ क्षणे ।।५७४।।
सभार गलाय माला, सर्वाङ्गे चन्दन। सभारि बदने निरवधि सङ्कीर्तन ।।५७५।।
नित्यानन्द महाप्रभु आछेन शयने। चतुर्दिगे 'कृष्ण' गाय सेइ-सब-जने ।।५७६।।
दस्युगण देखि बड़ हइल विस्मित। बाड़ी छाड़ि लड़ि बसिलेन एक भित ।।५७७।।
सर्व दस्युगणे युक्ति लागिल करिते। कोथाकार पदातिक आइल एथाते ।।५७८।।
केहो बोले अवधूत केमते जानिया। काहार पाइक आनिआछये मागिया ।।५७९।।
केहो बोले भाइ अवधूत बड़ 'ज्ञानी'। माझे माझे अनेक लोकेर मुखे शुनि ।।५८०।।

कलह क्यों करते हो ।। ५६४ ।। भाई चण्डी माता की इच्छा से जो हुआ सो हुआ एक दिन खाली गया तो क्या सब दिन ही ऐसे जाँयगे ? ।। ५६५ ।। समझ लिया आज स्वयं देवी ने आकर मोह कर दिया क्योंकि बिना चण्डी पूजन किये गये थे ।। ५६६ ।। सो आज अच्छी तरह मदिरा मांस देकर एक स्थान में जाकर सब चण्डी पूजें ।। ५६७ ।। इस प्रकार सब डाकुओं ने युक्ति करके मद्य मांस द्वारा चण्डी का पूजन किया ।। ५६८ ।। दूसरे दिन डाकूवृन्द अनेक अस्त्रों से सजकर और नीले वस्त्र पहिनकर वीर वेश में आये।।५६९।। भयंकर अँधेरी रात्रि थी वे सब लोग सो रहे थे, ऐसे समय में डाकुओं ने आकर घेरा दिया ।। ५७० ।। घर के समीप में खड़े होकर डाकुओं ने देखा कि चारों ओर को अनेक पहरुआ गृह-रक्षा कर रहे हैं ।। ५७१ ।। तब चारों ओर को अस्त्रधारी पैदल सिपाही निरन्तर हरिनाम ग्रहण कर रहे हैं ।।५७२।। सब ही बड़े प्रकाण्ड शरीरधारी उद्दण्ड हैं और अनेक अस्त्र धारण किये हैं, सब बड़े प्रचण्ड रूप में हैं ।। ५७३ ।। सब डाकू देखते थे कि उनमें से एक २ जन उसी क्षण में सौ २ डाकुओं को मार सकता है ।। ५७४ ।। सबके गले में माला है व सबके अङ्गों पर चन्दन लगा हुआ है और निरन्तर सबके मुख से हरिनाम संकीर्तन हो रहा है ।। ५७५ ।। तथा श्रीनित्यानन्द महाप्रभु सो रहे हैं और चारों ओर वे पहरी लोग कृष्ण नाम गान कर रहे हैं ।। ५७६ ।। डाकू देखकर बड़े विस्मित हुए और मकान को छोड़कर एक ओर दूर हटकर बैठ गये ।।५७७।। सब डाकू युक्ति करने लगे कि यहाँ इतने पैदल सिपाही कहाँ से आ गये ।। ५७८ ।। किसी ने कहा "अवधूत किसी प्रकार जान गये इसलिये किसी से प्रार्थना करके पैदल बुला लिये ।। ५७९ ।। किसी ने कहा "अरे भाई बीच २ में अनेक लोगों के मुख से सुना है कि ये अवधूत बड़े ज्ञानी हैं" ।। ५८० ।। अवधूत महाशय

ज्ञानवान् बड़ अवधूत महाशय । आपनार रक्षा किवा आपने करय ॥५८१॥
अन्यथा ये सब देखि पदातिक गण । मनुष्येर प्राय त ना देखि एक जन॥५८२॥
हेन बुझि-एइ सब शक्तिर कारणे । 'गोसाञि' करिया सभे बोलये उहाने ॥५८३॥
आर केहो बोले तुमि अबुध ये भाइ । ये खाय ये परे सेवा केमत गोसाञि ॥५८४॥
सकल दस्युर सेनापति ये ब्राह्मण । से बोलये जानिलाङ सकल कारण ॥५८५॥
यत बड़-बड़ लोक चारि दिग हैते । सभेइ आइसे अवधूतेरे देखिते ॥५८६॥
कोन दिग हैते कोन विश्वास नस्कर । आसियाछे, तार पदातिक बहुतर ॥५८७॥
अतएव पदातिक सकल भावक । एइसे कारणे 'हरि-हरि' करे जप ॥५८८॥
एवा नहे-तोला-पदातिक आनि थाके । तबे कतदिन एडाइव एइ पाके ॥५८९॥
अतएव चल सभे आजि घरे जाइ । चापे चुपे दिन दश थाकि गिया भाइ ॥५९०॥
एत बलि सब दस्युगण गेल घरे । अवधूतचन्द्र प्रभु स्वच्छन्दे बिहरे ॥५९१॥
नित्यानन्द चरण भजये ये-ये जने । सर्व दुःख खण्डे ताहा सभार स्मरणे ॥५९२॥
हेन नित्यानन्द प्रभु बिहरे आपने । ताहाने करिते विघ्न पारे कोन् जने ॥५९३॥
अविद्या खण्डये याँर दासेर स्मरणे । से प्रभुर विघ्न करिवेक कोन जने ॥५९४॥
सर्वगण-सह विघ्ननाथ याँर दास । याँर अंश रुद्र करे जगत विनाश ॥५९५॥
याँर अंश चलिते भुवन कम्प हय । हेन प्रभु नित्यानन्द, कारे तान भय ॥५९६॥
सर्व नवद्वीपे करे स्वच्छन्दे कीर्तन । स्वच्छन्दे करेन क्रीड़ा भोजन शयन ॥५९७॥

बड़े ज्ञानवान् हैं सो अपनी रक्षा आप ही करते होंगे ॥ ५८१ ॥ अन्यथा जो प्यादे दीख रहे हैं उनमें से एक भी मनुष्य जैसे तो दीखते नहीं हैं ॥ ५८२ ॥ ऐसी समझ में आती है कि इन्हीं सब शक्तियों के कारण ही सब लोग इनको (प्रभु) कहते हैं ॥ ५८३ ॥ अन्य किसी ने कहा भैया तुम बड़े अज्ञानी हो जो पदार्थ खाते हैं और अलंकार पहिनते हैं वे कैसे गुसाँई ? ॥ ५८४ ॥ सब डाकुओं का सेनापति जो ब्राह्मण हैं वह बोला कि सब कारण जान लिया ॥ ५८५ ॥ चारों ओर जितने बड़े सब लोग हैं वे सब अवधूत के दर्शन के लिये आये हैं ॥ ५८६ ॥ किसी ओर से कोई राज कर्मचारी लश्कर समेत आये हैं पैदल उन्हीं के मालूम होते हैं ॥ ५८७ ॥ इसी से सब पैदल भक्तिमान् हैं इसी निमित्त से "हरि-हरि" जप कर रहे हैं ॥ ५८८ ॥ अथवा ऐसा न होकर यों होय कि कहीं से भाड़े पर पैदल रक्खे हों यदि ऐसा ही है तो इस प्रकार कितने दिन बितावेंगे ? इसी से चलो आज घर को चलें और भाइयो ! जाकर दश दिन चुपचाप रहो ॥ ५८९-५९० ॥ यों कहकर सब डाकू अपने २ घर चले गये तथा अवधूतचन्द्र (नित्यानन्द) प्रभु स्वच्छन्द विहरने लगे ॥५९१॥ जो-जो जन नित्यानन्द प्रभु के चरणों की सेवा करते हैं उनके स्मरण मात्र से सब दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ ५९२ ॥ ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु स्वयं बिहार करते थे उसमें विघ्न कर सकें ऐसा कौन हैं ? ॥५९३॥ जिनके दास का स्मरण मात्र से ही अविद्या नष्ट हो जाती है उस प्रभु के आगे बिघ्न करें ऐसा कौन है ? ॥ ५९४ ॥ सब गणों के सहित विघ्ननाथ (गणेश) जिनके दास हैं और जिनके अंश रुद्र जगत् का विनाश करते हैं ॥ ५९५ ॥ जिनके अंश (शेष नाग) के हिलने से सब भुवन कम्पायमान होते हैं ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं

सर्व-अङ्गे सकल अमूल्य अलंकार । येन देखि बलदेव-नन्देर कुमार ॥५९८॥
कर्पूर ताम्बूल प्रभु करेन भोजन । ईषत् हासिया मोहे त्रिजगत-मन ॥५९९॥
अभय-परमानन्द बुले सर्व स्थाने । अभय-परमानन्द भक्त गोष्ठीसने ॥६००॥
आर वार युक्ति करि पापी दस्युगणे । आइलेक नित्यानन्द प्रभुर भवने ॥६०१॥
दैवे सेइ दिने महा-मेघे अन्धकार । महा-घोर-निशा-नाहि लोकेर संचार ॥६०२॥
महा भङ्कर निशा चोर दस्युगण । दश पांच अस्त्र एको जनेर काचन ॥६०३॥
प्रविष्ट हइल मात्र बाड़ीर भितरे । सभे हैल अन्ध, केहो देखिते ना पारे ॥६०४॥
किछु नाहि देखे, अन्ध हैल दस्युगण । सभेइ हइल हत-प्राण-बुद्धि-मन ॥६०५॥
केहो गिया पड़े गड़ खाइर भितरे । जोंके पोके डांसे तारे कामड़ाइ मारे ॥६०६॥
उच्छिष्ट गर्त्तेते केहो-केहो गिया पड़े । तथा ओ मरये बिछा-पोकेर कामड़े ॥६०७॥
केहो-केहो पड़े गिया कांटा भितरे । गाये पाये कांटा फुटे, नड़िते ना पारे ॥६०८॥
खालेर भितरे गिया पड़े कोन जन । हाथ पाओ भाङ्गि पड़े, करये क्रन्दन ॥६०९॥
सेइ खाने कारो कारो गाये हैल ज्वर । सब दस्युगण चिन्ता पाइल अन्तर ॥६१०॥
हेनइ समये इन्द्र परम-कौतुकी । करिते लागिला महाझड़ वृष्टि तथि ॥६११॥
एके मरे दस्यु जोंक-पोकेर कामड़े । विशेषे मरये आरो महावृष्टि-झड़े ॥६१२॥
शिला वृष्टि पड़े सब अङ्गेर उपरे । प्राणो नाहि जाय, भासे दुःखेर सागरे ॥६१३॥

उनको किसी का भय नहीं है ॥ ५९६ ॥ सर्व नवद्वीप में स्वाधीनता से कीर्तन-भोजन-शयन व क्रीड़ा आदि करते थे ॥ ५९७ ॥ सब अङ्ग में सब अमूल्य अलंकार धारण किये थे, देखने में ऐसे लगते थे मानों नन्द के कुमार श्रीबलदेवजी हों ॥ ५९८ ॥ कर्पूर सहित ताम्बूल भक्षण करते ईषत् हँस दें तो तीन लोकवासियों के मन को मोहित करते थे ॥ ५९९ ॥ भय रहित परम आनन्दमय भक्त गोष्ठी के साथ निर्भय होकर परम आनन्दमय प्रभु सब जगह भ्रमण करते थे ॥ ६०० ॥ पापी डाकूगण युक्ति करके श्रीनित्यानन्द प्रभु के भवन में दुबारा फिर आये ॥६०१॥ दैववश उसी दिन विशेष मेघ होने के कारण अन्धकार था, अति घोर रात्रि में लोगों का संचार भी नहीं था ॥ ६०२ ॥ रात्रि बड़ी भयंकर होने से चोर डाकूगण दश-पाँच अस्त्रों को लेकर एक २ जने सजे हुए थे ॥ ६०३ ॥ घर के भीतर प्रविष्ट होते ही सब अन्धे हो गये कोई किसी को देख नहीं पाता था ॥ ६०४ ॥ डाकू अन्धे हो गये कुछ दीखता न था तथा सबके प्राण बुद्धि व मन नष्ट हो रहे थे ॥ ६०५ ॥ कोई जाकर घर की मोरी में गिर पड़ा उसे जोंक, कीड़ा व डाँस डंक मार रहे थे ॥ ६०६ ॥ कोई २ उच्छिष्ट डालने के गड्डे में गिर पड़ा वहाँ भी कीड़े काट रहे थे ॥ ६०७ ॥ कोई जाकर काँटों में गिर पड़ा सो शरीर व पाँवों में काँटे लगने से चल फिर नहीं पाता ॥ ६०८ ॥ कोई खाल (खड्डे) में जा पड़ा है जिससे हाथ-पाँव टूटने पर क्रन्दन कर रहा था ॥६०९॥ उसी जगह किसी २ के शरीर में ज्वर हो गया सो मन ही मन सब डाकू चिन्ता में पड़ गये ॥ ६१० ॥ ऐसे ही समय पर परम कौतुकी इन्द्र इस स्थान पर विशेष झड़ व वर्षा करने लगा ॥ ६११ ॥ एक तो डाकू जोंक, कीड़ों के खाने से मर रहे थे और ऊपर से भी विशेष भयंकर वृष्टि व झड़ में मरने लगे ॥ ६१२ ॥ सब अङ्गों पर शिलाओं की वर्षा होने लगी जिससे

हेनसे पड़ये एको महाझनझना । त्रासे मूर्च्छा जाय सभे पासरि आपना ॥६१४॥
महावृष्ट्ये दस्युगण तिते निरन्तर । महाशीते सभार कम्पित कलेवर ॥६१५॥
अन्ध हइयाछे-किछु ना पाय देखिते । मरे दस्युगण महा-झड़-वृष्टि-शीते ॥६१६॥
नित्यानन्द द्रोहे आसियाछे ए लागिया । क्रोधे इन्द्र विशेषे मारेन दुःख दिया ॥६१७॥
कथोक्षणे दस्यु सेनापति ये ब्राह्मण । अकस्मात् भाग्ये तार हइल स्मरण ॥६१८॥
मने भावे विप्र नित्यानन्द नर नहे । सत्य एहो ईश्वर मनुष्ये सत्य कहे ॥६१९॥
एक दिन मोहिलेन सभारे निद्राय । तथापिह ना बुझिलूँ ईश्वर मायाय ॥६२०॥
आर दिन महाद्भुत पदातिक गण । देखाइल, तभो मोर नहिल चेतन ॥६२१॥
योग्य मुञि-पापिष्ठेर ए सब दुर्गति । हरिते प्रभुर धन येन कैलूँ मति ॥६२२॥
ए महा संकटे मोरे के करिब पार । नित्यानन्द बइ मोर गति नाहि आर ॥६२३॥
एत भावि विप्र नित्यानन्देर चरण । चिन्तिया एकान्त भावे लइल शरण ॥६२४॥
से चरण चिन्तिले आपद नाहि आर । सेइक्षणे कोटि अपराधीरो निस्तार ॥६२५॥

कारुण्यशारदा रागेण गीयते ।

कारुण्य-शरण श्रीपदारविन्द जानि । एत चिन्ति स्तुति करे सर्व सार मानि ॥६२६॥
रक्ष-रक्ष नित्यानन्द श्रीबालगोपाल । रक्षा कर प्रभु तुमि सर्व जीव पाल ॥६२७॥
ये जन आछाड़ प्रभु पृथिवीते खाय । पुनश्च पृथिवी तारे हयेन सहाय ॥६२८॥

दुःख के समुद्र में डूबते थे, परन्तु प्राण नहीं जा रहे थे ॥ ६१३ ॥ एक दम विशेष गर्जन के साथ ऐसी बिजली गिरती थी कि अपने को भूलकर सब लोग डरके मारे मूर्च्छित हो जाते थे ॥ ६१४ ॥ भयंकर वृष्टि से सब डाकू निरन्तर भाग रहे थे–तथा विशेष शीत लगने से सबके शरीर काँप रहे थे ॥ ६१५ ॥ प्रथम तो डाकू अन्ध हो रहे थे कुछ देख नहीं पाते थे दूसरे भयकर झड़ वृष्टि व शीत से मर रहे थे ॥ ६१६ ॥ डाकू-गण श्रीनित्यानन्दजी के साथ द्रोह करने के निमित्त से आये थे यह विचार करके इन्द्र विशेष क्रोधयुक्त हो दुःख देकर मार रहा था ॥ ६१७ ॥ कुछ देर में डाकुओं के ब्राह्मण सेनापति को भाग्यवश अकस्मात् स्मरण हुआ ॥६१८॥ विप्र ने मनमें विचार किया कि नित्यानन्द मनुष्य नहीं हैं सत्य ही यह ईश्वर हैं और मनुष्य जो यह कहते हैं कि ये ईश्वर हैं उनका कहना ध्रुव सत्य है ॥ ६१९ ॥ एक दिन तो सबको निद्रा मोहित कर दिया तथापि ईश्वर की माया से समझ नहीं सका ॥ ६२० ॥ दूसरे दिन बड़े अद्भुत प्यादों के दर्शन कराये तब भी मुझे चेत (ज्ञान) नहीं हुआ ॥ ६२१ ॥ हमारे सदृश पापियों की यह सब दुर्गति अत्यन्त योग्य है कारण नित्यानन्द प्रभु के धन को हरण करने की मतियाँ थीं ॥ ६२२ ॥ इस घोर संकट से मुझे कौन पार करेगा ? प्रभु नित्यानन्द के बिना मेरी अन्य गति नहीं है ॥ ६२३ ॥ इस प्रकार ऐसे मनमें चिन्तन करके विप्र ने एकान्त भाव से श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरण-कमलों की शरण ली ॥ ६२४ ॥ उन चरण-कमलों के चिन्तन करते ही उसी क्षण में करोड़ों २ अपराधयुक्त अपराधियों का निस्तार हो जाता है और फिर आपदा नहीं आती॥६२५॥वह श्रीचरण-कमलों को करुणासिन्धु व शरणागतवत्सल जानकर व सबका सार मानकर स्तुति करता है ॥ ६२६ ॥ हे श्रीबालगोपाल नित्यानन्द प्रभो रक्षा करो २, प्रभो तुम सब जीवों के पालक हो

एइमत ये तोमाते अपराध करे । शेषे सेहो तोमार स्मरणे दुःख तरे' ॥६२९॥
तुमिसे जीवेर क्षम' सर्व अपराध । पतित जनेरो तुमि करह प्रसाद ॥६३०॥
तथापि यद्यपि मुञि ब्रह्मघ्न गोवधी । मोरे बड़ आर प्रभु ! नाहि अपराधी ॥६३१॥
सर्व महापातकीओ तोमार शरण । लइले, खण्डये तार सकल वन्धन ॥६३२॥
जन्मावधि तुमिसे जीवेर राख प्राण । अन्तेओ तुमिसे प्रभु कर' परित्राण ॥६३३॥
ए सङ्कट हैते प्रभु कर' आजि रक्षा । यदि जीङ प्रभु ! तवे हैल एइ शिक्षा ॥६३४॥
जन्म जन्म प्रभु तुमि, मुञि तोर दास । किवा जीङ मरों एइ हउ मोर आश'' ॥६३५॥
कृपामय नित्यानन्द चन्द्र अवतार । शुनि करिलेन दस्युगणेर उद्धार ॥६३६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥६३७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीनित्यानन्द विलास-वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्याय

एइमत चिन्तिते सकल दस्युगण । सभार हइल दुइचक्षु-विमोचन ॥१॥
नित्यानन्द स्वरूपेर स्मरण-प्रभावे । झड़ वृष्टि आर कारो देहे नाहि लागे ॥२॥
कथोक्षणे पथ देखि सब दस्युगण । मृतप्राय हइ सभे करिल गमन ॥३॥
सभे घर गिया सेइमते दस्युगण । गङ्गा स्नान करिलेक गिया सेइक्षण ॥४॥
दस्यु सेनापति विप्र कान्दिते कान्दिते । नित्यानन्द चरणे आइल सेइमते ॥५॥

रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ६२७ ॥ प्रभो ! जो प्राणी पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिरता है, पृथ्वी ही उसकी पुनः सहायता करती है ॥ ६२८ ॥ इसी प्रकार जो आपका अपराध करे अन्त में वह आपका स्मरण करने से ही दुःखों से पार होता है ॥ ६२९ ॥ आप सब जीवों के अपराध को क्षमा करते हो और आप ही पतित जनों के ऊपर अनुग्रह भी करते हो ॥ ६३० ॥ यद्यपि मैं ब्रह्म हत्या तथा गौ हत्याकारी हूँ प्रभो ! मुझसे बड़ा और कोई अपराधी नहीं है ॥ ६३१ ॥ जो बड़े २ घोर पातकी भी आपकी शरण लेते हैं—उनके सब बन्धन नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३२ ॥ हे प्रभो ! जन्म से लेकर जीवों के प्राणों की आप ही रक्षा करते हो तथा आप ही अन्त में भी परित्राण करते हो ॥ ६३३ ॥ हे प्रभो ! इस संकट से आज रक्षा करो, यदि प्रभो ! मैं जीऊँगा तो मुझे अब यह शिक्षा हो गई ॥ ६३४ ॥ जीऊँ अथवा मरूँ परन्तु जन्म २ में आपही प्रभु हो और मैं आपका दास हूँ; यह मेरी आश पूर्ण हो ॥ ६३५ ॥ कृपामय अवतार श्रीनित्यानन्दचन्द्र ने सुनकर डाकुओं का विपत्ति से उद्धार कर दिया ॥ ६३६ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके ही युगल चरण-कमलों की महिमा गान करते हैं ॥ ६३७ ॥

सब डाकुओं ने जब इस प्रकार चिन्तन किया तो उसी क्षण में सबके नेत्र खुल गये ॥ १ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के स्मरण प्रभाव से झड़वृष्टि भी अब किसी की देह पर नहीं लगती थी ॥ २ ॥ कुछ क्षण में सब दस्युगण मार्ग के देखते ही मृत के समान हो रुक ही वहाँ से चले गये ॥ ३ ॥ सब दस्युगण उसी

वसिया आछेन नित्यानन्द विश्वनाथ । पतित जनेरे करि शुभ दृष्टिपात ॥६॥
चतुर्दिगे भक्तगण करे हरिध्वनि । आनन्दे हुङ्कार करे अवधूतमणि ॥७॥
सेइ महादस्यु-विप्र हेनइ समये । 'त्राहि' वलि वाहु तुलि दण्डवत् हये॥८॥
आपाद मस्तक पुलकित सर्वअङ्ग । निरवधि अश्रुधारा वहे, महाकम्प ॥९॥
हुङ्कार गर्जन निरवधि विप्र करे । वाह्य नाहि जाने डूवि आनन्दसागरे ॥१०॥
नित्यानन्द स्वरूपेर प्रभाव देखिया । आपना' आपनि नाचे हरषित हैया ॥११॥
"त्राहि वाप नित्यानन्द पतित पावन" । वाहु तुलि एइमत डाके घने घन ॥१२॥
देखि हइलेन सभे परम-विस्मित । "एमत दस्युर केने एमत चरित" ॥१३॥
केहो वोले 'माया वा करिया आसियाछे । कोनो पाक करिया वा हाना सेइ पाछे' ॥१४॥
केहो बोले 'नित्यानन्द पतित पावन । कृपाय वा इहार करिला भाल मन' ॥१५॥
विप्रेर अत्यन्त प्रेमविकार देखिया । जिज्ञासिल नित्यानन्द ईषत् हासिया ॥१६॥
प्रभु वोले "कह विप्र कि तोमार रीत । वड़त तोमार देखि अद्भुत-चरित ॥१७॥
कि शुनिला कि देखिला कृष्ण-अनुभव । किछु चिन्ता नाहि, अकपटे कह सब" ॥१८॥
शुनिआ प्रभुर वाक्य सुकृति ब्राह्मण । कहिते ना पारे किछु, करये क्रन्दन ॥१९॥
गड़ागड़ि जाय पड़ि सकल-अङ्गने । हासे' कान्दे नाचे गाय आपना आपने ॥२०॥
सुस्थिर हइया विप्र तवे कथोक्षणे । कहिते लागिल सब प्रभु विद्यमाने ॥२१॥

प्रकार घर को गये तथा जाकर उसी क्षण गङ्गा में स्नान किया ॥ ४ ॥ डाकुओं का सेनापति ब्राह्मण रोता २ श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणों में उसी प्रकार आया ॥ ५ ॥ विश्व के नाथ श्रीनित्यानन्द प्रभु पतित जनों के ऊपर शुभ दृष्टिपात करने के लिये बैठे थे ॥ ६ ॥ चारों ओर भक्तगण हरिध्वनि कर रहे थे तथा अवधूत-मणि श्रीनित्यानन्दजी आनन्द से हुङ्कार कर रहे थे ॥ ७ ॥ उसी समय प्रधान डाकू विप्र ने भुजाएं उठाकर "रक्षा करो" यों कहकर दण्डवत् की ॥ ८ ॥ मस्तक से चरण पर्यन्त सब अङ्ग में पुलक हो रहा था व आँसुओं की धारा बह रही थी ॥ ९ ॥ ब्राह्मण भी बराबर हुङ्कार व गर्जन करने लगा उसे वाह्य ज्ञान नहीं रहा तथा वह आनन्दसागर में डूब गया ॥ १० ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप का प्रभाव देखकर हरषित हो आप ही नाचने लगा ॥ ११ ॥ "हे पतितपावन नित्यानन्द हे बाप रक्षा करो २" बाहु उठाकर इस प्रकार बारम्बार जोर से बोलने लगा ॥ १२ ॥ उसे देखकर सब ही बड़े विस्मित हुए कारण ऐसे डाकू का ऐसा चरित्र कैसे हो गया ॥१३॥ किसी ने कहा "यह छल करके आया है पीछे किसी प्रकार से अवश्य आक्रमण करेगा॥१४॥ किसी ने कहा नित्यानन्द प्रभु पतित पावन हैं कृपा करके इसका मन अच्छा कर दिया है ॥ १५ ॥ विप्र के शरीर में प्रेम-विकारों को अत्यन्त देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कुछ हँसकर पूछा ॥ १६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा "हे विप्र ! तुम्हारी यह क्या रीति है ? तुम्हारा चरित्र तो देखने में बड़ा अद्भुत लगता है ॥ १७ ॥ कृष्ण का क्या प्रभाव देखा ? क्या सुना है ? कुछ चिन्ता मत करो, सब बात निष्कपटता से कहो ॥ १८ ॥ वह सुकृति ब्राह्मण प्रभु के वाक्यों को सुनकर कुछ कह नहीं सका केवल रोता ही रहा ॥ १९ ॥ सब आँगन में लोट लगाता तथा आप ही आप हँसता, रोता नाचता था व गाता ॥ २० ॥ तब कुछ क्षण में ब्राह्मण

"एइ नवद्वीपे प्रभु वसति आमार । नाम से ब्राह्मण'-व्याध-चण्डाल-आचार ॥२२॥
निरन्तर दुष्ट सङ्गे करि डाका चूरि । परहिंसा वइ जन्मे आर नाहि करि ॥२३॥
मोरे देखि सर्व नवद्वीप कांपे डरे । किवा पाप नाहि हय आमार शरीरे ॥२४॥
देखिया तोमार अङ्गे दिव्य अलङ्कार । ताहा हरिवारे चित्त हइल आमार ॥२५॥
एकदिन साजि बहु पदातिक गण । हरिते' आइलूँ मुञि श्रीअंगेर धन ॥२६॥
से दिन निद्राय प्रभु मोहिला सभारे । तोमार मायाय नाहि जानिलूँ तोमारे ॥२७॥
आर दिन नाना मते चण्डिका पूजिया । आइलाङ खांड़ा छुरी त्रिशूल काचिया ॥२८॥
अद्भुत महिमा देखिलाङ सेइ दिने । सब बाड़ी वेढियाछे पदातिक गणे ॥२९॥
एको पदातिक येन मत्त हस्ति प्राय । आजानुलम्बित माला सभारि गलाय ॥३०॥
निरवधि हरिध्वनि सभार बदने । तुमि आछ एइ गृहे आनन्दे शयने ॥३१॥
हेन से पापिष्ठ चित्त आमा' सभाकार । तभू नाहि वूझिलाङ महिमा तोमार ॥३२॥
'कार पदातिक आसि याछे कोथा हैते' । एत भावि से दिन गेलाङ सेइमते ॥३३॥
तवे आर कथोदिने कालि आइलाङ । आसियाइ मात्र दुइ चक्षु खाइलाङ ॥३४॥
बाड़ीते प्रविष्ट हइ सब दस्युगणे । अन्ध हइ सभे पड़िलाङ नानास्थाने ॥३५॥
कांटा जोंक पोक झड़ वृष्टि शिलापाते । सभे मरि कारो शक्ति नाहिक जाइते ॥३६॥
महा-यमयातना हइल यदि भोग । तवे शेषे सभार हइल भक्ति योग ॥३७॥

सुस्थिर होकर प्रभु के सम्मुख सब प्रसंग कहने लगा ॥ २१ ॥ प्रभो ! इसी नवद्वीप में मेरा निवास है मैं नाम मात्र को ही ब्राह्मण हूँ परन्तु आचार व्याध व चाण्डालों के से हैं ॥ २२ ॥ निरन्तर दुष्टों के संग में डाका व चोरी करता हूँ इस जन्म में दूसरों की हिंसा के अतिरिक्त अन्य कार्य नहीं किया ॥ २३ ॥ मुझे देखकर सब नवद्वीपवासी डर से काँपते हैं; मेरे शरीर से ऐसा कौनसा पाप है जो न हुआ हो ॥ २४ ॥ आपके अङ्ग पर दिव्य अलंकारों को देखकर मेरे मनमें उन्हें चुराने की इच्छा हुई ॥२५॥ एक दिन बहुत से पैदल सजाकर मैं श्रीअङ्ग के धन को हरण करने के लिये आया था ॥ २६ ॥ प्रभो ! उस दिन आपने सबको निद्रा से मोहित कर दिया सो आपकी माया के कारण आपको जान नहीं सका ॥ २७ ॥ दूसरे दिन अनेक प्रकार से चण्डी पूजा करके खड्ग, छुरी, त्रिशूलों से सुसज्जित होकर आया ॥ २८ ॥ उस दिन बड़ी अद्भुत महिमा देखी कि सब घर को घेरकर पैदल प्यादे पहरा दे रहे हैं ॥ २९ ॥ एक २ पैदल मत्तहस्ती के तुल्य था तथा सबके गले में जानुपर्यन्त लम्बी माला शोभा दे रही थी ॥ ३० ॥ सबके मुख से निरन्तर हरिध्वनि सुनाई देती थी तथा आप आनन्द से इस घर में सोते थे ॥ ३१ ॥ तब भी आपकी महिमा को नहीं समझ सका, हमारा सबका मन ऐसा पापिष्ठ है ॥ ३२ ॥ यह किसके पैदल प्यादे हैं ? कहीं से आ गये ? वह दिन रात इसी सोच-विचार में चली गई ॥ ३३ ॥ तब और कुछ दिन पीछे कल रात को आये मात्र आते ही दोनों नेत्रों को खोय बैठे ॥ ३४ ॥ सब डाकू घर में प्रविष्ट होते ही अन्धे होकर सभी अनेक स्थानों में गिर पड़े ॥ ३५ ॥ और सब लोग कांटे, जोंक,कीड़े व झड़वृष्टि और शिलापात के दुःख से मरते रहे किसी को चलने की शक्ति नहीं रही ॥ ३६ ॥ जब भयंकर यमयातना उस समय भोग हुई तब अन्त में सबके हृदय में भक्ति-

तोमार कृपाय सभे तोमार चरण । करिल एकान्तभावे सभेइ स्मरण ॥३८॥
तवे हैल सभार लोचन-विमोचन । हेन महाप्रभु तुमि पतित पावन ॥३६॥
आमि-सब एड़ाइलूँ ए सब यातना । ए तोमार स्मरणेर कोन् वा महिमा ॥४०॥
याँहार स्मरणे खण्डे' अविद्या बन्धन । अनायासे चलियाय वैकुण्ठभुवन ॥४१॥
कहिते कहिते विप्र कान्दे उभ-रा'य । हेन कृपा करे प्रभु अवधूतराय ॥४२॥
शुनिञा सभार हैल महाश्चर्य-ज्ञान । ब्राह्मणेर प्रति सभे करेन प्रणाम ॥४३॥
विप्र बोले "प्रभु मुञि करिलूँ विदाय । ए देह राखिते मोरे आर ना जुयाय ॥४४॥
येन मोर चित्त हैल तोमार हिंसाय । एइमोर प्रायश्चित्त-मरिमु गङ्गाय" ॥४५॥
शुनि अति अकैतव विप्रेर वचन । तुष्ट हइलेन प्रभु, सर्व भक्तगण ॥४६॥
प्रभु बोले "विप्र तुमि भाग्यवन्त बड़ । जन्म जन्म कृष्णेर सेवक तुमि दढ़ ॥४७॥
नहिले एमत कृपा करिवेन केने । ए प्रकाश अन्ये कि देखिये भृत्य विने ॥४८॥
पतित-पावन-हेतु चैतन्य गोसाञि । अवतरि आछेन इहाते अन्य नाञि ॥४६॥
शुन विप्र यतेक पातक कैला तुमि । यदि आर ना कर से सब निलूँ आमि ॥५०॥
पर हिंसा डाका चुरि सब अनाचार । छाड़ गिया सब तुमि, ना करिह आर ॥५१॥
धर्म पथे गिया तुमि लह हरिनाम । तवे तुमि अन्येरे करिवा परित्राण ॥५२॥
यत चोर दस्यु सब डाकिया आनिया । धर्म पथ सभारे लओयाओ तुमि गिया ॥५३॥
एत बलि आपन-गलार माला आनि । तुष्ट हइ ब्राह्मणेर दिलेन आपनि ॥५४॥

योग उदय हुआ ॥ ३७ ॥ आपकी कृपा से सब ही ने आपके चरण-कमलों का एकान्त भाव से स्मरण किया ॥ ३८ ॥ तब सबके नेत्र खुल गये, हे महाप्रभु ! आप ऐसे पतित पावन हैं ॥३६॥ हम सब उस समग्र यातना से मुक्त हो गये यह आपके स्मरण की कोई बड़ी महिमा नहीं है ॥ ४० ॥ जिनके स्मरण करते ही अविद्या बन्धन नष्ट हो जाते तथा अनायास ही वैकुण्ठ लोक को चले जाते हैं ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण कहते २ ऊँचे स्वर से रोने लगा अवधूतराय श्रीनित्यानन्दजी इस प्रकार कृपा करते हैं ॥ ४२ ॥ सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य बोध हुआ यथा सबने ब्राह्मण को प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ विप्र ने कहा "प्रभो ! मैं अब विदा होता हूँ यह देह मुझे और रखना ठीक नहीं है ॥ ४४ ॥ जो मेरा चित्त आपको हिंसा करने को हुआ तो अब गङ्गा में मरूँगा यही मेरा प्रायश्चित है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण के अति कपट रहित वचन सुनकर सब भक्तों सहित श्रीनित्यानन्द प्रभु सन्तुष्ट हुए ॥ ४६ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा "हे विप्र ! तुम बड़े भाग्यवान हो तथा जन्म-जन्मान्तर के दृढ़ कृष्णदास हो ॥ ४७ ॥ यदि सेवक न होते तो ऐसी कृपा क्यों होती ? कारण कि दास के अतिरिक्त इस प्रकाश को क्या अन्य देख सकता है ? ॥ ४८ ॥ श्रीचैतन्य प्रभु पतितों को पवित्र करने के हेतु अवतीर्ण हुए हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ हे विप्र सुनो ! जितने पाप तुमने किये हैं यदि अब और न करो तो मैं सब ले लूँगा ॥ ५० ॥ दूसरों की हत्या, डाका, चोरी आदि दुराचारों को तुम छोड़ दो फिर न करना ॥ ५१ ॥ तुम धर्म मार्ग पर चलते हुए हरिनाम लेना; ऐसा करने से तुम दूसरों को भी परित्राण करोगे ॥ ५२ ॥ तुम जाकर जितने चोर, डाकू हैं सबको बुलाकर सबको धर्म पथ पर लाना ॥ ५३ ॥ इतना कहकर

महा-जयजय-ध्वनि हइल तखन । विप्रेर हइल सवबन्ध विमोचन ॥५५॥
काकु करे विप्र प्रभु चरणे धरिया । क्रन्दन करये अति डाकिया डाकिया ॥५६॥
"अरे प्रभु नित्यानन्द पातकि पावन । मुञि-पातकीरे देओ चरणे शरण ॥५७॥
तोमार हिंसाय से हइल मोर मति । मुञि-पापिष्ठेर कोन् लोके हैव गति" ॥५८॥
नित्यानन्द महाप्रभु-करुणासागर । पादपद्म दिला तार मस्तक उपर ॥५९॥
चरणारविन्द पाइ मस्तके प्रसाद । ब्राह्मणेर खण्डिल सकल अपराध ॥६०॥
सेइ विप्र द्वारे यत चोर-दस्युगण । धर्मपथ लइलेन चैतन्य शरण ॥६१॥
डाका चूरि परहिंसा छाड़ि अनाचार । सभेइ हइल अति साधु-व्यवहार ॥६२॥
सभेइ लयेन हरिनाम लक्षलक्ष । सभे हइलेन विष्णुभक्ति योगदक्ष ॥६३॥
कृष्णप्रेमे मत्त कृष्णगान निरन्तर । नित्यानन्द प्रभु हेन करुणासागर ॥६४॥
अन्य अवतारे केहो झाट नाहि पाय । निरवधि नित्यानन्द 'चैतन्य' लओयाय ॥६५॥
ये ब्राह्मण नित्यानन्दस्वरूप ना माने । ताहारे लओयाय सेइ चोर दस्युगणे ॥६६॥
योगेश्वर-सभे वाञ्छे ये प्रेमविकार । ये अश्रु ये कम्प ये वा पुलक हुङ्कार ॥६७॥
चोर डाकाइतेरे हैल सेइ भक्ति । हेन प्रभु-नित्यानन्द स्वरूपेर शक्ति ॥६८॥
भज भज भाइ हेनप्रभु-नित्यानन्द । याहार प्रसादे पाइ प्रभु गौरचन्द्र ॥६९॥
येइ गाय नित्यानन्दस्वरूप कौतुके । से विहरे अभय परमानन्द-सुखे ॥७०॥

अपने गले की माला लेकर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने सन्तुष्ट होकर स्वयं ब्राह्मण को दी ॥ ५४ ॥ उस समय ऊँचे स्वर से जय जय ध्वनि हुई ब्राह्मण के सब बन्धन नष्ट हो गये ॥५५॥ ब्राह्मण प्रभु के चरण पकड़कर कार्पण्य करने लगा तथा ऊँचे स्वर से चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा ॥ ५६ ॥ पापियों को पवित्र करने वाले हे श्री-नित्यानन्द प्रभो ! मुझ पापी को चरणों में शरण दो ॥ ५७ ॥ आपकी हत्या करने को जो मेरी मति हुई सो मेरे समान पापी की किस लोक में गति होगी ? ॥५८॥ करुणासागर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उसके मस्तक पर अपना चरण-कमल अर्पण किया ॥ ५९ ॥ मस्तक के ऊपर चरण-कमल के प्रसाद को पाते ही ब्राह्मण के सब अपराध नष्ट हो गये ॥ ६० ॥ उसी विप्र के द्वारा जितने चोर, डाकू थे उन सबने धर्म मार्ग ग्रहण कर श्री-चैतन्यदेव की शरण ले ली ॥६१॥ डाका, चोरी पर हिंसा आदि अनाचारों को छोड़कर सब लोग अत्यन्त साधु (परोपकारी) आचरण वाले हो गये ॥ ६२ ॥ सब ही नित्य लक्ष २ हरिनाम लेते तथा विष्णु भक्ति योग में चतुर हो गये ॥ ६३ ॥ कृष्ण प्रेम में मत्त होकर निरन्तर कृष्ण गान करते थे, श्रीनित्यानन्द प्रभु ऐसे करुणासागर हैं ॥ ६४ ॥ अन्य अवतारों में किसी को शीघ्र सिद्धि प्राप्ति नहीं होती, परन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीचैतन्यदेव को निरन्तर ग्रहण करवा रहे हैं ॥ ६५ ॥ जो ब्राह्मण नित्यानन्दस्वरूप को नहीं मानते उन्हें चोर दस्युगण ग्रहण करा रहे थे ॥ ६६ ॥ जो अश्रु, कम्प, पुलक, हुंकार आदि प्रेम विकारों को योगेश्वर सब इच्छा करते थे आज वही प्रेमाभक्ति चोर, डाकुओं को प्राप्त हुई है श्रीप्रभु-नित्यानन्दस्वरूप की शक्ति का ऐसा प्रभाव है ॥ ६७-६८ ॥ हे भाइयो ! ऐसे प्रभु नित्यानन्द का भजन करो भजन करो ! कारण जिसके अनुग्रह से श्रीगौरचन्द्र प्रभु की प्राप्ति हो ॥६९॥ जो श्रीनित्यानन्दस्वरूप का कौतुक से गान करेंगे वे अभय

ये शुनये नित्यानन्द प्रभुर आख्यान। ताहारे मिलिव गौरचन्द्र भगवान् ॥७१॥
दस्युगण मोचन ये चित्त दिया शुने। नित्यानन्द चैतन्य देखिव सेइजने ॥७२॥
हेनमते नित्यानन्द परम कौतुके। विहरेन अभय-परमानन्द-सुखे ॥७३॥
तबे नित्यानन्द सब पारिषद्-सङ्गे। प्रति-ग्रामे ग्रामे भ्रमे' सङ्कीर्तन रङ्गे ॥७४॥
खाना-जोड़ा आर बड़गाछि दोगाछिया। गङ्गार ओ' पार कभु जायेन कुलिया ॥७५॥
विशेषे सुकृति अति बड़गाछिग्राम। नित्यानन्दस्वरूपेर विहारेर स्थान ॥७६॥
बड़गाछि ग्रामेर यतेक भाग्योदय। ताहा कभु कहिते ना पारि समुच्चय ॥७७॥
नित्यानन्दस्वरूपेर पारिषदगण। निरवधि सभेइ परमानन्द-मन ॥७८॥
कारो कोनो कर्म नाहि सङ्कीर्तन-विने। सभार गोपालभाव बाढे क्षणेक्षणे ॥७९॥
वेत्र वंशी शिङ्गा छांददड़ि गुंजाहार। ताड़ खाड़ु हाथे पाये नूपुर सभार ॥८०॥
निरवधि सभार शरीरे कृष्णभाव। अश्रु कम्प पुलक-यतेक अनुराग ॥८१॥
सभार सौन्दर्य येन अभिन्न-मदन। निरवधि सभेइ करेन संकीर्तन ॥८२॥
पाइया अभय स्वामी प्रभु नित्यानन्द। निरवधि कौतुके थाकेन भक्तवृन्द ॥८३॥
नित्यानन्दस्वरूपेर दासेर महिमा। शत वर्ष यदि कहि तभू नहे सीमा ॥८४॥
तथापिह नाम कहि-जानि याँर याँर। नाममात्र स्मरणेओ तरिये संसार ॥८५॥
याँर याँर सङ्गे नित्यानन्देर विहार। सभे नन्दगोष्ठी-गोप-गोपी-अवतार ॥८६॥

परम आनन्दमय सुख में विहार करेंगे ॥ ७० ॥ जो श्रीनित्यानन्द प्रभु के आख्यानों को सुनेंगे उनको श्री-गौरचन्द्र भगवान् अवश्य मिलेंगे ॥ ७१ ॥ डाकुओं के मोचन प्रसंग को जो मन देकर सुनेंगे वे श्रीनित्यानन्द व श्रीचैतन्य के अवश्य दर्शन करेंगे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु विशेष कौतुक पूर्वक अभय हो परमानन्द सुख से विहार कर रहे थे ॥ ७३ ॥ तब सब पारिषदों के साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने संकीर्तन के प्रेम में रंग से गाँव-गाँव में भ्रमण किया ॥ ७४ ॥ खानाजोड़ा-दोगाछिया-बड़गाछि नामक ग्रामों में गये कभी गङ्गा के पार कुलिया नगर को भी जाते थे ॥७५॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप का विहार स्थान होने के कारण बड़गाछि ग्राम विशेष रूप से अति सुकृतिशाली था ॥ ७६ ॥ बड़गाछि ग्राम का जितना भाग्योदय हुआ उसका कहने से कभी अन्त नहीं होगा ॥ ७७ ॥ नित्यानन्दस्वरूप के पार्षदवृन्द का मन निरवधि परम आनन्दमय रहता था ॥ ७८ ॥ तथा किसी का संकीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं था तथा सबका गोपाल भाव क्षण-क्षण में बढ़ता था ॥ ७९ ॥ वेंत, वंशी, सींग, छांदडोरी, गुंजामाला, ताड़पत्र हाथों में रहते थे व सबके चरणों में नूपुर थे ॥ ८० ॥ सबके शरीरों में कृष्णभाव निरन्तर रहता था जिससे अश्रु, कम्प, पुलक आदि जितने प्रेम लक्षण हैं—सदा बने रहते थे ॥ ८१ ॥ सबकी ऐसी है सुन्दरता जो कामदेव से अभिन्न थी तथा सभी निरन्तर संकीर्तन करते रहते थे ॥ ८२ ॥ अभयदाता स्वामी श्रीनित्यानन्द को पाकर भक्तवृन्द निरन्तर कौतुकी बने रहते थे ॥ ८३ ॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु के दासों की महिमा यदि सौ वर्ष तक कहें तो भी समाप्त नहीं होगी—॥ ८४ ॥ तथापि जिन-जिनके नाम को जानता हूँ उनको कहता हूँ नामों के स्मरण मात्र से ही संसार से पार हो जाओगे ॥ ८५ ॥ जिन २ के संग में श्रीनित्यानन्द का बिहार होता था वे सब श्री-

नित्यानन्द स्वरूपेर निषेध लागिया । पूर्व नाम ना लिखिल विदित करिया ॥८७॥
परम पार्षद-रामदास महाशय । निरवधि ईश्वर-भावे से कथा कय' ॥८८॥
याँर वाक्य केहो झाट ना पारे बुझिते । निरवधि नित्यानन्द यांर हृदयेते ॥८९॥
सभार अधिक भावग्रस्त रामदास । तानदेहे कृष्ण आछिलेन तिन मास ॥९०॥
"श्रीदाम करिया यारे भागवते कहे । रामदासे सेइभाव जानिह निश्चये" ॥९१॥
प्रसिद्ध चैतन्यदास मुरारि पण्डित । याँर खेला महासर्प-व्याघ्रेर सहित ॥९२॥
रघुनाथ-वैद्य उपाध्याय महामति । याँर दृष्टि पाते कृष्णे हय रति मति ॥९३॥
प्रेमभक्ति-रसमय गदाधर दास । याँर दरशन-मात्र सर्व-पाप-नाश ॥९४॥
प्रेमरस-समुद्र-सुन्दरानन्द नाम । नित्यानन्दस्वरूपेर पार्षद प्रधान ॥९५॥
पण्डित कमलाकान्त-परम-उद्दाम । याँहारे दिलेन नित्यानन्द सप्तग्राम ॥९६॥
गौरीदासपण्डित-परम भाग्यवान् । काय मनो वाक्ये नित्यानन्द याँर प्राण ॥९७॥
बड़गाछि निवासी सुकृति कृष्णदास । याहार मन्दिरे नित्यानन्देर विलास ॥९८॥
पुरन्दर पण्डित-परम शान्त दान्त । नित्यानन्द स्वरूपेर बल्लभ एकान्त ॥९९॥
नित्यानन्द जीवन परमेश्वर दास । जाँहार विग्रहे नित्यानन्देर विलास ॥१००॥
धनञ्जय पण्डित-महान्त विलक्षण । याँहार हृदये नित्यानन्द अनुक्षण ॥१०१॥
प्रेमरसे महामत्त-बलरामदास । याँहार बातासे सब पाप याय नाश ॥१०२॥
यदुनाथ कविचन्द्र-प्रेमरसमय । निरबधि नित्यानन्द याँहार हृदय ॥१०३॥

नन्दराज की सभा के गोप-गोपियों के अवतार थे ॥ ८६ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के निषेध करने से पहिले नाम विदित करके नहीं लिखे हैं ॥ ८७ ॥ महाशय रामदासजी प्रधान पार्षद थे निरन्तर ईश्वर भाव में कथा कहते रहते थे ॥ ८८ ॥ उनके वाक्यों को कोई शीघ्र समझ नहीं पाते थे तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु उनके हृदय में निरन्तर निवास करते थे ॥ ८९ ॥ श्रीरामदासजी सबसे अधिक भावग्रस्त रहते थे उनके शरीर में तीन महीने तक कृष्णावेश रहा था ॥ ९० ॥ श्रीभागवत में श्रीदाम नाम से जो सम्बोधित हैं श्रीरामदास में निश्चय वही भाव जानो ॥ ९१ ॥ मुरारि पण्डित चैतन्यदास नाम से प्रसिद्ध हैं जो अजगर सर्प व व्याघ्रों से खेलते थे ॥ ९२ ॥ महामति रघुनाथ वैद्योपाध्याय थे जिनके दृष्टिपात से ही कृष्ण में रति व बुद्धि हो जाती थी ॥ ९३ ॥ श्रीगदाधरदासजी प्रेम भक्ति के रस से पूरित थे जिनके दर्शन मात्र से ही सब पाप नष्ट हो जाते थे ॥ ९४ ॥ सुन्दरानन्द नामक प्रेमरस के समुद्र थे वे नित्यानन्द के पार्षदों में प्रधान थे ॥ ९५ ॥ पण्डित कमलाकान्त बड़े उद्दण्ड थे, जिनको श्रीनित्यानन्दजी ने सप्तग्राम का वास दिया ॥ ९६ ॥ पण्डित गौरीदास बड़े भाग्यवान् थे शरीर मन व वाणी से श्रीनित्यानन्द ही जिनके प्राण थे ॥ ९७ ॥ बड़गाछि निवासी कृष्णदासजी बड़े सुकृती थे उन्हीं के मन्दिर में श्रीनित्यानन्द प्रभु का विलास होता था ॥ ९८ ॥ श्रीपुरन्दर पण्डित बड़े शान्त व दास थे वे श्रीनित्यानन्दस्वरूप के एकान्त प्रिय थे ॥ ९९ ॥ श्रीपरमेश्वरदासजी श्रीनित्यानन्द के जीवन ही थे जिनके शरीर में नित्यानन्द का विलास होता था ॥१००॥ श्रीधनंजय पण्डित विलक्षण महन्त थे जिनके हृदय में श्रीनित्यानन्द प्रभु क्षण-क्षण में स्फुरित होते थे ॥ १०१ ॥ श्रीबलरामदास प्रेमरस में बड़े

जगदीश पण्डित-परम ज्योतिर्धाम । सपार्षदे नित्यानन्द याँर धन प्राण ॥१०४॥
पण्डित-पुरुषोत्तम-नवद्वीपे जन्म । नित्यानन्दस्वरूपेर महा भृत्य मर्म ॥१०५॥
पूर्व याँर घरे नित्यानन्देर वसति । याँहार प्रसादे हय नित्यानन्दे मति ॥१०६॥
राढ़े जन्म महाशय विप्र-कृष्णदास । नित्यानन्द पारिषदे याँहार विलास ॥१०७॥
प्रसिद्ध कालिया कृष्णदास त्रिभुवने । गौरचन्द्र लभ्य हय याँहार स्मरणे ॥१०८॥
सदा शिव कविराज-महाभाग्यवान् । याँर पुत्र-श्रीपुरुषोत्तमदास-नाम ॥१०९॥
वाह्य नाहि पुरुषोत्तमदासेर शरीरे । नित्यानन्दचन्द्र याँर हृदये विहरे ॥११०॥
उद्धारनदत्त-महावैष्णव उदार । नित्यानन्द सेवाय याँहार अधिकार ॥१११॥
महेश पण्डित-अति परम महान्त । परमानन्द-उपाध्याय-वैष्णव एकान्त ॥११२॥
चतुर्भुज पण्डित नन्दन गङ्गादास । पूर्वे याँर घरे नित्यानन्देर विलास ॥११३॥
आचार्य-वैष्णवानन्द-परम-उदार । पूर्व रघुनाथपुरी नाम ख्याति याँर ॥११४॥
प्रसिद्ध परमानन्द गुप्त महाशय । पूर्व याँर घरे नित्यानन्देर आलय ॥११५॥
कृष्णदास देवानन्द दुइ शुद्ध मति । महान्त आचार्यचन्द्र-नित्यानन्द गति ॥११६॥
गायन माधवानन्द घोष महाशय । वासुदेव घोष-अति प्रेमरसमय ॥११७॥
महाभाग्यवन्त जीव पण्डित उदार । याँर घरे नित्यानन्दचन्द्रेर विहार ॥११८॥
नित्यानन्द प्रिय-मनोहर, नारायण । कृष्णदास देवानन्द-एइ चारिजन ॥११९॥

मत्त रहते थे जिनकी पवन के स्पर्श से ही सब पाप नष्ट हो जाते थे ॥ १०२ ॥ श्रीयदुनाथ उपनाम (कविचंद्र) प्रेम रसमय थे जिनके निरन्तर हृदय में श्रीनित्यानन्द गौर स्थित रहते थे ॥ १०३ ॥ श्रीजगदीश पण्डित बड़े ज्योति के स्थान थे और पार्षदों सहित श्रीनित्यानन्द जिनके प्राणधन थे ॥ १०४ ॥ श्रीपुरुषोत्तम पण्डित का नवद्वीप में जन्म हुआ था वे श्रीनित्यानन्दस्वरूप के बड़े मर्मज्ञ दास थे ॥ १०५ ॥ पहिले जिनके घर में श्री-नित्यानन्दजी का वास हुआ तथा जिनकी कृपा से श्रीनित्यानन्दजी में बुद्धि होती है ॥ १०६ ॥ राढ़ देस-वासी कृष्णदास विप्र बड़े उदार थे श्रीनित्यानन्द पार्षदों में उनकी गिनती थी ॥ १०७ ॥ तीनों लोकों में कालिया कृष्णदास प्रसिद्ध थे जिनके स्मरण से ही श्रीगौरचन्द्र की प्राप्ति होती है ॥ १०८ ॥ सदाशिव कविराज बड़े भाग्यवान् थे जिनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमदास नाम के थे ॥१०९॥ श्रीनित्यानन्दचन्द्र उनके हृदय में विहार करते थे इस कारण पुरुषोत्तमदासजी के शरीर में वाह्य ज्ञान नहीं रहता था ॥११०॥ श्रीउद्धारन-दत्त बड़े उदार वैष्णव थे जिनको श्रीनित्यानन्द की सेवा करने का अधिकार प्राप्त था ॥ १११ ॥ महेश पण्डित परम महन्त थे तथा परमानन्द उपाध्याय बड़े एकनिष्ठ वैष्णव थे ॥ ११२ ॥ पण्डित चतुर्भुज के पुत्र श्रीगङ्गादास थे पहिले जिनके घर में श्रीनित्यानन्दजी ने विलास किया था ॥ ११३ ॥ श्रीवैष्णवानन्द आचार्य बड़े उदार थे पहिले रघुनाथपुरी नाम से जिनकी ख्याति थी ॥ ११४ ॥ महाशय परमानन्द गुप्त बड़े प्रसिद्ध थे जिनके घर में पहिले श्रीनित्यानन्द का निवास स्थान था ॥ ११५ ॥ श्रीकृष्णदास व श्रीदेवानन्द दोनों शुद्ध बुद्धि के थे तथा महन्त आचार्यचन्द्र के तो श्रीनित्यानन्दजी ही गति थे ॥ ११६ ॥ उदार माध-वानन्द घोष गवैया थे श्रीवासुदेव घोष प्रेमपूर्ण थे तथा श्री जीव पण्डित बड़े भाग्यवान थे जिनके घर में

हिरण्य पण्डित आर द्विज कृष्णदास । याँर घरे निरवधि प्रभुर विलास ॥१२०॥
यत भृत्य नित्यानन्दचन्द्रेर सहिते । शत-वत्सरेओ ताहा ना पारि लिखिते ॥१२१॥
सहस्र-सहस्र एको सेवकेर गण । नित्यानन्द प्रसादे ताँराओ गुरु-सम ॥१२२॥
श्रीचैतन्यरसे सभे परम उद्दाम । सभार चैतन्य नित्यानन्द-धन प्राण ॥१२३॥
किछु मात्र आमि लिखिलाङ जानि याँरे । सकल विदित हैव वेदव्यास-द्वारे ॥१२४॥
सर्व शेष भृत्य तान-वृन्दावनदास । अवशेष पात्र-नारायणी-गर्भ जात ॥१२५॥
अद्यापिह वैष्णव मण्डले याँर ध्वनि । 'चैतन्येर अवशेष पात्र नारायणी' ॥१२६॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१२७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीनित्यानन्द चरित्र-वर्णनं नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्याय

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द । जय हउ यत तोमार चरणेर भृङ्ग ॥१॥
हेन मते महाप्रभु नित्यानन्दचन्द्र । सर्व-दास-सङ्गे करे कीर्तन आनन्द ॥२॥
वृन्दावन मध्ये येन करिलेन लीला । सेइमत नित्यानन्दस्वरूपेर खेला ॥३॥
अकैतव रूपे सर्व जगतेर प्रति । लओयायेन श्रीकृष्णचैतन्ये रति मति ॥४॥
पतित पावन-वाना नित्यानन्द प्रभु । ताँहार चरण बिनु ना सेविह कभू ॥५॥

श्रीनित्यानन्दजी का बिहार होता था ॥ ११७-११८ ॥ श्रीमनोहर, श्रीनारायण, श्रीकृष्णदास, श्रीदेवानन्द ये चारों भक्त श्रीनित्यानन्दजी के अत्यन्त प्रिय थे॥११९॥ श्रीहिरण्य पण्डित और द्विज कृष्णदास वे थे जिनके घर में निरन्तर प्रभु का विलास होता था ॥ १२० ॥ श्रीनित्यानन्दचन्द्र के साथ जितने भृत्यगण थे उनको सौ वर्ष में भी नहीं लिख पावेंगे ॥ १२१ ॥ एक २ दास के हजारों २ सेवक हैं वे भी नित्यानन्द के अनुग्रह से गुरू के समान हैं ॥ १२२ ॥ श्रीचैतन्य प्रेमरस में सभी बड़े उद्दाम हो रहे थे और प्रभु श्रीचैतन्य नित्यानन्द सभी के प्राण-धन थे ॥ १२३ ॥ मैं जिनको जानता हूँ उनके विषय में कुछ थोड़ासा लिखा है बाकी और तो श्रीवेदव्यास द्वारा विदित होगा ॥१२४॥ अवशेष पात्र नारायनी के गर्भ से उत्पन्न वृन्दावनदास ही श्रीनित्यानन्द प्रभु का सबसे न्यूनतम अन्तिम सेवक है ॥ १२५ ॥ आज पर्यन्त भी वैष्णवमण्डल में यह ध्वनि है कि चैतन्य की अवशेष पात्र नारायणी हैं ॥ १२६ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) श्रीकृष्ण-चैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके ही युगल चरण-कमलों की महिमा गान करते हैं ॥ १२७ ॥

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य व नित्यानन्द की जय हो २ तथा आपके चरण-कमलों के रसास्वादी भौरों की जय हो ॥ १ ॥ इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु सब सेवकों के संग कीर्तन द्वारा आनन्द की वर्षा करते थे ॥ २ ॥ जैसे वृन्दावन में लीला की थी उसी भाँति श्रीनित्यानन्दस्वरूप के सब खेल थे ॥३॥ वे निष्कपट रूप से सब जगत् की रीति-मति को श्रीकृष्णचैतन्य में अर्पण करा रहे थे ॥४॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु ने पतितों को पावन (पवित्र)

अतिशय मूर्ख-जन ना जाने महिमा । बोले अन्य बोल सेइ पापिष्ठेर सीमा ॥६॥
*जय नित्यानन्द चैतन्येर प्रियतम । त्रिजगते आर केहो नाहि तोमा सम ॥७॥
आनन्दकन्द महाप्रभु प्रेम भक्तिदाता । ये सेवये सेइ भक्ति पायेत सर्वथा ॥८॥
सकल जीवेर प्रभु करिला प्रसाद । चेमिला सकल महा-महा अपराध ॥९॥
श्रीकृष्णचैतन्यदेव नित्यानन्द नाम । पृथिवीर भाग्य अवतारि अनुपाम ॥१०॥
आर कि कहिब कथा भाग्येर अवधि । श्रीचैतन्य नित्यानन्द महा गुणनिधि ॥११॥
अभिमान दुरन्त तथि ना पाइ कृष्णे रति । इहा जानि नित्यानन्दे करह भकति ॥१२॥
याहार प्रसादे पामर पाइल निस्तार । हेन प्रभु-नाम हार हउक गलार ॥१३॥
जय जय नित्यानन्द प्रेममय (रूप) धाम । स्वभावे परम शुद्ध नित्यानन्द नाम ॥१४॥
जगत-तारण हेतु याँर अवतार । ये जन ना भजे सेइ पापेर आकर ॥१५॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द एक देह । इहाते निश्चय करि कर एक नेह ॥१६॥
परमानन्दमय दुँहु मूरति रसाल । निताइ चैतन्यप्रभु श्रीरामगोपाल ॥१७॥
इहाते करए भिन्न अति बुद्धिहीन । आर ना देखिये तार विष्णु भक्ति चिह्न ॥१८॥
जय जय शची सुत आनन्द विहार । पतित पावन नाम विदित याहार ॥१९॥
निज नाम दिया जीव निस्तार करिल । हेन दयामय प्रभु भजिते नारिल ॥२०॥
काय-वाक्य-मने मोर प्रभुर शरण । मोर बड़ पतित नाहिक त्रिभुवन ॥२१॥

करने का बाना ले रक्खा है अत: उनके चरणों के अतिरिक्त और किसी की सेवा न करो ॥ ५ ॥ अत्यन्त मूर्ख मनुष्य महिमा नहीं जानते तथा ऊट-पटांग शब्द बोलते हैं वे पापिष्ठों की पराकाष्ठा हैं ॥६॥ श्रीचैतन्य के प्रियतम श्रीनित्यानन्दजी की जय हो तीनों लोक में अन्य कोई आपके समान नहीं है ॥७॥ प्रेमभक्ति दाता आनन्दकन्द श्रीनित्यानन्द प्रभु की जो सेवा करते हैं उन्हीं को सर्वथा भक्ति प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ प्रभु ने सभी जीवों पर कृपा की है—उनने सभी के महान् अपराध क्षमा कर दिये हैं ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य व नित्यानन्द नामक प्रभु पृथ्वी के भाग्य से ही अपूर्व अवतार हुए हैं ॥ १० ॥ श्रीचैतन्यदेव श्रीनित्यानन्दजी बड़े गुणनिधि प्रभु हैं और क्या कहूँ वे तो भाग्य की सीमा ही हैं ॥ ११ ॥ दुराचारी व अभिमानियों को कृष्ण रति प्राप्त नहीं होती है यही जानकर श्रीनित्यानन्दजी के चरणों में भक्ति करो ॥१२॥ जिनकी कृपा से पामरों (नीचों) का भी निस्तार हो गया ऐसे प्रभु के नाम मेरे गले में हार हों ॥ १३ ॥ प्रेममय धाम श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो और नित्यानन्द नाम तो स्वाभाविक ही परम शुद्ध है ॥ १४ ॥ जगत् के उद्धार के निमित्त ही जिनका अवतार हुआ है जो मनुष्य उनको नहीं भजते हैं वे पापों की खानि हैं ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य व श्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों एक देह हैं ऐसा निश्चय करके एकसा स्नेह करो ॥ १६ ॥ दोनों ही परम आनन्दमय रसाल मूर्ति हैं तथा दोनों ही श्रीनित्यानन्द व चैतन्य प्रभु श्रीराम व श्रीकृष्ण हैं ॥ १७ ॥ इसमें जो भेद करते हैं वे अतिशय बुद्धिहीन हैं और उनको विष्णु भक्ति के चिन्ह नहीं दीखेंगे ॥ १८ ॥ प्रेमानन्द बिहारकारी शची पुत्र की जय हो २ और जिनका पतित पावन नाम विदित है ॥१९॥ अपने नाम को दान देकर जीवों का निस्तार किये हैं हाय ऐसे दयामय प्रभु को नहीं भजन कर सका ॥ २० ॥ शरीर

* ७ से २६ पयार तक अन्य पुस्तकों में पाठाधिक है ।

जय जय गौरचन्द्र भुवन सुन्दर । प्रकाशह पाद मोर हृदय-भितर ॥२२॥
यत यत बिहार करिला गौड़देशे । सकल प्रकाश मोर हउक विशेषे ॥२३॥
जय जय लक्ष्मीकान्त त्रिभुवन नाथ । चरणे शरण मोर हउक एकान्त ॥२४॥
आर अवतारे कहि नाना विध धर्म्म । केवल कहिल एवे प्रेम-भक्ति मर्म ॥२५॥
इहाते याहार मति नहिल आनन्द । ताहारेइ जानिह पापिष्ठ महा अन्ध ॥२६॥
सङ्गे पारिषदगण-परम उद्दाम । सर्व नवद्वीपे भ्रमे महा ज्योतिर्धाम ॥२७॥
अलंकार मालाय पूर्णित कलेवर । कर्पूर-ताम्बूल शोभे सुरंग अधर ॥२८॥
देखि नित्यानन्द महाप्रभुर विलास । केहो सुख पाय, कारो ना जन्मे विश्वास ॥२९॥
सेइ नवद्वीपे एक आछेन ब्राह्मण । चैतन्येर सङ्गे तान पूर्व अध्ययन ॥३०॥
नित्यानन्दस्वरूपेर देखिया विलास । चित्ते किछु तान जन्मियाछे अविश्वास ॥३१॥
चैतन्यचन्द्रेते तान बड़ दृढ़-भक्ति । नित्यानन्दस्वरूपेर ना जानेन शक्ति ॥३२॥
दैवे सेइ ब्राह्मण गेलेन नीलाचले । तथाइ आछेन कथोदिन कुतूहले ॥३३॥
प्रति दिन जाय विप्र चैतन्येर स्थाने । परम विश्वास तान प्रभुर चरणे ॥३४॥
दैवे एक दिन सेइ ब्राह्मण निभृते । चित्ते इच्छा करिलेन किछु जिज्ञासिते ॥३५॥
विप्र बोले प्रभु मोर एक निवेदन । करिमु तोमार स्थाने, यदि देह मन ॥३६॥
मोरे यदि भृत्य हेन ज्ञान थाके मने । इहार कारण प्रभु कह श्रीवदने ॥३७॥

वाणी व मन से मैं प्रभु की शरणागति हूँ देखो मुझसे अधिक पतित तीनों लोकों में नहीं है ॥ २१ ॥ भुवन सुन्दर श्रीगौरचन्द्र की जय हो २ प्रभो ! मेरे हृदय में अपने चरण-कमलों का प्रकाश करो ॥ २२ ॥ गौड़देश में जितना बिहार किया है वह सब मेरे हृदय में विशेष रूप से प्रकाशित हो ॥ २३ ॥ हे त्रिभुवननाथ लक्ष्मी-कान्त आपकी जय हो २ आपके चरणों में मुझे एकान्त शरण मिले ॥ २४ ॥ अन्य अवतारों में अनेक प्रकार के धर्म उपदेश किये थे; परन्तु इस अवतार में तो केवल प्रेम-भक्ति का ही मर्म कहा है ॥२५॥ इसमें जिसकी बुद्धि को आनन्द न हो उसे महापापी व अन्धा ही जाना ॥ २६ ॥ बड़े उद्दाम पारिषदों के साथ में बड़े ज्योतिर्धाम श्रीनित्यानन्दजी सब नवद्वीप में भ्रमण करते थे ॥२७॥ अलंकार व मालाओं से सब शरीर भरा था तथा कर्पूरयुक्त ताम्बूल से सुन्दर रँगे हुए होंट शोभा पा रहे थे ॥२८॥ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु के विलास को देखकर कोई सुख पाते थे व किसी को विश्वास उदय नहीं होता था ॥२९॥ उसी नवद्वीप में एक ब्राह्मण रहता था पहिले श्रीचैतन्य प्रभु का सह-पाठी था ॥३०॥ नित्यानन्दस्वरूप के विलास को देखकर उसके चित्त में कुछ अविश्वास उत्पन्न हो गया ॥ ३१ ॥ उसकी श्रीचैतन्यचन्द्र में तो बड़ी दृढ़ भक्ति थी, परन्तु श्रीनित्यानन्दस्वरूप की शक्ति को वह नहीं जान सका ॥ ३२ ॥ दैववश वह ब्राह्मण नीलाचल को गया वहाँ कुछ दिन कुतूहल से रहे ॥ ३३ ॥ वह विप्र प्रतिदिन चैतन्य के स्थान में जाता था प्रभु के चरणों में उसका बड़ा विश्वास था ॥ ३४ ॥ दैववश एक दिन उस ब्राह्मण ने एकान्त में बैठकर कुछ पूँछने की मनमें इच्छा की ॥ ३५ ॥ विप्र ने कहा प्रभो ! मेरा एक निवेदन है यदि विचार करें तो निवेदन करूँ ? ॥ ३६ ॥ प्रभो ! यदि मेरे प्रति आपका भृत्य होने का भाव आपके मनमें है तो श्रीमुख से इसका कारण निवेदन करें ? ॥३७॥

नवद्वीपे गिया नित्यानन्द अवधूत । किछुत ना बूझों मुञि करेन कि-रूप ॥३८॥
सन्यास आश्रम तान बोले सर्वजन । कर्पूर ताम्बूल से भक्षण अनुक्षण ॥३९॥
धातु द्रव्य परशिते नाहि सन्यासीरे । सोणा रूपा मुक्ता से सकल कलेवरे ॥४०॥
काषाय-कौपीन छाड़ि दिव्य पट्टवास । धरेन चन्दन माला सदाइ विलास ॥४१॥
दण्ड छाड़ि लौहदण्ड धरेन वा केने । शूद्रेर आश्रमे से थाकेन सर्व क्षणे ॥४२॥
शास्त्र-मत मुञि तान ना देखों आचार । एतेके मोहोर चित्ते सन्देह अपार ॥४३॥
'बड़लोक' बलि ताँरे बोले सर्व जने । तथापि आश्रमाचार ना करेन केने ॥४४॥
यदि मोरे 'भृत्य' हेन ज्ञान थाके मने । कि मर्म इहार, प्रभु कह श्रीवदने ॥४५॥
सुकृति ब्राह्मण प्रश्न कैल शुभ क्षणे । अमायाय प्रभु तत्त्व कहिलेन ताने ॥४६॥
शुनिञा विप्रेर वाक्य गौराङ्गसुन्दर । हासिया विप्रेर प्रति करिला उत्तर ॥४७॥
शुन विप्र यदि महा-अधिकारी हय । तवे तान गुण दोष किछु ना जन्मय ॥४८॥

तथाहि भागवते ११।२०।३६

"न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः । साधूनां समचित्तानां बुद्धेः पारमुपेयुषाम्"॥१॥

पद्म पत्रे कभू येन ना लागये जल । एइ मत नित्यानन्दस्वरूप निर्मल ॥४९॥
परमार्थे कृष्णचन्द्र ताहान शरीरे । निश्चय जानिह विप्र सर्वदा बिहरे ॥५०॥
अधिकारी वइ करे ताहान आचार । दुःख पाय सेइ जन, पाप जन्मे तार ॥५१॥

अवधूत श्रीनित्यानन्दजी नवद्वीप में जाकर किस प्रकार की लीला करते हैं मैं तो कुछ समझ नहीं पाता? ॥३८॥ उनको सब लोग सन्यास आश्रमी बतलाते हैं और वे सब समय कर्पूर व ताम्बूल भक्षण करते रहते हैं ॥ ३९ ॥ सन्यासी तो धातु द्रव्य का स्पर्श किया नहीं करते, परन्तु वे अपने सब शरीर में सोना, चाँदी, मुक्तादि धारण करते हैं ॥४०॥ और गैरिक (काषाय) कोपीन छोड़कर सदा दिव्य रेशमी वस्त्र, चन्दन माला आदि विलासी सामिग्री धारण करते हैं ॥ ४१ ॥ तथा दण्ड छोड़कर न जाने लौहदण्ड क्यों धारण करते हैं? और सदा ही शूद्रों के घरों में रहते हैं ॥४२॥ शास्त्र में सन्यासियों के आचार सम्बन्ध में जो व्यवस्था है उसके अनुसार मैं तो उनके आचार कुछ भी नहीं देखता हूँ इसी कारण से मेरे मनमें अपार सन्देह है ॥ ४३ । सब मनुष्य तो उनको "बड़े लोग हैं" यों कहकर बोलते हैं तथापि वे आश्रमोचित आचार क्यों नहीं करते? ॥ ४४ ॥ यदि आप मेरे प्रति मनमें दास ज्ञान रखते हो तो प्रभो! इसका क्या मर्म है श्रीमुख से कहें? ॥४५॥ सुकृति ब्राह्मण ने शुभ क्षण में प्रश्न किया था प्रभु ने निष्कपट भाव से उससे तत्त्व वर्णन किया ॥ ४६ । श्रीगौराङ्गसुन्दर विप्र के वाक्य सुनकर हँसे तथा उसके प्रति उत्तर दिया ॥ ४७ ॥ हे विप्र! सुनो यदि श्रेष्ठ अधिकारी होय तो उनको गुण दोष नहीं लगते हैं ॥ ४८ ॥ जिनके रागादि दोष विशेष रूप से दूर हो गये हैं व जो लोग सबन को समान भाव से देखते हैं सुतरां जो लोग प्रकृति से परे परमेश्वर को प्राप्त हुए हैं मेरे उन एकान्त भक्तों को विधिनिषेध जनित पाप व पुण्यों के साथ सम्पर्क नहीं होता ॥१॥ जैसे कमल के पत्ते में कभी जल नहीं लगता इसी प्रकार नित्यानन्दस्वरूप निर्मल हैं ॥ ४९ ॥ हे विप्र! तुम यह निश्चय ही जान लो कि परमार्थतत्व में कृष्णचन्द्र उनके शरीर में सदा बिहार करते हैं ॥५०॥ अधिकारी

रुद्र बिने अन्ये यदि करे विष-पान । सर्वथाय मरे सर्व पुराण प्रमाण ॥५२॥

तथाहि भागवते १० स्कन्धे ३३ अध्याये ३० श्लोके--

"नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः। विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्" ॥२॥

तथाहि भागवते १०।३३।२९-

"धर्मव्यतिक्रमोदृष्ट ईश्वराणाञ्च साहसम्। तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्वभुजो यथा" ॥३॥

"एतेके ये ना जानिञा निन्दे तान कर्म। निजदोषे सेइ दुख पाय जन्म जन्म ॥५३॥
गर्हितो करये यदि महा-अधिकारी। निन्दार कि दाय, ताँरे हासिलेइ मरि ॥५४॥
भागवत हइते ए सब तत्व जानि। ताहो यदि वैष्णव-गुरुर मुखे शुनि ॥५५॥
महान्तेर आचरणे हासिले ये हय। चित्तदिया शुन भागवते जेइ कय ॥५६॥
एक काले राम-कृष्ण गेलेन पढ़िते। विद्यापूर्ण करि चित्त करिला आसिते ॥५७॥
'कि दक्षिणा दिब बलिलेन गुरु प्रति। तवे पत्नी सङ्गे गुरु करिला युगति ॥५८॥
मृतपुत्र मागिलेन राम-कृष्ण-स्थाने। तवे राम-कृष्ण गेला यमेर सदने ॥५९॥
आज्ञाय शिशुर सर्वकर्म घुचाइया। यमालय हैते पुत्र दिलेन आनिया ॥६०॥
परम अद्भुत शुनि ए सब आख्यान। देवकीओ मागिलेन मृत-पुत्र-दान ॥६१॥
दैवे एकदिन राम कृष्ण सम्बोधिया। कहेन देवकी अति कातर हइया ॥६२॥
'शुनशुन रामकृष्ण योगेश्वरेश्वर। तुमि दुइ आदि नित्य शुद्ध कलेवर ॥६३॥
सर्वजगतेर पिता-तुमि-दुइ-जन। मुञि जानों तुमि-दुइ परम-कारण ॥६४॥

के बिना यदि उनका सा आचरण करेंगे तो वे जन दुःख पावेंगे और उनको पाप जन्मेगा ॥ ५१ ॥ रुद्र के बिना यदि अन्य कोई विषपान करेंगे तो सर्वथा मरेंगे यह सब पुराणों में प्रमाण है ॥ ५२ ॥ देहादि परतत्र व्यक्ति कभी मन से भी आचरण न करे,यदि मूर्खतावश रुद्र से भिन्न अन्य कोई जन समुद्र से उत्पन्न काल कूट विष को पान करे तो उसी समय निश्चय ही विनाश को प्राप्त होगा ॥ २ ॥ ईश्वरगणों का जो धर्म का व्यतिक्रम व साहस परिलक्षित होता है वह जैसे सबको भक्षण करने से अग्नि अपवित्र नहीं होता है वैसे ही तेजस्वि पुरुषों के धर्म व्यतिक्रम दोष का निमित्त नहीं होता है ॥ ३ ॥ इसी से जो न जानकर उनके कर्मों की निन्दा करते वे अपने दोष से जन्म-जन्मान्तर दुख पाते हैं ॥ ५३ ॥ यदि श्रेष्ठ अधिकारी गर्हित कर्म भी करे तो भी निन्दा की तो बात दूर रही उनकी हँसी करने से ही मर जायेंगे ॥५४॥ यदि वे सब बातें वैष्णव व गुरु मुख से सुनी जाती हैं, तब सब तत्त्व भागवत से जाना जाता है॥५५॥महान्तों के आचरणों पर हँसने से जो होता है भागवत में जैसा वर्णन है उसे चित्त देकर सुनो ॥ ५६ ॥ एक समय में रामकृष्ण पढ़ने को गये विद्या पूर्णरूप से पढ़कर आने को मन किया ॥५७॥ गुरुजी से कहा "गुरुजी क्या दक्षिणा दें" तब पत्नी के साथ में गुरु ने युक्ति की कि इनसे क्या लें ? ॥५८॥ रामकृष्ण से अपने मृतक पुत्र को माँगो, तब श्रीराम कृष्ण दोनों भाई यमराज के स्थान पर पहुँचे ॥ ५९ ॥ आज्ञा द्वारा उस शिशु के सब कर्म दूर कराकर यमलोक से लाकर गुरु पुत्र दे दिया ॥ ६० ॥ इन परम अद्भुत प्रसंग को सुनकर देवकी ने भी मरे पुत्रों का दान माँगा ॥ ६१ ॥ दैववश देवकी देवी ने रामकृष्ण को सम्बोधन करके अतिकातर होकर कहा ॥ ६२ ॥ हे योगेश्वरों के ईश्वर राम-कृष्ण सुनो तुम दोनों आदि व नित्य शुद्ध कलेवर हो ॥६३॥ तुम दोनों

जगतेर उतपत्ति स्थिति वा प्रलय। याहार अंशेर अंश हैते सर्व हय ॥६५॥
तथापिह पृथिवीते खण्डाइते भार। हइयाछ मोर पुत्ररूपे अवतार ॥६६॥
यम-घर हैते येन गुरुर नन्दन। आनिञा दक्षिणा दिला तुमि-दुइजन ॥६७॥
मोर छय पुत्र ये मरिल कंस हैते। बड़ चित्त मोर ताहा सभारे देखिते ॥६८॥
कतकाल गुरुपुत्र आछिल मरिया। ताहा येन आनि दिला शक्ति प्रकाशिया ॥६९॥
एइमत आमारेओ कर पूर्णकाम। आनि देह' मोरे मृत छय पुत्र दान ॥७०॥
शुनि जननीर वाक्य कृष्ण संकर्षण। सेइक्षणे चलिगेला बलिर भवन ॥७१॥
निज इष्टदेव देखि बलि महाराज। मग्न हइलेन प्रेमानन्द सिन्धु माझ ॥७२॥
देह गेह पुत्र वित्त सकल बान्धब। सेइक्षणे पादपद्मे आनि दिला सब ॥७३॥
लोमहर्ष अश्रुपात पुलक आनन्दे। स्तुति करे पादपद्म धरि बलि कान्दे ॥७४॥
जय जय प्रकट अनन्त सङ्कर्षण। जय जय कृष्णचन्द्र गोकुल भूषण ॥७५॥
जयसख्य गोपाचार्य्य हलधर राम। जयजय कृष्णचन्द्र भक्त मनस्काम ॥७६॥
यद्यपिह शुद्धसत्व देव-ऋषिगण। ता' सभारो दुर्लभ तोमार दरशन ॥७७॥
तथापि हेन से प्रभु ! करुणा तोमार। तमोगुण असुरेरे हओ साक्षात्कार ॥७८॥
अतएव शत्रु मित्र नाहिक तोमाते। वेदेओ कहेन, इहा देखिओ साक्षाते ॥७९॥
मारिते ये आइल लइया विषस्तन। ताहारेओ पाठाइला वैकुण्ठभवन ॥८०॥
अतएव तोमार हृदय बूझिबारे। वेदे शास्त्रे योगेश्वर सभेओ ना पारे ॥८१॥

सब जगत् के पिता हो तुम दोनों को मैं परम कारण जानती हूँ ॥ ६४ ॥ जगत् की उत्पत्ति स्थिति व प्रलय आदि जिनके अंश के अंश द्वारा सब कार्य होता है ॥ ६५ ॥ तथापि पृथ्वी का भार खण्डन करने के लिये मेरे पुत्र रूप से अवतीर्ण हुए हो ॥६६॥ जैसे यमलोक से गुरु का पुत्र लाकर तुम दोनों ने गुरुजी को दक्षिणा दीनी थी ॥ ६७ ॥ मेरे जो छै पुत्र कंस द्वारा मारे गये उन सबको देखने की मेरे मनमें बड़ी अभिलाषा है ॥ ६८ ॥ गुरु के पुत्र भी कितने दिन के मरे थे जैसे शक्ति प्रकाश करके वे ला दिये ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार मेरी भी मनोकामना पूर्ण करो मेरे मरे हुए छै पुत्रों का दान दो ॥ ७० ॥ कृष्ण बलराम दोनों जननी के वाक्य सुनकर उसी क्षण बलि के भवन को गये ॥ ७१ ॥ बलि महाराज अपने इष्टदेव के दर्शन करके प्रेमानन्द सिन्धु में मग्न हो गये ॥ ७२ ॥ सब बान्धव, निज देह, गृह, पुत्र, बित्त (धन) आदि उसी क्षण पादपद्मों में लाकर रख दिया ॥७३॥ बलि के शरीर में रोमाञ्च, अश्रुपात व पुलक हो रहे थे और चरण-कमलों को पकड़कर प्रेमानन्द में रोते हुए बलि स्तुति करने लगा ॥ ७४ ॥ प्रकट अनन्तदेव श्रीसंकर्षन की जय हो २, गोकुल के भूषन श्रीकृष्णचन्द्र की जय हो २ और सख्य भाव के गोपों के आचार्य हलधर श्रीबलराम की जय हो जय हो, भक्तों की मनोकामना पूर्णकारी कृष्णचन्द्र की जय हो २ ॥ ७५-७६ ॥ यद्यपि देवऋषिगण शुद्ध सत्वरूप होने पर भी उनको आपके दर्शन दुर्लभ हैं ॥ ७७ ॥ तथापि प्रभो ! आपकी ऐसी करुणा है कि हम तमोगुणी असुरों को भी साक्षात्कार हुए हो ॥७८॥ अतएव तुम्हारा कोई शत्रु व मित्र नहीं है वेदों में ऐसा कहा, यही देख भी रहे हैं॥७९॥ जो स्तनों में विष लगाकर मारने को आई उसको भी वैकुण्ठ लोक भेज दिया

योगेश्वर-सब यार माया नाहि जाने । मुञि पापी असुर वा जानिब केमने ॥८२॥
एइ कृपाकर' मोरे सर्वलोक नाथ । गृह-अन्धकूपे मोर नहु आत्म-पात ॥८३॥
तोमार दुइ पादपद्म हृदये भाविया । शान्त हइ वृक्ष मूले पड़ि थाकों गिया ॥८४॥
तोमार दासेर मेले मोरे कर' दास । आर येन चित्ते मोर किछु नहे आश ॥८५॥
राम-कृष्ण-पादपद्म धरिया हृदय । एइमत स्तुति करे बलि-महाशय ॥८६॥
ब्रह्मलोक शिवलोक ये चरणोदके । पवित्र करितेछेन भागीरथी रूपे ॥८७॥
हेन पुण्य-जल बलि गोष्ठीर सहिते । पानकरे शिरे धरे भाग्योदय हैते ॥८८॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, अलंकार । पादपद्मे दिया बलि करे नमस्कार ॥८९॥
'आज्ञा कर' प्रभु मोरे शिखाओ आपने । यदि मोरे भृत्य हेन ज्ञान थाके मने ॥९०॥
ये करये प्रभु ! आज्ञा पालन तोमार । सेइ जन हय विधि-निषेधेर पार ॥९१॥
शुनिञा बलिर वाक्य प्रभु तुष्ट हैला । ये निमित्त आगमन कहिते लागिला ॥९२॥
प्रभुबोले 'शुनशुन बलि-महाशय । ये निमित्ते आइलाङ तोमार आलय ॥९३॥
आमार मा'येर छयपुत्र पापी कंसे । मारिलेक, सेइपापे सेहो मैल शेषे ॥९४॥
निरवधि सेइ पुत्र शोक स्मङरिया । कान्देन देवकी-देवी दुखित हइया ॥९५॥
तोमार निकटे आछे सेइ छय जन । ताहा निब जननीर सन्तोष कारण ॥९६॥
से सब ब्रह्मार पौत्र सिद्ध देवगण । ता सभार एत दुःख शुन ये कारण ॥९७॥

॥ ८० ॥ इसी से आपके हृदय को वेद-शास्त्र व योगेश्वर आदि कोई भी समझ नहीं पाते हैं ॥ ८१ ॥ योगेश्वर मात्र जिनकी माया को नहीं जानते हैं मैं पापी असुर किस प्रकार जानूँगा ॥ ८२ ॥ हे सब लोकों के स्वामी मेरे ऊपर ऐसी कृपा करो जिससे गृहरूप अन्धकूप में मेरी आत्मा का पतन न हो ॥ ८३ ॥ तथा आप दोनों के चरण-कमलों की हृदय में भावना करता हुआ मैं जाकर शान्त होकर वृक्षों की जड़ों में पड़ा रहूँ ॥ ८४ ॥ तथा अपने दासों के दल में मेरा भी नाम गणना करो मेरे मनमें और किसी बात की इच्छा नहीं है ॥८५॥ श्रीराम-कृष्ण के चरण-कमलों को हृदय में धारण करके बलि महाशय ने यों स्तुति की ॥८६॥ जिनके चरणों का जल भागीरथी (गङ्गा) के रूप से ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि लोकों को पवित्र कर रहा है ॥ ८७ ॥ उसी पुण्य तीर्थ (जल) को भाग्योदय होने के कारण बलि राजा सकुटुम्ब शिर पर धारण करके पान कर रहे थे ॥ ८८ ॥ बलि महाराज ने चरण-कमलों में गन्ध-फूल-धूप-आरती-वस्त्र व अलङ्कार देकर प्रणाम किया ॥ ८९ ॥ यदि अपने मनमें मुझे दास जानते हों तो प्रभो ! आज्ञा करो तथा मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ९० ॥ हे प्रभो ! जो आपकी आज्ञा का पालन करता है वही जन विधि व निषेध से पार होता है ॥ ९१ ॥ बलि के वाक्यों को सुनकर दोनों प्रभु सन्तुष्ट हुए और जिस निमित्त गये थे वह कहा ॥ ९२ ॥ प्रभु बोले "हे बलि महाशय सुनो तुम्हारे पास जिस निमित्त आया हूँ उसका कारण सुनो ॥ ९३ ॥ मेरी माता के छै पुत्र पापी कंस ने मारे थे अन्त में वह भी उन्हीं की हत्या के पाप से मर गया ॥९४॥ श्रीदेवकी देवी उन्हीं पुत्रों के शोक से दुःखित होकर स्मरण करके निरन्तर रुदन करती हैं ॥ ९५ ॥ वे छहों जन तुम्हारे पास हैं माता के सन्तोष के लिये मैं उन्हें ले जाऊँगा ॥ ९६ ॥ वे सब सिद्ध देवगण ब्रह्मा के नाती (पौत्र)

प्रजापति मरीचि ये ब्रह्मार नन्दन । पूर्ब्व तान पुत्र छिल एइ छय जन ॥९८॥
दैवे ब्रह्मा काम शरे हइयाँ मोहित । लज्जा छाड़ि कन्या प्रति करिलेन चित ॥९९॥
ताहा देखि हाँसिलेन एइ छय जन । सेइ दोषे अधःपात हैल सेइ क्षण ॥१००॥
महान्तेर कर्मेते करिला उपहास । असुर योनिते पाइलेन गर्भवास ॥१०१॥
हिरण्यकशिपु जगतेर द्रोह करे । देव-देह छाड़िया जन्मिला तार घरे ॥१०२॥
तथाओ इन्द्रेर वज्राघाते छय जन । नाना दुःख यातनाय पाइल मरण ॥१०३॥
तबे योगमाया धरि आनि आरबार । देवकीर गर्भे निञा करिला संचार ॥१०४॥
ब्रह्मारे ये हासिलेन, सेइ पाप हैते । सेहो देहे दुःख पाइलेन नाना मते ॥१०५॥
जन्म हैते अशेष प्रकार यातनाय । भागिना-तथापि मारिलेन कंस-राय ॥१०६॥
देवकी ए सब गुप्त रहस्य ना जानि । ता सभारे कान्देन आपन पुत्र मानि ॥१०७॥
सेइ छय पुत्र जननीरे दिव दान । एइ कार्य्य लागि आइलाङ तोमा स्थान ॥१०८॥
देवकीर स्तन पाने सेइ छय जन । शाप हैते मुक्त हइवेन सेइ क्षण ॥१०९॥
प्रभु बोले 'शुन-शुन बलि महाशय । वैष्णवेर कर्मेते हासिले हेन हय ॥११०॥
सिद्ध-सबो पाइलेन एतेक यातना । असिद्ध-जनेर दुःख कि कहिब सीमा ॥१११॥
ये दुष्कृति जन वैष्णवेर निन्दा करे । जन्म-जन्म निरवधि सेइ दुखे मरे ॥११२॥
शुन बलि ! एइ शिक्षा कराइ तोमारे । कभू जानि निन्दा हास्य कर वैष्णवेरे ॥११३॥
मोर पूजा ,मोर नामग्रहण ये करे । मोर भक्त निन्दे यदि तारो विघ्न धरे ॥११४॥

थे उन सबको जिस कारण इतना दुःख हुआ सो सुनो ॥ ९७ ॥ पहिले मरीचि नामक प्रजापति जो ब्रह्मा के पुत्र थे ये छहों उनके पुत्र थे ॥ ९८ ॥ दैववश ब्रह्माजी ने काम के बाणों से मोहित होकर लाज छोड़कर कन्या के प्रति चित्त किया ॥ ९९ ॥ उनको देखकर ये छहों हँस पड़े उसी क्षण उसी दोष से इनका अधःपतन हुआ ॥ १०० ॥ महानुभाव के कर्म पर उपहास किया जिससे असुर योनि में गर्भवास को प्राप्त हुए ॥१०१॥ देव देह को छोड़कर जगत् के साथ द्रोह करने वाले हिरण्यकशिपु के घर में जन्म लिया ॥ १०२ ॥ वहाँ पर इन्द्र के वज्राघात से छहों जनों ने अनेक दुःख व यातना भोगकर शरीर छोड़ा ॥ १०३ ॥ उसके पीछे पुनर्वार योगमाया ने पकड़कर उन्हें देवकी के गर्भ में लेकर संचार कर दिया ॥ १०४ ॥ ब्रह्मा की हँसी करने के पाप से उस देह में भी अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त हुए ॥ १०५ ॥ जन्म से ही अशेष प्रकार की यातना द्वारा बहिन के पुत्र होने पर भी कंस राजा ने मार डाला ॥१०६॥ देवकी इन सब गुप्त रहस्यों को न जानकर उन सबको अपना पुत्र मानकर रोती है ॥ १०७ ॥ उन्हीं छय पुत्रों को माता को दान दूँगा इस कार्य्य के निमित्त मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥ १०८ ॥ वे छहों जन देवकी का स्तन पान करने से उसी क्षण शाप मुक्त हो जाँयगे ॥ १०९ ॥ प्रभु ने कहा हे महाशय बलि सुनो वैष्णवों के कर्मों पर हँसने से ऐसा होता है ॥ ११० ॥ सिद्ध देवगणों को इतनी यातनायें प्राप्त हुईं और जो सिद्ध नहीं है उनके दुःखों की सीमा क्या कहें ॥ १११ ॥ जो दुष्टजन वैष्णवों की निन्दा करते हैं, वे निरन्तर उसी दुःख से जन्म २ में मरते हैं॥११२॥ हे बलिराज तुम्हें यह शिक्षा प्रदान करता हूँ तुम कभी जानकर वैष्णवो निन्दा व हँसी न करना ॥ ११३ ॥

मोर भक्त-प्रति प्रेमभक्ति करे ये । निःसंशय निःसंशय मोरे पाय से ॥११५॥

तथाहि बराहपुराणे--

"सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम् । निःसंशयस्तु तद्भक्तपरिचर्य्यारतात्मनाम्" ॥४॥

मोर भक्त ना पूजे, मोहोरे पूजे मात्र । से दाम्भिक, नहे मोर प्रसादेर पात्र ॥११६॥

तथाहि (श्रीहरिभक्तिसुधोदये १६।७६)

"अभ्यर्चयित्वा गोविन्दं तदीयान्नार्चयन्ति ये । न ते विष्णुप्रसादस्य भाजनं दाम्भिका जनाः" ॥५॥

'तुमि बलि मोर प्रिय सेवक सर्वथा । अतएव तोमारे कहिलूँ गोप्य-कथा ॥११७॥

"शुनिञा प्रभुर शिक्षा बलि-महाशय । अत्यन्त आनन्दयुक्त हइला हृदय ॥११८॥

सेइक्षणे छय शिशु आज्ञा शिरे धरि । सम्मुखे दिलेन आनि पुरस्कार करि॥११९॥

तवे राम-कृष्ण प्रभु लइ छय जन । जननीरे आनिञा दिलेन सेइक्षण ॥१२०॥

मृतपुत्र देखिया देवकी सेइक्षणे । स्नेहे स्तन सभारे दिलेन हर्षमने ॥१२१॥

ईश्वरेर अवशेष स्तन करि पान । सेईक्षणे सभार हइल दिव्य-ज्ञान ॥१२२॥

दण्डवत् हइ सभे ईश्वर-चरणे । पड़िलेन साक्षाते देखिल सर्वजने १२३॥

तवे प्रभु कृपादृष्ट्ये सभारे चा'हिया । शिखाइते लागिलेन सदय हइया ॥१२४॥

"चलचल देवगण याह निज-वास । महान्तेरे आर पाछे कर'उपहास ॥१२५॥

ईश्वरेर शक्ति ब्रह्मा ईश्वर समान । मन्द कर्म करिलेओ मन्द नहे तान ॥१२६॥

ताहाने हासिया एत पाइल यातना । हेन बुद्धि नहु आर-करिह कामना ॥१२७॥

ब्रह्मा स्थाने जाइ मागि लह अपराध । तबे सभे चित्त पुन पाइवे प्रसाद ॥१२८॥

यदि जो मेरी पूजा व मेरे नामों को ग्रहण करता हो परन्तु मेरे भक्तों की निन्दा करे तो उनको भी यह विघ्न होते हैं ॥ ११४ ॥ जो मेरे भक्तों के प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं वे ही निःसन्देह मुझे प्राप्त करते हैं ॥ ११५ ॥ ॥ अनुवाद हो चुका है ॥जो मेरे भक्तों की पूजा नहीं करते केवल मेरी ही पूजा करते हैं वे दम्भ करने वाले मेरे अनुग्रह के पात्र नहीं होते ॥ ११६ ॥ जो लोग गोविन्द की पूजा करके गोविन्द आश्रित भक्तों की पूजा नहीं करते, वे श्रीकृष्ण के अनुग्रह के पात्र नहीं हैं; वे केवल कपटीजन हैं ॥ ५ ॥ हे बलि ! तुम मेरे सर्वथा प्रिय सेवक हो; इसी कारण मैंने तुमसे गोपनीय कथा कही है ॥ ११७ ॥ प्रभु की शिक्षा सुनकर बलि महाशय का हृदय अत्यन्त आनन्दयुक्त हो गया ॥ ११८ ॥ तथा आज्ञा को मस्तक पर धारण करके उसी क्षण छहों पुत्र पुरस्काररूप में सामने लाकर दे दिये ॥ ११९ ॥ उसके पीछे श्रीराम-कृष्ण प्रभु ने छहों शिशुओं को लाकर तत्क्षण माता को दे दिये ॥ १२० ॥ मरे पुत्रों को देखते ही उसी क्षण देवकीजी ने स्नेहपूर्वक हर्ष मन हो सबको स्तन पिलाया ॥ १२१ ॥ ईश्वर के अवशेष स्तनों को पीते ही तत्क्षण सबको दिव्य ज्ञान हो गया ॥१२२॥ छहों दण्डवत् होकर ईश्वर के चरणों में गिरे, यह सबने साक्षात् देखा ॥१२३॥ तब श्रीकृष्ण, राम सबको कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर सदय होकर शिक्षा देने लगे ॥ १२४ ॥ हे देवगण चलो अपने निवास स्थान को जाओ फिर पीछे कहीं महान्तों की हाँसी मत करो ॥१२५॥ ब्रह्मा ईश्वर की शक्ति है और ईश्वर के समान है उनको मन्द कर्म करने पर भी मन्द नहीं होता है ॥ १२६ ॥ उनकी हँसी करने से इतनी यातना

ईश्वरेर आज्ञा शुनि सर्व देवगण । परम-आदरे आज्ञा करिया ग्रहण ॥१२९॥
पिता-माता-राम-कृष्ण-पाये नमस्करि । चलिलेन सर्वदेव गण निज-पुरी ॥१३०॥
कहिलाङ एइ विप्र भागवत कथा । नित्यानन्द-प्रति द्विधा छाड़ह सर्वथा ॥१३१॥
नित्यानन्दस्वरूप-परम अधिकारी । अल्पभाग्ये ताहानें जानिते नाहि पारि ॥१३२॥
अलौकिक चेष्टा येवा किछु देख तान । ताहातेओ आदर करिले पाइ त्राण ॥१३३॥
पतितेर त्राण लागि ताँर अवतार । ताँहा हैते सर्वजीव पाइव उद्धार ॥१३४॥
ताँहार आचार-विधि-निषेधेर पार । ताँहारे वूझिते शक्ति आछये काहार ॥१३५॥
ना वूझिया निन्दे ताँर चरित्र अगाध । पाइयाओ विष्णु भक्ति तार हय वाध ॥१३६॥
चल विप्र तुमि शीघ्र नवद्वीपे जाओ । एइ कथा गिया तुमि सभारे वुझाओ ॥१३७॥
पाछे ताँरे केहो कोनोरूपे निन्दा करे । तवे आर रक्षा तार नाहि यमघरे ॥१३८॥
ये ताँहारे प्रीत करे, से करे आमारे । सत्य सत्य विप्र एइ कहिल तोमारे ॥१३९॥
मदिरा यवनी यदि नित्यानन्द धरे । तथापि ब्रह्मार वन्द्य कहिल तोमारे ॥१४०॥

तथाहि श्रीमुखकृतशिक्षाश्लोकः--

"गृह्णीयाद् यवनीपाणिं विशेद्वा शौण्डिकालयम् । तथापि ब्रह्मणो वन्द्यं नित्यानन्दपदाम्बुजम्" ॥६॥

शुनिञा प्रभुर वाक्य सेइ सु-ब्राह्मण । परम-आनन्दयुक्त हइलेन मन ॥१४१॥
नित्यानन्द प्रति वड़ जन्मिल विश्वास । तवे आइलेन नवद्वीप निज-वास ॥१४२॥

पाई है फिर ऐसी बुद्धि न हो जाय यह इच्छा रखना ॥१२७॥ तथा जाकर ब्रह्मा से अपराध की क्षमा प्रार्थना करना तभी तुम सबके मनमें प्रसन्नता होगी ॥१२८॥ सिद्ध देवगण ईश्वर की आज्ञा सुनते ही परम आदर पूर्वक से आज्ञा ग्रहण करके माता-पिता बलराम व कृष्णचन्द्र के चरणों में नमस्कार करते २ सब देववृन्द अपनी पुरी को चले गये ॥ १२९-१३० ॥ हे विप्र ! तुम्हारे आगे यह भागवत की कथा मैंने कही है इसलिये श्रीनित्यानन्द के प्रति दुविधा को सर्वथा छोड़ दो ॥१३१॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप परम (सबसे बड़े) अधिकारी हैं अल्प भाग्य वाले उन्हें नहीं जान पाते ॥१३२॥ जो कुछ उनकी अलौकिक चेष्टा देखो उस पर भी आदर करने से ही रक्षा पाओगे ॥ १३३ ॥ उनका अवतार पतितों का उद्धार करने के लिये है उन्हीं के द्वारा सब जीवों का उद्धार होगा ॥ १३४ ॥ उनके आचरण विधि निषेध पार हैं उनके जानने की किसकी सामर्थ्य है ॥ १३५ ॥ उनके अगाध चरित्रों को न जानकर भी जो निन्दा करेंगे वे विष्णु-भक्ति को पाकर भी उनकी भक्ति में बाधा होगी ॥ १३६ ॥ हे विप्र जाओ तुम शीघ्र नवद्वीप को जाओ और इस प्रसंग को सबको समझाओ ॥ १३७ ॥ यदि पीछे कोई किसी प्रकार से उनकी निन्दा करेंगे तो फिर यमलोक में भी उनकी रक्षा नहीं होगी ॥ १३८ ॥ जो उनके प्रति प्रीति करते हैं वे मेरे ही प्रति प्रीति करते हैं, हे विप्र तुमसे मैं सत्य २ कहता हूँ ॥ १३९ ॥ यदि नित्यानन्द प्रभु मदिरा व यवन कुलोत्पन्न स्त्री को भी धारण करें तब भी ब्रह्मा के वन्दनीय हैं तुमसे कहता हूँ ॥१४०॥ श्रीनित्यानन्द यवन कुलोत्पन्न स्त्री का पाणिग्रहण करें अथवा कलार के भवन में प्रवेश करें तथापि उनके चरण-कमल ब्रह्मा व वेद के वन्दनीय हैं ॥ ६ ॥ वह सज्जन ब्राह्मण प्रभु के वाक्यों को सुनकर मनमें परम आनन्द प्राप्त हुआ ॥१४१॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु में उसका बड़ा

सेइ भाग्यवन्त विप्र आसि नवद्वीपे। सर्वाद्ये आइला नित्यानन्देर समीपे ॥१४३॥
अकैतवे कहिलेन निज अपराध। प्रभुओ शुनिञा ताँरे करिला प्रसाद ॥१४४॥
हेन नित्यानन्दस्वरूपेर व्यवहार। वेद गुह्य लोक बाह्य याँहार आचार ॥१४५॥
परमार्थे नित्यानन्द-परम योगेन्द्र। याँरे कहि-आदिदेव धरणीधरेन्द्र ॥१४६॥
सहस्र वदन नित्य-शुद्ध कलेवर। चैतन्येर कृपा बिनु जानिते दुष्कर ॥१४७॥
केहो बोले नित्यानन्द येन बलराम। केहो बोले 'चैतन्येर बड़ प्रिय धाम' ॥१४८॥
केहो बोले महातेजी अंश अधिकारी। केहो बोले कोनरूप बूझिते ना पारि ॥१४९॥
किवा जीव नित्यानन्द, किवा भक्त ज्ञानी। यार येन-मत इच्छा ना बोलये केनि ॥१५०॥
येसे केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे। तान पादपद्म मोर रहुक हृदये ॥१५१॥
से आमार प्रभु, आमि जन्म-जन्म दास। सभार चरणे मोर एइ अभिलाष ॥१५२॥
एत परिहारेओ ये पापी निन्दा करे। तबे लाथि मारों तार शिरेर उपरे ॥१५३॥
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौरसुन्दर। ए बड़ भरसा आमि धरिये अन्तर ॥१५४॥
हेन दिन हैव कि चैतन्य नित्यानन्द। देखिव वेष्टित चतुर्दिगे भक्तवृन्द ॥१५५॥
जय जय जय महाप्रभु गौरचन्द्र। दिलाओ निलाओ तुमि प्रभु नित्यानन्द ॥१५६॥
तथापिह एइ कृपा कर गौरहरि। नित्यानन्द-सङ्गे येन तोमा ना पासरि ॥१५७॥
यथा यथा तुमि-दुइ कर अवतार। तथा तथा दास्ये मोर हउ अधिकार ॥१५८॥

विश्वास उत्पन्न हो गया तब अपने निवास स्थान नवद्वीप में आये ॥ १४२ ॥ वह भाग्यवन्त ब्राह्मण नवद्वीप में आकर सबसे पहिले श्रीनित्यानन्दजी के समीप आया ॥ १४३ ॥ तथा निष्कपट रूप से उसने अपना अपराध कह दिया तथा श्रीप्रभु ने भी सुनकर उसके ऊपर अनुग्रह किया ॥ १४४ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के ऐसे व्यवहार व आचरण हैं जो वेदगुह्य तथा लोक आचार से भी बाह्य हैं अर्थात् अलौकिक हैं ॥ १४५ ॥ परमार्थ में श्रीनित्यानन्द बड़े योगेन्द्र हैं जिनको आदि देव धरणीधर कहते हैं ॥ १४६ ॥ इन श्री सहस्र मुख व नित्य शुद्ध कलेवर वाले श्रीनित्यानन्द प्रभु को श्रीचैतन्यदेव की कृपा बिना जानना अति दुष्कर है॥१४७॥ कोई कहते कि श्रीनित्यानन्द श्रीबलराम के समान और कोई कहते हैं कि न जाने क्या रूप है समझ में नहीं आते ॥१४८-१४९॥ श्रीनित्यानन्द को कोई जीव कोई योगी व कोई ज्ञानी कहते हैं जिसकी जो इच्छा हो सो कहो॥१५०॥श्रीचैतन्यदेव के श्रीनित्यानन्दजी जो कुछ भी क्यों न हों तथापि उनके चरण-कमल मेरे हृदय में रहें ॥ १५१ ॥ जन्म २ में वे मेरे प्रभु व मैं उनका दास होऊँ; सबके चरणों में मेरी यही अभिलाषा है, सब से यही माँगता हूँ ॥ १५२ ॥ इतना परिहार करने पर भी जो पापी निन्दा करेंगे तो उनके शिर पर लात मारूँगा ॥ १५३ ॥ अहो श्रीगौरसुन्दर मेरे प्रभु नित्यानन्द के प्रभु हैं सो मेरे हृदय में यह बड़ा भरोसा है ॥ १५४ ॥ अहो ऐसा दिन कब होगा कि चारों ओर से भक्तवृन्द से वेष्ठित श्रीचैतन्यदेव व श्रीनित्यानन्द प्रभु को मैं देखूँगा॥१५५॥हे गौरचन्द्र महाप्रभु आपकी जय हो ३, आप ही श्रीनित्यानन्द प्रभु को मुझे अपने हाथ में देओ तथा आप ही मुझे मत दीजिये॥१५६॥तथापि हे गौर हरि ऐसी कृपा करो जिसमें श्रीनित्यानन्द के सङ्ग में मैं आपको भूल न जाऊँ ॥ १५७ ॥ जहाँ २ आप दोनों अवतार धारण करें वहाँ-वहाँ मेरा दास्य

श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१५९॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीनित्यानन्द चरित्र-वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्याय

जय जय श्रीवैकुण्ठनाथ गौरचन्द्र । जय जय श्रीसेवा विग्रह नित्यानन्द ॥१॥
जय जय अद्वैत-श्रीवास-प्रिय धाम । जय गदाधर-श्रीजगदानन्द-प्राण ॥२॥
जय श्रीपरमानन्दपुरीर जीवन । जय दामोदरस्वरूपेर प्राण-धन ॥३॥
जय वक्रेश्वर पण्डितेर प्रियकारी । जय पुण्डरीक विद्यानिधि-मनोहारी ॥४॥
जय जय द्वारपाल-गोविन्देर नाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टिपात ॥५॥
हेन मते नित्यानन्द नवद्वीप पुरे । विहरेन प्रेम भक्ति-आनन्द सागरे ॥६॥
निरवधि भक्तसङ्गे करेन कीर्तन । कृष्ण-नृत्य-गीत हैल सभार भजन ॥७॥
गोप शिशुगण-सङ्गे प्रति-घरे घरे । येन क्रीड़ा करिलेन गोकुल नगरे ॥८॥
सेइ मत गोकुलेर आनन्द प्रकाशि । कीर्तन करेन नित्यानन्द सुविलासी ॥९॥
इच्छामय नित्यानन्दचन्द्र भगवान् । गौरचन्द्र देखिते हइल इच्छा तान ॥१०॥
आइ स्थाने करिलेन सन्तोषे विदाय । नीलाचले चलिलेन चैतन्य-इच्छाय ॥११॥
परम-विह्वल पारिषदगण-सङ्गे । आइलेन श्रीचैतन्य-नाम गुण रङ्गे ॥१२॥
हुङ्कार, गर्जन, नृत्य, आनन्द-क्रन्दन । निरवधि करे सब पारिषदगण ॥१३॥

पद में अधिकार होय ॥ १५८ । श्रीवृन्दावनदास ठाकुर श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके युगल चरण-कमलों की महिमा गान करते हैं ॥ १५९ ॥

श्रीवैकुण्ठनाथ गौरचन्द्र की जय हो २, श्रीसेवा विग्रह नित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो ॥१॥ श्रीअद्वैत व श्रीवासजी के प्रियधाम श्रीगौरसुन्दर की जय हो २, श्रीगदाधर व श्रीजगदानन्दजी के प्राण सर्वस्व प्रभु की जय हो ॥ २ ॥ श्रीपरमानन्दपुरी के जीवन की जय हो श्रीदामोदरस्वरूप के प्राणधन की जय हो ॥ ३ ॥ श्रीवक्रेश्वर पण्डित के प्रिय करने वाले प्रभु की जय हो श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि के मन हरण-कारी की जय हो ॥ ४ ॥ द्वारपाल गोविन्द के नाथ की जय हो २, हे प्रभो ! जीवों के प्रति शुभ दृष्टिपात करो ॥ ५ ॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु नवद्वीपपुरी में प्रेम-भक्ति जनित आनन्दसागर में विहार करते थे ॥ ६ ॥ तथा निरन्तर भक्तों के सङ्ग कीर्तन करते थे और कृष्ण प्रेम में नृत्य-गान ही सबका भजन था ॥७॥ जिस प्रकार गोकुल नगर में (द्वापर में) गोप-बालकों के साथ घर-घर में क्रीड़ा की थी ॥ ८ ॥ उसी प्रकार सुविलासपरायण नित्यानन्दजी गोकुल के आनन्द को प्रकाशित करके कीर्तन करते थे ॥ ९ ॥ इच्छामय भगवान् नित्यानन्दचन्द्र की श्रीगौरचन्द्र के दर्शन करने की इच्छा हुई ॥ १० ॥ श्रीशची माता से सन्तोष से विदा होकर चैतन्यचन्द्र की इच्छा से नीलाचल को चल दिये ॥ ११ ॥ बड़ा विह्वल दशा में श्रीचैतन्यचन्द्र नाम व गुणों का वर्णन करते हुए पार्षदों के साथ आ रहे थे ॥ १२ ॥ सब पार्षदवृन्द निरन्तर हुङ्कार, गर्जन,

एइ मत सर्व पथ प्रेमानन्द रसे। आइलेन नीलाचले कथोक दिवसे ॥१४॥
कमलपुरेते आसि प्रासाद देखिया। पड़िलेन नित्यानन्द मूर्च्छित हइया ॥१५॥
निरवधि नयने बहये प्रेम-धार। 'श्रीकृष्णचैतन्य' बलि करेन हुङ्कार ॥१६॥
आसिया रहिला एक पुष्पेर उद्याने। के बूझे ताँहार इच्छा श्रीचैतन्य विने ॥१७॥
नित्यानन्द विजय जानिञा गौरचन्द्र। एकेश्वर आइलेन छाड़ि भक्तवृन्द ॥१८॥
ध्यानानन्दे येखाने आछेन नित्यानन्द। सेइ स्थाने विजय हइला गौरचन्द्र ॥१९॥
प्रभु आसि देखे नित्यानन्द ध्यान पर। प्रदक्षिण करिते लागिला बहुतर ॥२०॥
श्लोक बन्धे नित्यानन्द महिमा वर्णिया। प्रदक्षिण करे प्रभु प्रेमपूर्ण हैया ॥२१॥
श्रीमुखेर श्लोक शुन-नित्यानन्द स्तुति। ये श्लोक पढ़िले हय नित्यानन्दे रति ॥२२॥

तथाहि श्लोकः—

"गृह्णीयाद् यवनीपाणिं विशेद्वा शौण्डिकालयम्। तथापि ब्रह्मणो वन्द्यं नित्यानन्दपदाम्बुजम्" ॥१॥

मदिरा यवनी यदि धरे नित्यानन्द। तथापि ब्रह्मार बन्द्य बोले गौरचन्द्र ॥२३॥
एइ श्लोक पढ़ि प्रभु प्रेमवृष्टि करि। नित्यानन्द-प्रदक्षिण करे गौर हरि ॥२४॥
नित्यानन्दस्वरूपो जानिञा सेइक्षणे। उठिलेन 'हरि' बलि परम सम्भ्रमे ॥२५॥
देखि नित्यानन्द गौरचन्द्रेर वदन। कि आनन्द हैल, ताहा ना जाय वर्णन ॥२६॥
'हरि' बलि सिंहनाद लागिला करिते। प्रेमानन्दे आछाड़ पड़ेन पृथिवीते ॥२७॥
दुइ जन प्रदक्षिण करेन दुँहारे। दुँहे दण्डवत् हइ पड़ेन दुँहारे ॥२८॥

नृत्य व प्रेमानन्दक्रन्दन कर रहे थे ॥ १३ ॥ इस प्रकार समस्त मार्ग में प्रेमानन्द रस वर्षा करते हुए कुछ दिनों में नीलाचल पहुँच गये ॥ १४ ॥ जब कमलपुर में आये तो श्रीजगन्नाथजी का मन्दिर देखते ही उसी क्षण श्रीनित्यानन्द प्रभु मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ १५ ॥ निरन्तर नेत्रों से प्रेम की धारा बह रही थी तथा "श्रीकृष्णचैतन्य" पुकार कर हुंकार कर रहे थे ॥ १६ ॥ वहाँ से आकर एक फूलों के बगीचे में बैठ गये; उनकी इच्छा को श्रीचैतन्यचन्द्र के अतिरिक्त और कौन समझे ॥ १७ ॥ नित्यानन्दजी को शुभागमन जानकर श्रीगौरचन्द्र भक्तवृन्दों को छोड़कर अकेले ही वहाँ आये ॥ १८ ॥ जहाँ ध्यानानन्द में श्रीनित्यानन्द प्रभु विराजमान थे उसी स्थान में गौरचन्द्र आ पहुँचे ॥ १९ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने आकर देखा कि श्रीनित्यानन्द प्रभु ध्यान मग्न हैं तब आप विशेष रूप से प्रदक्षिणा करने लगे ॥ २० ॥ श्रीनित्यानन्दजी की महिमा को श्लोक बद्ध वर्णन करते हुए प्रेमपूर्ण होकर प्रदक्षिणा करने लगे ॥ २१ ॥ श्रीनित्यानन्द की स्तुति रूप श्रीमुख से श्लोक सुनो जिसके पाठ करने व सुनने से नित्यानन्द में रति होती है ॥ २२ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने कहा कि यदि श्रीनित्यानन्द मदिरा पान तथा यवनी का पाणिग्रहण भी करें तथापि वे ब्रह्मा के बन्दनीय हैं॥२३॥इस श्लोक का पाठ करके प्रेमवृष्टि करते हुए श्रीगौरहरि ने नित्यानन्द की प्रदक्षिणा की ॥ २४ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप भी उसी क्षण में यह जानकर हरि २ कहते हुए बड़े सम्भ्रम से उठे ॥ २५ ॥ श्रीगौरचन्द्र के श्रीमुखकमल को देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु को अपूर्व आनन्द हुआ वह वर्णन नहीं किया जाता ॥ २६ ॥ हरि २ करके सिंह के तुल्य शब्द करने लगे और प्रेमानन्द से पृथ्वी में पछाड़ खाकर गिर पड़े ॥ २७ ॥ दोनों एक दूसरे की प्रद-

क्षणे दुइ प्रभु करे प्रेम-आलिङ्गन । क्षणे गला धरि करे आनन्द-क्रन्दन ॥२६॥
परानन्दे गड़ागड़ियाय दुइ जन । महामत्त सिंह जिनि दुँहार गर्जन ॥३०॥
कि अद्भुत प्रीतिसे करेन दुइ जने । पूर्वे येन शुनिआछि श्रीराम लक्ष्मणे ॥३१॥
दुइ जने श्लोक पढ़ि वर्णेन दुँहारे । दुँहारेइ दुँहे जोड़ हस्ते नमस्करे ॥३२॥
अश्रु,कम्प,हास्य,मूर्च्छा,पुलक,वैवर्ण्य । कृष्ण भक्ति विकारेर यत आछे मर्म ॥३३॥
इहा वइ दुइ श्रीविग्रहे आर नाञि । सब करे करायेन चैतन्य गोसाञि ॥३४॥
कि अद्भुत प्रेम भक्ति हइल प्रकाश । नयन भरिया देखे ये एकान्तदास ॥३५॥
तबे कथोक्षणे प्रभु जोड़ हस्त करि । नित्यानन्द प्रति स्तुति करे गौर हरि ॥३६॥
नाम रूपे तुमि नित्यानन्द मूर्तिमन्त । श्रीवैष्णवधाम तुमि-ईश्वर अनन्त ॥३७॥
यत किछु तोमार श्रीअङ्गे अलंकार । सत्य सत्य सत्य भक्ति योग-अवतार ॥३८॥
स्वर्ण-मुक्ता-रूपा-कसा-रुद्राक्षादि रूपे । नवविधा भक्ति धरि आछ निज सुखे ॥३९॥
नीच जाति पतित अधम यत जन । तोमा हैते सभार हइल विमोचन ॥४०॥
ये भक्ति दियाछ तुमि वणिक्-सभारे । ताहा वाञ्छे सुर सिद्ध मुनि योगेश्वरे ॥४१॥
'स्वतन्त्र' करिया वेदे ये कृष्णेरे कहे । हेन कृष्ण पार तुमि करिते विक्रये ॥४२॥
तोमार महिमा जानिवार शक्ति कार । मूर्तिमन्त तुमि कृष्णरस-अवतार ॥४३॥
वाह्य नाहि जान तुमि सङ्कीर्तन सुखे । अहर्निश कृष्ण गुण तोमार श्रीमुखे ॥४४॥

क्षिणा करते थे व दोनों ही एक दूसरे के आगे दण्डवत् होकर गिर रहे थे ॥ २८ ॥ क्षण में ही दोनों प्रभु प्रेम से आलिंगन करते तथा एक दूसरे के कण्ठ को पकड़कर आनन्द में रोते थे ॥ २६ ॥ दोनों ही परम आनन्द में लोट-पोट हो रहे थे व दोनों ही बड़े मत्त सिंह की जयकारी गर्जना करते थे ॥ ३० ॥ दोनों कैसी अद्भुत प्रीति प्रकाशित कर रहे थे, जैसी पूर्व में राम-लक्ष्मण की प्रीति सुनी है ॥३१॥ दोनों ही श्लोक पाठ करके दूसरे का यश गान करते थे और दोनों ही दूसरे को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहे थे ॥ ३२ ॥ कृष्ण भक्ति विकार के जितने मर्म हैं अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, वैवर्ण्य आदि—इनके अतिरिक्त दोनों के श्रीविग्रहों में अन्य नहीं हो रहे थे, यह सब लीलाएं श्रीचैतन्य प्रभु ही स्वयं करते तथा कराते हैं ॥३३-३४॥ कैसा अद्भुत प्रेम-भक्ति का प्रकाश हुआ जो उनके एकान्तदास हैं वे ही नेत्र भरकर देखते हैं ॥ ३५ ॥ तब कुछ क्षण पीछे श्रीगौरहरि हाथ जोड़कर श्रीनित्यानन्द की स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ अहो नाम व रूप से तुम मूर्तिमन्त नित्यानन्द हो तुम श्रीवैष्णवधाम अनन्तदेव ईश्वर हो ॥३७॥ कुछ तुम्हारे श्रीअङ्ग में जितने अलंकार हैं मैं तीन वार सत्य २ कहता हूँ वे सब भक्तियोग के अवतार हैं ॥ ३८ ॥ सुवर्ण, मोती, चाँदी, काँसी,रुद्राक्षादि रूप में नव विधा भक्ति को ही अपने सुख के लिये धारण करते हो॥३६॥जितने नीच जाति पतित व अधम जन हैं, वे सब तुम्हारे द्वारा विशेष रूप से मुक्त हो गये ॥४०॥तुमने जो भक्ति सब वैश्यों को दी उसकी देवता सिद्ध मुनि व योगेश्वर भी वांछा ही करते हैं॥४१॥वेदों ने जिस कृष्ण को स्वतन्त्र(स्वाधीन) करके कहा है ऐसे कृष्ण को भी तुम्हें बेचने का अधिकार है ॥४२॥ तुम्हारी महिमा को जानने की किसमें सामर्थ्य है कारण तुम मूर्तिमन्त कृष्ण रस के अवतार हो ॥४३॥ संकीर्तन सुख से तुम्हें वाह्य ज्ञान नहीं है

कृष्णचन्द्र तोमार हृदये निरन्तर । तोमार विग्रह कृष्ण विलासेर घर ॥४५॥
अतएव तोमारे ये जने प्रीति करे । सत्य सत्य कभू कृष्ण ना छाड़ेन ताँरे ॥४६॥
तबे कथोत्तणे नित्यानन्द महाशय । बलिते लागिला अति करिया विनय ॥४७॥
प्रभु हइ तुमि ये आमारे कर स्तुति । ए तोमार वात्सल्य भक्तेर प्रति अति ॥४८॥
प्रदक्षिण कर, किवा कर नमस्कार । किवा मार, किवा राख, ये इच्छा तोमार ॥४६॥
कोन् वा वक्तव्य प्रभु आछे तोमा स्थाने । किवा नाहि देख तुमि दिव्य-दरशने ॥५०॥
मन प्राण सभार ईश्वर प्रभु तुमि । तुमि ये कराओ सेइ रूप करि आमि ॥५१॥
आपनेइ मोरे तुमि दण्ड धराइला । आपनेइ घुचाइया ए रूप करिला ॥५२॥
ताड़, खाड़ु, वेत्र, बंशी, शिङ्गा, छान्दडोड़ि । इहा से धरिये आमि मुनि धर्म छाड़ि ॥५३॥
आचार्यादि तोमार यतेक प्रियगण । सभारेइ दिला तप-भक्ति आचरण । ५४॥
मुनि धर्म छाड़ाइया कि कैले आमारे । व्यवहारि-जन देखि सभे हास्य करे ॥५५॥
तोमार नर्तक आमि, नाचाओ ये रूपे । सेइ रूपे नाचि आमि तोमार कौतुके ॥५६॥
कि निग्रह अनुग्रह तुमिसे प्रमाण । वृक्ष द्वारे कर तभु तोमारइ से नाम ॥५७॥
प्रभु बोले तोमार ये देहे अलंकार । नव विधा भक्ति वइ किछु नहे आर ॥५८॥
श्रवण-कीर्तन-स्मरणादि नमस्कार । एइ से तोमार सर्वकाल अलंकार ॥५६॥
नाग-विभूषण येन धरेन शङ्करे । ताहा नाहि सर्वजने बुझिवारे पारे ॥६०॥

तुम्हारे श्रीमुख से रात दिन कृष्ण गुन वर्णन होता है।।४४।।तुम्हारे हृदयमें निरन्तर कृष्णचन्द्र विराजमान रहते हैं तथा तुम्हारा विग्रह कृष्ण विलास का घर है।।४५।।इस कारण जो प्राणी तुम्हें प्रीति करते हैं यह सत्य है ३ कि कृष्ण उनको कभी नहीं छोड़ते ॥ ४६ ॥ तब कुछ पीछे अति उदार नित्यानन्द प्रभु अति विनय करके कहने लगे ॥ ४७ ॥ आप प्रभु होकर जो मेरी स्तुति करते हो यह आपका भक्त के प्रति अत्यन्त वात्सल्य भाव है ॥ ४८ ॥ सो चाहे प्रदक्षिणा करो अथवा नमस्कार करो व मारो किंवा रक्षा करो जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ॥ ४६ ॥ प्रभो आपके सम्मुख क्या कहना अवशेष है कारण कि आप दिव्य दृष्टि से क्या नहीं देख रहे हैं ॥ ५० ॥ प्रभो ! आप सब प्राणियों के मन प्राण के स्वामी हो आप जो कराते हो मैं वही उसी प्रकार करता हूँ ॥ ५१ ॥ स्वयं आपने ही मुझे दण्ड धारण कराया आपने ही मेरा पहिला रूप छिपाकर यह रूप कर दिया ॥ ५२ ॥ मुनि धर्म छोड़कर अङ्गद-वलय (ताड़ खण्डू) बेंत वंशी-शींग व छन्द डोरी आदि को धारण कर रहा हूँ ॥ ५३ ॥ जितने आचार्य आदि तुम्हारे प्रियगण हैं उन सबको तो तप व भक्ति का आचरण दिया ॥ ५४ ॥ परन्तु मेरा मुनि धर्म त्याग कराकर यह सब क्या कर दिया है जिसे व्यवहारी जन देखकर सब हँसी करते हैं ॥ ५५ ॥ मैं तुम्हारा नर्तक हूँ जिस प्रकार नचाते हो मैं तुम्हारे कौतुक के लिये उसी रूप में नाचता हूँ ॥ ५६ ॥ निग्रह करो अथवा अनुग्रह उसके तो आप ही प्रमाण हो जड़ वृक्ष के द्वारा भी यदि कोई कार्य साधन करो तो भी तुम्हारा ही नाम है ॥ ५७ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कहा, देखो तुम्हारी देह में जो अलंकार हैं वे नवविधा भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं ॥ ५८ ॥ श्रवण-कीर्तन-स्मरण-नमस्कार आदि यही तुम्हारे सब समय में अलंकार हैं ॥ ५६ ॥ जैसे शंकरजी सर्पों के अलंकार धारण करते हैं इस

परमार्थे महादेव-अनन्त-जीवन । नाग-छले अनन्त धरेन सर्वक्षण ॥६१॥
ना बुझिया निन्दे तान चरित्र अगाध । यतेक निन्दये तार हय कार्य-बाध ॥६२॥
भुजित तोमार अङ्गे भक्तिरस विने । अन्य नाहि देखों काहों काय-वाक्य-मने ॥६३॥
नन्द गोष्ठे वसि तुमि वृन्दावन सुखे । धरियाछ अलंकार आपन कौतुके ॥६४॥
इहा देखि ये सुकृति चित्ते पाय सुख । से अवश्य देखिवेक कृष्णेर श्रीमुख ॥६५॥
वेत्र,बंशी,शिङ्गा, गुञ्जाहार, माल्य, गन्ध । सर्वकाल एइ रूप तोमार श्रीअङ्ग ॥६६॥
यतेक बालक देखि तोमार संहति । श्रीदाम-सुदाम-प्राय लय मोर मति ॥६७॥
वृन्दावन क्रीड़ार यतेक शिशुगण । सकल तोमार सङ्गे-लय मोर मन ॥६८॥
सेइ भाव सेइ कान्ति सेइ सर्वशक्ति । सर्व देहे देखि सेइ नन्द गोष्ठ-भक्ति ॥६९॥
एतेके ये तोमारे, तोमार सेवकेरे । प्रीति करे, सत्य सत्य से करे आमारे ॥७०॥
स्वानुभावानन्दे दुइ-मुकुन्द अनन्त । कि रूपे कहेन कथा, के जानये अन्त ॥७१॥
कथोक्षणे दुइ प्रभु बाह्य प्रकाशिया । बसिलेन निभृते पुष्पेर बने गिया ॥७२॥
ईश्वरे परमेश्वरे हइल कि कथा । वेदे से इहार तत्त्व जानेन सर्वथा ॥७३॥
नित्यानन्दे चैतन्ये यखने देखा हय । प्राय आर केहो नाहि थाके से समय ॥७४॥
कि करेन आनन्द विग्रह दुइ जने । चैतन्य-इच्छाय केहो ना थाके तखने ॥७५॥
नित्यानन्दस्वरूपो प्रभुर इच्छा जानि । एकान्ते से आसिया देखेन न्यासि मणि ॥७६॥

बात को सब लोग समझ नहीं सकते ॥ ६० ॥ परमार्थ में अनन्तदेव ही महादेव के जीवन हैं सोई नाग के छल से सब समय अनन्तदेव को धारण करते हैं ॥ ६१ ॥ उनके अगाध चरित्र को न समझ कर जो निन्दा करते हैं उन निन्दकों के कार्य में उतनी ही बाधा होती है॥६२॥मैं तो शरीर वाणी व मन से तुम्हारे अङ्ग में भक्तिरस के सिवाय अन्य किसी पदार्थ को ही नहीं देखता॥६३॥तुमने वृन्दावन के सुख में नन्द ब्रज में रहकर अपने कौतुक से अलंकार पहिने थे ॥ ६४ ॥ इसको देखकर जो सुकृतिजन मन में सुख पाते हैं वे अवश्य ही श्रीकृष्ण के मुख कमल के दर्शन पावेंगे ॥ ६५ ॥ वेत, बंशी, शींग, गुंजाहार, माला व गन्धयुक्त तुम्हारा श्रीअङ्ग सदा से इसी प्रकार से है ॥ ६६ ॥ जितने बालक तुम्हारे साथ दृष्टिगोचर होते हैं मेरी बुद्धि उन्हें श्रीदाम-सुदाम गोपों के समान मानती है ॥६७॥ वृन्दावन क्रीड़ा के जितने ग्वाल-बाल हैं तुम्हारे संग में, वर्तमान में भी वे ही सब हैं ऐसा मेरे मन में प्रतीत होता है ॥ ६८ ॥ कारण सबकी देह वही नन्द गोष्ठ की भक्तिपूर्ण भाव कान्ति व सब शक्ति दिखाई देती है ॥६९॥ इस कारण से जो तुम्हें व तुम्हारे सेवकों को प्रीति करता है वह मुझे ही प्रीति करता है ॥७०॥श्रीमुकुन्द गौरहरि व श्रीअनन्तदेव नित्यानन्दजी अपने ही आनन्द में किस प्रकार क्या २ कथा कहते हैं उसका कौन अन्त पा सकता है ? ॥ ७१ ॥ कुछ क्षण पीछे दोनों प्रभु बाह्य ज्ञान प्रकाशित करके एक फूलों के बगीचे में एकान्त में जा बिराजे ॥ ७२ ॥ ईश्वर व परमेश्वर में क्या कथा हुई इस तत्त्व को वेद ही सर्वथा जानते हैं ॥ ७३ ॥ जिस समय श्रीनित्यानन्द व प्रभु श्रीचैतन्यचन्द्र का परस्पर मिलन हुआ है उस समय प्राय: अन्य कोई नहीं था ॥ ७४ ॥ दोनों आनन्दविग्रह न जाने क्या करते हैं श्रीचैतन्यचन्द्र की इच्छा से ही उस समय कोई नहीं रहा ॥ ७५ ॥ तथा श्रीनित्यानन्द-

आपनारे येन प्रभु ना करेन व्यक्त । एइमत लुकायेन नित्यानन्दतत्त्व ॥७७॥
सुकोमल दुर्विज्ञेय ईश्वर-हृदय । वेदे शास्त्रे ब्रह्मा शिव सब एइ कय' ॥७८॥
ना जानि ना बूझि मात्र सभे गाय गाथा । लक्ष्मीरो एइ से वाक्य, अन्येर कि कथा ॥७९॥
एइमत भावरङ्गे चैतन्य गोसाञि । एक कथा ना कहेन एकजन-ठाञि ॥८०॥
हेन से तांहार रङ्ग, सभेइ मानेन । "आमार अधिक प्रीत कारो ना वासेन ॥८१॥
आमारे से कहेन सकल गोप्य-कथा । 'मुनिधर्म करि कृष्ण भजिब सर्वथा' ॥८२॥
वेत्र, वंशी, वर्हा, गुंजामाला, छाद्‌ड़ोड़ि । इहा करिलेन केने मुनिधर्म छाड़ि ॥८३॥
केहो बोले "मुनिधर्म यतेक प्रकार । वृन्दावने गोपक्रीड़ा-अधिक सभार ॥८४॥
गोप-गोपी-भक्ति-सर्व तपस्यार फल । याहा वांछे ब्रह्मा-आदि-ईश्वर-सकल ॥८५॥
अति कृपा पात्र से गोकुल भक्ति पाय । ये भक्ति वन्देन प्रभु श्रीउद्धवराय ॥८६॥

तथाहि भागवते १० स्कन्धे ४७ अध्याये ६३ श्लोके--

"वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः । यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम्" ॥२॥

एइमत ये वैष्णव करेन विचार । सर्व्वत्रेइ गौरचन्द्र करेन स्वीकार ॥८७॥
अन्योन्ये वाजायेन आनन्द इच्छाय । हेन रंगी महाप्रभु श्रीगौराङ्गराय ॥८८॥
कृष्णेर कृपाय सभे आनन्दे विह्वल । कखनो कखनो वाजे आनन्द-कन्दल ॥८९॥
इहाते ये एक ईश्वरेर पक्ष हैया । आर ईश्वरेरे निन्दे, सेइ अभागिया ॥९०॥

स्वरूप भी प्रभु की इच्छा जानकर ही सन्यासि शिरोमणि से एकान्त में ही आकर मिले ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार प्रभु अपने को प्रकाश नहीं करते उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द तत्त्व को भी छिपाया ॥ ७७ ॥ वेद-शास्त्र, ब्रह्मा व शिव आदि सब यही कहते हैं कि ईश्वर-हृदय अति कोमल व दुर्विज्ञेय है ॥ ७८ ॥ दूसरों की क्या बात है लक्ष्मीजी का भी यही वाक्य है उसे न कोई जानते व समझते ही है सब कोई केवल गाथा मात्र गाते हैं ॥७९॥ इस प्रकार भावरंग में श्रीचैतन्य प्रभु ने एक जन के विषय में एक ही प्रसंग नहीं कहा ॥८०॥ उनका रंग ही ऐसा है इसे सब ही मानते हैं कि मुझसे अधिक प्रीति उनकी और किसी पर नहीं है ॥ ८१ ॥ तथा मुझसे ही सब गुप्त कथाऐं कहते हैं सो मैं मुनि धर्म में तत्पर होकर सर्वथा कृष्ण का भजन करूँगा ॥ ८२ ॥ मुनि धर्म को छोड़कर वेत, बंशी, मयूरपिच्छ,गुंजामाला व छन्दडोरी आदि को क्यों धारण किये ॥ ८३ ॥ किसी ने कहा मुनि धर्म जितने प्रकार का है उस सबसे अधिक वृन्दावन में गोपक्रीड़ा है ॥ ८४ ॥ गोप-गोपियों की सी भक्ति होनी सब तपस्याओं का फल है जिसे ब्रह्मा आदि सभी ईश्वर वाञ्छा करते हैं ॥८५॥ जो अति कृपापात्र हैं वे ही गोकुल की भक्ति प्राप्त करते हैं उस भक्ति की वन्दना श्रीउद्धव गोस्वामी ने भी की थी ॥ ८६ ॥ जिनका ऊँचे स्वर से हरि लीला का गान तीनों लोकों को पवित्र करता है मैं नन्द के व्रज में रहने वालीं उन गोपियों की चरण रेणु को बारम्बार वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥ इस प्रकार जो वैष्णव विचार करते हैं श्रीगौरचन्द्र उनको सब जगह स्वीकार करते हैं ॥ ८७ ॥ तथा अपने आनन्द की इच्छा से परस्पर में आनन्द कलह करा देते हैं महाप्रभु श्रीगौरांगराय ऐसे प्रेमी हैं ॥ ८८ ॥ सब भक्तगण कृष्ण की कृपा से आनन्द में विह्वल रहते थे, परन्तु कभी २ आनन्द कलह हो उठता था ॥ ८९ ॥ ऐसे समय में जो

ईश्वरेर अभिन्न-सकल भक्तगण । देहेर येहेन बाहु अंगुलि चरण ।।६१।।

तथाहि भागवते स्कन्धे ७ अध्याये ५० श्लोके—

"यथापुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्याद्दिषु क्वचित् । पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः" ।।३।।

तथापिह सर्व-वैष्णवेर एइ कथा । सभार ईश्वर-कृष्णचैतन्य सर्वथा ।।६२।।

नियन्ता पालक स्रष्टा अविज्ञात तत्त्व । सभे मेलि एइ मात्र गायेन महत्त्व ।।६३।।

आविर्भाव हैते छेन ये सब शरीरे । ताँ सभार अनुग्रहे भक्ति-फल धरे ।।६४।।

सर्वज्ञता सर्वशक्ति दियाओ आपने । अपराधे शास्तिओ करेन भाल-मने ।।६५।।

इति मध्ये सकले विशेष दुइ प्रति । नित्यानन्द-अद्वैतेरे ना छाड़ेन स्तुति ।।६६।।

कोटि अलौकिको यदि ए दुइ करेन । तथापिह गौरचन्द्र किछु ना बोलेन ।।६७।।

एइ मत कथोत्क्षण परानन्द करि । अवधूतचन्द्र सङ्गे गौराङ्ग श्रीहरि ।।६८।।

तबे नित्यानन्द स्थाने करिया विदाय । वासाय आइला प्रभु श्रीगौरांगराय ।।६६।।

नित्यानन्दस्वरूपो परम-हर्ष-मने । आनन्दे चलिला जगन्नाथ दरशने ।।१००।।

नित्यानन्द-चैतन्ये ये हैल दरशन । इहार श्रवणे सर्व-बन्ध-विमोचन ।।१०१।।

जगन्नाथ देखि मात्र नित्यानन्दराय । आनन्दे विह्वल हइ गड़ागड़ि जाय ।।१०२।।

आछाड़ पड़ेन प्रभु प्रस्तर-उपरे । शत जने धरिलेओ धरिते ना पारे ।।१०३।।

जगन्नाथ बलराम सुभद्रा सुदर्शन । सभा देखि नित्यानन्द करेन क्रन्दन ।।१०४।।

एक ईश्वर के पक्ष में होकर अन्य ईश्वर की निन्दा करें वे अभागे हैं ।। ६० ।। जैसे देह के अन्तर्गत बाहु अंगुलि चरण आदि हैं वैसे ही सब भक्तवृन्द भी ईश्वर से अभिन्न हैं ।। ६१ ।। जैसे साधारण पुरुष अपने हाथ पाँव मस्तक आदि किसी भी एक अंग को यह मेरा नहीं है दूसरे का है ऐसी विवेचना नहीं करते हैं और जो मुझे परात्पर रूप से निरूपण करते हैं वे उसी प्रकार किसी प्राणी के ऊपर व उनके दुःख सुखादि को अपने से पृथक है ऐसी परबुद्धि नहीं करते हैं ।। ३ ।। तथापि सब वैष्णवों का यही कहना कि सबके ईश्वर सर्वथा श्रीकृष्णचैतन्य हैं ।।६२।। सब मिलकर केवल यही महत्त्व गाते हैं कि आपका तत्त्व अविज्ञात है आप नियन्ता पालक तथा स्रष्टा हैं ।। ६३ ।। तथा जिन सब भक्तों के शरीरों में आविर्भाव होते हो और उन सबके अनुग्रह से भक्तिरूप फल प्राप्त होता है ।। ६४ ।। अपने भक्तों को सर्वज्ञता व सब शक्ति दे रक्खी है, परन्तु अपराध होने पर दण्ड भी भली भाँति करते हो ।। ६५ ।। इन सबके बीच में विशेष कर केवल श्रीनित्यानन्द व श्रीअद्वैत दोनों की स्तुति करना नहीं छोड़ते ।। ६६ ।। यदि ये दोनों करोड़ों अलौकिक कर्म भी करें तथापि श्रीगौरचन्द्र कुछ नहीं कहते ।। ६७ ।। इस प्रकार कुछ क्षण पश्चात् श्रीगौरहरि ने अवधूतचन्द्र (नित्यानन्द) के साथ परम आनन्द किया ।। ६८ ।। तब श्रीगौरांगराय प्रभु श्रीनित्यानन्दजी से बिदा होकर अपने निवास स्थान को आये ।। ६६ ।। तथा नित्यानन्दस्वरूप भी बड़े हर्षित मन से जगन्नाथ के दर्शन के लिये आनन्द में चल दिये ।। १०० ।। श्रीनित्यानन्द व श्रीचैतन्य को जो परस्पर दर्शन हुए इसके सुनने से सब बन्धन नष्ट हो जाँयगे ।। १०१ ।। श्रीनित्यानन्दराय जगन्नाथ के दर्शन मात्र करते ही आनन्द से विह्वल होकर लोट-पोट होने लगे ।।१०२।। श्रीनित्यानन्द प्रभु पत्थरों के ऊपर पछाड़ खाकर गिरते तथा सौ मनुष्यों

सभार गलार माला ब्राह्मणे आनिञा । पुनः पुन देन सभे प्रभाव जानिञा ॥१०५॥
नित्यानन्द देखि यत जगन्नाथदास । सभार जन्मिल अति-परम-उल्लास ॥१०६॥
ये जन ना चिने, से जिज्ञासे कारो ठाँइ । सभे कहे 'एइ कृष्णचैतन्येर भाइ' ॥१०७॥
नित्यानन्दस्वरूपो सभारे करि कोले । सिञ्चिला सभार अङ्ग प्रेमानन्द-जले ॥१०८॥
तबे जगन्नाथ हेरि हर्ष सर्व-गणे । आनन्दे चलिला गदाधर-दरशने ॥१०९॥
नित्यानन्द-गदाधरे ये प्रीत अन्तरे । इहा कहिबारे शक्ति ईश्वरे से धरे ॥११०॥
गदाधर भवने मोहन गोपीनाथ । आछेन येहेन नन्दकुमार साक्षात् ॥१११॥
अपने चैतन्य ताने करियाछेन कोले । अति पाषण्डीओ से विग्रह देखि भूले ॥११२॥
देखे श्रीमुरली मुख अङ्गेर भङ्गिमा । नित्यानन्द-आनन्द-अश्रुर नाहि सीमा ॥११३॥
नित्यानन्द-विजय जानिञा गदाधर । भागवत पाठ छाड़ि आइला सत्वर ॥११४॥
दुँहे मात्र देखिया दुँहार श्रीवदन । गला धरि लागिलेन करिते क्रन्दन ॥११५॥
अन्योन्ये दुइ प्रभु करे नमस्कार । अन्योन्ये दुँहे कहे महिमा दुँहार ॥११६॥
दोहो बोले 'आजि हैल लोचन निर्म्मल । दोहो बोले 'आजि हैल जनम सफल' ॥११७॥
बाह्य ज्ञान नाहि दुइ प्रभुर शरीरे । दुइ प्रभु भासे भक्ति-आनन्द-सागरे ॥११८॥
हेन से हइल प्रेमभक्तिर प्रकाश । देखि चतुर्दिगे पड़ि कान्दे सर्व्वदास ॥११९॥
कि अद्भुत प्रीति नित्यानन्द-गदाधरे । एकेर अप्रिय आरे सम्भाषा ना करे ॥१२०॥

को भी पकड़ में नहीं आते थे ॥ १०३ ॥ श्रीनित्यानन्द, जगन्नाथ बलराम सुभद्रा व सुदर्शन के दर्शन करके रुदन करने लगे ॥ १०४ ॥ उनके प्रभाव को जानकर सबके गले में मालाऐं लाकर ब्राह्मण बारम्बार दे रहे थे ॥ १०५ ॥ नित्यानन्द को देखकर जितने जगन्नाथजी के सेवक थे उन सबको अतिशय परमोल्लास उत्पन्न हुआ ॥ १०६ ॥ जो जन नहीं पहिचानते थे वे किसी से पूँछते थे, सब ही कह रहे थे कि ये ही श्रीकृष्ण-चैतन्य के भाई हैं ॥ १०७ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप भी सबको गोदी में लेकर सबके अङ्ग प्रेमानन्द जल से सींचने लगे ॥१०८॥ तब सब गणों के सहित जगन्नाथ दर्शन करके आनन्द से हर्ष मन होकर श्रीगदाधरजी के दर्शनों को गये॥१०९॥श्रीनित्यानन्द व श्रीगदाधर की परस्पर में जो आन्तरिक प्रीति है उसे कहने की शक्ति केवल ईश्वर में ही है ॥११०॥ श्रीगदाधरजी के भवन में मोहन गोपीनाथ साक्षात् नन्दकुमार ही थे॥१११॥ उनको श्रीचैतन्य ने भी स्वयं गोदी में लिया था तथा उस विग्रह को देखकर अत्यन्त पाखण्डी भी अपने को भूल जाते थे ॥११२॥ श्रीमुरलीधर के मुख व अंग की भंगिमा को देखकर श्रीनित्यानन्दजी के आनन्दाश्रुओं की सीमा नहीं रही ॥ ११३ ॥ श्रीगदाधरजी श्रीनित्यानन्द का शुभागमन जानकर भागवत पाठ छोड़कर शीघ्रता से आये ॥११४॥ दोनों एक दूसरे का श्रीमुख देखते ही परस्पर में कण्ठ पकड़ कर रोने लगे ॥ १०५ ॥ परस्पर दोनों प्रभु एक दूसरे को नमस्कार कर रहे थे और तथा एक दूसरे की महिमा वर्णन कर रहे थे॥११६॥ दोनों ने कहा आज नेत्र निर्मल हुए तथा फिर दोनों ही बोले कि आज जन्म सफल हो गया ॥ ११७ ॥ दोनों-प्रभुओं के शरीरों में बाह्य ज्ञान नहीं था तथा दोनों भक्ति के आनन्दसागर में डुबकी लगा रहे थे ॥ ११८ ॥ प्रेमभक्ति का ऐसा प्रकाश हुआ जिसे देखकर सब दास चारों ओर में रो पड़े ॥ ११९ ॥ श्रीनित्यानन्द व श्री

गदाधरदेवेर सङ्कल्प एइ रूप । नित्यानन्द निन्दकेर ना देखेन मुख ॥१२१॥
नित्यानन्दस्वरूपेरे प्रीति याँर नाञि । देखाओ ना देन तारे पण्डित गोसाञि ॥१२२॥
तबे दुइ प्रभु स्थिर हइ एक स्थाने । बसिलेन चैतन्य मंगल-संकीर्तने ॥१२३॥
तबे गदाधर देव नित्यानन्द प्रति । निमन्त्रण करिलेन 'आजि भिक्षा इथि' ॥१२४॥
नित्यानन्द गदाधर भिक्षार कारणे । एक-मान चाउल आनिञाछेन यतने ॥१२५॥
अति सूक्ष्म शुक्ल देवयोग्य सर्व मते । गदाधर लागि आनिञाछेन गौड़ हैते ॥१२६॥
आर एक खानि वस्त्र-रङ्गिम सुन्दर । दुइ आनि दिला गदाधरेर गोचर ॥१२७॥
गदाधर ! ए तण्डुल करिया रन्धन । श्रीगोपीनाथेरे दिया करिवा भोजन ॥१२८॥
तण्डुल देखिया हासे पण्डित गोसाञि । नयनेत एमत तण्डुल देखि नाञि ॥१२९॥
ए तण्डुल गोसाञि कि वैकुण्ठे थाकिया । आनिञा आछेन गोपीनाथेर लागिया ॥१३०॥
लक्ष्मीमात्र ए तण्डुल करेन रन्धन । कृष्ण से इहार भोक्ता, तबे भक्तगण ॥१३१॥
आनन्दे तण्डुल प्रशंसेन गदाधर । वस्त्र लइ गेला गोपीनाथेर गोचर ॥१३२॥
दिव्य-रङ्ग-वस्त्र गोपीनाथेर श्रीअङ्गे । दिलेन, देखिया शोभा भासेन आनन्दे ॥१३३॥
तबे रन्धनेर कार्य करिते लागिला । आपने टोटाय शाक तुलिते चलिला ॥१३४॥
केहो बोने नाहि दैवे हइयाछे शाक । ताहा तुलि आनिञा करिला एक पाक ॥१३५॥
तेंतलि वृक्षेर यत पत्र सुकोमल । ताहा आनि वाटि तथि दिला लोण जल ॥१३६॥

गदाधर में कैसी अद्भुत प्रीति थी एक के अप्रिय से दूसरे सम्भावन ही नहीं करते थे॥ १२० ॥ श्रीगदाधर-देव का संकल्प था कि श्रीनित्यानन्दजी के निन्दक का मुख नहीं देखना ॥ १२१ ॥ जिनकी श्रीनित्यानन्द में प्रीति नहीं थी श्रीपण्डित गोस्वामी उनको दर्शन भी नहीं देते थे ॥ १२२ ॥ कुछ क्षण में दोनों प्रभु स्थिर होकर चेतन्य संगल संकीर्तन करने को एक स्थान में बैठ गये ॥ १२३ ॥ उसके पीछे श्रीगदाधरदेव ने श्री-नित्यानन्द को निमन्त्रण दिया कि आज भिक्षा यहीं करो ॥१२४॥ श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीगदाधर सेव्य गोपी-नाथजी के भोग के लिये यत्नपूर्बक एक मन चाँवल लाये थे ॥ १२५ ॥ अत्यन्त छोटे, सफेद व सब प्रकार से देव के योग्य थे जिनको गौड़देश से गदाधरजी के निमित्त लाये हैं ॥ १२६ ॥ तथा एक सुन्दर रंगीन वस्त्र इन दोनों को लाकर गदाधर के सम्मुख रक्खे और कहा कि ॥ १२७ ॥ हे गदाधरजी इन चाँबलों को सिद्ध करके श्रीगोपीनाथ को अर्पण करके भोग लगाओ॥१२८॥तब श्री पंडित गोस्वामी चावलों को देखकर हँसे और बोले कि प्रभो ऐसे चावल तो नेत्रों से नहीं देखे हैं ॥ १२९ ॥ प्रभो इन चाँवलों को क्या वैकुण्ठ से गोपीनाथ के निमित्त लाये हो ? ॥ १३० ॥ एक मात्र लक्ष्मीजी ही इन चावलों की रसोई करती हैं तथा श्रीकृष्ण ही इनके भोक्ता हैं ॥ १३१ ॥ श्रीगदाधरजी आनन्द में चावलों की प्रशंसा कर रहे थे तथा वस्त्र लेकर श्रीगोपीनाथ के सामने गये ॥ १३२ ॥ दिव्य रंगीन वस्त्र श्रीगोपीनाथ के श्रीअंग में अर्पण किया और शोभा देखकर आनन्दविभोर हो गये ॥ १३३ ॥ तब रसोई का कार्य प्रारम्भ किया आप स्वयं उद्यान में शाग लेने को गये ॥ १३४ ॥ किसी ने बोया नहीं था जो दैववश ही शाक उपज आये थे कहीं तोड़ लाये और एक प्रकार की रसोई की ॥ १३५ ॥ इमली वृक्ष के जितने अति कोमल पत्ते थे उन्हें ले आये और

तार एक व्यञ्जन करिला अम्ल-नाम । रन्धन करिया गदाधर भाग्यवान् ॥१३७॥
गोपीनाथ-अग्रे निञा भोग लागाइला । हेन काले गौरचन्द्र आसिया मिलिला ॥१३८॥
प्रसन्न श्रीमुखे 'हरे कृष्ण कृष्ण बलि । विजय हइला गौरचन्द्र कुतूहली' ॥१३९॥
"गदाधर गदाधर" डाके गौरचन्द्र । सम्भ्रमे वन्देन गदाधर पद द्वन्द ॥१४०॥
हासिया बोलेन प्रभु "केन गदाधर । आमि कि ना हइ निमंत्रणेर भितर ॥१४१॥
आमित तोमरा दुइ हैते भिन्न नाहि । ना दिलेओ तोमरा, बलेते आमि खाइ ॥१४२॥
नित्यानन्दद्रव्य-गोपीनाथेर प्रसाद । तोमार रन्धन-मोर इथे आछे भाग" ॥१४३॥
कृपावाक्य शुनि नित्यानन्द गदाधर । मग्न हइलेन सुख-सागर-भितर ॥१४४॥
सन्तोषे प्रसाद आनि देव-गदाधर । थुइलेन गौरचन्द्र प्रभुर गोचर ॥१४५॥
सर्व टोटा व्यापिलेक अन्नेर सुगन्धे । भक्ति करि प्रभु पुनः पुन अन्न वन्दे ॥१४६॥
प्रभु बोले "तिन भाग समान करिया । अन्न लइ तिने भुञ्जि एकत्र वसिया" ॥१४७॥
नित्यानन्दस्वरूपेर तण्डुलेर प्रीते । वसिलेन महाप्रभु भोजन करिते ॥१४८॥
दुइप्रभु भोजन करेन दुइपाशे । सन्तोषे ईश्वर अन्न-व्यञ्जन प्रशंसे' ॥१४९॥
प्रभु बोले "ए अन्नेर गन्धेओ सर्वथा । कृष्णभक्ति हय, इथे नाहिक अन्यथा ॥१५०॥
गदाधर कि तोमार मनोहर पाक । आमित एमत कभू नाहि खाइ शाक ॥१५१॥
गदाधर कि तोमार विचित्र रन्धन । तेंतलि पातेर कर एमत व्यञ्जन ॥१५२॥

पीसकर लवण जल मिला दिया ॥ १३६ ॥ भाग्यवान् गदाधर ने उनको रन्धन करके अम्ल नामक व्यंजन (शाक) सिद्ध किया ॥ १३७ ॥ तथा श्रीगोपीनाथ के आगे ले जाकर भोग लगाया उसी समय श्रीगौरचन्द्र भी आकर मिले॥१३८॥प्रसन्न श्रीमुख से हरे कृष्ण २ कहते कुतूहली श्रीगौरचन्द्र का आगमन हुआ॥१३९॥ गौरचन्द्र ने ऊँचे स्वर से "हे गदाधर २ पुकारा उस समय शीघ्रता से आकर श्रीगदाधर ने चरणों में वन्दना की ॥ १४० ॥ हँसकर श्रीगौरचन्द्र ने कहा "क्यों गदाधर ! क्या हम निमन्त्रण में नहीं हैं ?" ॥१४१॥ मैं तो तुम दोनों से कोई दूसरा नहीं हूँ तुम नहीं दोगे तो भी मैं बल प्रकाशपूर्वक खाऊँगा ॥१४२॥ नित्यानन्दजी द्वारा लाया हुआ द्रव्य और श्रीगोपीनाथ का प्रसाद तथा तुम्हारी रसोई इसलिये मेरा भी इसमें भाग है ॥ १४३ ॥ श्रीनित्यानन्द व श्रीगदाधर दोनों ही कृपा वाक्य सुनकर सुख के सागर में मग्न हो गये ॥ १४४ ॥ श्रीगदाधरजी ने प्रसन्न होकर प्रसाद लाकर श्रीगौरचन्द्र के सामने रख दिया ॥ १४५ ॥ तथा अन्न की सुगन्धि से सब बाग भर गया श्रीप्रभु भक्तिपूर्वक बारम्बार अन्न की वन्दना करने लगे ॥ १४६ ॥ श्रीप्रभु ने कहा अन्न को तीन सम भाग करके एक जगह ही बैठकर तीनों भोजन करेंगे ॥ १४७ ॥ श्रीनित्यानन्दस्वरूप के तण्डुलों की प्रीति से श्रीमहाप्रभु भोजन करने को विराजे ॥ १४८ ॥ तथा श्रीनित्यानन्द व श्रीगदाधर उनके दोनों ओर भोजन करने बैठे, श्रीमहाप्रभु ने सन्तुष्ट होकर अन्न व्यंजनों की प्रशंसा की ॥ १४९ ॥ श्रीप्रभु ने कहा इस अन्न की गन्ध से ही कृष्ण-भक्ति होती है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ १५० ॥ हे गदाधर तुम्हारी रन्धन क्रिया कैसी है ? मैंने तो ऐसा साग कभी नहीं खाया ? ॥ १५१ ॥ अरे गदाधर तुम्हारी क्या विचित्र रन्धन-क्रिया है, अहा इमली पत्तों का ऐसा विलक्षण शाग बनाया है ? ॥ १५२ ॥ जान लिया

वूझिलाङ-वैकुण्ठे रन्धन कर तुमि। तवे आर आपनारे लुकाओ वा केनि" ॥१५३॥
एइमत महानन्दे हास्य परिहासे। भोजन करेन तिन प्रभु प्रेमरसे ॥१५४॥
ए-तिन-जनार प्रीति ए-तिने से जाने। गौरचन्द्र झाट ना कहेन कारो स्थाने ॥१५५॥
कथोक्षणे प्रभु सब करिया भोजन। चलिलेन, पत्र लूट कैल भक्तगण ॥१५६॥
ए आनन्द-भोजन ये पढ़े ये वा शुने। कृष्णभक्ति कृष्णपाय सेइ सब जने ॥१५७॥
गदाधर शुभ दृष्टि करेन याँहारे। से-इसे जानये नित्यानन्द स्वरूपेरे ॥१५८॥
नित्यानन्दस्वरूपो याँहार प्रीत मने। लओयायेन गदाधर, जाने से-इ जने ॥१५९॥
हेनमते नित्यानन्द प्रभु नीलाचले। रहिलेन गौरचन्द्र सङ्गे कुतूहले ॥१६०॥
तिनजन एकत्र थाकेन निरन्तर। श्रीकृष्णचैतन्य, नित्यानन्द, गदाधर ॥१६१॥
जगन्नाथो एकत्र देखेन तिन जने। आनन्दे विह्वल सभे मात्र सङ्कीर्तने ॥१६२॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान। वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१६३॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे गदाधर-गृह-विलासवर्णनं नाम
अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्याय

"जयजय महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य। जयजय नित्यानन्द त्रिभुवन धन्य ॥१॥
भक्तगोष्ठी सहित गौरांग जयजय। शुनिले चैतन्य कथा भक्तिलभ्य हय ॥२॥
जय जय श्रीकृष्ण चैतन्य गुणनिधि। जय जय नित्यानन्द दयार अवधि ॥३॥

वैकुंठ में तुम ही रसोई करते हो तो फिर अपने को छिपाते क्यों हैं॥ १५३॥ इस प्रकार बड़े आनन्दपूर्वक हास-परिहास करते हुए तीनों प्रभुओं ने प्रेमरस से भोजन किया॥ १५४॥ इन तीन जनों की प्रीति को ये तीनों ही जानते हैं सो श्रीगौरचन्द्र किसी से शीघ्र ही नहीं कहते॥ १५५॥ कुछ समय में तीनों प्रभु भोजन करके चले हैं तब भक्तों ने महाप्रसाद की लूट मचाई॥ १५६॥ इस आनन्दपूर्ण भोजन लीला को जो पाठ करेंगे व जो श्रवण करेंगे उन सब प्राणियों को कृष्णचन्द्र की भक्ति व कृष्णचन्द्र प्राप्त होंगे ॥१५७॥ जिनके ऊपर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी शुभ दृष्टि करते हैं केवल वे ही श्रीनित्यानन्दस्वरूप को जानते हैं॥१५८॥ और श्रीनित्यानन्दस्वरूप जिन पर मनमें प्रसन्न होते हैं उन्हीं को गदाधर ग्रहण कराते तथा वे ही जन उन्हें जान पाते हैं ॥१५९॥ इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु ने नीलाचल में कुतूहल से श्रीगौरचन्द्र के साथ निवास किया॥ १६०॥ श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्द व गदाधर तीनों प्रभु निरन्तर एक ही साथ रहते थे॥ १६१॥ तथा तीनों एक साथ ही जगन्नाथ दर्शन करते थे तथा सब ही संकीर्तन जनित प्रेमानन्द में ही केवल विह्वल रहते थे॥ १६२॥ श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र जिनके जान अर्थात् जीवन हैं वे वृन्दावदास (ग्रन्थकार) उनके चरण युगलों को अवलम्बन करके उनकी महिमा गान करते हैं॥ १६३॥

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २ तथा त्रिभुवन धन्यकारी नित्यानन्द प्रभु की जय हो २ ॥१॥ भक्तगोष्ठी सहित श्रीगौरांग प्रभु की जय हो, श्रीचैतन्य कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है॥ २॥ गुणनिधि,

जयजय श्रीअद्वैत-आदि भक्तगण । जय हउ तोमार लीलार श्रोतागण" ।।४।।
एवे शुन वैष्णव सभार आगमन । आचार्य गोसाञि आदि यत प्रिय-गण ।।५।।
श्रीरथयात्रार आसि हइल समय । नीलाचले भक्तगोष्ठीर हइल विजय ।।६।।
ईश्वरेर आज्ञा 'प्रति-वत्सरे वत्सरे । सभेइ आसिवा रथयात्रा देखिवारे ।।७।।
आचार्य गोसाञि अग्रे करि भक्तगण । सभे नीलाचल प्रति करिला गमन ।।८।।
चलिलेन ठाकुर पण्डित श्रीनिवास । याँहार मन्दिरे हैल चैतन्य विलास ।।९।।
चलिला आचार्यरत्न श्रीचन्द्रशेखर । देवीभावे याँर गृहे नाचिला ईश्वर ।।१०।।
चलिलेन हरिषे पण्डित-गङ्गादास । याँहार स्मरणे हय कर्मबन्ध नाश ।।११।।
पुण्डरीक विद्यानिधि चलिला आनन्दे । उच्चस्वरे याँरे स्मरि गौरचन्द्र कान्दे ।।१२।।
चलिला आनन्दे पण्डित वक्रेश्वर । ते नाचिते कीर्तनीया श्रीगौरसुन्दर ।।१३।।
चलिला प्रद्युम्न ब्रह्मचारी महाशय । साक्षात् नृसिंह याँर सने कथा कय' ।।१४।।
चलिलेन आनन्दे ठाकुर हरिदास । आर हरिदास-याँर सिन्धुकूले वास ।।१५।।
चलिलेन वासुदेवदत्त महाशय । याँर स्थाने कृष्ण हय आपने विक्रय ।।१६।।
चलिला मुकुन्ददत्त-कृष्णेर गायन । शिवानन्दसेन-आदि लइ आप्त गण ।।१७।।
चलिला गोविन्दानन्द आनन्दे विह्वल । दश-दिग हय याँर स्मरणे निर्मल ।।१८।।
चलिला गोविन्ददत्त महाहर्ष मने । मूल हैया ये कीर्तन करे प्रभु सने ।।१९।।

श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो २ और दया के अवधि नित्यानन्द प्रभु की जय हो २ ।। ३ ।। श्रीअद्वैत आदि भक्तगणों की जय हो २ और तुम सब लीला सुनने वालों की जय हो ।।४।। अब सब वैष्णव तथा आचार्य गुसाँई आदि जितने प्रियगण हैं उन सबका आगमन प्रसंग सुनो ।। ५ ।। श्रीरथयात्रा का समय आ पहुँचा अत: नीलाचल में भक्तमण्डली का आगमन हुआ ।। ६ ।। कारण कि श्रीप्रभु गौरचन्द्र की आज्ञा थी कि प्रत्येक वर्ष रथयात्रा दर्शन करने के लिये सब ही आया करें ।। ७ ।। आचार्य गोस्वामी को आगे करके सब भक्तगणों ने नीलाचल के प्रति गमन किया ।। ८ ।। जिनके मन्दिर में श्रीचैतन्य विलास हुआ करता था, वे पण्डित श्रीनिवास ठाकुर भी चले ।। ९ ।। श्रीप्रभु ने जिनके घर में देवीभाव से नृत्य किया था ऐसे श्रीचन्द्र-शेखर आचार्य रत्न भी चले ।। १० ।। जिनके स्मरण से ही कर्म बन्धन नष्ट होता है ऐसे वे श्री पण्डित गङ्गा-दास भी प्रसन्न होकर चले ।। ११ ।। जिनको स्मरण करके श्रीगौरचन्द्र ऊँचे स्वर से रोये थे वे श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि आनन्द से चले ।।१२।। जिनके नृत्य के समय श्रीगौरसुन्दर कीर्तनिया हुए थे वे पण्डित वक्रेश्वर भी आनन्द से चले ।। १३ ।। महाशय प्रद्युम्न ब्रह्मचारी चले जिनके संग में नृसिंह भगवान् साक्षात् कथा कहते थे ।। १४ ।। ठाकुर हरिदास व छोटे हरिदास आनन्द से चले हैं जिनका समुद्र तट पर वास था ।।१५।। श्रीवासुदेवदत्त महाशय चले जिनके साथ स्वयं कृष्ण (पूर्व प्रसङ्ग में) बिक गये थे ।। १६ ।। श्रीशिवानन्द सेन आदि आत्मीयगणों को लेकर कृष्ण के गायक श्रीमुकुन्ददत्तजी चले ।। १७ ।। दशों दिशाएं जिनके स्मरण करते ही निर्मल हो जाती हैं वे गोविन्दानन्द भी आनन्द में विह्वल होकर चले।।१८।।जो जड़ होकर प्रभु के सङ्ग में कीर्तन करते थे,वे श्रीगोविन्ददत्त बड़े हर्ष मन से चले ।।१९।।आँखर देने वाले श्रीविजयदास चले

चलिलेन आँखरिया-श्रीविजयदास । 'रत्नबाहु' याँरे प्रभु करिला प्रकाश ॥२०॥
सदाशिव पण्डित चलिला शुद्ध मति । याँर घरे पूर्वे नित्यानन्देर वसति ॥२१॥
पुरुषोत्तम संजय चलिला हर्ष मने । ये प्रभुर मुख्य शिष्य पूर्व अध्ययने ॥२२॥
'हरि' बलि चलिलेन पण्डित-श्रीमान् । प्रभु-नृत्ये ये देउटि धरे सावधान ॥२३॥
नन्दन-आचार्य चलिलेन प्रीत मने । नित्यानन्द याँर गृहे आइला प्रथमे ॥२४॥
हरिषे चलिला शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी । याँर अन्न मागि खाइलेन गौरहरि ॥२५॥
अकिंचन कृष्णदास चलिला श्रीधर । याँर जलपान कैल प्रभु विश्वम्भर ॥२६॥
चलिलेन लेखक-पण्डित भगवान् । याँर देहे कृष्ण हैयाछिला अधिष्ठान ॥२७॥
गोपीनाथ पण्डित आर श्रीगर्भ पण्डित । चलिलेन दुइ कृष्णविग्रह निश्चित ॥२८॥
चलिलेन बनमाली पण्डित मङ्गल । ये देखिल सुवर्णेर श्रीहल मूषल ॥२९॥
जगदीश पण्डित हिरण्य भागवत । आनन्दे चलिला दुइ कृष्णरसे मत्त ॥३०॥
पूर्व शिशुरूपे प्रभु ये-दुइर घरे । नवेद्य खाइला आनि श्रीहरिवासरे ॥३१॥
चलिलेन बुद्धिमन्त खान महाशय । आजन्म चैतन्य-आज्ञा याँहार विषय ॥३२॥
हरिषे चलिला श्रीआचार्य पुरन्दर । 'बाप' बलि याँरे डाके श्रीगौरसुन्दर ॥३३॥
चलिलेन श्रीराघव पण्डित उदार । गुप्ते याँर घरे हैल चैतन्य विहार ॥३४॥
भवरोग-वैद्यसिंह चलिला मुरारि । गुप्ते याँर देहे वैसे गौराङ्ग श्रीहरि ॥३५॥
चलिलेन श्रीगरुड़ पण्डित हरिषे । नाम-बले याँरे ना लांघिल सर्प विषे ॥३६॥

प्रभु ने जिन्हें रत्नबाहु नाम से प्रकाश किया था ॥ २० ॥ शुद्ध बुद्धि वाले पण्डित सदाशिव चले पहिले जिनके घर में श्रीनित्यानन्द प्रभु का निवास हुआ था ॥२१॥ श्रीपुरुषोत्तम सञ्जय ने बड़े हर्ष मन से गमन किया पहिले अध्ययन काल में जो प्रभु के मुख्य शिष्य थे ॥ २२ ॥ श्रीमान् पण्डित हरि २ कहकर चले प्रभु के नृत्य काल में जो सावधान होकर मशाल धारण करते थे ॥ २३ ॥ सबसे पहिले नित्यानन्द जिनके घर में आये वे श्रीनन्दन आचार्य प्रसन्न मन से चले ॥ २४ ॥ श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी हर्षित होकर चले जिनसे श्रीगौर हरि ने अन्न माँगकर खाया था ॥ २५ ॥ श्रीप्रभु विश्वम्भर ने (लोह पात्र से) जिनका जल पिया था ऐसे वे अकिंचन कृष्णदास श्रीधरजी भी चले ॥ २६ ॥ जिनके देह में कृष्ण का अधिष्ठान हुआ था ऐसे लेखक श्रीभगवान् पण्डित चले ॥ २७ ॥ जो दो निश्चित रूप से श्रीकृष्ण विग्रह ही थे, ऐसे श्री पण्डित गोपीनाथ व श्री पण्डित श्रीगर्भ चले ॥ २८ ॥ जिनने पहिले सोने के हल मूषल देखे थे, ऐसे मङ्गलस्वरूप पण्डित वनमाली चले ॥ २९ ॥ जगदीश पण्डित व हिरण्य भागवत दोनों कृष्णरस में मत्त होकर आनन्द में चल दिये॥३०॥पूर्व में इन दोनों के घर में श्रीप्रभु ने शिशुरूप से एकादशी के दिन नैवेद्य खाया था ॥३१॥ जन्म से श्रीचैतन्य की आज्ञा को मानना ही जिनका एक मात्र विषय है, वे महाशय बुद्धिमन्त खान भी चले ॥ ३२ ॥ पिता कहकर जिनसे श्रीगौरसुन्दर बोलते थे, वे श्रीआचार्य पुरन्दर हर्ष से चले ॥३३॥ श्रीनित्यानन्द जी के कथनानुसार जिनके घर में गुप्तरूप से श्रीचैतन्य विहार हुआ वे उदार श्रीराघव पण्डित चले ॥३४॥ भवरोग के वैद्यसिंह श्रीमुरारि गुप्त चले जिनके देह में श्रीगौरहरि गुप्त रूप से विराजते थे ॥ ३५ ॥ जिनके

चलिलेन गोपीनाथसिंह महाशय । 'अक्रूर' करिया याँरे गौरचन्द्र कय ॥३७॥
प्रभुर परम प्रिय श्रीराम पण्डित । चलिलेन नारायण पण्डित-सहित ॥३८॥
आइ-दरशने श्रीपण्डित-दामोदर । आसि छिला, आइ देखि चलिला सत्वर ॥३९॥
अनन्त चैतन्य-भक्त-कत जानि नाम । सभे चलिलेन हइ आनन्देर धाम ॥४०॥
आइ-स्थाने भक्ति करि विदाय करिया । चलिला अद्वैतसिंह भक्तगोष्ठी लैया ॥४१॥
ये-ये द्रव्ये जानेन प्रभुर पूर्व प्रीत । सब लैला सभे प्रभुर भिक्षार निमित्त ॥४२॥
सर्व पथे संकीर्तन-आनन्द करिते । आइलेन पवित्र करिया सर्व पथे ॥४३॥
उल्लासे ये हरिध्वनि करे भक्तगण । शुनिञा पवित्र हय त्रिभुवन-जन ॥४४॥
पत्नी-पुत्र-दास-दासी गणेर सहिते । आइलेन परानन्दे चैतन्य देखिते ॥४५॥
ये-स्थाने रहेन आसि सभे वासाकरि । सेइ स्थान हय येन श्रीवैकुण्ठपुरी ॥४६॥
शुन शुन आरे भाइ ! मङ्गल-आख्यान । जाँहा गाय महाप्रभु शेष भगवान् ॥४७॥
एइ मत रङ्गे महापुरुष सकल । सकल-मङ्गले आइलेन नीलाचल ॥४८॥
कमलपुरेते ध्वज-प्रासाद देखिया । पड़िलेन कान्दि सभे दण्डवत् हैया ॥४९॥
प्रभुओ जानिञा भक्तगोष्ठीर विजय । आगु बाढ़िबारे चित्त कैला इच्छामय ॥५०॥
अद्वैतेरे प्रति अति प्रीतियुक्त हैया । अग्रे महाप्रसाद दिलेन पाठाइया ॥५१॥
कि अद्भुत प्रीतिसे ताहार नाहि अन्त । प्रसाद चलये याँरे कटक पर्यन्त ॥५२॥

प्रभाव से सर्प का विष नहीं चढ़ा वे श्रीगरुड़ पण्डित प्रसन्नता पूर्वक चले ॥ ३६ ॥ "अक्रूर" कहकर जिनको श्रीगौरचन्द्र सम्बोधन करते थे, वे बड़े उदार गोपीनाथसिंह चले ॥३७॥ प्रभु के परम प्रिय श्रीराम पण्डित पण्डित नारायण को साथ लेकर चले ॥३८॥ श्रीशची माता के दर्शन करने के लिये जो श्रीदामोदर पण्डित आये थे वे माताजी के दर्शन करके शीघ्र चल दिये ॥ ३९ ॥ चैतन्य के भक्त अनन्त हैं कितनों के नाम लूँ सभी आनन्दधाम होकर चल दिये ॥४०॥ श्रीअद्वैताचार्यजी श्रीशची माता के चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बिदा हो सिंह समान आगे-आगे भक्त-मंडली लेकर चले ॥ ४१ ॥ जिस-जिस द्रव्य में प्रभु की प्रीति थी उन सबको पहिले से ही जानते थे इस कारण सभी प्रिय वस्तु प्रभु की भिक्षा के निमित्त से साथ में ले ली ॥ ४२ ॥ संकीर्तन आनन्द से सम्पूर्ण सब मार्ग को पवित्र करते हुए आये ॥ ४३ ॥ भक्तगण उल्लास में जो हरिध्वनि करते हैं उसे सुनकर तीनों लोकों के प्राणी पवित्र हो जाते हैं ॥४४॥ स्त्री-पुत्र-दास-दासीगणों के सहित भक्तवृन्द परम आनन्द से श्रीगौरचन्द्र के दर्शनों के लिये आये ॥ ४५ ॥ निवासस्थान का निश्चय करके जिस स्थान पर आकर सब ठहरे वही स्थान श्रीवैकुण्ठपुरी ही बन जाता था ॥ ४६ ॥ हे भाइयो मंगल प्रसंगों को सुनो जिन्हें आदिदेव शेष भगवान् गान करते हैं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार सब महापुरुष सब प्रकार से कुशलपूर्वक नीलाचल आ गये ॥ ४८ ॥ कमलपुर से ही ध्वजा व मन्दिर को देखकर सब भक्त रोते-रोते दण्डवत् होकर गिर पड़े ॥ ४९ ॥ इच्छामय श्रीगौरचन्द्र ने भी भक्तमण्डली का शुभागमन जानकर आगे बढ़ने का चित्त किया ॥ ५० ॥ श्रीअद्वैत के प्रति अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर आगे ही महाप्रसाद भेज दिया ॥ ५१ ॥ अहो क्या अद्भुत प्रीति थी जिसका अन्त नहीं था देखो जिनके लिये कटकपर्यन्त प्रसाद पहुँचाया

"शयने आछिलूँ क्षीरसागर भितरे । निद्रा भङ्ग हैल मोर नाढ़ार हुङ्कारे ॥५३॥
अद्वैत निमित्त मोर एइ अवतार" । एइ मत महाप्रभु बोले बार-बार ॥५४॥
एतेके ईश्वर तुल्य यतेक महान्त । अद्वैतसिंहेरे भक्ति करेन एकान्त ॥५५॥
'आइला अद्वैत' शुनि श्रीवैकुण्ठ पति । आगु बढ़िलेन प्रिय गोष्ठीर संहति ॥५६॥
नित्यानन्द गदाधर श्रीपुरी गोसाञि । चलिलेन आनन्दे काहारो बाह्य नाञि ॥५७॥
सार्वभौम जगदानन्द काशी मिश्र वर । दामोदरस्वरूप श्रीपण्डित शङ्कर ॥५८॥
काशीश्वर पण्डित आचार्य-भगवान् । श्रीप्रद्युम्न मिश्र-प्रेमभक्तिर प्रधान ॥५९॥
पात्र-श्रीपरमानन्दराय रामानन्द । चैतन्येर द्वारपाल-सुकृति गोविन्द ॥६०॥
ब्रह्मानन्दभारती श्रीरूप सनातन । रघुनाथ वैद्य शिवानन्द नारायण ॥६१॥
अद्वैतेरे ज्येष्ठपुत्र श्रीअच्युतानन्द । वाणीनाथ श्रीशिखि माहाति भक्तवृन्द ॥६२॥
अनन्त चैतन्य भृत्य, कत जानि नाम । कि छोट कि बड़ सभे करिला पयान ॥६३॥
परानन्दे सभे चलिलेन प्रभु सङ्गे । वाह्य दृष्टि बाह्य ज्ञान नाहि कारो अंगे ॥६४॥
श्रीअद्वैतसिंहो सर्व-वैष्णव-सहिते । आसिया मिलिला प्रभु आठारो नालाते ॥६५॥
प्रभुओ आइला नरेन्द्रेरे आगुयान । दुइ गोष्ठी देखा देखि हैल विद्यमान ॥६६॥
दूरे देखि दुइ गोष्ठी अन्योऽन्ये सब । दण्डवत हइ सब पड़िला वैष्णव ॥६७॥
दूरे अद्वैतेरे देखि श्रीवैकुण्ठनाथ । अश्रु मुखे करिते लागिला दण्डपात ॥६८॥
श्रीअद्वैतो दूरे देखि निज प्राणनाथ । पुनः पुन करिते लागिला दण्डपात ॥६९॥

॥ ५२ ॥ मैं क्षीरसागर में सो रहा था वहाँ मेरी नींद नाढ़ा (बूढ़े) की हुङ्कारों से भंग हो गई ॥ ५३ ॥ मेरा यह अवतार श्रीअद्वैत के निमित्त ही हुआ है इस प्रकार महाप्रभु बारम्बार कहते थे ॥ ५४ ॥ इसी से जितने ईश्वर तुल्य महापुरुष हैं वे अद्वैतसिंह में एकान्त भक्ति करते हैं ॥५५॥ श्रीअद्वैत आये हैं ऐसे श्री-वैकुण्ठपति गौरचन्द्र सुनकर प्रिय भक्तमण्डली के सहित आगे लेने को बढ़े ॥ ५६ ॥ तथा श्रीनित्यानन्द श्री-श्रीगदाधर व श्रीपरमानन्दपुरी आनन्द में चले जा रहे थे, किसी को बाह्य ज्ञान नहीं था ॥ ५७ ॥ सार्वभौम भट्टाचार्य, जगदानन्द, काशी मिश्रवर, स्वरूप-दामोदर, श्रीशंकर पण्डित, पण्डित काशीश्वर, भगवान आचार्य, प्रेमभक्ति में प्रधान श्रीप्रद्युम्न मिश्र, श्रीपरमानन्द पात्र, रायरामानन्द, चैतन्य के सुकृति द्वारपाल गोविन्द, ब्रह्मानन्द भारती, श्रीरूप, श्रीसनातन, रघुनाथ वैद्य, शिवानन्दसेन, नारायण, अद्वैत के ज्येष्ठ पुत्र श्रीअच्युतानन्द, वाणीनाथ, श्रीशिखिमाहाति आदि जितने भक्तवृन्द थे ॥ ५८ से ६२ ॥ श्रीचैतन्य के दास तो अनन्त हैं कितनेक नामों को जानें ! क्या छोटे क्या बड़े सभी ने गमन किया ॥ ६३ ॥ सब भक्तवृन्द श्रीगौरचन्द्र के सङ्ग में परम आनन्द से चले जा रहे थे और किसी के अङ्ग में बाह्यदृष्टि व बाह्य ज्ञान नहीं था ॥ ६४ ॥ सब वैष्णवों सहित श्रीअद्वैतसिंह भी अठारह नाला पर प्रभु से आकर मिले॥६५॥श्रीगौरचन्द्र भी नरेन्द्र सरोवर से आगे आये सोई दोनों मण्डलियों की सम्मुख देखादेखी हुई ॥ ६६ ॥ दूर ही से परस्पर दोनों मण्डलियाँ देखते ही, सब वैष्णव दण्डवत् होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥६७॥ श्रीवैकुण्ठनाथ गौरचन्द्र

अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार । दण्डवत् वइ किछु नाहि देखि आर ॥७०॥
दुइगोष्ठी दण्डपात केवा कारे करे । सभेइ चैतन्य रसे विह्वल अन्तरे ॥७१॥
किवा छोट, किवा बड़, ज्ञानी वा अज्ञानी । दण्डवत् करि सभे करे हरिध्वनि ॥७२॥
ईश्वरो करेन भक्तसङ्गे दण्डवत । अद्वैतादि-प्रभुओ करेन सेइ मत ॥७३॥
एइ मत दण्डवत् करिते-करिते । दुइ गोष्ठी एकत्र मिलिला भाल मते ॥७४॥
एखाने ये हइल आनन्द-दरशन । उच्च हरिध्वनि, उच्च आनन्द-क्रन्दन ॥७५॥
मनुष्ये कि पारे इहा करिते वर्णन । सबे वेदव्यास, आर सहस्र वदन ॥७६॥
अद्वैत देखिया प्रभु करिलेन कोले । सिंचिलन अङ्ग तान प्रेमानन्द-जले ॥७७॥
श्लोक पढ़ि अद्वैत करेन नमस्कार । हइलेन अद्वैत आनन्द-अवतार ॥७८॥
यत सज्जा करि छिला प्रभु पूजिवारे । सब पासरिलेन, किछुइ नाहि स्फुरे ॥७९॥
आनन्दे अद्वैतसिंह करेन हुङ्कार । 'आनिलूँ आनिलूँ' बलि डाके बारबार ॥८०॥
हेनसे हइल अति-उच्च-हरिध्वनि । कोन् लोक पूर्ण नहे, हेनत ना जानि ॥८१॥
वैष्णवेर किदाय, अज्ञान यत जन । ताराओ बोलये 'हरि' करये क्रन्दन ॥८२॥
सर्व भक्तगोष्ठी अन्योन्ये गला धरि । आनन्दे क्रन्दन करे बोले 'हरि-हरि' ॥८३॥
अद्वैतेरे सभे करिलेन नमस्कार । याँहार निमित्त श्रीचैतन्य-अवतार ॥८४॥

दूर से ही श्रीअद्वैत को देखकर अश्रु मुख होकर दण्डवत् कर रहे थे ॥ ६८ ॥ श्रीअद्वैत भी दूर से अपने प्राणनाथ को देखते ही बारम्बार दण्डवत् होकर प्रणाम करने लगे ॥६९॥ अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार के सहित दण्डवत् प्रणामों के बिना अन्य कुछ नहीं दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ ७० ॥ दोनों गोष्ठियों में कौन किसको दण्डवत् करता था मालूम नहीं; केवल निरन्तर में सब ही चैतन्य प्रेमरस में विह्वल थे ॥ ७१ ॥ क्या छोटे क्या बड़े-ज्ञानी अथवा अज्ञानी, सभी ही दण्डवत् करके हरिध्वनि कर रहे थे ॥ ७२ ॥ भक्तों के सहित ईश्वर श्रीगौरचन्द्र भी दण्डवत् कर रहे थे, उसी प्रकार श्रीअद्वैतप्रभु भी कर रहे थे ॥ ७३ ॥ इस प्रकार दोनों गोष्ठी दण्डवत् करते २ अच्छी तरह एक साथ मिल गई ॥ ७४ ॥ तब उस स्थान में उच्च हरिध्वनि व ऊँचे स्वर से आनन्दक्रन्दन रूप जो आनन्द के दर्शन हुए उसे क्या मनुष्य वर्णन कर सकता है ? केवल वेदव्यास वे सहस्र वदन (शेष ही) वर्णन कर सकते हैं ॥ ७५-७६ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने श्रीअद्वैत को देखकर गोदी में ले लिया और उनके अङ्ग को प्रेमानन्द जल से सिंचन करने लगे ॥७७॥ "नमो ब्रह्मण्य देवाय" इस श्लोक का पाठ करके अद्वैत नमस्कार कर रहे थे तथा वे अद्वैत आनन्द के अवतार रूप हो गये ॥ ७८ ॥ जितनी सामिग्री प्रभु की पूजा के निमित्त इकट्ठी की थी सो सब भूल गये कुछ भी स्फूर्ति नहीं होती थी ॥ ७९ ॥ अद्वैतसिंह आनन्द से हुङ्कार कर रहे थे और " लाया हूँ २ " कहकर बारम्बार चिल्ला रहे थे ॥ ८० ॥ ऐसी अत्यन्त ऊँचे स्वर से हरिध्वनि हुई जिससे कोई लोक व्याप्त होने से बचा हो ऐसा जान नहीं पड़ता ॥८१॥ वैष्णवों की तो बात ही क्या है जितने अज्ञानी जन थे, वे भी हरि २ कहकर क्रन्दन कर रहे थे ॥ ८२ ॥ सब भक्तमण्डली परस्पर कंठों को पकड़कर हरि २ बोलकर आनन्द से रो रहे थे ॥८३॥ जिनके निमित्त श्रीचैतन्य का अवतार हुआ उन श्रीअद्वैतजी को सब ही नमस्कार कर रहे थे ॥ ८४ ॥ बड़े

महा-उच्च ध्वनि करि हरि सङ्कीर्तन । दुइगोष्ठी करिते लागिला तत्त्वण ॥८५॥
कोथा केवा नाचे कोन् दिगे केवा गाय । केवा कोन् दिगे पड़ि गड़ागड़िया य ॥८६॥
प्रभु देखि सभे हैला आनन्दे विह्वल । प्रभुओ नाचेन माझे सकल मंगल ॥८७॥
नित्यानन्द अद्वैत करिया कोला कोलि । नाचे दुइ मत्तसिंह हइ कुतूहली ॥८८॥
सर्व-वैष्णवेरे प्रभु धरि जने-जने । आलिंगन करेन परम-प्रीत-मने ॥८९॥
भक्त नाथ भक्त-वश भक्तेर जीवन । भक्त-गला धरि प्रभु करेन क्रन्दन ॥९०॥
जगन्नाथ देवेर आज्ञाय सेइत्तण । सहस्र-सहस्र माला आइल चन्दन ॥९१॥
आज्ञा माला देखि हर्षे श्रीगौराङ्गराय । अग्रे दिला श्रीअद्वैतसिंहेर गलाय ॥९२॥
सर्व-वैष्णवेरे प्रभु श्रीहस्ते आपने । परिपूर्ण करिलेन मालाय चन्दने ॥९३॥
देखिया प्रभुर कृपा सर्व भक्तगण । बाहु तुलि उच्च स्वरे करेन क्रन्दन ॥९४॥
सभेइ मागेन वर श्रीचरण धरि । 'जन्मे-जन्मे येन प्रभु ! तोमा' ना पासरि ॥९५॥
कि मनुष्य पशु-पत्ती घरे जन्मि यथा । तोमार चरण येन देखिये सर्वथा ॥९६॥
एइ वर देह प्रभु करुणासागर । पादपद्म धरि कान्दे सर्व अनुचर ॥९७॥
वैष्णव गृहिणी यत पतिव्रतागण । दूरे थाकि प्रभु देखि करेन क्रन्दन ॥९८॥
ताँ सभार प्रेमधारे अन्त नाहि पाइ । सभेइ वैष्णवी शक्ति, भेद किछु नाइ ॥९९॥
'ज्ञान भक्तियोगे सभे पतिर समान' । कहिया आछेन श्रीचैतन्य भगवान ॥१००॥

ऊँचे स्वर से दोनों गोष्ठियाँ आनन्द से हरि सङ्कीर्तन करने लगीं ॥ ८५ ॥ कोई कहीं नाच रहा था तो कोई किसी ओर गा रहा था तो कोई कहीं गिरकर लोट-पोट ही हो रहा था ॥८६॥ प्रभु के दर्शन करके सब लोग आनन्द में विह्वल हो रहे थे तथा सकल मंगल निदान महाप्रभु भी सबके बीच में नाच रहे थे ॥ ८७ ॥ श्री नित्यानन्दजी व श्रीअद्वैत परस्पर आलिंगन करके दोनों मत्तसिंह की भाँति कुतूहलयुक्त होकर नाच रहे थे ॥ ८८ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने प्रत्येक वैष्णव को पकड़-पकड़ कर परम प्रसन्न मन से आलिङ्गन किया ॥८९॥ भक्तनाथ भक्ताधीन भक्तजीवन श्रीगौरचन्द्र भक्तों के कंठों को पकड़कर रो रहे थे ॥९०॥ उसी त्तण में जगन्नाथदेव की आज्ञा से हजारों-हजारों मालाएं व चन्दन वहाँ आ गया ॥९१॥ श्रीगौराङ्गराय ने आज्ञा मालाओं को देखकर हर्ष से पहिले श्रीअद्वैतजी के गले में माला दी ॥ ९२ ॥ श्रीगौरचन्द्र ने अपने ही हस्त-कमलों से सब वैष्णवों को माला व चन्दन से परिपूर्ण किया ॥ ९३ ॥ सब भक्तवृन्द प्रभु की कृपा देखकर भुजाओं को उठा-उठाकर क्रन्दन करने लगे ॥ ९४ ॥ सभी ने श्रीचरणों को पकड़कर यह वर माँगा कि जिसमें हे प्रभो ! जन्म-जन्म में हम तुमको न भूल जावें ॥ ९५ ॥ क्या मनुष्य क्या पशु व पत्तिओं के घरों में जहाँ भी जन्म हो ऐसी कृपा करो जिसमें सर्वथा तुम्हारे चरणों के दर्शन होते रहें ॥ ९६ ॥ हे करुणासागर प्रभो यही वर दो सभी सेवक यह कहते जाते थे और चरण पकड़कर रो रहे थे ॥ ९७ ॥ वैष्णवों की जितनी पतिव्रता गृहिणी थीं वे दूर से प्रभु के दर्शन करके रो रही थीं ॥ ९८ ॥ उन सब की प्रेमधारा का अन्त नहीं होता था कारण कि सब ही तो वैष्णवी शक्ति उनमें कुछ भेद नहीं था ॥ ९९ ॥ श्रीचैतन्य भगवान् ने पहिले ही कहा था कि वे ज्ञान व भक्तियोग में सब अपने पतियों के समान ही थी ॥१००॥ इस प्रकार संकीर्तन नृत्य गीत

एइ मत नृत्य गीत वाद्य संकीर्तने । आइसेन चलिया सभेइ प्रभु-सने ॥१०१॥
हेनमते हइल प्रेमभक्तिर प्रकाश । हेन नाहि यार देखि ना हय उल्लास॥१०२॥
आठारो नालाय हैते दश दण्ड हैले । महाप्रभु आइलेन नरेन्द्रेर कूले ॥१०३॥
हेन काले राम-कृष्ण श्रीयात्रा गोविन्द । जलकेलि करिबारे आइला नरेन्द्र ॥१०४॥
हरिध्वनि नृत्य गीत मृदङ्ग काहाल । शंख भेरी जय ढाक बाजये विशाल ॥१०५॥
सहस्र-सहस्र छत्र पताका चामर । चतुर्दिगे शोभा करे परम सुन्दर ॥१०६॥
महाजय जय शब्द महा-हरिध्वनि । इहा बइ आर कोन शब्द नाहि शुनि ॥१०७॥
राम-कृष्ण श्रीगोविन्द महा कुतूहले । उत्तरिला आसि सभे नरेन्द्रेर जले ॥१०८॥
जगन्नाथ गोष्ठी श्रीचैतन्य गोष्ठीसने । मिशाइला तानाओ भुलिला सङ्कीर्तने ॥१०९॥
दुइ गोष्ठी एक हइ कि हैल आनन्द । कि वैकुण्ठ सुख आसि हैल मूर्तिमन्त ॥११०॥
चतुर्दिगे लोकेर आनन्दे अन्त नाञि । सब करेन करायेन चैतन्य गोसाञि ॥१११॥
राम-कृष्ण श्रीगोविन्द उठिला नौकाय । चतुर्दिगे भक्तगण चामर ढुलाय ॥११२॥
राम-कृष्ण श्रीगोविन्द नौकाय विजय । देखिया सन्तोष श्रीगौराङ्ग महाशय ॥११३॥
प्रभुओ सकल भक्त लइ कुतूहले । झाँप दिया पड़िलेन नरेन्द्रेर जले ॥११४॥
शुन भाइ ! श्रीकृष्णचैतन्य अवतार । ये रूपे नरेन्द्र जले करिला विहार ॥११५॥
पूर्वे यमुनाय येन शिशुगण मेलि । मण्डली हइया करिलेन जलकेलि ॥११६॥
सेइ रूपे सकल वैष्णवगण मेलि । परस्पर करे धरि हइला मण्डली ॥११७॥

व बाजे के साथ सब भक्तवृन्द श्रीगौरचन्द्र के सङ्ग में चलकर आये ॥ १०१ ॥ प्रेम-भक्ति का ऐसा प्रकाश हुआ कि ऐसा कोई नहीं था, जिसे देखकर उल्लास न होता हो ॥ १०२ ॥ श्रीमहाप्रभु अठारह नाला से दश घड़ी में नरेन्द्र सरोवर के तट पर आकर पहुँचे ॥ १०३ ॥ उसी समय में राम-कृष्ण व गोविन्द चन्दन यात्रा के दिन जलकेलि करने के लिये नरेन्द्र सरोवर पर आये थे ॥ १०४ ॥ हरिध्वनि, नृत्य, गीत, मृदङ्ग, ढफ, भेरी, विजय-घंट आदि विशाल बाजे बज रहे थे ॥१०५॥ सहस्र २ छत्र चँवर पताका चारों ओर को बड़ी सुन्दर शोभा दे रहे थे ॥ १०६ ॥ ऊँचे स्वर मे महा जय-जय शब्द व हरिध्वनि के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द सुनने में नहीं आता था ॥ १०७ ॥ श्रीराम-कृष्ण व श्रीगोविन्द बड़े कुतूहल से आकर सब ही नरेन्द्र सरोवर के जल में उतरे हुए थे ॥ १०८ ॥ जगन्नाथ की गोष्ठी श्रीचैतन्य भक्त गोष्ठी के साथ मिल गई और वे भी सङ्कीर्तन में सब भूल गये॥१०९॥दोनों मंडलियों के एकत्र होने से क्या अपूर्व आनन्द हुआ मानो वैकुण्ठ सुख मूर्तिमन्त होकर ही विराज रहा है ॥११०॥ चारों ओर:में लोगों के आनन्द का अन्त नहीं है यह सब श्रीचैतन्यप्रभु करते हैं व कराते हैं ॥ १११ ॥ श्रीरामकृष्ण व श्रीगोविन्ददेव नौका में विराजमान हुए और चारों ओर भक्तवृन्द चंवर ढो रहे थे ॥ ११२ ॥ महाशय श्रीगौराङ्ग, देवरामकृष्ण व श्रीगोविन्द को नौका में विराजमान देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए ॥ ११३ ॥ सब भक्तों को लेकर श्रीगौरचन्द्र भी कुतूहलपूर्वक झँप देकर नरेन्द्रसरोवर के जल में पड़े हैं।११४॥हे भाइयो सुनो प्रभु ने श्रीकृष्णचैतन्यावतार में जिस प्रकार नरेन्द्र के जल में विहार किया था ॥ ११५ ॥ जैसे पहिले यमुना में शिशुओं के साथ मण्डली बनाकर जल-

गौड़देशे जलकेलि आछे 'कया' नामे। सेइ जलक्रीड़ा आरम्भिलेन प्रथमे ॥११८॥
'कया कया' बलि करतालि देन जले। जले वाद्य वाजायेन वैष्णव मण्डले ॥११९॥
गोकुलेर शिशुभाव हइल सभार। प्रभुओ हइला गोकुलेन्द्र-अवतार ॥१२०॥
वाह्य नाहि कारो, सभे आनन्दे विह्वल। निर्भये ईश्वर देहे सभे देन जल ॥१२१॥
अद्वैत चैतन्य दुँहे जल-फेला फेलि। प्रथमे लागिला दुँहे महा कुतूहली ॥१२२॥
अद्वैत हारेन क्षणे, क्षणे वा ईश्वर। निर्घात नयने जल देन परस्पर ॥१२३॥
नित्यानन्द गदाधर श्रीपुरी गोसाञि। तिन प्रभु जलयुद्ध, कारो हारि नाञि ॥१२४॥
दत्ते गुप्ते जलयुद्ध लागे बार-बार। परम-आनन्दे दुँहे करेन हुङ्कार ॥१२५॥
दुइ सखा-विद्यानिधि स्वरूप दामोदर। हासिया आनन्दे जल देन परस्पर ॥१२६॥
श्रीवास श्रीराम हरिदास वक्रेश्वर। गङ्गादास गोपीनाथ श्रीचन्द्रशेखर ॥१२७॥
एइ मत अन्योन्ये सभे देन जल। चैतन्य-आनन्दे सभे हइला विह्वल ॥१२८॥
श्रीगोविन्द-राम-कृष्ण-विजय नौकाय। लक्ष-लक्ष लोक जले आनन्दे बेड़ाय ॥१२९॥
सेइ जले विषयी सन्यासी ब्रह्मचारी। सभेइ आनन्दे भासे जलक्रीड़ा करि ॥१३०॥
हेनसे चैतन्य माया, से स्थाने आसिते। कारो शक्ति नाहि, केहो ना पाय देखिते ॥१३१॥
अल्प भाग्ये चैतन्यगोष्ठी नाहि पाइ। केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि ॥१३२॥
भक्ति बिना केवल विद्याय तपस्याय। किछुइ ना हय, सबे दुखमात्र पाय ॥१३३॥

क्रीड़ा की थी ॥ ११६ ॥ उसी प्रकार सब वैष्णव मिलकर परस्पर में हाथ पकड़कर मण्डली बनाये थे ॥ ११७ ॥ गौड़ देश में कया नाम की जलकेलि होती है पहिले वही जलक्रीड़ा आरम्भ की ॥ ११८ ॥ "कया-कया" कहकर जल में ताली बजा रहे थे तथा वैष्णवगण जल में बाजे बजाते थे ॥ ११९ ॥ तथा सबको नये ब्रज के ग्वालबालों का भाव उदय हुआ व गौर भी कृष्ण के अवतार के भाव में मग्न हुए॥१२०॥ किसी को वाह्य ज्ञान नहीं था सब प्रेमानन्द में विह्वल होकर निर्भय रूप से गौरचन्द्र के शरीर पर जल डाल रहे थे ॥ १२१ ॥ पहिले श्रीअद्वैत व श्रीचैतन्य में जल फेंका फेंकी होने लगी दोनों ही महा कुतूहली थे ॥ १२२ ॥ क्षण में अद्वैत हार जाते व दूसरे ही क्षण में श्रीगौरचन्द्र हारते थे परस्पर में घात करके नेत्रों में जल मारते थे ॥ १२३ ॥ श्रीनित्यानन्द श्रीगदाधर व श्रीपरमानन्द गुँसाई तीनों जल युद्ध कर रहे थे परन्तु कोई हारता नहीं था ॥ १२४ ॥ श्रीमुकुन्ददत्त श्रीमुरारीगुप्त में बार-बार जल युद्ध होता था तथा बड़े आनन्द से दोनों हुङ्कार कर रहे थे ॥ १२५ ॥ श्रीविद्यानिधि व श्रीस्वरूपदामोदर दोनों सखा परस्पर हँसते हुए आनन्द से जल मार रहे थे ॥ १२६ ॥ श्रीवास, श्रीराम, हरिदास, वक्रेश्वर, गङ्गादास, गोपीनाथ व चन्द्रशेखर आदि परस्पर एक दूसरे में सब ही जल मार रहे थे सब श्रीचैतन्यचन्द्र के प्रेमानन्द में विह्वल हो रहे थे ॥१२७-१२८॥ श्रीगोविन्द व रामकृष्ण नौका में विराज रहे थे सोई लाखों २ लोग आनन्द से जल में भ्रमण कर रहे थे ॥१२९॥ उसी जल में विषयी, सन्यासी व ब्रह्मचारी सब ही जलक्रीड़ा करते हुए आनन्द में विभोर हो रहे थे ॥ १३० ॥ उस स्थान पर आते ही सब उस "कया" खेल में लग जाते थे-श्रीचैतन्यदेव की ऐसी माया है, उस माया को समझने (देखने) की किसी में शक्ति नहीं है ॥ १३१ ॥ अल्प भाग्य से

साक्षाते देखह एइ सेइ नीलाचले । एतेक चैतन्य सङ्कीर्तन कुतूहले ॥१३४॥
यत महा-महा-नाम सन्यासि सकल । देखितेओ भाग्य कारो नहिल केवल ॥१३५॥
आरो बोले 'चैतन्य वेदान्त पाठ छाड़ि । कि कार्ये वा करेन कीर्तन-हुड़ाहुड़ि ॥१३६॥
सर्वदाइ प्राणायाम-एइसे यति धर्म । नाचिव काँदिव-एकि सन्यासीर कर्म ॥१३७॥
ताहाते ये सब उत्तम न्यासिगण । तारा बोले 'श्रीकृष्णचैतन्य महाजन' ॥१३८॥
केहो बोले 'ज्ञानी', केहो बोले 'वड़भक्त' । प्रशंसेन सभे, केहो ना जानेन तत्व ॥१३९॥
हेन मते जलक्रीड़ा रंग कुतूहले । करेन ईश्वर संगे वैष्णव सकले ॥१४०॥
पूर्व येन जलकेलि हैल द्वारकाय । सेइ सब भक्त लइ श्रीचैतन्यराय ॥१४१॥
ये प्रसाद पाइलेन जाह्नवी यमुना । नरेन्द्र जलेरो हैल सेइ भाग्यसीमा ॥१४२॥
ए सब लीलार कभू नाहि परिच्छेद । 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' मात्र कहे वेद ॥१४३॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार-कारणे । कर्मबन्ध छिण्ड़े यार स्मरण पठने ॥१४४॥
तबे प्रभु जलक्रीड़ा सम्पूर्ण करिया । जगन्नाथ देखिते चलिला सभा लैया ॥१४५॥
जगन्नाथ देखि प्रभु सर्व भक्तगण । लागिला करिते सभे आनन्द क्रन्दन ॥१४६॥
जगन्नाथ देखि प्रभु हयेन विह्वल । आनन्दधाराय अङ्ग तितिल सकल ॥१४७॥
अद्वैतादि-भक्तगोष्ठी देखेन सन्तोषे । केवल आनन्दसिन्धु मध्ये सभे भासे ॥१४८॥
दुइ दिगे सचल निश्चल जगन्नाथ । देखि-देखि भक्तगोष्ठी हय दण्डपात ॥१४९॥

श्रीचैतन्यचन्द्र गोष्ठी प्राप्त नहीं होती है अहो श्रीचैतन्य प्रभु तो केवल भक्ति के ही वश में हैं ॥ १३२ ॥ भक्ति के बिना केवल विद्या व तपस्या द्वारा कुछ नहीं होता है; केवल मात्र दुख ही प्राप्त होता है ॥ १३३ ॥ यह साक्षात् में देखलो ! उसी नीलाचल में इतने जोर से श्रीचैतन्य संकीर्तन का कोलाहल हुआ, उसे जितने बड़े २ नामधारी सन्यासी थे किसी के भाग्य देखने भर के भी नहीं हुए ॥ १३४-१३५ ॥ और यह कहते थे कि देखो चैतन्य वेदान्त पाठ करना छोड़कर होड़ाहोड़ी कीर्तन क्यों करते हैं ? इसका क्या तात्पर्य ? ॥१३६॥ सदा प्राणायाम करना यही यति का धर्म है । नाचना, रोना यह क्या सन्यासियों का कर्म है ? ॥ १३७ ॥ उनमें जो उत्तम सन्यासी थे वे कहते थे कि श्रीकृष्णचैतन्य महापुरुष हैं ॥ १३८ ॥ कोई ज्ञानी कहता तो कोई बड़ा भक्त बतलाता था—सब ही प्रशंसा करते थे परन्तु तत्त्व कोई नहीं जानता था ॥ १३९ ॥ इस प्रकार प्रभु के साथ सब वैष्णव जलक्रीड़ा का रंग कुतूहल पूर्वक कर रहे थे ॥ १४० ॥ पूर्व में जिस प्रकार द्वारिका में जलकेलि हुई थी उन्हीं सब भक्तों को लेकर श्रीचैतन्यराय सब कर रहे थे ॥ १४१ ॥ जो कृपा गंगा व यमुना को प्राप्त हुई नरेन्द्र सरोवर की भी वही भाग्यसीमा हुई ॥ १४२ ॥ इस (प्रभु) लीला का कभी आदि अन्त नहीं है; केवल आविर्भाव-तिरोभाव होता है यह वेद कहते हैं ॥ १४३ ॥ यह सब लीला केवल जीवों के उद्धार के कारण होती हैं, जिनके स्मरण व पाठ करने से कर्म बन्धन नष्ट होता है ॥ १४४ ॥ उसके पीछे तब श्रीगौरचन्द्र जलक्रीड़ा समाप्त करके सबके साथ जगन्नाथ के दर्शन के लिये चले ॥ १४५ ॥ तथा श्रीजगन्नाथ दर्शन करके श्रीगौरचन्द्र व भक्तवृन्द आनन्द में क्रन्दन करने लगे ॥ १४६ ॥ जगन्नाथ दर्शन करके गौरचन्द्र विह्वल हो रहे थे तथा आनन्दधारा से सब अङ्ग भीग गया ॥ १४७ ॥ श्रीअद्वैत आदि सब

काशीमिश्र आनि जगन्नाथेर गलार । माला आनि अङ्गभूषा करिला सभार ॥१५०॥
माला लय प्रभु महा भय भक्ति करि । शिक्षागुरु नारायन न्यासिवेश धारी ॥१५१॥
वैष्णव तुलसी गङ्गा प्रसादेर भक्ति । तिंहोसे जानेन, अन्ये ना धरे से शक्ति ॥१५२॥
वैष्णवेर भक्ति एइ देखिला साक्षात् । गृहाश्रमि-वैष्णवेरे करे दण्डपात ॥१५३॥
सन्यासग्रहण कैले हेन कर्म तार । पिता आसि पुत्रेरे करये नमस्कार ॥१५४॥
अतएव न्यासाश्रम सभार वन्दित । सन्यासी सन्यासी नमस्कार से विहित ॥१५५॥
तथापि आश्रमधर्म छाड़ि वैष्णवेरे । शिक्षागुरु श्रीकृष्ण आपने नमस्करे ॥१५६॥
तुलसीर भक्ति एबे शुनमन दिया । ये रूपे कैलेन लीला तुलसी लइया ॥१५७॥
एक क्षुद्र-भाण्डे दिव्य मृत्तिका पूरिया । तुलसी देखेन सेइ घट आरोपिया ॥१५८॥
प्रभु बोले "मुञि तुलसीरे ना देखिले । भाल नाहि बासों येन मत्स्य विने जले ॥१५९॥
जबे चले संख्या-नाम करिया ग्रहण । तुलसी लइया अग्रे चले एकजन ॥१६०॥
पथेओ चलेन प्रभु तुलसी देखिया । वहये आनन्द धारा सर्वाङ्ग वाहिया ॥१६१॥
संख्या-नाम लइते ये स्थाने प्रभु वैसे । तथाइ थोयेन तुलसीरे प्रभु पाशे ॥१६२॥
तुलसीरे देखेन, लयेन संख्या-नाम । ए भक्तियोगेर तत्त्व के बूझिवे आन ॥१६३॥
पुन सेइ संख्या-नाम सम्पूर्ण करिया । चलेन ईश्वर अग्रे तुलसी देखिया ॥१६४॥

भक्तमण्डली सन्तोष पूर्वक दर्शन कर रहे थे—सब लोग केवल आनन्द समुद्र में डूब रहे थे ॥ १४८ ॥ सचल (गौर) व अचल दोनों जगन्नाथों को देख-देखकर भक्तमण्डली दण्डवत् प्रणाम कर रही थी ॥ १४९ ॥ काशी मिश्र ने श्रीजगन्नाथ के गले की मालाऐं लाकर सबके अंग विभूषित किये ॥ १५० ॥ श्रीगौरचन्द्र ने डरते २ भक्तिपूर्वक वन्दना करके माला ग्रहण की क्योंकि सन्यास वेशधारी नारायण शिक्षा गुरु हैं ॥ १५१ ॥ वैष्णव, तुलसी, गंगा व प्रसाद की महिमा भक्ति को वे ही जानते हैं वह शक्ति अन्य में नहीं है ॥ १५२ ॥ वैष्णवों में भक्ति को तो साक्षात् देख लो कि गृहस्थी जन वैष्णवों को भी दण्डवत् कर रहे थे ॥ १५३ ॥ सन्यास ग्रहण करने पर उनका ऐसा कर्म हो जाता है कि उसमें पिता आकर पुत्र को नमस्कार करता है ॥ १५४ ॥ अतएव सन्यास आश्रम सबके लिये वन्दनीय है तथा सन्यासी को नमस्कार करना विहित है ॥ १५५ ॥ तथापि शिक्षा गुरु श्रीकृष्ण (गौरचन्द्र) आश्रम धर्म छोड़कर वैष्णवों के लिये स्वयं नमस्कार करते थे ॥ १५६ ॥ अब तुलसी की भक्ति को मन देकर सुनो जिस प्रकार तुलसी को लेकर लीला की थी ॥ १५७ ॥ एक छोटे पात्र में दिव्य मृत्तिका भरकर उसी घट में आरोपण करके तुलसी के दर्शन करते थे ॥ १५८ ॥ गौरचन्द्र ने कहा जैसे जल के बिना मछली वैसे ही मुझे तुलसी के दर्शन बिना अच्छा नहीं लगता ॥ १५९ ॥ जब संख्यापूर्वक नाम ग्रहण करते हुए चलते थे तब एक जन आगे २ तुलसी लेकर चलता था ॥ १६० ॥ श्रीगौरचन्द्र मार्ग में भी तुलसी के दर्शन करते २ चलते थे तथा आनन्दाश्रुधारा सब अंग पर बहकर पृथ्वी पर गिरती थी ॥ १६१ ॥ श्रीगौरचन्द्र संख्यापूर्वक हरिनाम जप करते २ जिस स्थान में बैठ जाते थे वहीं प्रभु के पास ही तुलसी रख देते थे ॥ १६२ ॥ संख्यापूर्वक नाम लेते समय तुलसी के दर्शन करना इस भक्तियोग के तत्त्व को कौन समझे ॥ १६३ ॥ उन संख्या नामों को सम्पूर्ण करके फिर भी

शिक्षागुरु नारायण ये करायेन शिक्षा । इहा ये मानये, से-इजन पाय रक्षा ॥१६५॥
जगन्नाथ देखि, जगन्नाथ नमस्करि । वासाय चलिला गोष्ठीसङ्गे गौरहरि ॥१६६॥
ये भक्तेर येन-रूप चित्तेर वासना । सेइरूप सिद्धकरे सभार कामना ॥१६७॥
पुत्र प्राय करि सभा' राखिलेन काछे । निरवधि भक्त-सबो थाके प्रभु-पाछे ॥१६८॥
यतेक वैष्णव-गौड़देशे नीलाचले । एकत्र थाकेन सभे कृष्ण कुतूहले ॥१६९॥
श्वेतद्वीप निवासीओ ए सब वैष्णव । चैतन्य प्रसादे लोक देखिलेक सब ॥१७०॥
श्रीमुखे अद्वैतचन्द्र बार बार कहे । "ए सब वैष्णव-देवतारो दृश्य नहे ॥१७१॥
क्रन्दन करिया कहे चैतन्य-चरणे । "वैष्णव देखिल प्रभु तोमार कारणे" ॥१७२॥
ए सब वैष्णव अवतारे अवतारि । प्रभु अवतरे इहा-सभा' अग्रे करि ॥१७३॥
ये रूपे प्रद्युम्न अनिरुद्ध सङ्कर्षण । ये रूपे लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न ॥१७४॥
ताहाना ये रूपे प्रभु सङ्गे अवतरे । वैष्णवेरे सेइ रूपे प्रभु आज्ञा करे ॥१७५॥
अतएव वैष्णवेर जन्म-मृत्यु नाइ । सङ्गे आइसेन सङ्गे जायेन तथाइ ॥१७६॥
कर्मबन्ध-जन्म वैष्णवेर कभू नहे । पद्म पुराणे ते इहा व्यक्त करि कहे ॥१७७॥

तथाहि पाद्मोत्तरखण्डे २४५ अध्याये ५७ व ५८ श्लोके-

"यथा सौमित्रि-भरतौ यथा सङ्कर्षणादयः । तथा तेनैव जायन्ते मर्त्यलोकं यदृच्छया ॥१॥
पुनस्तेनैव यास्यन्ति तद्विष्णोः शाश्वतं पदम् । न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानां च विद्यते" ॥२॥

हेन मते ईश्वरेर सङ्गे भक्तगण । प्रेमपूर्ण हइया थाकेन सर्वक्षण ॥१७८॥

गौरचन्द्र तुलसी के दर्शन करते २ ही चलते थे ॥ १६४ ॥ शिक्षागुरु नारायण (गौर) ने जो शिक्षा की थी, उसे जो मानते हैं वे ही जन रक्षा पावेंगे ॥ १६५ ॥ भक्तों के साथ श्रीगौरहरि जगन्नाथ के दर्शन व नमस्कार करके वास स्थान को चले गये ॥ १६६ ॥ जिन भक्तों के मन में जिस प्रकार की वासना थी, उन सबकी मनोकामनाओं को वे उसी प्रकार सिद्ध करते हैं ॥ १६७ ॥ सबको पुत्र तुल्य करके समीप में रखते थे और सब भक्त भी निरन्तर प्रभु के पीछे २ ही रहते थे ॥१६८॥ गौड़देश व नीलाचलवासी जितने वैष्णव हैं सब कृष्ण (गौर) के कुतूहल से एक जगह में रहते हैं ॥१६९॥यह सब वैष्णव श्वेतद्वीप निवासी होने पर भी उन्हें श्रीचैतन्य के अनुग्रह से सबने दर्शन किये॥१७०॥श्रीअद्वैतचन्द्र ने श्रीमुख से बार २ कहा कि देखो ये वैष्णव देवताओं को दृश्य नहीं होते ॥ १७१ ॥ और रोकर चैतन्य के चरणों में कहा कि प्रभो ! आपके निमित्त से इन वैष्णवों के दर्शन हुए ॥१७२॥ यह सब वैष्णव अवतार के समय अवतीर्ण होते हैं, इन सबों को आगे करके प्रभु अवतीर्ण होते हैं॥१७३॥जिस प्रकार संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध कृष्णावतार में तथा जिस प्रकार लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, रामावतार में संग थे, उसी तरह अब प्रभु के संग में ये सब अवतीर्ण हुए हैं, वैष्णव भी उसी प्रकार प्रभु की आज्ञा का पालन करते थे ॥१७४-१७५॥ अतएव वैष्णवों का जन्म मृत्यु नहीं होता, वे प्रभु के संग आते हैं तथा प्रभु के ही संग जाते हैं ॥ १७६ ॥ कर्म सम्बन्ध जनित जन्म वैष्णवों का कभी नहीं होता यह पद्मपुराण में स्पष्ट करके कहा है ॥ १७७ ॥ जिस प्रकार सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण व भरत तथा जिस प्रकार संकर्षणादि हैं उसी प्रकार वैष्णववृन्द भी उसी भगवान के सहित यदृच्छा क्रम से मृत्युलोक में जन्म लेते हैं और भगवान के सहित उस शाश्वत (नित्य) स्थान में गमन करते हैं सोई वैष्णवों के कर्म

भक्ति करि जे शुनये ए सब आख्यान । भक्तसङ्गे तारे मिले कृष्ण भगवान् ॥१७६॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१८०॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे जलक्रीडादिवर्णनं नाम
नवमोऽध्यायः ॥६॥

दशमोऽध्याय

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य रमाकान्त । जय सर्व-वैष्णवेर वल्लभ एकान्त ॥१॥
जय जय कृपामय श्रीवैकुण्ठनाथ । जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टिपात ॥२॥
हेन मते भक्तगोष्ठी ईश्वरेर सङ्गे । थाकिला परमानन्दे सङ्कीर्तन रङ्गे ॥३॥
ये द्रव्ये प्रभुर प्रीत पूर्व शिशुकाले । सकल जानेन ताहा वैष्णव मण्डले ॥४॥
सेइ सब द्रव्य सभे प्रेमयुक्त हैया । आनिञा आछेन प्रभुर भिक्षार लागिया ॥५॥
सेइ सब द्रव्य प्रीते करिया रन्धन । ईश्वरेर आसिया करेन निमन्त्रण ॥६॥
ये दिने ये भक्त गृहे हय निमन्त्रण । तथाई परम प्रीते करेन भोजन ॥७॥
श्रीलक्ष्मीर अंश यत वैष्णव गृहिणी । कि विचित्र रन्धन करेन, नाहि जानि ॥८॥
निरवधि सभार नयने प्रेमधार । कृष्णनामे परिपूर्ण श्रीमुख सभार ॥६॥
पूर्व ईश्वरेर प्रीति ये सब व्यञ्जने । नवद्वीपे श्रीवैष्णवी सभे ताहा जाने ॥१०॥
प्रेमयोगे सेइ मत करेन रन्धन । प्रभुओ परम प्रेमे करेन भोजन ॥११॥

सम्बन्ध जनित जन्म नहीं हैं ॥१-२॥ इसी कारण भक्तवृन्द श्रीमहाप्रभु के साथ सब समय प्रेम से पूर्ण होकर रहते थे॥१७८॥श्रद्धा व भक्तिपूर्वक जो इन सब प्रसंगों को सुनेंगे उनको भक्तों सहित कृष्ण-अभिन्न गौर भगवान् अवश्य मिलेंगे॥१७६॥श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्दचन्द्र जिनके जान अर्थात् जीवन हैं ऐसे श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) उनके चरण-कमल युगलों को अवलम्बन करके उनकी महिमा को गान करते हैं ॥ १८० ॥

लक्ष्मीकान्त श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो, सब वैष्णवों के एक मात्र स्वामी की जय हो॥१॥ कृपामय श्रीवैकुण्ठनाथ की जय हो २, हे प्रभो सब जीवों के प्रति शुभ दृष्टिपात करो ॥ २ ॥ इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र के साथ परमानन्दमय संकीर्तन रङ्ग में भक्तमण्डली रहती थी ॥ ३ ॥ पहिले शिशुकाल में श्रीप्रभु की जिस-जिस द्रव्य में प्रीति थी उसको सब वैष्णववृन्द जानते थे ॥ ४ ॥ सब भक्त प्रेमपूर्वक उन्हीं सब द्रव्यों को प्रभु की भिक्षा के निमित्त लाये थे ॥ ५ ॥ अतः पुरी में आने पर प्रसन्नता से उन्हीं द्रव्यों की रसोई करके ईश्वर का निमन्त्रण करते थे ॥ ६ ॥ जिस दिन जिस भक्त के घर में निमन्त्रण होता उसी स्थान में बड़ी प्रीति से भोजन करते थे॥७॥जितनी वैष्णवों की गृहिणी थीं वे सब श्रीलक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हैं, सो न जाने कैसी विचित्र रसोई करती थीं ? ॥ ८ ॥ सबके नेत्रों से प्रेमधारा बहती थी निरवधि सबके श्र मुख कमल कृष्ण नाम से परिपूर्ण थे ॥ ६ ॥ पहिले नवद्वीप में श्रीप्रभु गौरचन्द्र की जिन २ व्यंजनों में प्रीति थी उसको सब श्रीवैष्णवी जानती थीं॥ १० ॥ अतः प्रेम के सहित उसी प्रकार की रसोई करती थीं

एक दिन श्रीअद्वैतसिंह महामति । प्रभुरे बलिला 'आजि भिक्षा मोर इथि' ॥१२॥
मुष्टेक तण्डुल प्रभु रान्धिब आपने । हस्त मोर सत्य हउ तोमार भक्षणे ॥१३॥
प्रभु बोले ये जन तोमार अन्न खाय । कृष्ण भक्ति कृष्ण सेइ पाय सर्वथाय ॥१४॥
आचार्य तोमार अन्न आमार जीवन । तुमि खाओयाइले हय कृष्णेर भोजन ॥१५॥
तुमि ये नैवेद्य कर करिया रन्धन । मागियाओ खाइते आमार तथि मन ॥१६॥
शुनिञा प्रभुर भक्तवत्सलता-वाणी । कि आनन्दे अद्वैत भासेन नाहि जानि ॥१७॥
परम सन्तोषे तबे बासाय आइला । प्रभुर भिक्षार सज करिते लागिला ॥१८॥
लक्ष्मी-अंशे जन्म-अद्वैतेर पतिव्रता । लागिला करिते कार्य हइ हरषिता ॥१९॥
प्रभुर प्रीतेर द्रव्य गौड़देश हैते । यत आनिआछेन सब लागिलेन दिते ॥२०॥
रन्धने वसिला श्रीअद्वैत महाशय । चैतन्यचन्द्रेरे करि हृदये बिजय ॥२१॥
पतिव्रता व्यञ्जनेर परिपाटि करे । यतेक प्रकार करे येन चित्ते स्फुरे ॥२२॥
'शाके ईश्वरेर बड़ प्रीति' इहा जानि । नाना शाक दिलेन-प्रकार दश आनि ॥२३॥
आचार्य रान्धेन, पतिव्रता कर्म करे । दुइजन भासे येन आनन्दसागरे ॥२४॥
अद्वैत बोलेन शुन कृष्णदासेर माता । तोमारे कहिये आमि एक मनः कथा ॥२५॥
यत किछु करियाछि ए सब सम्भार । कोनरूपे इहा प्रभु करेन स्वीकार ॥२६॥
यदि आसिबेन सन्यासीर गोष्ठी लैया । किछु ना खाइब तबे, जानि आमि इहा ॥२७॥
अपेक्षित यत यत महान्त सन्यासी । सभेइ प्रभुर सङ्गे भिक्षा करेन आसि ॥२८॥

तथा श्रीप्रभु गौरचन्द्र भी बड़ी प्रीति से भोजन करते थे ॥ ११ ॥ एक दिन महामति श्रीअद्वैतसिंह ने प्रभु से कहा कि आज मेरे यहाँ भिक्षा करें ॥१२॥ हे प्रभो एक मुष्टि तण्डुल में स्वयं रन्धन करूँगा सो आपके भक्षण करने पर मेरे हाथ सफल होंगे ॥ १३ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "जो मनुष्य तुम्हारा अन्न खावेगा वे ही सर्वथा कृष्ण भक्ति व कृष्णचन्द्र प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ हे आचार्यजी तुम्हारा ही अन्न मेरा जीवन है तुम्हारे भोजन कराने पर ही कृष्ण का भोजन होता है ॥ १५ ॥ तुम जो रन्धन करके नैवेद्य करो तो उसे तो माँगकर भी खाने के लिये मेरा मन चलता है ॥१६॥ श्रीप्रभु की भक्तवत्सलता वाणी सुनकर न जाने अद्वैत प्रभु किस आनन्द सिन्धु में डूब गये ॥ १७ ॥ तब परम सन्तुष्ट होकर निवास स्थान पर आये और प्रभु की भिक्षा के निमित्त सामिग्री सजाने लगे ॥ १८ ॥ लक्ष्मी अंश से प्रकटित श्रीअद्वैत की पतिव्रता स्त्री हर्षित होकर कार्य करने लगीं ॥ १९ ॥ गौड़देश से प्रभु की जितनी प्रीति वस्तु संग लाई थी उन्हें देने लगीं ॥ २० ॥ तथा बड़े उदार अद्वैत प्रभु श्रीचैतन्यचन्द्र को हृदय में आवाहन करके रसोई बनाने को बिराजे ॥ २१ ॥ पतिव्रता सीतादेवी के चित्त में जैसे २ स्फूर्ति होती उतने ही प्रकार के व्यंजनों की रचना कर रहे थे ॥ २२ ॥ शागों में श्रीगौरहरि की बड़ी प्रीति है, यह जानकर दसों प्रकार के अनेक शाक लाकर दिये॥२३॥ श्रीआचार्य रसोई सिद्ध करते और पतिव्रता ऊपर का कर्म करती थी, दोनों मानो आनन्दसागर में डूब गये ॥२४॥ श्रीअद्वैत बोले "कृष्णदास की माता सुनो, तुमसे मैं अपने मन की एक बात कहूँ" ॥ २५ ॥ देखो जो कुछ सामिग्री बनाई है इन्हें प्रभु कैसा पसन्द करते हैं देखें ॥ २६ ॥ यदि वे सन्यासियों की मण्डली लेकर आये तो कुछ

सभेइ प्रभुरे करेन परम अपेक्षा । प्रभु सङ्गे सभे आसि प्रीते करेन भिक्षा ।।२६।।
अद्वैत चिन्तेन मने हेन पाक हय । एकेश्वर प्रभु आसि करेन विजय ।।३०।।
तबे इहा सब मुञि पारों खाओयाइते । ए कामना मोर सिद्ध हय कोनमते ।।३१।।
एइ मत मने चिन्ते अद्वैत-आचार्य । रन्धन करेन मने भावि सेइ कार्य ।।३२।।
ईश्वरो करिया संख्या नामेर ग्रहण । मध्याह्नादि क्रिया करिवारे हैल मन ।।३३।।
जे सब सन्यासी प्रभु संगे भिक्षा करे । ताँरा-सबो चलिला मध्याह्न करिवारे ।।३४।।
हेन काले महाझड़ वृष्टि आचम्बिते । आरम्भिला देवराज अद्वैतेर हिते ।।३५।।
शिलावृष्टि चतुर्दिगे बाजे झन् झना । असंभव वातास, वृष्टिर नाहि सीमा ।।३६।।
सर्वदिग अन्धकार हइल धूलाय । वासाते याइते केहो पथ नाहि पाय ।।३७।।
हेन झड़ वहे, केहो स्थिर हैते नारे । केहो नाहि जाने कोथा लैया जाय कारे ।।३८।।
सबे यथा श्रीअद्वैत करेन रन्धन । तथा मात्र हय अल्प झड़ वरिषण ।।३६।।
यत न्यासी भिक्षा करे प्रभुर संहति । उद्देशो नाहिक कारो केवा गेला कति ।।४०।।
एथा श्रीअद्वैतसिंह करिया रन्धन । उपस्करि थुइलेन श्रीअन्न व्यञ्जन ।।४१।।
घृत, दधि, दुग्ध, सर, नवनी, पिष्टक । नाना मत शर्करा, सन्देश, कदलक ।।४२।।
सभार उपरे दिया तुलसी मञ्जरी । ध्याने बसिलेन आनिवारे गौर हरि ।।४३।।
एकेश्वर प्रभु आइसेन येन-मते । एइ मत मने ध्यान करेन अद्वैते ।।४४।।

नहीं खायेंगे यह मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ ।। २७ ।। जितने श्रेष्ठ महानुभाव सन्यासी हैं, वे सब ही प्रभु के सङ्ग आकर भिक्षा करते हैं ।। २८ ।। सब ही प्रभु का विशेष सम्मान करते हैं तथा सभी प्रभु के साथ आकर प्रीतिपूर्वक भिक्षा करते हैं ।। २६ ।। श्री अद्वैत मन ही मन चिन्तवन कर रहे हैं कि इस रसोई को तो प्रभु अकेले ही आकर पावें ।। ३० ।। तभी इन सब पदार्थों को मैं उन्हें भोजन करा सकूँ मेरी वह मनोकामना कैसे पूरी हो ।। ३१ ।। श्री अद्वैत आचार्य इस प्रकार मन में चिन्ता कर रहे और मन में जो आता वही रंधन करते जाते थे ।। ३२ ।। श्री प्रभु ने भी संख्या युक्त नाम ग्रहण करके मध्याह्नादि क्रिया करने के लिए मन किया ।। ३३ ।। जो सब सन्यासी वृन्द श्रीप्रभु के साथ भिक्षा किया करते थे वे सब मध्याह्न कृत्य करने को चले गये ।। ३४ ।। उसी समय में देवराज इन्द्र ने श्री अद्वैत का हित करने के लिए अकस्मात् प्रबल पवन के साथ वर्षा आरम्भ करदी ।। ३५ ।। चारों ओर शिला वृष्टि के सहित मेघ गर्जन व पवन के साथ वृष्टि की सीमा नहीं रही ।। ३६ ।। तथा सब दिशाओं में आँधी की धूल द्वारा अन्धकार छा गया, अपने २ स्थान को जाने के लिये भी मार्ग नहीं मिलता था ।।३७।। ऐसा प्रबल झड़(आंधि) चलता था कि कोई स्थिर नहीं रह पाता था कोई नहीं जानता कि किसे कहाँ ले जाय ?।।३८।।केवल जहाँ श्रीअद्वैत रसोई करते थे वहीं अल्प पवन बहता था व वृष्टि थोड़ी होती थी ।।३६।। जो सन्यासी प्रभु के साथ भिक्षा करते थे उनको यह भी भान नहीं रहा कि कौन कहाँ चले गये ।। ४० ।। यहाँ पर श्रीअद्वैतसिंह ने रसोई करके श्री-अन्न तथा व्यंजन भोग लगाकर (उपस्कार पूर्वक) रख दिये ।। ४१ ।। घी-दधि-दूध-शरबत-नवनीत-पीठा अनेक प्रकार के खांड के पदार्थ, सन्देश व केला आदि सब पदार्थों के ऊपर तुलसी मंजरी देकर श्रीगौरहरि

सत्य गौरचन्द्र अद्वैतेर इच्छामय । एकेश्वर महाप्रभु हइला विजय ॥४५॥
"हरेकृष्ण हरेकृष्ण" बलि प्रेमसुखे । प्रत्यक्ष हइल आसि अद्वैत-सम्मुखे ॥४६॥
सम्भ्रमे अद्वैत पादपद्मे नमस्करि । आसन दिलेन, वसिलेन गौरहरि ॥४७॥
भिन्न सङ्ग केहो नाहि, ईश्वर केवल । देखिया अद्वैत हैला आनन्दे विह्वल ॥४८॥
हरिषे करेन पत्नी सहिते सेवन । पादप्रक्षालन देहे' चन्दन 'व्यजन ॥४९॥
वसिलेन महाप्रभु आनन्दे भोजने । अद्वैत करेन परिवेषण आपने ॥५०॥
यतेक व्यंजन देन अद्वैत सन्तोषे । प्रभुओ करेन परिग्रह प्रेमरसे ॥५१॥
यतेक व्यंजन प्रभु भोजन करेन । सभाकार किछु किछु अवश्य एड़ेन ॥५२॥
अद्वैतेर प्रति प्रभु बोलेन हासिया । "केने एड़ि व्यञ्जन, जानह तुमि इहा ॥५३॥
यतेक व्यञ्जन खाइ, चाहि जानिबार । अतएव किछु किछु एड़िये सभार" ॥५४॥
हासिया बोलेन प्रभु "शुनह आचार्य । कोथाय शिखिला तुमि ए रन्धन-कार्य ॥५५॥
आमि त एमत कभू नाहि खाइ शाक । सकलि विचित्र-यत करियाछ पाक ॥५६॥
यत देन श्रीअद्वैत, प्रभु सब खाय । भक्त वाञ्छा कल्पतरु श्रीगौराङ्गराय ॥५७॥
दधि, दुग्ध, घृत, सर, सन्देश अपार । यत देन, प्रभु सब करेन स्वीकार ॥५८॥
भोजन करेन श्रीचैतन्य भगवान् । अद्वैतसिंहेर करि पूर्ण मनस्काम ॥५९॥
परिपूर्ण हैल यदि प्रभुर भोजन । तखने अद्वैत करे इन्द्रेर स्तवन ॥६०॥

को बुलाने के लिये ध्यान में बैठ गये ॥ ४२-४३ ॥ जिस भाँति श्रीगौरचन्द्र अकेले में आवें श्रीअद्वैत प्रभु मन में ऐसा ध्यान कर रहे थे ॥ ४४ ॥ श्रीगौरचन्द्र सत्य ही श्रीअद्वैत के इच्छामय में हैं अतः श्रीमहाप्रभु ने अकेले ही आगमन किया ॥ ४५ ॥ प्रेम सुख में "हरे कृष्ण हरे कृष्ण" कहते हुए श्रीअद्वैत के सम्मुख आकर प्रत्यक्ष हो गये ॥ ४६ ॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने शीघ्रता से चरण-कमलों में नमस्कार करके आसन दिया तथा श्री-गौरहरि उस पर विराज गये ॥ ४७ ॥ कोई अन्य संग में नहीं हैं, केवल ईश्वर को देखते ही श्रीअद्वैत प्रेमानन्द में विह्वल हो गये ॥ ४८ ॥ हर्ष से पत्नी सहित सेवा करने लगे-चरणों को जल से प्रक्षालन करके चन्दन लगाया तथा व्यजन से पवन करने लगे ॥ ४९ ॥ श्रीमहाप्रभु आनन्द से भोजन करने बैठे तथा स्वयं अद्वैत प्रभु परिवेषण (परोसाई) करने लगे ॥५०॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने प्रसन्नता से जितने व्यंजन दिये उन्हें श्रीप्रभु ने प्रेमपूर्वक अङ्गीकार कर लिया ॥ ५१ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने जितने व्यंजनों का भोजन किया है सब में से कुछ-कुछ अवश्य छोड़ दिया ॥ ५२ ॥ श्रीप्रभु ने श्रीअद्वैत के प्रति हँसकर कहा कि क्या तुम जानते हो मैं व्यंजन क्यों छोड़ रहा हूँ ? ॥ ५३ ॥ जितने व्यंजन खा रहा हूँ उनको जानने की खोज में सब में से कुछ-कुछ छोड़ रहा हूँ ॥ ५४ ॥ श्रीप्रभु ने हँसकर पूछा कि हे आचार्य जी सुनो तुमने यह रसोई करना कहाँ से सीखा ? ॥ ५५ ॥ मैंने तो इस प्रकार के साग कभी नहीं खाये अहो जितने प्रकार की रसोई की है सब ही अति विचित्र है ॥ ५६ ॥ श्रीअद्वैत प्रभु जितना देते थे प्रभु श्रीगौरचन्द्र सब खा जाते थे क्योंकि महाप्रभु श्रीगौराङ्गराय भक्तवाञ्छापूर्णकारी कल्पवृक्ष हैं ॥ ५७ ॥ दही, दूध, घी, शरबत व सन्देश आदि पदार्थों को श्रीअद्वैत जितना अधिक भी देते थे श्रीगौरचन्द्र सब स्वीकार कर लेते थे ॥ ५८ ॥ अद्वैतसिंह की मनो-

"आजि इन्द्र जानिलूँ तोमार अनुभव। आजि जानिलाङ तुमि निश्चय वैष्णव' ॥६१॥
आजि हैते तोमारे दिवाङ पुष्पजल। आजि इन्द्र तुमि मोरे किनिला केवल" ॥६२॥
प्रभु बोले "आजि त इन्द्रेरे बड़ स्तुति। कि हेतु इहार कह देखि मोर प्रति" ॥६३॥
अद्वैत बोलेन "तुमि करह भोजन। कि कार्य तोमार इहा करिया श्रवण" ॥६४॥
प्रभु बोले "आर केने लुकाओ आचार्य। यत झड़ वृष्टि-सब तोमारि से कार्य ॥६५॥
झड़ेर समय नहे, तवे अकस्मात्। महाझड़ महावृष्टि महाशिलापात ॥६६॥
तुमि इच्छा करिया से ए सब उत्पात। कराइया आछ, ताहा वूझिल साक्षात् ॥६७॥
ये लागि इन्द्रेर द्वारे कराइला इहा। ताहो कहि एइ आमि विदित करिया ॥६८॥
'सन्यासीर सङ्गे आमि करिले भोजन। किछुना खाइब आमि' ए तोमार मन ॥६९॥
एकेश्वर आइले से आमारे सकल। खाओयाइया निज इच्छा करिवा सफल ॥७०॥
अतएव ए सकल उत्पात सृजिया। निषेधिला न्यासिगण मने आज्ञा दिया ॥७१॥
इन्द्र आज्ञाकारी, ए तोमार कोन् शक्ति। भाग्य से इन्द्रेर ये तोमारे करे भक्ति ॥७२॥
कृष्ण ना करेन यार सङ्कल्प अन्यथा। ये करिते पारे कृष्ण-साक्षात् सर्वथा ॥७३॥
कृष्णचन्द्र यार वाक्य करेन पालन। कि अद्भुत तारे एइ जड़ वरिषण ॥७४॥
यम काल मृत्यु जार आज्ञा शिरे धरे। नारदादि वाञ्छे योगेश्वर-मुनिश्वरे ॥७५॥
ये-तोमा'-स्मरणे सर्ववन्ध विमोचन। कि विचित्र तारे एइ झड़ वरिषण ॥७६॥

कामनापूर्ण करने के लिये श्रीचैतन्य भगवान् ने उनकी इच्छानुसार भोजन किया ॥ ५९ ॥ जब प्रभु का भोजन परिपूर्ण हो गया तब श्रीअद्वैत ने इन्द्र की स्तुति की ॥ ६० ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अनुभव को आज मैंने जाना और यह भी आज जाना कि तुम निश्चय ही वैष्णव हो ॥ ६१ ॥ हे इन्द्र आज से मैं तुम्हें फूल व जल प्रदान किया करूँगा आज तुमने मुझे केवल मोल ले लिया ॥ ६२ ॥ श्रीप्रभु बोले "आज तो इन्द्र की बड़ी स्तुति करते हो ! क्या कारण है, मुझसे भी तो कहो" ॥ ६३ ॥ श्रीअद्वैत ने कहा आप तो भोजन करो, इसे सुनकर आप क्या करेंगे ?" ॥ ६४ ॥ श्रीप्रभु ने कहा-"आचार्य अब क्यों छिपाते हो जितनी यह झड़वृष्टि है सब तुम्हारा ही कार्य है ॥ ६५ ॥ झड़ का समय न होने पर भी अकस्मात् भयंकर पवन वृष्टि व शिलापात हुआ ॥ ६६ ॥ तुम्हीं ने इच्छा करके यह सब उत्पात कराया है, उसे साक्षात् समझ लिया ॥६७॥ तथा जिस निमित्त से इन्द्र के द्वारा यह सब करवाया है उसे भी मैं खोलकर कहता हूँ ॥ ६८ ॥ जो मैं सन्यासियों के संग भोजन करूँगा तो मैं कुछ नहीं खाऊँगा यह बात तुम्हारे मन में थी ॥ ६९ ॥ केवल प्रभु ही अकेले आवें तो सब पदार्थों को खिलाकर अपनी इच्छा सफल करूँ ॥ ७० ॥ अतएव यह सब उत्पात सृजन करके मन में आज्ञा देकर सन्यासियों को निषेध कर दिया ॥ ७१ ॥ इन्द्र आज्ञाकारी हो इसमें से तुम्हारी कोई विशेष शक्ति प्रयोग नहीं है इन्द्र का तो अहोभाग्य है जो तुम्हारी भक्ति करता है ॥ ७२ ॥ जिसके संकल्प को कृष्णचन्द्र अन्यथा नहीं करते जो कृष्ण को सर्वथा साक्षात् प्रगट कर सकते हैं तथा कृष्णचन्द्र जिसका वाक्य पालन करते हैं उसके लिये ऐसी वृष्टि व झड़ क्या अद्भुत हैं अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७३-७४ ॥ जिसकी आज्ञा को यमराज काल व मृत्यु मस्तक पर धारण करते हैं तथा नारद आदि योगे-

तोमा' जाने हेन जन के आछे संसारे। तुमि कृपा करिले से भक्तिफल धरे ॥७७॥
अद्वैत बोलेन "तुमि सेवक वत्सल। काय मनो वाक्ये आमि धरि एइबल ॥७८॥
सर्वकाल सिंह आमि तोर भक्तिबले। एइ वर 'मोरे ना छाड़िबा कोनो काले" ॥७९॥
एइमत दुइप्रभु वाको वाक्य-रसे। भोजन सम्पूर्ण हैल आनन्द विशेषे ॥८०॥
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा। सत्य सत्य सत्य इथे नाहिक अन्यथा ॥८१॥
शुनिते ए सब कथा यार प्रीत नय। से अधम अद्वैतेर अदृश्य निश्चय ॥८२॥
हरि-शङ्करेर येन प्रीत सत्य कथा। अबुध प्राकृत गणे ना बुझे सर्वथा ॥८३॥
एकेर अप्रीते हय दोंहार अप्रीत। हरि-हरे येन-तेन चैतन्य-अद्वैत ॥८४॥
निरवधि अद्वैत ए सब कथा कय। जगतेर त्राण लागि कृपालु हृदय ॥८५॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति यार। जानिह ईश्वर सङ्गे भेद नाहि तार ॥८६॥
भक्ति करि ये शुनये ए सब आख्यान। कृष्णे भक्ति हय तार सर्वत्र कल्याण ॥८७॥
अद्वैतसिंहेर करि पूर्ण मनस्काम। वासाय चलिला श्रीचैतन्य भगवान् ॥८८॥
एइ मत श्रीबासादि-भक्तगण-घरे। भिक्षा करि सभारेइ पूर्ण काम करे ॥८९॥
सर्वगोष्ठी लइ निरवधि सङ्कीर्तन। नाचायेन नाचेन आपने अनुक्षण ॥९०॥
दामोदर पण्डित आइरे देखिवारे। गियाछिला, आइ देखि आइला सत्वरे ॥९१॥
दामोदर देखि प्रभु आनिञा निभृते। आइर वृत्तान्त लागिलेन जिज्ञासिते ॥९२॥

श्वर व मुनीश्वर जिसकी वाँछा करते हैं तथा जो तुम्हारा स्मरण करते हैं उनके बन्धन छूट जाते हैं, ऐसे तुम को झड़वृष्टि करना क्या विचित्र है ॥ ७५-७६ ॥ तुम को जान सके संसार में ऐसे कौन २ जन हैं? तुम्हारी कृपा करने से ही भक्तिफल धारण करती है ॥ ७७ ॥ श्रीअद्वैत प्रभु ने कहा "आप भक्तवत्सल हो मैं शरीर मन वाणी में यही बल धारण किये हुए हूँ ॥७८॥ केवल अपनी भक्ति पर मैं सब समय सिंह बना रहता—आप तो मुझे यही वर प्रदान करो कि किसी काल में मुझे छोड़ न दोगे ॥ ७९ ॥ इस प्रकार उक्ति प्रत्युक्ति रस के विशेष आनन्द से दोनों प्रभुओं का भोजन करना समाप्त हुआ ॥ ८० ॥ श्रीअद्वैत के श्रीमुख का यह सब प्रसङ्ग सर्वथा सत्य हैं ३, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ८१ ॥ इन सब कथाओं को सुनकर जिसे प्रसन्नता नहीं होती कि वह अधम श्रीअद्वैत का अदृश्य है अर्थात् उस पर उनकी दृष्टि न होगी—यह निश्चय है ॥ ८२ ॥ जिस प्रकार हरि व शंकर की प्रीति की कथा सत्य है उसे मूर्ख संसारी जन सर्वथा नहीं समझते ॥८३॥ एक की अप्रसन्नता से दोनों की अप्रसन्नता होती है जैसे हरि-हर हैं वैसे ही चैतन्य-अद्वैत हैं॥८४॥ जगत् की रक्षा के लिये कृपालु हृदय श्रीअद्वैत निरन्तर इन सब प्रसंगों को कहते रहते हैं ॥ ८५ ॥ श्रीअद्वैत के वाक्यों को समझने की जिसमें शक्ति है समझ लो उसमें और ईश्वर में भेद नहीं है ॥ ८६ ॥ भक्तिपूर्वक जो इन सब प्रसंगों को सुनेंगे उन्हें कृष्ण में भक्ति होगी व सब जगह कल्याण होगा ॥ ८७ ॥ श्रीचैतन्य भगवान् श्रीअद्वैतसिंह की मनोकामना पूरी करके अपने निवास स्थान को चले गये ॥८८॥ इस प्रकार श्रीवास आदि सभी भक्तों में भिक्षा करके सबकी ही कामना पूर्ण की ॥ ८९ ॥ सब भक्तमण्डली को लेकर सतत सङ्कीर्तन में स्वयं अनुक्षण नाचते व भक्तों को नचाते थे ॥ ९० ॥ श्रीदामोदर पण्डित शची माता के दर्शनों

प्रभु बोले 'तुमि ये आछिला तान काछे । सत्य कह आइर कि विष्णु-भक्ति आछे' ।।९३।।
परम तपस्वी निरपेक्ष दामोदर । शुनि क्रोधे लागिलेन करिते उत्तर ।।९४।।
कि बलिला गोसाञि आइर भक्ति आछे । इहाओ जिज्ञास प्रभु तुमि कोन काजे ।।९५।।
आइर प्रसादे से तोमार विष्णु-भक्ति । यत किछु तोमार, सकल ताँर शक्ति ।।९६।।
यतेक तोमार विष्णु-भक्तिर उदय । आइर प्रसादे सब जानिह निश्चय ।।९७।।
अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार । यतेक आछये विष्णु-भक्तिर विकार ।।९८।।
क्षणेको आइर देहे नाहिक विराम । निरवधि श्रीवदने सबे कृष्ण नाम ।।९९।।
आइरो भक्तिर कथा जिज्ञास गोसाञि । 'विष्णुभक्ति' यारे बोले, सेइ-देख आइ ।।१००।।
मूर्तिमती भक्ति आइ-कहिल तोमारे । जानिआओ माया करि जिज्ञास आमारे ।।१०१।।
प्राकृत शब्देओ येवा बलिवेक आइ । आइ-शब्द प्रभावे ताहार दुख नाइ ।।१०२।।
दामोदर मुखे शुनि आइर महिमा । गौरचन्द्र प्रभुर आनन्दे नाहि सीमा ।।१०३।।
दामोदर पण्डितेरे धरि प्रेम रसे । पुनः पुन आलिङ्गन करेन सन्तोषे ।।१०४।।
आजि दामोदर तुमि आमारे किनिला । मनेर बृत्तान्त सब आमार कहिला ।।१०५।।
यत किछु विष्णु-भक्ति सम्पति आमार । आइर प्रसादे सब-द्विधा नाहि आर ।।१०६।।
ताहान इच्छाय मुञि आछोँ पृथिवीते । तान ऋण आमि कभू ना पारि शुधिते ।।१०७।।
आइ-स्थाने बद्ध आमि, शुन दामोदर । आइरे देखिते आमि आछि निरन्तर ।।१०८।।

के लिये गये थे तो माता के दर्शन करके शीघ्र चले आये ।। ९१ ।। श्रीप्रभु दामोदर को देखकर एकान्त में बुलाकर शची माता का वृत्तान्त पूछा ।। ९२ ।। श्रीप्रभु बोले "तुम जो उनके पास रहे थे सत्य कहो क्या शची माता में विष्णु भक्ति है" ।। ९३ ।। बड़े तपस्वी व निरपेक्ष दामोदर पण्डित सुनकर क्रोध से उत्तर देने लगे ।। ९४ ।। प्रभो क्या कहते हो ? माता के भक्ति है ? यह पूछने का तुम्हें क्या काम ।। ९५ ।। माता की कृपा से ही तुम में विष्णु-भक्ति है और जो कुछ तुम्हारा है सब उन्हीं की शक्ति से है ।। ९६ ।। तुम में विष्णु-भक्ति का जितना उदय हुआ है यह सब माता के अनुग्रह से ही हुआ है-यह निश्चय जानो ।। ९७ ।। अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार आदि जितने विष्णु-भक्ति के विकार हैं उनका माता के देह में एक-क्षण को भी विराम प्राप्त नहीं होता है और निरन्तर श्रीमुख से केवल कृष्ण नाम उच्चारण करती हैं ।।९८-९९ ।। हे गुसाँई ! शची माता की जो भक्ति कथा पूछते हो तो देखो जिसे विष्णु-भक्ति कहते हैं शची माता वही हैं ।। १०० ।। मैं तुम से कहता हूँ कि शची माता मूर्तिमती भक्ति हैं जानते हुए भी माया करके तुम मुझ से पूछते हो ।। १०१ ।। प्राकृत शब्दों में भी जो कोई "आइ" कहे उनको भी आइ शब्द के प्रभाव से दुख नहीं रहेगा ।।१०२।। श्रीदामोदर के मुख से शची माता की महिमा सुनकर प्रभु श्रीगौरचन्द्र के आनन्द की सीमा नहीं रही ।। १०३ ।। सन्तुष्ट होकर प्रेमरस में दामोदर पण्डित को पकड़कर बारम्बार आलिङ्गन किया ।। १०४ ।। हे दामोदर ! आज तुमने मुझे मोल ले लिया मेरे मन की सब बात कह दी ।। १०५ ।। जो कुछ विष्णुभक्ति रूप सम्पत्ति मुझ में है वह सब माता के अनुग्रह से ही है-इसमें दूसरी बात नहीं है।।१०६।। उन्हीं की इच्छा से ही मैं पृथ्वी पर हूँ मैं उनके ऋण का कभी शोधन नहीं कर सकूँगा।।१०७।। हे दामोदर !

आइ-स्थाने बद्ध आमि, शुन दामोदर। आइरे देखिते आमि आछि निरन्तर" ॥१०८॥
दामोदर पण्डितेरे प्रभु कृपाकरि। भक्तगोष्ठी सङ्गे वसिलेन गौरहरि ॥१०९॥
आइरो ये भक्ति आछे जिज्ञासे' ईश्वरे। से केवल शिक्षा करायेन जगतेरे ॥११०॥
बान्धवेर 'वार्ता येन जिज्ञासे' बान्धवे। 'कह बन्धु-सब कि कुशले आछे सभे ॥१११॥
कुशल-शब्देर अर्थ व्यक्त करिवारे। 'भक्ति आछे' करि वार्ता लयेन सभारे ॥११२॥
भक्तियोग थाके, तबे सकल कुशल। भक्ति बिने राजा हइले ओ अमङ्गल ॥११३॥
धन जन भोग जार आछये सकल। भक्ति नाहि, तार हय सर्व अमङ्गल ॥११४॥
अद्य-खाद्य नाहि यार-दरिद्रेर अन्त। विष्णुभक्ति थाकिले, से-इसे धनवन्त ॥११५॥
भिक्षा-निमंत्रण-छले प्रभु सभा' स्थाने। व्यक्त करि इहा कहियाछेन आपने ११६॥
भिक्षा निमंत्रणे प्रभु बोलेन हासिया। "चल तुमि आगे लक्षेश्वर हश्रो गिया ॥११७॥
तथा भिक्षा आमार, ये हय लक्षेश्वर"। शुनिञा ब्राह्मण सब चिन्तित अन्तर ॥११८॥
विप्रगण स्तुति करि बोलेन गोसाञि। लक्षेर कि दाय, सहस्रेको कारो नाञि ॥११९॥
तुमि ना करिले भिक्षा गार्हस्थ्य आमार। एखनेइ पुड़िया हउक् छारखार" ॥१२०॥
प्रभु बोले "जान' 'लक्षेश्वर' बलिकारे। प्रतिदिन लक्ष-नाम ये ग्रहण करे ॥१२१
से जनेर नाम आमि वलि 'लक्षेश्वर'। तथा भिक्षा आमार, ना याइ अन्य घर" ॥१२२॥
शुनिञा प्रभुर कृपावाक्य विप्रगणे। चिन्ता छाड़ि महानन्द हैला मने मने ॥१२३॥

सुनो मैं माता के स्थान में बँधा हुआ हूँ मैं निरन्तर माता के दर्शन के निमित्त (वहाँ) रहता हूँ ॥ १०८॥ श्रीप्रभु गौरहरि दामोदर पण्डित पर कृपा करके भक्तमण्डली के साथ बैठ गये ॥ १०९ ॥ ईश्वर ने जो पूछी कि माता में भक्ति है क्या; वह केवल जगत् को शिक्षा कराने लिये है ॥ ११० ॥ जैसे बान्धवों की बात को बान्धव पूछते हैं कहो बन्धु ! सब कुशल तो हो ॥ १११ ॥ कुशल शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के निमित्त माता को भक्ति है ? इस वार्त्ता से सब कुशल समाचार पूछे थे ॥ ११२ ॥ यदि भक्तियोग हो तो सब कुशल है भक्ति विहीन राजा होने पर भी कुशल नहीं है ॥ ११३ ॥ जिसको धन-जन भोग व यश आदि सब कुछ है पर भक्तियोग नहीं है तो उसका सब प्रकार अमङ्गल है ॥ ११४ ॥ तथा जिसे आज के लिये भी खाने को नहीं है दरिद्रता का अन्त ही है तो भी उसके शरीर में विष्णु-भक्ति होने पर धनवान है ॥ ११५ ॥ स्वयं महाप्रभु ने भिक्षा-निमन्त्रण के छल से यह सिद्धान्त स्पष्ट करके सब से कह दिया ॥ ११६ ॥ श्रीप्रभु भोजन निमन्त्रण के समय हँसकर कहते कि तुम पहिले लखपती तो बनो ॥ ११७ ॥ जो लखपती होगा मेरा भोजन उसी के यहाँ होगा, यों सुनकर सब ब्राह्मण भी मन में चिन्तित हुए ॥ ११८ ॥ ब्राह्मण स्तुति करके बोले "प्रभो ! लाख की तो कहा बात किसी के पास एक सहस्र भी नहीं हैं" ॥ ११९ ॥ आपके भोजन नहीं करने पर हमारा गृहस्थाश्रम इसी क्षण में दग्ध होकर छार-खार (नष्ट-भ्रष्ट) हो जाय ॥ १२० ॥ श्रीप्रभु ने कहा "तुम जानते हो लक्षेश्वर किसे कहते हैं, जो नित्य प्रति एक लक्ष हरिनाम ग्रहण करता है उसे लखपती कहते हैं ॥ १२१ ॥ उन्हीं को मैं "लक्षेश्वर" कहता हूँ वही मेरी भिक्षा होगी दूसरों के घर मैं नहीं जाता ॥ १२२ ॥ ब्राह्मणों ने प्रभु के कृपापूर्ण वाक्य सुनकर चिन्ता त्याग दी मन में बड़े आनन्दित हुए ॥ १२३ ॥

लक्ष नाम लैब प्रभु तुमि कर भिक्षा । महाभाग्य एमत कराओ तुमि शिक्षा ॥१२४॥
प्रति दिन लक्ष नाम सर्व बिप्रगणे । लयेन चैतन्यचन्द्र भिक्षार कारणे ॥१२५॥
हेन मते भक्तियोग लओयाय ईश्वरे । वैकुण्ठनायक भक्तिसागरे बिहरे ॥१२६॥
भक्ति लओयाइते श्रीचैतन्य-अवतार । भक्ति बिना जिज्ञासा ना करे प्रभु आर । १२७॥
प्रभु बोले 'ये जनेर कृष्णभक्ति आछे' । कुशल मङ्गल तार नित्य थाके काछे ॥१२८॥
यार मुखे भक्तिर महत्त्व नाहि कथा । तार मुख गौरचन्द्र ना देखे सर्वथा ॥१२९॥
निज गुरु श्रीकेशव भारतीय स्थाने । 'भक्ति-ज्ञान' दुइ जिज्ञासिला एक दिने ॥१३०॥
प्रभु बोले ज्ञान भक्ति दुइते के वड़ । बिचारिया गोसाञि कहत करि दढ़ ॥१३१॥
कथोक्षणे भारती विचार करि मने । कहिते लागिला गौरसुन्दरेर स्थाने ॥१३२॥
भारती बोलेन 'मने विचारिल लत्त्व । सभा हैते बड़ देखि भक्तिर महत्त्व' ॥१३३॥
प्रभु बोले 'ज्ञान हैते भक्ति बड़ केने । 'ज्ञान बड़' करिया से कहे न्यासिगणे' ॥१३४॥
भारती बोलेन ताँरा ना बूझे विचार । महाजन पथे से गगन सभाकार ॥१३५॥
वेदे शास्त्रे महाजन पथ से लओयाय । ताहा छाड़ि अबुध ये अन्य पथे याय ॥१३६॥
ब्रह्मा शिव नारद प्रह्लाद व्यास शुक । सनकादि नन्द युधिष्ठिर-पञ्च रूप ॥१३७॥
प्रियव्रत पृथु ध्रुव अक्रूर उद्धव । 'महाजन' हेन नाम यत आछे सब ॥१३८॥
भक्ति से मागेन सभे ईश्वर चरणे । ज्ञान बड़ हैले, भक्तिमागे कि कारणे ॥१३९॥

हे प्रभो ! लाख नाम ग्रहण करेंगे आप भिक्षा करिये हमारे अहोभाग्य ! आप इस प्रकार शिक्षा कर रहे हैं ॥१२४॥ श्रीचैतन्यचन्द्र को भिक्षा कराने के निमित्त से सब विप्रगण प्रति दिन लक्ष २ नाम लेने लगे॥१२५॥ इस प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीगौरहरि भक्तियोग को ग्रहण कराते हुए भक्ति-सागर में बिहार करते थे ॥ १२६ ॥ श्रीचैतन्यदेव का अवतार भक्ति ग्रहण कराने के लिये ही हुआ इस कारण भक्ति के अतिरिक्त प्रभु और कुछ भी जिज्ञासा नहीं करते थे ॥ १२७ ॥ श्रीप्रभु कहते थे कि जिसकी कृष्णचन्द्र में भक्ति है सब कुशल व मङ्गल नित्य उसके पास रहते हैं ॥ १२८ ॥ जिसके मुख में भक्ति के महत्त्वपूर्ण प्रसंग नहीं होते उसका मुख श्रीगौरचन्द्र देखते ही नहीं रहें ॥ १२९ ॥ एक दिन अपने गुरु केशवभारती से भक्ति व ज्ञान दोनों का प्रश्न किया था ॥१३०॥ श्रीप्रभु ने पूछा "हे गुरुदेव ! ज्ञान व भक्ति दोनों में कौन बड़ा है सो विचार करके दृढ़ता से कहिये ॥ १३१ ॥ कुछ क्षण में श्रीभारती जी ने मन में विचार कर श्रीगौरसुन्दर से कहना प्रारम्भ किया ॥ १३२ ॥ श्रीभारती जी ने कहा "मन में तत्त्व को विचार लिया है भक्ति का महत्त्व ही सब से बड़ा है यही देख पड़ता है" ॥ १३३ ॥ श्रीप्रभु ने पूछा कि भक्ति ज्ञान से कैसे बड़ी है ? सन्यासीगण तो ज्ञान को बड़ा कहते हैं ॥ १३४ ॥ श्रीभारती जी ने उत्तर दिया वे लोग समझ कर विचार नहीं करते हैं देखो महाजनों के मार्ग पर ही सर्व साधारण चलते हैं ॥ १३५ ॥ वेद व शास्त्र भी महाजनों का मार्ग ही ग्रहण करते हैं उसे छोड़कर जो अन्य मार्ग से जाते हैं वे बुद्धिमान नहीं हैं ॥ १३६ ॥ ब्रह्मा-शिव-नारद-प्रह्लाद-व्यास-शुक चारों सनकादिक-युधिष्ठिर आदि पंच पाण्डव-प्रियव्रत-पृथु-ध्रुव-अक्रूर-उद्धव आदि जिन सबका महाजन नाम है, ये सब भगवत्-चरणों में भक्ति ही माँगते हैं यदि ज्ञान बड़ा होता तो भक्ति क्यों माँगते

बिनि विचारिया कि ये सब महाजन । मुक्ति छाड़ि भक्ति केने माँगे अनुक्षण ।।१४०।।
सभार वचन एइ पुराणे प्रमाण । कि वर मागिला ब्रह्मा ईश्वरेर स्थान ।।१४१।।

तथाहि भागवते १० स्कन्धे १४ अध्याये ३० श्लोके:-

"तदस्तु मे नाथ सभूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् " ।।१।।

किवा ब्रह्म जन्म किवा हउ यथा तथा । दास हइ येन तोमा सेविये सर्वथा ।।१४२।।
एइ मत यत महाजन सम्प्रदाय । सभेइ सकल छाड़ि भक्तिमात्र चाय ।।१४३।।

तथाहि श्रीविष्णुपुराणे (१।२०।१८)

"नाथ योनिसहस्रे पु येपु येपु व्रजाम्यहम । तेपु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि" ।।२।।
"स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिव्रजाम्यहम । तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्दृढ़ास्तु मे"।।३।।

तथाहि भागवते (१०।४७।६७)

"कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया । मङ्गलाचरितैर्दानैर्रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे" ।।४।।

'अतएव सर्व मते भक्ति से प्रधान । महाजन पथ सर्वशास्त्रेर प्रमाण' ।।१४४।।

तथाहि (महाभारते । वनपर्वणि ३१३।११७)

"तर्कोप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था" ।।५।।

'भक्ति बड़' शुनि प्रभु भारतीर मुखे । 'हरि' बलि गर्जिते लागिला प्रेमसुखे ।।१४५।।
प्रभु बोले आमि कथोदिन पृथिवीते । थाकिलाङ, एइ सत्य कहिल तोमाते ।।१४६।।

।। १३७ से १३९ ।। वे महाजन क्या सब के सब बिना विचारे ही मुक्ति को छोड़कर अनुक्षण भक्ति माँगते ऐसा क्यों ? ।। १४० ।। पुराणों में प्रमाण स्वरूप सबका वचन मौजूद है, ब्रह्मा ने भगवान् से वर माँगा था ।। १४१ ।। हे नाथ मेरा ऐसा महा सौभाग्य उदय हो जिसके बल से मैं इस ब्रह्मा के जन्म में अथवा पशु-पक्षी प्रभृति जिस किसी जन्म में हो आपके अनुगतजनों के बीच में एक जन होकर आपके चरण-कमलों की सेवा प्राप्त हो ।। १ ।। इस ब्रह्म जन्म में हो किंवा जिस किसी जन्म में हो ऐसी कृपा करो जिसमें मैं दास होकर सर्वथा आपकी सेवा करूँ ।। १४२ ।। इस प्रकार जितने भी उत्तम महापुरुषगण हैं वे मुक्ति आदि सब कुछ छोड़कर केवल भक्ति ही चाहे हैं ।। १४३ ।। प्रह्लाद ने कहा "हे नाथ मैं चाहे हजारों २ योनियों में जहाँ कहीं भी जाऊँ, हे अच्युत ! उन २ योनियों में सर्वदा ही तुम्हारे चरण-कमलों में मेरी अटूट भक्ति बनी रहे-ऐसी कृपा करो ।।२।। मैं अपने कर्मफल नियन्त्रित से चाहे जिस योनि में जाऊँ हे हृषीकेश ! मेरी उस २ योनि में आपके चरणों में दृढ़ भक्ति हो ।। ३ ।। ईश्वरेच्छा से अपने कर्मों के अनुसार जिस किसी योनि में मैं कहीं भी भ्रमण करूँ किन्तु मङ्गल आचरण व दानादि साधनों के फलस्वरूप मेरी उस ईश्वर कृष्ण में अनुराग हो ।। ४ ।। अतएव सब शास्त्रों का प्रमाण व महाजनों का मार्ग होने से सब प्रकार से भक्ति ही प्रधान हैं ।। १४४ ।। तर्क तो प्रतिष्ठा रहित है अर्थात् स्थिर नहीं है तथा वेद की श्रुतियाँ भी विभिन्न हैं,ऐसा ऋषि भी नहीं है जिसका मत पृथक न हो और धर्म का तत्त्व गिरिगुहा की तरह दुर्गम प्रदेश में अवस्थित हैं इस कारण से महाजन (भगवद्भक्त) जिस मार्ग से गये हैं, वही मार्ग है, उसी मार्ग में चलना ही उचित है क्योंकि सीधा मार्ग ही वही है ।। ५ ।। श्रीप्रभु ने श्रीकेशव भारती जी के मुख से भक्ति बड़ी है यह वचन सुनते ही हरि-हरि कहकर प्रेमानन्द सुख में गर्जन करने लगे ।।१४५।। प्रभु ने

यदि तुमि 'ज्ञान बड़' बलिते आमारे । प्रवेशितों आजि तबे समुद्र भितरे ॥१४७॥
सन्तोषे धरेन प्रभु गुरुर चरणे । गुरुओ प्रभुरे नमस्करे प्रीत मने ॥१४८॥
प्रभु बोले 'यार मुखे नाहि भक्ति कथा । तप शिखा-सूत्र-त्याग तार सब वृथा' ॥१४९॥
भक्ति बिना प्रभुर जिज्ञासा नाहि आर । भक्तिरसमय श्रीचैतन्य अवतार ॥१५०॥
रात्रि दिन एको ना जानेन भक्तगण । सर्वदा करेन नृत्य कीर्तन गर्जन ॥१५१॥
एक दिन अद्वैत सकल भक्त प्रति । बलिलेन परानन्दे मत्त हइ अति ॥१५२॥
शुन भाइ-सब एक कर समवाय । मुख भरि गाइ आजि श्रीचैतन्यराय ॥१५३॥
आजि आर कोन अवतार गाओया नाञि । सर्व-अवतारमय-चैतन्य गोसाञि ॥१५४॥
जे प्रभु करिल सर्व जगत उद्धार । आमा सभा लागिये प्रभुर अवतार ॥१५५॥
सर्वत्र आमरा याँर प्रसादे पूजित । संकीर्तन हेन धन ये कैल विदित ॥१५६॥
नाचि आमि, तोमरा चैतन्य यश गाओ । सिंह हइ बोल, पाछे मने भय पाओ ॥१५७॥
प्रभुसे आपना लुकायेन निरन्तर । क्रुद्ध पाछे हयेन सभार एइ डर ॥१५८॥
तथापि अद्वैत वाक्य अलंघ्य सभार । गाइते लागिला श्रीचैतन्य-अवतार ॥१५९॥
नाचेन अद्वैतसिंह आनन्दे विह्वल । चतुर्दिगे गाय सभे चैतन्य मङ्गल ॥१६०॥
नव-अवतारेर शुनिञा नाम यश । सकल वैष्णव हैल आनन्दे विवश ॥१६१॥
आपने अद्वैत चैतन्येर गीत करि । बोलाइया नाचे प्रभु जगत निस्तारि ॥१६२॥

कहा अब तो मैं पृथ्वी पर रहूँगा आपसे मैं यह सत्य कहता हूँ॥१४६॥यदि आपने मुझ से 'ज्ञान बड़ा है' कहा होता कि मैं तो आज ही समुद्र में प्रवेश कर जाता॥१४७॥श्रीप्रभु ने सन्तुष्ट होकर गुरुजी के चरण पकड़े तथा उनने भी प्रसन्न मन से नमस्कार किया ॥ १४८ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "जिसके मुख भक्ति कथा नहीं है उसका तप व शिखा सूत्र त्यागरूप सन्यास सब वृथा है ॥ १४९ ॥ भक्ति के बिना प्रभु की और किसी वस्तु की जिज्ञासा नहीं है श्रीचैतन्य अवतार तो भक्तिरसमय ही है ॥१५०॥ भक्तवृन्द को रात दिन का भान नहीं था सब समय नृत्य कीर्तन व गर्जन ही करते रहते थे ॥ १५१ ॥ एक दिन श्रीअद्वैत प्रभु ने परम आनन्द में मत्त होकर सब भक्तों के प्रति कहा ॥ १५२ ॥ हे भाइयो सुनो एक गायक-समाज करो जिसमें आज मुख-भर कर श्रीचैतन्यराय के नाम गुण का गान करें ॥ १५३ ॥ आज अन्य किसी अवतार का यश गान नहीं करेंगे, क्योंकि श्रीचैतन्य महाप्रभु तो सब अवतारों के अवतारी हैं ॥ १५४ ॥ जिस प्रभु ने सब जगत् का उद्धार कर दिया तथा हम सब के लिये ही जिनका अवतार हुआ है ॥ १५५ ॥ जिनके अनुग्रह से ही हम लोग सब जगह पूजित हैं तथा जिनने संकीर्तन ऐसा धन प्रगट किया है ॥ १५६ ॥ सिंह विक्रम से कहता हूँ मैं तो नाचूँगा तुम लोग चैतन्य यश का गान करो कहीं पीछे मन में भय मत पाना ॥ १५७ ॥ प्रभु तो अपने को निरन्तर लुकाते हैं इसलिये कहीं पीछे क्रुद्ध होंय यही सबको डर था ॥१५८॥ तथापि श्रीअद्वैतजी के वाक्य सबके लिये उल्लंघ्य थे अतः श्रीचैतन्य अवतार के चरित्रों को गान करने लगे ॥ १५९ ॥ आनन्द में विह्वल होकर श्रीअद्वैतसिंह नाचते थे तथा भक्तवृन्द चारों ओर चैतन्य मङ्गल गा रहे थे ॥१६०॥ नवीन अवतार के नाम व यश को सुनकर सब वैष्णव प्रेमानन्द में विवश हो गये ॥ १६१ ॥ स्वयं श्रीअद्वैत प्रभु

"श्रीचैतन्य नारायण करुणासागर । दीन-दुःखितेर बन्धु मोरे दयाकर' ॥१६३॥
अद्वैतसिंहेर श्रीमुखेर एइ पद । इहार कीर्तने बाढे सकल सम्पद ॥१६४॥
केहो बोले "जय जय श्री शचीनन्दन" । केहो बोले "जय गौरचन्द्र नारायण ॥१६५॥
जय सङ्कीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल । जय भक्तजन प्रिय पाषण्डीर काल" ॥१६६॥
नाचेन अद्वैतसिंह-परम-उद्दाम । सबे एक श्रीचैतन्य-गुण-कर्म-नाम ॥१६७॥

※ श्रीरागः ※

पुलके रचित गाय, सुखे गड़ागड़ियाय, देखरे चैतन्य अवतारा ।
वैकुण्ठनायक हरि, द्विजरूपे अवतरि, संकीर्तने करेन विहारा ॥
कनक जिनिञा कान्ति, श्रीविग्रह शोभेरे, आजानुलम्बित माला साजेरे ।
सन्यासीर रूपे, आपनरसे विह्वल, ना जानि केमन सुखे नाचेरे ॥
जय जय श्रीगौर, सुन्दर करुणासिन्धु, जय जय वृन्दावन रायारे ।
जय जय सम्प्रति, नवद्वीप-पुरन्दर, चरण-कमल देह छायारे ॥१॥

एइ सब कीर्तन करेन भक्तगण । नाचेन अद्वैत भावि चैतन्यचरण ॥१६८॥
नव अवतारेर नूतन यशशुनि । उल्लासे वैष्णव सब करे जय ध्वनि ॥१६९॥
कि अद्भुत हइल से कीर्तन-आनन्द । सबे ताहा वर्णिते जानेन नित्यानन्द ॥१७०॥
परम-उद्दाम शुनि कीर्तनेर ध्वनि । श्रीविजय आसिया हइला न्यासिमणि ॥१७१॥

श्रीचैतन्य के यश भरे गीत रचना करके जगत के निस्तार के लिये भक्तों से बुलवाकर नाच रहे थे ॥ १६२ ॥ हे करुणासागर नारायण श्रीचैतन्य प्रभो ! दीन दुखितों के बन्धु मेरे ऊपर दया करो ॥ १६३ ॥ अद्वैतसिंह के श्रीमुख का यह पद है इसका कीर्तन करने से सब सम्पत्ति बढ़ती हैं ॥१६४॥ कोई कहते "श्रीशचीनन्दन की जय हो २" और कोई कहते "श्रीगौरचन्द्रनारायण की जय हो" ॥ १६५ ॥ संकीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल की जय हो २ और भक्तजनों के प्यारे तथा पाखण्डियों के कालरूप प्रभु की जय हो॥१६६॥श्रीअद्वैतसिंह बड़ा उद्दाम नृत्य करते थे तथा अन्य सभी एक मात्र श्रीचैतन्य के गुण-कर्म-नाम गा रहे थे ॥१६७॥ वैकुण्ठनायक हरि ब्राह्मण के रूप में अवतीर्ण होकर संकीर्तन बिहार करते हैं शरीर पुलक से मानो विरचित है तथा सुख से लोट-पोट होते हैं, हे भाइयो देखो श्रीचैतन्य का ऐसा अवतार हुआ है । कनक कान्ति को पराजयकारी श्रीविग्रह शोभा दे रहा है, जानुपर्यन्त लम्बी मालाओं से सजे हुए सन्यासीरूप में अपने ही रस में विह्वल होकर न जाने कैसे सुख से नाचते हैं। करुणासिन्धु श्रीगौरसुन्दर की जय हो २ तथा श्रीवृन्दावनदास के राजा की जय हो वर्त्तमान में नवद्वीप के पुरन्दर की जय हो २, हे प्रभो ! चरण-कमल की छाया प्रदान करो ॥ १ ॥ भक्तवृन्द इन सब पदों का कीर्तन कर रहे थे तथा श्रीअद्वैत प्रभु चैतन्यचन्द्र के चरणों की भावना करके नाचते थे ॥ १६८ ॥ नवीन अवतार के नवीन यश को सुनकर वैष्णववृन्द प्रसन्न होकर जय २ ध्वनि कर रहे थे ॥ १६९ ॥ कीर्तन से कैसा अद्भुत आनन्द हुआ उसे केवल नित्यानन्द ही वर्णन कर सकते हैं ॥१७०॥ परम उद्दाम कीर्तन की ध्वनि सुनकर सन्यासियों में शिरोमणि श्रीगौर ही वहाँ पधारे

सहस्र सहस्र जन ना जानि कोथार । जगन्नाथ देखि आइल प्रभु देखिबार ॥२०५॥
केहो वा त्रिपुरा केहो चाटि-ग्रामवासी । श्रीहट्टिया लोक केहो केहो वङ्गदेशी ॥२०६॥
सहस्र सहस्र लोक करेन कीर्तन । श्रीचैतन्य-अवतार करिया वर्णन ॥२०७॥
जय जय श्रीकृष्णचैतन्य वनमाली । जय जय निज भक्तिरस कुतूहली ॥२०८॥
जय जय परम सन्यासि रूपधारी । जय जय सङ्कीर्तन रसिक मुरारी ॥२०९॥
जय जय द्विजराज वैकुण्ठ विहारी । जय जय जय जगतेर उपकारी ॥२१०॥
जय कृष्णचैतन्य श्रीशचीरनन्दन । एइमत गाय नाचे शत-संख्य जन ॥२११॥
श्रीवास बोलेन "प्रभु एबे कि करिवा । सकल संसार गाय, कोथा लुकाइवा ॥२१२॥
मुञि कि शिखाइयाछों ए सब लोकेरे । एइमत गाय प्रभु सकल संसारे ॥२१३॥
अदृश्य अव्यक्त तुमि हइयाओ नाथ । करुणाये हइयाछ जीवेर साक्षात् ॥२१४॥
लुकाओ आपने तुमि, प्रकाश आपने । यारे अनुग्रह कर जाने से-इ जने" ॥२१५॥
प्रभु बोले "तुमि निज शक्ति प्रकाशिया । बोलाह लोकेर मुखे, जानिलाङ इहा ॥२१६॥
तोमारे हारिल मुञि शुनह पंडित । जानिलाङ-तुमि सर्वशक्ति समन्वित" ॥२१७॥
सर्वकाल प्रभु बाढ़ायेन भक्त जय । ए तान स्वभाव-वेदे भागवते कय' ॥२१८॥
हास्यमुखे सब-वैष्णवेरे गौरराय । विदाय दिलेन, सभे चलिला वासाय ॥२१९॥
हेन से चैतन्य देव श्रीभक्तवत्सल । इहाने से कृष्ण करि गायेन सकल ॥२२०॥

दोगे ? ॥२०३॥ ईश्वर सदा ही भक्तों की जय कराते हैं । उस समय भी द्वार पर अद्भुत बात हुई ॥२०४॥ न जाने कहाँ से हजारों २ जन जगन्नाथ दर्शन करके श्रीप्रभु गौरचन्द्र के दर्शनों के लिये द्वार पर आये ॥२०५॥ कोई त्रिपुरा से कोई चट्टग्राम से कोई २ श्रीहट्ट (सिलहट) से कोई पूर्व-बंग से आयकर ॥२०६॥ श्रीचैतन्यचन्द्र अवतार का यश वर्णन करके सहस्र २ लोग कीर्तन कर रहे थे ॥ २०७ ॥ बनमाली श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो जय हो, अपने भक्तिरस द्वारा कुतूहल करने वाले प्रभु की जय हो २ ॥ २०८ ॥ परम सन्यासी रूप धारण करने वाले श्रीप्रभु की जय हो २, सङ्कीर्तन रसिक श्रीमुरारी की जय हो २ ॥ २०९ ॥ वैकुण्ठविहारी द्विजराज की जय हो २, जगत् का कल्याण करने वाले प्रभु की जय हो ३॥२१०॥श्रीशचीनन्दन कृष्णचैतन्य की जय हो इस प्रकार असंख्यों जन गान व नृत्य कर रहे थे ॥ २११ ॥ श्रीवास ने कहा "प्रभो ! अब क्या करोगे ? देखो सब संसार आपके यश को गा रहा है अब कहाँ छिपोगे ॥ २१२ ॥ इन सब लोगों को क्या मैंने ही सिखा दिया है ? प्रभो ! सब संसारवासी इसी प्रकार गान करते हैं ॥२१३॥ हे स्वामी तुम अदृश्य व अव्यक्त होकर भी करुणा करके ही जीवों के आगे प्रगट होते हो ॥ २१४ ॥ प्रभो तुम स्वयं ही गुप्त हो जाते हो तथा स्वयं ही प्रकाशित होते हो जिसके ऊपर आप अनुग्रह करते हो वे ही जन जान पाते है ॥ २१५ ॥ श्रीप्रभु ने कहा "तुम अपनी शक्ति प्रकाश करके लोगों के मुख से कहलवा रहे हो मैंने यह समझ लिया है ॥ २१६ ॥ श्रीवास पण्डित सुनो ! मैं तुम से हार गया और समझ लिया कि तुम में सब शक्ति है ॥ २१७ ॥ प्रभु सदा ही भक्त की जय कराते हैं-यही उनका स्वभाव है-वेद तथा भागवत भी यही कहते हैं ॥ २१८ ॥ श्रीगौरराय ने हास्य मुख से सब वैष्णवों को विदा दी तब सब वैष्णव अपने २ डेरों

नित्यानन्द अद्वैतादि यतेक प्रधान । सभे बोले "श्रीकृष्णचैतन्य भगवान्" ।।२२१।।
ए सकल ईश्वरेर बचन लंघिया । अन्येरे ये बोले 'कृष्ण' से-इ अभागिया ।।२२२।।
शेषशायी लक्ष्मीकान्त श्रीवत्सलाञ्छन । कौस्तुभ भूषण आर गरुड़ वाहन ।।२२३।।
ए सब कृष्णेर चिह्न जानिह निश्चय । गङ्गा आर कारो पादपद्मे ना जन्म लय ।।२२४।।
श्रीचैतन्त बिने इहा अन्ये ना सम्भवे । एइ कहे वेदे शास्त्रे सकल वैष्णवे ।।२२५।।
सर्व वैष्णवेर वाक्य ये आदरे लय । सेइ सब जने पाय सर्वत्र विजय ।।२२६।।
हेन मते महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर । भक्तगोष्ठी सङ्गे विहरेन निरन्तर ।।२२७।।
प्रभु बेढि भक्तगण वैसेन सकल । चौदिगे शोभये येन चन्द्रेर मण्डल ।।२२८।।
मध्ये श्रीवैकुण्ठनाथ न्यासि चूड़ामणि । निरवधि कृष्ण कथा करि हरिध्वनि ।।२२९।।
हेनइ समये दुइमहा भाग्यवान् । हइलेन आसिया प्रभुर विद्यमान ।।२३०।।
शाकर-मल्लिक आर रूप-दुइ भाइ । दुइप्रति कृपादृष्ट्ये चाहिला गोसाञि ।।२३१।।
दूरे थाकि दुइ भाइ दण्डवत करि । काकुर्वाद करेन दशने तृण धरि ।।२३२।।
"जय जय महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य । याँहार कृपाय हैल सर्वलोक धन्य ।।२३३।।
जय दीनवत्सल जगत हितकारी । जय जय परम-सन्यासि-रूपधारी ।।२३४।।
जय जय सङ्कीर्तन विनोद अनन्त । जय जय जय सर्व-आदि-मध्य-अन्त ।।२३५।।
आपने हइया श्रीवैष्णव अवतार । भक्ति दिया उद्धारिला सकल संसार ।।२३६।।

को चल दिये ।। २१९ ।। भक्तवत्सल श्रीचैतन्यदेव ऐसे हैं, सभी उनको कृष्ण करके गान करते हैं ।। २२० ।। श्रीनित्यानन्द श्रीअद्वैत आदि जितने प्रधान भक्त थे वे सब कहते थे कि श्रीकृष्णचैतन्य भगवान् हैं ।।२२१।। इन सब प्रभुओं के वचनों को उल्लंघन करके जो अन्य किसी को कृष्ण कहते हैं वे अभागे हैं ।। २२२ ।। शेष शय्या पर शयन,लक्ष्मी के पति, श्रीवत्स का चिह्न धारण, कौस्तुभमणि भूषण और गरुड़वाहन यह सब चिन्ह श्रीकृष्ण के हैं निश्चय पूर्वक जान लो तथा गङ्गाजी अन्य किसी के चरण-कमल से उत्पन्न नहीं होती हैं-श्रीचैतन्य के बिना ये सब बातें दूसरे में सम्भव नहीं हैं इसको वेद-शास्त्र सब वैष्णव कहते हैं ।। २२३ से २२५ ।। इस प्रकार वैष्णवों के वाक्यों को जो आदर से ग्रहण करता है उसकी सब जगह विजय होती है ।। २२६ ।। इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर महाप्रभु निरन्तर भक्तगोष्ठी के सङ्ग विहार करते थे ।। २२७ ।। प्रभु को घेरकर सब भक्तवृन्द बैठे थे मानो चारों ओर चन्द्रमण्डल शोभा दे रहा था ।। २२८ ।। तथा सन्यासियों में मुकुटमणि श्रीवैकुण्ठनाथ बीच में बैठकर निरन्तर कृष्ण कथा व हरिध्वनि करते थे ।। २२९ ।। उस समय दो महा भाग्यवान् पुरुष प्रभु के सम्मुख आकर उपस्थित हुए ।।२३०।। तब श्रीगौरप्रभु ने उन शाकर-मल्लिक और रूप दोनों भ्राताओं के प्रति कृपादृष्टि से देखा ।। २३१ ।। दोनों भाई दूर से दण्डवत् कर रहे थे तथा दाँतों में तिनुका लेकर काकुती कार्पण्य प्रदर्शन कर रहे थे ।। २३२ ।। जिनकी कृपा से सब लोक धन्य हो गया है ऐसे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो२।।२३३।।जगत् हितकारी व दीनवत्सल की जय हो, परम सन्यासी रूपधारी प्रभु की जय हो जय हो ।।२३४।। संकीर्तन विनोदी अनन्तस्वरूप प्रभु की जय हो सब के आदि मध्य अन्त में वर्तमान प्रभु की जय हो ३ ।।२३५।। स्वयं श्रीवैष्णवरूप में अवतीर्ण होकर सब संसार

तबे प्रभु मोरे ना उद्धार कोन काजे । मुञि किना हड प्रभु संसारेर माझे ॥२३७॥
आजन्म विषय भोग हइया मोहित । ना भजिलूँ तोमार चरण-निज हित ॥२३८॥
तोमार भक्तेर सङ्गे गोष्ठी ना करिलूँ । तोमार कीर्तन ना करिलूँ ना शुनिलूँ ॥२३९॥
राज पात्र करि मोरे वञ्चना करिला । तबे मोरे मनुष्य जनम केने दिला ॥२४०॥
ये मनुष्य जन्म लागि देवे काम्य करे । हेन जन्म दियाओ वञ्चिला प्रभु मोरे । २४१॥
एबे एइ कृपा कर अमाया हइया । वृक्ष मूले पड़ि थाकों तोर नाम लैया ॥२४२॥
ये तोमार प्रियभक्त लओयाय तोमारे । अवशेष पात्र येन हड तार घरे ॥२४३॥
एइमत रूप सनातन-दुइ भाइ । स्तुति करे शुने प्रभु चैतन्यगोसाञि ॥२४४॥
कृपादृष्ट्ये प्रभु दुइ-भाई रे चाहिया । बलिते लागिला अति सदय हइया ॥२४५॥
प्रभु बोले "भाग्यवन्त तुमि-दुइजन । बाहिर हइला छिण्डि संसार बन्धन ॥२४६॥
विषय बन्धने बद्ध सकल संसार । से बन्धन हैते तुमि- दुइ हैला पार ॥२४७॥
प्रेम भक्ति वांछा यदि करह एखने । तबे धरि पड़ एइ अद्वैत चरणे ॥२४८॥
भक्तिर भाण्डारी श्रीअद्वैत महाशय । अद्वैतेर कृपाये से कृष्णभक्ति हय" ॥२४९॥
शुनिञा प्रभुर आज्ञा दुइ महाजने । दण्डवत् पड़िलेन अद्वैत चरणे ॥२५०॥
"जय जय श्रीअद्वैत पतितपावन । मुइ-दुइ-पतितेरे करह मोचन" ॥२५१॥
प्रभु बोले "शुन शुन आचार्य गोसाञि । कलियुगे एमत विरक्त झाट नाञि ॥२५२॥

को प्रेम-भक्ति देकर आपने उद्धार किया है ॥२३६॥ तब हे प्रभो ! हमें उद्धार क्यों नहीं करते ? क्या प्रभो ! हम संसार में नहीं हैं ? ॥ २३७ ॥ जन्म से ही विषय भोग में मोहित होकर स्वार्थवश आपके चरणों को नहीं भजा ॥ २३८ ॥ कभी आपकी भक्तमण्डली का संग नहीं किया न आपका कीर्त्तन ही किया व सुना ॥ २३९ ॥ राजमन्त्री करके हमारी वंचना कर दी तो हमको मनुष्य जन्म ही क्यों दिया था ॥ २४० ॥ जिस मनुष्य जन्म के लिये देवता भी कामना करते हैं, ऐसा जन्म देकर भी प्रभो ! हमें आपने बिसार दिया ? ॥ २४१ ॥ अब माया को छोड़कर ऐसी कृपा करो जिससे आपका नाम लेते हुए वृक्ष के नीचे पड़े रहें॥२४२॥ जो आपके प्रियभक्त आपका नाम यश कीर्तन कर रहे हैं, ऐसी कृपा हो जाय जिसमें हम उनके घर झूठन रखने के पात्र हो सकें ॥ २४३ ॥ इस प्रकार रूप-सनातन दोनों भाई स्तुति कर रहे थे तथा श्रीचैतन्यचन्द्र प्रभु सुन रहे थे ॥ २४४ ॥ श्रीप्रभु ने कृपादृष्टि से दोनों भाइयों को देखा और अत्यन्त सदय होकर बोले ॥ २४५ ॥ श्रीगौर प्रभु ने कहा "तुम दोनों पुरुष बड़े भाग्यवन्त हो जो संसार बन्धन को तोड़कर बाहिर हो गये" ॥ २४६ ॥ सब संसार विषय की रस्सी में बँध रहा है तुम दोनों तो उस बन्धन से पार हो गये हो ॥ २४७ ॥ यदि इस समय प्रेम-भक्ति की वाँछा करते हो तो इन श्री अद्वैत के चरणों को पकड़कर चरणों में लोटो ॥ २४८ ॥ उदार शिरोमणि श्रीअद्वैत प्रभु ही भक्ति के भाण्डारी हैं इन्हीं की कृपा से कृष्ण-भक्ति होती है ॥ २४९ ॥ दोनों महापुरुष प्रभु की आज्ञा सुनकर श्रीअद्वैत प्रभु चरणों में दण्डवत् होकर गिर पड़े ॥ २५० ॥ पतितपावन श्री अद्वैत प्रभु की जय हो जय हो, हे प्रभो ! हम दोनों पतितों को मुक्त करो ॥२५१॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कहा "हे आचार्य प्रभु ! सुनो कलियुग में ऐसे वैराग्यवान् पुरुष शीघ्र नहीं प्राप्त होंयगे

राज्यसुख छाड़ि, कांथा करङ्ग लइया । मथुराय थाकेन कृष्णेर नाम लैया ॥२५३॥
अमायाय कृष्णभक्ति देह' ए-दुइरे । जन्म जन्म आर यन कृष्ण ना पासरे ॥२५४॥
भक्तिर भाण्डारी तुमि, बिने तुमि दिले । कृष्णभक्ति कृष्णभक्त कृष्ण कारो मिले ॥२५५॥
अद्वैत बोलेन "प्रभु सर्वदाता तुमि । तुमि आज्ञा दिले से दिवारे पारि आमि ॥२५६॥
प्रभु आज्ञा दिले से भाण्डारी दिते पारे । एइमत यारे कृपा कर यार द्वारे ॥२५७॥
काय-मन-बचने मोहोर एइ कथा । ए-दुइर प्रेमभक्ति हउक सर्वथा" ॥२५८॥
शुनि प्रभु अद्वैतेर कृपायुक्त-वाणी । उच्चकरि बलिते लागिला हरिध्वनि ॥२५९॥
दबीरखासेरे प्रभु बलिते लागिला । "एखने तोमार कृष्णप्रेम भक्ति हैला ॥२६०॥
अद्वैतेर प्रसादे से हय प्रेम भक्ति । जानिह अद्वैत-श्रीकृष्णेर पूर्ण शक्ति ॥२६१॥
कथो दिन जगन्नाथ-श्रीमुख देखिया । तबे दुइ भाइ मथुराय थाक गिया ॥२६२॥
तोमा सभा हैते यत राजस तामस । पश्चिमा-सभारे गिया देह भक्तिरस ॥२६३॥
आमिह देखिब गिया मथुरा मण्डल । आमि थाकिबारे स्थल करिह बिरल" ॥२६४॥
शाकर मल्लिक-नाम घुचाइया तान । सनातन अवधूत थुइलेन नाम ॥१६५॥
अद्यापिह दुइ भाइ-रूप सनातन । चैतन्य कृपाय हैला विख्यात-भुवन ॥२६६॥
यार यत कीर्ति भक्ति महिमा उदार । चैतन्य चन्द्र से सब करेन प्रचार ॥२६७॥
नित्यानन्द तत्त्व किबा अद्वैतेरे तत्त्व । यत महाप्रिय-भक्त गोष्ठीर महत्त्व ॥२६८॥
चैतन्य प्रभु से सब करिला प्रकाशे । सेइ प्रभु सब इहा कहेन सन्तोषे ॥२६९॥

॥ २५२ ॥ राज्य सुख को त्याग कर कंथा (गूदड़ी) व करुवा लेकर कृष्ण नामों को ग्रहण करके मथुरामंडल में रहते हैं ॥ २५३ ॥ सो इन दोनों को निष्कपट कृष्ण-भक्ति प्रदान करो जिसमें जन्म-जन्मान्तर में फिर कृष्ण को कभी न भूलें ॥ २५४ ॥ तुम ही भक्ति के भाण्डारी हो तुम्हारे दिये बिना कृष्ण की भक्ति कृष्ण के भक्त व कृष्णचन्द्र किसको मिल सकते हैं ? ॥ २५५ ॥ श्रीअद्वैत ने कहा "प्रभो ! सबके देने वाले तो आप ही हो सो तुम आज्ञा देते हो तो मैं देने को उद्यत हूँ ॥ २५६ ॥ मालिक की आज्ञा से ही भाण्डारी देता है इसी प्रकार जिनके द्वारा जिस पर आप कृपा करते हो सो आपकी इच्छा से ही होता है ॥ २५७ ॥ मैं यह अपने शरीर मन व वचन से कहता हूँ कि इन दोनों को सब प्रकार से प्रेम-भक्ति हो ॥ २५८ ॥ श्रीअद्वैत प्रभु की कृपायुक्त वाणी सुनकर श्रीप्रभु गौरचन्द्र ऊँचे स्वर से हरिध्वनि करने लगे ॥ २५९ ॥ श्रीप्रभु ने दबीरखास (रूप) से कहा अब तुमको कृष्ण प्रेम-भक्ति हो गई ॥ २६० ॥ श्रीअद्वैत की कृपा से ही कृष्ण प्रेम-भक्ति प्राप्त होती है यह निश्चय जान लो कि श्रीअद्वैत में ही कृष्ण की पूर्ण शक्ति है ॥ २६१ ॥ कुछ दिन जगन्नाथ का श्रीमुख दर्शन करके तब दोनों भाई मथुरामण्डल जाकर रहना ॥ २६२ ॥ तुम्हारे द्वारा जितने रजोगुणी व तमोगुणी जीव हैं उनका उद्धार होगा तथा पश्चिम देश में सबको भक्ति रस देना ॥ २६३ ॥ मैं भी जाकर मथुरामण्डल के दर्शन करूँगा सो मेरे रहने के लिये भी एक एकान्त स्थल बनाना ॥२६४॥ प्रभु ने उनके शाकरमल्लिक नाम को दूर करके अवधूत सनातन नाम रख दिया॥२६५॥आज पर्यन्त श्रीरूप सनातन दोनों भाई श्रीचैतन्यदेव की कृपा से संसार में भुवन विख्यात हैं ॥ २६६ ॥ जिनकी जितनी

ये भक्त ये वस्तु-यार येन अवतार। वैष्णव वैष्णवी-यार अंशे जन्म यार ॥२७०॥
यार येन-मत पूजा, यार ये महत्व। चैतन्य प्रभु से सब करिलेन व्यक्त ॥२७१॥
एक दिन प्रभु वसि आछे सुप्रकाशे। अद्वैत-श्रीवास-आदि भक्त चारि-पाशे ॥२७२॥
श्रीनिवास पण्डितेरे ईश्वर आपने। आचार्येर वार्ता जिज्ञासेन तान स्थाने ॥२७३॥
प्रभु कहे "श्रीनिवास कहत आमारे। कि रूप वैष्णव तुमि वास अद्वैतेरे" ॥२७४॥
मने भावि बलिला श्रीवास महाशय। "शुक वा प्रह्लाद येन मोर चित्ते लय"॥२७५॥
अद्वैतेर उपमा प्रह्लाद-शुक येन। शुनि प्रभु क्रोधे श्रीवासेरे मारिलेन ॥२७६॥
पिता येन पुत्रे सिखाइते स्नेहे मारे। एइमत एक चड़ हैल श्रीवासेरे ॥२७७॥
"कि वलिलि कि वलिलि पण्डित श्रीवास। मोहोर नाढ़ारे कह शुक वा प्रह्लाद ॥२७८॥
ये शुकेरे 'मुक्त' तुमि बोल सर्वमते। कालिर बालक शुक नाढ़ार आगेते ॥२७९॥
एतबड़ वाक्य मोर नाढ़ारे वलिलि। आजि वड़ श्रीवासिया मोरे दुःख दिलि" ॥२८०॥
एतवलि क्रोधे हस्ते दीपयष्टि लैया। श्रीवासेरे मारिवारे यान खेदाड़िया ॥२८१॥
सम्भ्रमे उठिया श्रीअद्वैत महाशय। धरिला प्रभुर हस्ते करिया विनय ॥२८२॥
बालकेरे बाप शखाइवा कृपा-मने। के आछे तोमार क्रोधपात्र त्रिभुवने ॥२८३॥
आचार्येर वाक्ये प्रभु क्रोध करि दूर। आवेशे कहेन तान महिमा प्रचुर ॥२८४॥

उदार कीर्ति व भक्ति महिमा है उदार श्रीचैतन्यचन्द्र ने सबको प्रचार कर दिया ॥२६७॥ नित्यानन्दतत्त्व व अद्वैततत्त्व तथा अति प्रिय भक्तमण्डली का महत्त्व श्रीचैतन्यप्रभु ने सब प्रकार से प्रकाश किया वे ही प्रभु अब उन सब से प्रसन्न होकर कहने लगे ॥२६८-२६९॥जो भक्त जो वस्तु (तत्त्व)है जो जिसका अवतार हुआ है जितने वैष्णव व वैष्णवी मात्र थे, जो जिसके अंश जन्मे थे तथा जिसकी जिस प्रकार पूजा होती है व जिसका जो महत्त्व है वह सब श्रीचैतन्य प्रभु ने सब स्पष्ट कर दिया ॥ २७०-२७१ ॥ एक दिन गौरचन्द्र सुन्दर प्रकाश में बैठे थे तथा श्रीअद्वैत श्रीवास आदि भक्त चारों ओर बैठे थे ॥ २७२ ॥ स्वयं श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने श्रीनिवास पण्डित को श्रीअद्वैताचार्य की बात पूछी ॥२७३॥ श्रीप्रभु ने कहा हे श्रीवास मुझ से तो कहो तुम अद्वैत को कैसा वैष्णव समझते हो ? ॥ २७४ ॥ परम उदार श्रीवास ने मन में विचार करके कहा मेरे मन में ऐसा जान पड़ता है जैसे शुक अथवा प्रह्लाद हैं ॥ २७५ ॥ श्रीअद्वैत की शुक व प्रह्लाद से उपमा सुनकर श्रीप्रभु ने क्रोध में श्रीवास को मारा ॥ २७६ ॥ जिस प्रकार से शिक्षा देने के लिये पिता स्नेह से पुत्र को मारता है उसी प्रकार श्रीवास को एक चाँटा मारा ॥ २७७ ॥ क्या कहा, क्या कहा श्रीवास पण्डित ! मेरे नाढ़ा (बूढ़े) अद्वैत को शुक व प्रह्लाद कहते हो ॥ २७८ ॥ जिस शुकदेव को तुम सब प्रकार से मुक्त कहते हो वह नाढ़ा के आगे कल का बालक है॥२७९॥मेरे अद्वैताचार्य के प्रति ऐसा बड़ा वाक्य कहा ? अरे श्रीवासिया ! आज मुझे तैंने विशेष दुःख दिया॥२८०॥ऐसा कहकर क्रोध से हाथ में दीपयष्टि (मशाल छड़ी) लेकर ताड़ना के लिये श्रीवास को खदेड़ा ॥ २८१ ॥ श्रीअद्वैत महाशय ने अति शीघ्रता से उठकर विनय करते हुए प्रभु के हाथ पकड़ लिये ॥ २८२ ॥ प्रभो ! बालकों को कृपायुक्त मन से शिक्षा दो तीनों लोकों में तुम्हारे क्रोध का पात्र कौन है ? ॥२८३॥ श्रीप्रभु ने आचार्य के वाक्यों से क्रोध दूर करके आवेश में उनकी

प्रभु बोले "तोहोर बालक शिशु तोर । एतेके सकल क्रोध दूरे गेल मोर ॥२८५॥
मोर नाढ़ा जानिवारे आछे हेनजन । ये मोहोरे आनिलेक भाङ्गिया शयन" ॥२८६॥
प्रभु बोले "अये श्रीनिवास महाशय । मोहोर नाढ़ारे एइ तोमार वि-नय ॥२८७॥
शुक-आदि करि सब बालक उहार । नाढ़ार पाछे से जन्म जानिह सभार ॥२८८॥
अद्वैतेर लागि मोर एइ अवतार । मोर कर्णे बाजे आसि नाढ़ार हुङ्कार ॥२८९॥
शयने आछिलुँ मुञि क्षीरोद सागरे । जागाइ आनिल मोरे नाढ़ार हुङ्कारे" ॥२९०॥
श्रीवासेर अद्वैतेर प्रति बड़ प्रीत । प्रभु वाक्य शुनि हैला अति हरषित ॥२९१॥
महाभये कम्प हइ बोले श्रीनिवास । "अपराध करिलुँ, क्षमह मोरे नाथ ॥२९२॥
तोमार अद्वैततत्त्व जानह तुमि से । तुमि जानाइले से जानये अन्य दासे ॥२९३॥
आजि मोर महाभाग्य सकल मङ्गल । शिखाइया आमारे आपने कैला फल ॥२९४॥
एखने से ठाकुराली वलिये तोमार । आजि बड़ मने बल बाढ़िल आमार ॥२९५॥
एइमोर मनेर संकल्प आजि हैते । मदिरा यवनी यदि धरये अद्वैते ॥२९६॥
तथापि करिव भक्ति अद्वैतेर प्रति । कहिलुँ तोमारे प्रभु सत्य करि अति ॥२९७॥
तुष्ट हइलेन प्रभु श्रीवास-वचने । पूर्वप्राय आनन्दे वसिला तिन जने ॥२९८॥
परम-रहस्य ए सकल पुण्य कथा । इहार श्रवणे कृष्ण पाइये सर्वथा ॥२९९॥
यार येन प्रभाव, याहार येन भक्ति । येवा आगे, येवा पाछे, यार येन शक्ति ॥३००॥

प्रचुर महिमा का प्रकाश किया ॥२८४॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने कहा तुम्हारे लिये यह बालक व शिशु की तरह स्नेह के आस्पद हैं, इसी से मेरा सब क्रोध दूर चला गया ॥ २८५ ॥ जो मेरी नींद को भंग कराकर मुझे ले आया ऐसे मेरे नाढ़ा को जान सके ऐसा कौन जन है ? ॥ २८६ ॥ प्रभु बोले "हे श्रीनिवास महाशय ! मेरे अद्वैत के प्रति तुम्हारी विरुद्ध नीति है" ॥ २८७ ॥ शुकदेव आदि सब उनके बालक हैं तथा सब का जन्म नाढ़ा (अद्वैत) से पीछे हुआ है ॥ २८८ ॥ श्रीअद्वैत के निमित्त ही मेरा यह अवतार हुआ है अद्वैत की हुङ्कार मेरे कानों में जाकर लगी ॥ २८९ ॥ मैं तो क्षीरोदसागर मे सो रहा था अद्वैत की हुङ्कार ही मुझे वहाँ से जगाय लाई ॥ २९० ॥ श्रीवास की अद्वैत के प्रति बड़ी प्रीति थी सो प्रभु के वाक्यों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ २९१ ॥ बड़े भय से कम्पित होकर श्रीवास ने कहा नाथ ! अपराधी हो गया-मुझे क्षमा करो ॥ २९२ ॥ आप अद्वैत का तत्त्व आप ही जानते हो अथवा आपके प्रबोध कराने से अन्य दास जानते हैं ॥ २९३ ॥ आज मेरा बड़ा भाग्य व सब मंगल उदय हुआ है जो आपने मुझे शिक्षा देकर प्रतिफल प्रदान किया ॥ २९४ ॥ इस समय आप ही की प्रभुता कहेंगे आज मेरे मन में विशेष बल बढ़ा है ॥२९५॥ प्रभो ! आज से मेरे मन का यह संकल्प है कि श्रीअद्वैत प्रभु यदि मदिरा व यवनी स्त्री को भी धारण करें तथापि उनके प्रति मैं भक्ति करूँगा आपके सम्मुख अत्यन्त सत्य करके कहता हूँ ॥ २९६-२९७ ॥ प्रभु श्रीगौरचन्द्र श्रीवास के वचन सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए और पहिले की ही तरह तीनों आनन्दपूर्वक बैठ गये ॥ २९८ ॥ परम रहस्यमय इन सब पवित्र कथाओं के सुनने से सर्वथा कृष्णचन्द्र प्राप्त होंगे ॥ २९९ ॥ जिसका जैसा प्रभाव व जिसकी जैसी भक्ति थी जो आगे अथवा पीछे हुए तथा जिसकी जैसी शक्ति थी इन सबके ज्ञाता

सभार सर्वज्ञ एक प्रभु गौरराय । आरे जाने, ये ताहाने भजे अमायाय ॥३०१॥
विष्णुतत्त्व येन अविज्ञात वेदवाणी । एइमत वैष्णवेरो तत्त्व नाहि जानि ॥३०२॥
सिद्ध वैष्णवेर अति विषम व्यभार । ना बुझि निन्दिया मरे सकल संसार ॥३०३॥
सिद्ध वैष्णवेर येन विषम व्यभार । साक्षाते देखह भागवत-कथा-सार ॥३०४॥
वैष्णव प्रधान भृगु ब्रह्मार नन्दन । अहर्निश मने भावे याँर श्रीचरण ॥३०५॥
से प्रभुर वक्षे करिलेन पदाघात । तथापि वैष्णव श्रेष्ठ देखह साक्षात ॥३०६॥
प्रसङ्गे शुनह भागवतेर आख्यान । ये निमित्त भृगु करिलेन हेन काम ॥३०७॥
पूर्वे सरस्वती तीरे महा- ऋषिगण । आरम्भिला महायज्ञ पुराण श्रवण ॥३०८॥
सभे शास्त्रकर्ता सभे महातपोधन । अन्योन्ये लागिल ब्रह्म-विचार-कथन ॥३०९॥
'ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-तिनजन-माझे । के प्रधान' विचारेन मुनिर समाजे ॥३१०॥
केहो बोले 'ब्रह्मा बड़' केहो 'महेश्वर' । केहो बोले 'विष्णु बड़ सभार उपर' ॥३११॥
पुराणेइ नानामत करेन कथन । 'शिव बड़' कोथाओ, कोथाओ 'नारायण' ॥३१२॥
तबे सब ऋषिगण मिलिया भृगुरे । आदरिला ए प्रमाण तत्त्व जानिबारे । ३१३॥
"ब्रह्मार मानसपुत्र तुमि महाशय । सर्वमते तुमि ज्येष्ठ श्रेष्ठ तत्त्वमय ॥३१४॥
तुमि इहा जान गिया करिया विचार । सन्देह खण्डाह आसि आमरा-सभार ॥३१५॥
तुमिये कहिबा सेइ सभार प्रमाण" । शुनि भृगु चलिलेन आगे ब्रह्मा-स्थान ॥३१६॥

एक श्रीगौरचन्द्र हैं और जो उनको निष्कपट भाव से भजते हैं वे ही जानते हैं ॥ ३००-३०१ ॥ जिस प्रकार विष्णुतत्त्व वेदवाणी द्वारा भी अविज्ञात है उसी प्रकार वैष्णवों के तत्त्व को भी नहीं जान पाते हैं ॥३०२॥ सिद्ध वैष्णवों के व्यवहार अत्यन्त विषम हैं बिना समझे ही निन्दा करके सब संसार मर रहा है ॥ ३०३ ॥ सिद्ध वैष्णवों का जैसा विषम व्यवहार होता है वह भागवत में कथा के सार रूप में देख लो ॥ ३०४ ॥ ब्रह्मा के पुत्र भृगु ऋषि वैष्णवों में प्रधान थे रात दिन जिन प्रभु के श्रीचरण-कमलों को मन में भावना करते थे ॥ ३०५ ॥ उन्हीं प्रभु के वक्षस्थल में लात मारी तो भी वे वैष्णवों में स्पष्ट ही श्रेष्ठ हैं ॥ ३०६ ॥ इस प्रसङ्ग में भागवत का आख्यान सुनो जिस कारण भृगु ने ऐसा काम किया ॥ ३०७ ॥ पहिले सरस्वती नदी के तट पर महर्षियों ने पुराण श्रवण करने के लिये महायज्ञ आरम्भ किया था ॥ ३०८ ॥ सभी शास्त्रों के रचयिता व बड़े तपस्वी थे सो एक दूसरे से ब्रह्म विचार पर कथोपकथन करने लगे ॥ ३०९ ॥ मुनियों की समाज में इस पर विचार होने लगा कि ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वर इन तीनों में कौन प्रधान है ॥३१०॥ किसी ने कहा ब्रह्मा बड़े हैं किसी ने कहा महेश्वर बड़े हैं तथा और किसी ने कहा कि सबके ऊपर विष्णु बड़े हैं ॥ ३११ ॥ तथा पुराणों में भी अनेक प्रकार से कथन किया है, किसी पुराण में शिवजी बड़े हैं, किसी में ब्रह्मा व किसी में नारायण बड़े हैं कहा गया ॥ ३१२ ॥ तब सब ऋषियों ने मिलकर इसके प्रमाण व तत्त्व जानने के लिये भृगु का आदर किया॥३१३॥महाशय भृगु तुम ब्रह्मा के मानस पुत्र हो अतः सब प्रकार से हम में तुम बड़े व श्रेष्ठ हो तथा तत्त्वविज्ञ हो ॥३१४॥ अतः तुम ही जाकर विचारपूर्वक इसका निश्चय करके लाओ और आकर हम सबके सन्देह का खण्डन करो ॥ ३१५ ॥ तुम जो कुछ कहोगे वही सबको प्रमाण

ब्रह्मार सभाय गिया भृगु मुनिवर । दम्भ करि रहि लेन ब्रह्मार गोचर ॥३१७॥
पुत्र देखि ब्रह्मा बड़ सन्तोष हइला । सकल कुशल जिज्ञासिवारे लागिला ॥३१८॥
सत्व परीक्षिते भृगु ब्रह्मार नन्दन । श्रद्धा करि ना शुनेन बापेर बचन ॥३१९॥
स्तुति कि वा विनय गौरव नमस्कार । किछु ना करेन पिता-पुत्र-व्यवहार ॥३२०॥
देखिया पुत्रेर अनादर अव्यभार । क्रोधे ब्रह्मा हइलेन अग्नि-अवतार ॥३२१॥
भस्म करिवेन हेन क्रोधे मग्न हैला । देखिया पितार मूर्ति भृगु पलाइला ॥३२२॥
सभे बुझाइलेन ब्रह्मार पाये धरि । "पुत्रेरे कि गोसाञि एमत क्रोध करि" ॥३२३॥
तवे पुत्र स्नेहे ब्रह्मा क्रोध पासरिला । जल पाइ येन अग्नि सुसाम्य हइला ॥३२४॥
तवे भृगु ब्रह्मारे बुझिया भालमते । कैलासे आइला महेश्वर परीक्षिते ॥३२५॥
भृगु देखि महेश्वर आनन्दित हैया । उठिला पार्वतीसङ्गे आदर करिया ॥३२६॥
ज्येष्ठ-भाइ-गौरवे आपने त्रिलोचन । प्रेम योगे उठिला करिते आलिङ्गन ॥३२७॥
भृगु बोले 'महेश परश नाहि कर' । यतेक पाषण्ड वेश सब तुमि धर ॥३२८॥
भूत-प्रेत पिशाच-अस्पृश्य यत आछे । हेन सब पाषण्ड राखह तुमि काछे ॥३२९॥
यतेक उत्पथ से तोमार व्यवहार । भस्मास्थि धारण कोन् शास्त्रेर आचार ॥३३०॥
तोमार परशे स्नान करिते जुयाय । दूरे थाक दूरे थाक अये भूतराय" ॥३३१॥
परीक्षा निमित्ते भृगु बोलेन कौतुके । कभू शिवनिन्दा नाहि भृगुर श्रीमुखे ॥३३२॥

मान्य होगा, यह सुनकर भृगु ने पहिले ब्रह्मा के स्थान को गमन किया॥३१६॥मुनिवर भृगुजी ब्रह्मा की सभा में जाकर दम्भ करके ब्रह्मा के सम्मुख बैठ गये ॥ ३१७ ॥ पुत्र को देखकर ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और सब प्रकार के कुशल समाचार पूछने लगे ॥ ३१८ ॥ ब्रह्मा के पुत्र भृगुजी ने सत्त्वगुण परीक्षा के विचार से पिताजी के वचनों को श्रद्धा करके नहीं सुना ॥३१९॥ पिता के लिये पुत्रोचित व्यवहार स्वरूप स्तुति-विनय, गौरव नमस्कार आदि कुछ नहीं किया ॥३२०॥पुत्र के अनादररूप व्यवहार को देखकर क्रोध से ब्रह्मा अग्नि स्वरूप हो गये॥३२१॥ क्रोध में ऐसे मग्न हो गये मानो भस्म कर देंगे, पिताजी की ऐसी मूति देखकर भृगुजी वहाँ से भाग कर चल दिये ॥ ३२२ ॥ तब सब ने ब्रह्मा के चरण पकड़कर समझाया कि प्रभो ! पुत्र के ऊपर इतना क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ ३२३॥ तब ब्रह्माजी पुत्र स्नेह से क्रोध को भूल गये, जैसे जल को प्राप्त होने पर अग्नि शीतल हो जाय ॥ ३२४ ॥ तब भृगुजी ब्रह्मा को भली भाँति समझ कर फिर शिवजी की परीक्षा करने के लिये कैलाश में आये ॥ ३२५ ॥ भृगु को देखते ही आदर करके आनन्दित मन से पार्वती के संग शिवजी उठ खड़े हुए ॥ ३२६ ॥ बड़े भाई का गौरव बढ़ाने के लिये स्वयं त्रिलोचन (शिव) प्रेमयोग से आलिंगन करने के निमित्त उठे ॥३२७॥ भृगु ने कहा अरे हो महेश स्पर्श मत करना कारण जितने पाखंड वेश हैं तुम सबको धारण किये हुए हो ॥ ३२८ ॥ भूत, प्रेत, पिशाचरूप जितने अस्पृश्य हैं उन सब पाखण्डियों को तुम अपने समीप रखते हो ॥ ३२९ ॥ जितने प्रकार के शास्त्र विमुख मार्ग हैं उन में विचरना ही तुम्हारा काय है देखो भस्म अस्थि धारण करना किस शास्त्र का आचार है ? ॥ ३३० ॥ तुम्हारे स्पर्श करने से स्नान करना पड़ेगा सोई अरे भूतराज दूर रहो, दूर रहो ॥ ३३१ ॥ भृगु ने परीक्षा के निमित्त से

भृगुवाक्ये महाक्रोध हैला त्रिलोचन। त्रिशूल तुलिया लइलेन सेइक्षण ॥३३३॥
ज्येष्ठ भाइ-धर्म पासरिलेन शङ्कर। हइलेन येहेन संहार मूर्ति धर ॥३३४॥
शूल तुलिलेन शिव भृगुरे मारिते। आथे व्यथे देवी आसि धरिलेन हाथे ॥३३५॥
चरणे धरिया बुझायेन महेश्वरी। "ज्येष्ठ भाइरे कि प्रभु एत क्रोध करि" ॥३३६॥
देवीवाक्ये लज्जा पाइ रहिला शङ्कर। भृगु ओ चलिला श्रीवैकुण्ठ-कृष्णघर ॥३३७॥
श्रीरत्नखट्टाय प्रभु आछेन शयने। लक्ष्मी सेवा करिते आछेन श्रीचरणे ॥३३८॥
हेनइ समये भृगु आसि अलक्षिते। पदाघात करिलेन प्रभुर वक्षेते ॥३३९॥
भृगु देखि महाप्रभु सम्भ्रमे उठिया। नमस्करिलेन प्रभु महाप्रीत हैया ॥३४०॥
लक्ष्मीर सहिते प्रभु भृगुर चरण। सन्तोषे करिते लागिलेन प्रक्षालन ॥३४१॥
बसिते दिलेन आनि उत्तम आसन। श्रीहस्ते ताहान अङ्गे लेपेन चन्दन ॥३४२॥
अपराधि प्राय येन हइया आपने। अपराध मागिया लयेन तान स्थाने ॥३४३॥
तोमार शुभ-विजय आमि ना जानिञा। अपराध करियाछि, क्षम मोरे इहा ॥३४४॥
एइये तोमार पादोदक पुण्य जल। तीर्थेरे करये तीर्थ हेन सुनिर्मल ॥३४५॥
यतेक ब्रह्माण्ड वैसे आमार देहेते। यत लोकपाल सब आमार सहिते ॥३४६॥
पादोदक दिया आजि करिला पवित्र। अक्षय हइया रहु तोमार चरित्र ॥३४७॥
एइये तोमार श्रीचरण चिह्न धूलि। वक्षे राखिलाङ आमि हइ कुतूहली ॥३४८॥
लक्ष्मी सङ्गे निजवक्षे दिल आमि स्थान। वेदे येन 'श्रीवत्स लाञ्छन' बोले नाम॥३४९॥

ही कौतुक में ऐसे शब्द कहे पहिले भृगु के श्रीमुख से कभी शिव निन्दा नहीं सुनी थी ॥ ३३२ ॥ भृगु के वाक्यों से त्रिलोचन शिवजी को बड़ा क्रोध हुआ तथा उसी क्षण त्रिशूल उठाय लिया ॥ ३३३ ॥ शङ्कर बड़े भाई के धर्म को भूलकर संहार मूर्ति रूप हो गये ॥ ३३४ ॥ शिव ने भृगु के मारने को शूल उठा लिया जैसे तैसे करके देवी ने हाथ पकड़ कर रोका ॥ ३३५ ॥ देवी ने चरण पकड़ कर समझाया कि प्रभो! बड़े भाई के ऊपर ऐसा क्रोध करते है? ॥ ३३६ ॥ शङ्करजी देवी के वाक्यों से लज्जित होकर बैठ गये और भृगु-ऋषि श्रीकृष्णचन्द्र के निवास स्थान श्रीवैकुण्ठ को चल दिये ॥ ३३७ ॥ रत्न सिंहासन पर प्रभु सो रहे थे तथा लक्ष्मीजी श्रीचरण-कमलों की सेवा कर रही थीं ॥३३८॥ ऐसे समय में भृगु ने अलक्षित रूप से पहुँच कर श्रीविष्णु के वक्षस्थल में लात मारी ॥ ३३९ ॥ भृगु को देखते ही भगवान् बड़ी शीघ्रता से उठे तथा बड़े प्रसन्न होकर नमस्कार किया ॥ ३४० ॥ लक्ष्मी के सहित विष्णु ने सन्तुष्ट होकर भृगु के चरणों को प्रक्षालन किया ॥ ३४१ ॥ और बैठने को उत्तम आसन लाकर दिया तथा श्रीहस्तों से उनके अङ्ग में चन्दन लेप किया ॥ ३४२ ॥ स्वयं अपराधी तुल्य होकर उन से अपराध की क्षमा माँगने लगे ॥३४३॥ मैंने आपके शुभ आगमन को न जानकर अपराध किया है अतः मेरे इस अपराध को क्षमा करो ॥ ३४४ ॥ यह तुम्हारा जो पादोदक रूप पवित्र जल है वह ऐसा सुनिर्मल है कि यह तीर्थों को भी तीर्थ (कृतार्थ) कर देता है ॥ ३४५ ॥ मेरे शरीर में जितने ब्रह्माण्ड हैं और मुझ सहित जितने लोकपाल हैं उन्हें आज चरणामृत देकर पवित्र कर दिया, आपका यह चरित्र अक्षय होकर रहेगा ॥ ३४६-३४७ ॥ यह जो आपके चरण चिन्ह की धूलि है उसे

शुनिञा प्रभुर वाक्य, विनय-व्यभार । काम-क्रोध-लोभ-मोह-सकलेर पार ॥३५०॥
देखि महा ऋषि पाइलेन चमत्कार । लज्जित हइया माथा ना तोलेन आर ॥३५१॥
याहा करिलेन से ताहान कर्म नय । आवेशेर कर्म्म इहा जानिह निश्चय ॥३५२॥
वाह्य पाइ प्रीति श्रद्धा देखिते देखिते । भक्तिरसे पूर्ण हइ लागिला नाचिते ॥३५३॥
हास्य, कम्प, घर्म्म, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार । भक्तिरसे मग्न हैला ब्रह्मार कुमार ॥३५४॥
"सभार ईश्वर कृष्ण, सभार जीवन" । एइ सत्य बलि नाचे ब्रह्मार नन्दन ॥३५५॥
देखिया कृष्णेर शान्त-विनय-व्यभार । विप्रभक्ति ये कोथाओ ना सम्भवे आर ॥३५६॥
भक्ति जड़ हैला, वाक्य ना आइसे वदने । आनन्दाश्रुधारा मात्र वहे श्रीनयने ॥३५७॥
सर्वभावे ईश्वरेर देह समर्पिया । पुन सभामध्ये भृगु मिलिला आसिया ॥३५८॥
भृगु देखि सभे हैला आनन्द अपार ! "कह भृगु कार केन देखिले व्यभार ॥३५९॥
तुमि येइ कह, येइ सभार प्रमाण" । तबे सब कहिलेन भृगु भगवान ॥३६०॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तिनेर व्यभार । सकल कहिया एइ कहिलेन सार ॥३६१॥
"सर्वश्रेष्ठ-श्रीवैकुण्ठनाथ नारायण । सत्य सत्य सत्य एइ बलिल बचन ॥३६२॥
सभार ईश्वर कृष्ण-जनक सभार । ब्रह्मा-शिवो करेन याँहार अधिकार ॥३६३॥
कर्ता हर्ता रक्षिता सभार नारायण । निःसन्देह भज गिया ताँहार चरण ॥३६४॥
धर्म्म ज्ञान पुण्य कीर्ति ऐश्वर्य विरक्ति । आत्म-श्रेष्ठ मध्यम याँहार यत शक्ति ॥३६५॥

कुतूहल पूर्वक मैं आज से अपने वक्षस्थल पर नित्य धारण करूँगा ॥ ३४८ ॥ मैंने अपने वक्षस्थल में लक्ष्मी सहित स्थान दे दिया जिसे वेद में श्रीवत्सलाञ्छन नाम से कहेंगे ॥ ३४९ ॥ विष्णु के वाक्यों को सुनकर तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह से परे विनय व्यवहार को देखकर महर्षि भृगु चमत्कार को प्राप्त हुए और लज्जित होकर फिर मस्तक नहीं उठाया ॥ ३५०-३५१ ॥ जो कुछ किया वह तो उनका कर्म नहीं था यह तो केवल आवेश का कर्म था यही निश्चयपूर्वक जानो ॥ ३५२ ॥ भृगुजी बाह्य ज्ञान प्राप्त होने पर प्रीति व श्रद्धा को देखकर भक्तिरस में पूर्ण होकर नाचने लगे ॥ ३५३ ॥ ब्रह्मा के पुत्र हास्य, कम्प, प्रस्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुंकार आदि भक्तिरस के लक्षणों से मग्न हो गये ॥ ३५४ ॥ तथा सब के ईश्वर कृष्ण हैं व सब के जीवन हैं यह सत्य है. भृगुजी इस प्रकार कहकर नाचने लगे ॥ ३५५ ॥ भृगुजी कृष्ण का शान्त विनय व्यवहार रूप विप्र भक्ति को देखकर जो और किसी में सम्भव नहीं है उस भक्ति से जड़ हो गये तथा मुख से वचन नहीं आते थे नेत्रों से केवल आनन्दाश्रु धारा बह रही थी ॥ ३५६-३५७ ॥ भृगुजी सब प्रकार से ईश्वर के चरणों में देह को समर्पण करके फिर सभा में पहुँचे ॥३५८॥ भृगुजी को देखकर सब लोग अपार आनन्द को प्राप्त हुए और बोले भृगुजी कहो किसका कैसा व्यवहार देखा ॥ ३५९ ॥ तुम जो कहोगे वह सब को मान्य व प्रमाण होगा तब पीछे से भगवान् भृगु ने सब कह सुनाया ॥३६०॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीनों के सब व्यवहार को कहकर पीछे से यह सार रूप कहा कि ॥ ३६१ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथ नारायण ही सब से श्रेष्ठ हैं यह सत्य है ३, बस यही वचन कहे ॥ ३६२ ॥ कृष्णचन्द्र ही सब के ईश्वर हैं व सब के पिता हैं और ब्रह्मा व शिव भी जिनके अधिकार को मानते हैं॥३६३॥सब के कर्त्ता-हर्त्ता तथा पालक नारायण ही हैं,

सकल कृष्णेर, इहा जानिह निश्चय । अतएव गाओ भज' कृष्णेर विजय" ॥३६६॥
सेइ प्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्य भगवान् । कीर्तन विहारे हइयाछेन विद्यमान ॥३६७॥
भृगुर वचन शुनि सब ऋषिगण । निःसन्देह हैला-'सर्वश्रेष्ठ नारायण ॥३६८॥
भृगुरे पूजिया बोले सब ऋषिगण । "संशय छिण्डिया तुमि भाल कैला मन" ।३६९॥
कृष्णभक्ति सभे लइलेन दृढ़-मने । भक्तरूपे ब्रह्मा-शिवो पूजेन यतने ॥३७०॥
सिद्ध वैष्णवेर येन विषम व्यभार । कहिलाङ् इहा बूझिवारे शक्तिकार ॥३७१॥
परीक्षिते कर्म्म किना छिल किछु आर । तार लागि करिलेन चरण प्रहार ॥३७२॥
सृष्टि कर्ता भृगुदेव याँर अनुग्रहे । कि साहसे चरण दिलेन से हृदये ॥३७३॥
अबोध अगम्य अधिकारीर व्यभार । इहा वइ सिद्धान्त ना देखि किछु आर ॥३७४॥
मूले कृष्ण प्रवेशिया भृगु हृदयते । कराइला, भक्तिर महिमा प्रकाशिते ॥३७५॥
ज्ञान पूर्व भृगुर ए कर्म्म कभू नय । कृष्ण बाढ़ायेन अधिकारी-भक्त-जय ॥३७६॥
विरञ्चि शङ्कर बाढ़ाइते कृष्ण जय । भृगुरे हइला क्रुद्ध देखाइया भय ॥३७७॥
भक्त-सब येन गाय नित्य कृष्ण जय । कृष्ण बाढ़ायेन भक्तजय अतिशय ॥३७८॥
अधिकारि वैष्णवेर ना बुझि व्यभार । ये जन निन्दये, तार नाहिक निस्तार ॥३७९॥

अतः निःसन्देह उन्हीं के ही चरणों को भजो ॥ ३६४ ॥ धर्म, ज्ञान, पुण्य, कीर्ति, ऐश्वर्य, विरक्ति आत्मा की श्रेष्ठता व मध्यम रूप जिसमें जितनी शक्ति है, वह सब कृष्ण की हैं ऐसा निश्चय जानो अतएव कृष्ण के ही चरित्रों का गान व भजन करो ॥३६५-३६६॥ वे ही श्रीकृष्ण प्रभु निश्चय भगवान् चैतन्य रूप में विहार करने के लिये विद्यमान हुए हैं ॥ ३६७ ॥ भृगु के वचन सुनकर सब ऋषिगण सन्देह रहित हो गये और निश्चित समझ लिया कि नारायण ही सब में श्रेष्ठ हैं ॥ ३६८ ॥ भृगु का पूजन करके सब ऋषियों ने कहा तुमने हमारा संशय दूर करके स्वच्छ मन कर दिया ॥ ३६९ ॥ सब मुनियों ने दृढ़ मन से कृष्ण-भक्ति को ग्रहण कर लिया व यत्नपूर्वक भक्तरूप में ब्रह्मा व शिव को भी पूजने लगे ॥ ३७० ॥ सिद्ध वैष्णवों के विषम व्यवहार का वर्णन किया है इसे समझने की और किस में सामर्थ्य है ? ॥३७१॥ क्या परीक्षा करने के लिये कुछ कर्म समझ में नहीं आया तभी उसके लिये चरण प्रहार किया था ॥ ३७२ ॥ भृगुदेव ने सृष्टि-कर्त्ता के अनुग्रह से ही ऐसा किया था और किसका साहस है जो उन (भगवान्) के हृदय पर चरण प्रहार करे ॥३७३॥ अधिकारियों के व्यवहार बुद्धि से परे व अगम्य होते हैं-इसके अतिरिक्त और कुछ भी सिद्धान्त समझ में नहीं आता ॥ ३७४ ॥ वास्तव में कृष्णचन्द्र ने ही भृगु के हृदय में प्रवेश करके भक्ति की महिमा प्रकाश करने के लिये ही ऐसा कराया था ॥ ३७५ ॥ यह कर्म भृगु का ज्ञानपूर्वक कभी नहीं है,केवल कृष्ण ने ही अधिकारी भक्त की जय को बढ़ावा दिया था ॥ ३७६ ॥ तथा ब्रह्मा व शिव भी कृष्ण की जय बढ़ाने के निमित्त भृगु को भय दिखाते हुए क्रोधित हुए थे ॥ ३७७ ॥ जिस प्रकार भक्त नित्य कृष्ण की जय जय कार गाते हैं, वैसे ही कृष्णचन्द्र भी अतिशय रूप से भक्तों की जय को बढ़ाते हैं ॥ ३७८ ॥ अतः अधिकारी वैष्णवों के व्यवहार को बिना समझे जो निन्दा करते हैं उनका निस्तार नहीं होता ॥ ३७९ ॥

अधम जनेर ये आचार येन धर्म । अधिकारि वैष्णवेओ करे सेइ कर्म ॥३८०॥
कृष्ण-कृपाये से इहा जानिबारे पारे । ए सब सङ्कटे केहो मरे केहो तरे' ॥३८१॥
सबे इथे देखि एक महा प्रतिकार । सभारे करिब स्तुति विनय- व्यभार ॥३८२॥
अज्ञ हइ लइबेक कृष्णेर शरण । सावधाने शुनिबेक महान्त बचन ॥३८३॥
तबे कृष्ण तारे देन हेन दिव्य-मति । सर्वत्र निस्तार पाय, ना ठेकये कति ॥३८४॥
भक्ति करि ये शुने चैतन्य-अवतार । सेइ सब जन सुखे पाइब निस्तार ॥३८५॥
श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान ॥३८६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे अद्वैतमहिमादिवर्णनं नाम
दशमोऽध्याय: ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

जय जय गौरचन्द्र श्रीवत्स लाञ्छन । जय शचीगर्भरत्न धर्म सनातन ॥१॥
जय सङ्कीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल । जय शिष्ट जन प्रिय जय दुष्ट काल ॥२॥
भक्तगोष्ठी सहित गौराङ्ग जय जय । शुनिले चैतन्य कथा भक्ति लभ्य हय ॥३॥
हेन मते वैकुठ नायक न्यासिरूपे । विहरेन भक्तगोष्ठी लइया कौतुके ॥४॥
एक दिन वसिया आछेन प्रभु सुखे । हेन काले श्रीअद्वैत आइला सम्मुखे ॥५॥
वसिलेन अद्वैत प्रभुरे नमस्करि । हासि अद्वैतेरे जिज्ञासेन गौर हरि ॥६॥
सन्तोषे बोलेन प्रभु 'कहत आचार्य । कोथा हैते आइला, करिला कोन् कार्य' ॥७॥

अधमजनों के जैसे आचार धर्म हैं, अधिकारी वैष्णव भी उसी प्रकार कर्म करते हैं ॥३८०॥ परन्तु इन कर्मों को कृष्ण की कृपा से ही जान पाते हैं ऐसे संकट में कोई मर जाते है तो कोई तर जाते हैं ॥ ३८१ ॥ इन सब में एक श्रेष्ठ प्रतिकार दृष्टिगोचर होता है कि सब भक्तों के चरणों में विनयपूर्वक सत्य व्यवहार से स्तुति करें ॥ ३८२ ॥ अज्ञ बन कर कृष्ण की शरण ग्रहण करें और सावधानी से महानुभावों के वचनों को सुने ॥ ३८३ ॥ तब कृष्णचन्द्र उसको ऐसी दिव्य मति देते हैं, जिससे सब जगह उसका निस्तार होता है तथा कहीं भी ठोकर नहीं खाता ॥ ३८४ ॥ जो भक्ति करके श्रीचैतन्यचन्द्र अवतार की कथा सुनेंगे वे सब लोग सुखपूर्वक निस्तार को प्राप्त होंगे ॥ ३८५ ॥ श्रीवृन्दावनदास (ग्रन्थकार) श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र को जानकर हृदय में धारण करके उनके चरण युगलों की महिमा गान करता है ॥३८६॥

सुन्दर श्रीवत्स चिन्हधारी गौरचन्द्र की जय हो, धर्म सनातन व शची गर्भ सागरोत्पन्न रत्न रूप प्रभु की जय हो ॥ १ ॥ संकीर्तन प्रिय श्रीगौरगोपाल प्रभु की जय हो, साधुजनों के प्यारे व दुष्टों के कालरूप प्रभु की जय हो ॥ २ ॥ भक्तगोष्ठी सहित श्रीगौराङ्ग प्रभु की जय हो श्रीचैतन्य कथा सुनने से भक्ति लाभ होती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार न्यासीरूप में वैकुण्ठनायक (गौर) भक्तमण्डली को लेकर कौतुक से विहार करते हैं ॥४॥ एक दिन श्रीप्रभु गौरचन्द्र प्रेमसुख से बैठे हुए थे, ऐसे समय में श्रीअद्वैत प्रभु सामने आये ॥ ५ ॥ तथा श्रीअद्वैत श्रीगौरचन्द्र को नमस्कार करके बैठ गये तब हँसकर श्रीगौरहरि ने श्रीअद्वैत से पूछा ॥ ६ ॥ सन्तुष्ट

अद्वैत बोलेन 'देखिलाङ जगन्नाथ । तबे आइलाङ एइ तोमार साक्षात्' ॥८॥
प्रभु बोले "जगन्नाथ श्रीमुख देखिया । तबे आर कि करिला कह देखि ताहा" ॥९॥
अद्वैत बोलेन 'आगे देखि जगन्नाथ । तबे करिलाङ प्रदक्षिण पाँच सात' ॥१०॥
'प्रदक्षिण' शुनि प्रभु हासिते लागिला । हासि बोले प्रभु 'तुमि हारिला हारिला' ॥११॥
आचार्य बोलेन "कि सामग्री हारिबारे । लक्षण देखाच, तबे जिनिह आमारे" ॥१२॥
प्रभु बोले "सामग्री शुनह हारिबार । तुमि ये करिला प्रदक्षिण व्यवहार ॥१३॥
यत-क्षण तुमि पृष्ठ दिगेरे चलिला । तत-क्षण तोमार ये दर्शन नहिला ॥१४॥
आमि यत-क्षण धरि देखि जगन्नाथ । आमार लोचन आर ना जाय कोथात ॥१५॥
कि दक्षिणे किवा बामे किवा प्रदक्षिणे । आर नाहि देखों जगन्नाथ-मुख बिने" ॥१६॥
करजोड़ करि बोले आचार्य गोसाञि । ए-रूपे सकल हारि तोमार से ठाञि ॥१७॥
ए कथार अधिकारी आर त्रिभुवने । सत्य कहिलाङ एइ नाहि तोमा' बिने ॥१८॥
तुमि से इहार प्रभु एक अधिकारी । ए कथाय तोमारे से मात्र आमि हारि ॥१९॥
शुनिञा हासेन सर्व वैष्णवमण्डल । 'हरि' बलि उठिल मङ्गल कोलाहल ॥२०॥
एइमत प्रभुर विचित्र सर्वकथा । अद्वैतेर अति प्रीत करेन सवथा ॥२१॥
एक दिन गदाधरदेव प्रभु स्थाने । कहिलेन पूर्व-मन्त्र दीक्षार कारणे ॥२२॥
"इष्टमन्त्र आमि ये कहिलूँ कारो प्रति । सेइ हैते आमार ना स्फुरे भाल मति ॥२३॥
सेइ मन्त्र तुमि मोरे कह पुनर्वार । तबे मन-प्रसन्नता हइब आमार ॥२४॥

होकर श्रीप्रभु ने पूछा "श्री आचार्य कहो कहाँ से आये हो क्या काम कर आये ? ॥ ७ ॥ सुनकर श्रीअद्वैत कहा जगन्नाथ के दर्शन करके पीछे अब तुम्हारा साक्षात् करने को आया हूँ ॥ ८ ॥ श्रीप्रभु ने पुनः पूछा कि जगन्नाथ का श्रीमुख दर्शन करने उपरान्त क्या किया ? सो कहो ॥ ९ ॥ श्रीअद्वैतजी ने कहा पहिले जगन्नाथ दर्शन किये तब पीछे पाँच-सात प्रदक्षिणा की ॥ १० ॥ प्रदक्षिणा की सुनकर श्रीप्रभु गौरचन्द्र हँसने लगे तथा हँसते २ बोले "तुम हार गये हार गये" ॥ ११ ॥ श्रीअद्वैताचार्य ने कहा "हारने की क्या बात है ? लक्षण दिखाओ तब मुझे जीत लेना" ॥१२॥ श्रीप्रभु ने कहा हारने की बात सुनो ! तुमने जो प्रदक्षिणा का उपयोग किया ॥ १३ ॥ उसमें जितने तुम पीछे को चले उतने समय तक तुम्हें दर्शन नहीं हुए ॥ १४ ॥ मैं जितने समय तक जगन्नाथ के दर्शन करता हूँ उस समय में मेरे नेत्र अन्यत्र नहीं देखते ॥ १५ ॥ तथा क्या दाईं ओर क्या बाईं ओर क्या प्रदक्षिणा में मैं जगन्नाथ के मुख देखे बिना नहीं रहता ॥ १६ ॥ श्री-अद्वैताचार्य ने हाथ जोड़कर कहा प्रभो ! इस प्रकार आप से सब हार जाँयगे ॥ १७ ॥ इस बात का अधिकारी तो तीनों लोकों में आपके अतिरिक्त कोई नहीं है, मैं यह सत्य ३ कहता हूँ ॥ १८ ॥ प्रभो इसके अधिकारी तो एक मात्र आप ही हो, केवल इस बात में मैं आप से हार गया ॥१९॥ सुनकर सब वैष्णव हँस पड़े और हरि २ ध्वनि के साथ मङ्गल कोलाहल हो उठा है॥२०॥ इस प्रकार प्रभु की सभी कथा विचित्र हैं आप अद्वैत के प्रति सर्वथा अत्यन्त प्रीति करते थे ॥ २१ ॥ एक दिन गदाधर प्रभु ने श्रीगौरचन्द्र से पहिली मंत्र दीक्षा का कारण कहा ॥ २२ ॥ मैंने अन्य किसी के प्रति जो इष्ट मन्त्र कह दिया है उसी कारण से मुझ में

प्रभु बोले "तोमार ये उपदेष्टा आछे। सावधान-तथा अपराध हय पाछे ॥२५॥
मंत्रेर कि दाय प्राणो आमार तोमार। उपदेष्टा थाकिते ना हय व्यवहार" ॥२६॥
गदाधर बोले "तिंहो ना आछेन एथा। तान परिवर्तेर तुमि कराह सर्वथा" ॥२७॥
प्रभु बोले "तोमार ये गुरु विद्यानिधि। अनायासे ताहाने आनितेछेन विधि" ॥२८॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि-जानेन सकल। "गदाधर विद्यानिधि आइला उत्कल ॥२९॥
एथाइ देखिवा दिन-दशेर भितरे। आइसेन केवल आमारे देखिवारे ॥३०॥
निरवधि विद्यानिधि हय मोर मने। बूझिलाङ तुमि आकर्षिया आन ताने" ॥३१॥
एइमत प्रभु प्रिय-गदाधर-सङ्गे। तान मुखे भागवत शुनि थाके रङ्गे ॥३२॥
गदाधर पढ़ेन सम्मुखे भागवत। शुनिञा प्रकाशे प्रभु कृष्णभाव यत ॥३३॥
प्रह्लाद चरित्र आर ध्रुवेर चरित्र। शतावृत्ति करिया शुनेन सावहित ॥३४॥
आर कार्ये प्रभुर नाहिक अवसर। नाम गुण बोलेन शुनेन निरन्तर ॥३५॥
भागवत-पाठ गदाधरेर विषय। दामोदर स्वरूपेर कीर्तन विषय ॥३६॥
एकेश्वर दामोदर स्वरूप गुण गाय। विह्वल हइया नाचे श्रीगौराङ्ग राय ॥३७॥
अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार। यत किछु आछे प्रेम भक्तिर विकार ॥३८॥
मूर्तिमन्त सभे थाके ईश्वरेर स्थाने। नाचेन चैतन्य चन्द्र इँहा-सभा'-सने ॥३९॥
दामोदर स्वरूपेर उच्चसङ्कीर्तन। शुनिले ना थाके बाह्य नाचे सेइक्षण ॥४०॥

उत्तम बुद्धि स्फुरन नहीं होता है ॥ २३ ॥ अतः उस मन्त्र को आप मुझ से पुनर्वार कहो तब ही मेरे मनमें प्रसन्नता होगी ॥ २४ ॥ श्रीप्रभु ने कहा तुम्हारे उपदेष्टा गुरु तो हैं देखो सावधान रहना ऐसा करने से पीछे अपराध होगा ॥ २५ ॥ मन्त्र की तो क्या बात है मेरे प्राण भी तुम्हारे ही हैं, परन्तु उपदेष्टा के रहने पर ऐसा व्यवहार नहीं होता है॥२६॥श्रीगदाधरजी ने कहा वे भी यहाँ नहीं हैं, अतः उनके बदले आप ही सर्वथा उपदेश करो ॥२७॥ श्रीप्रभु ने कहा तुम्हारे जो पुण्डरीक विद्यानिधि गुरु है उनको विधि (भावी) अनायास ही ला रही है ॥ २८ ॥ सर्वज्ञों में शिरोमणि सब जानते थे अतः बोले हे गदाधर ! विद्यानिधिजी उत्कल देश में आ गये हैं ॥ २९ ॥ उनको दश दिन के भीतर यहीं देखोगे केवल मेरे दर्शन के लिये ही आ रहे हैं ॥३०॥ मेरे मन में निरन्तर विद्यानिधि से मिलने की इच्छा होती थी इसलिये जान पड़ता है तुमने उन्हें आकर्षण किया है॥३१॥इस प्रकार श्रीप्रभु प्रिय गदाधर के साथ उनके मुख से भागवत सुनते हुए आनन्दपूर्वक रहते थे ॥ ३२ ॥ श्रीगदाधरजी भागवत पाठ करते थे तथा श्रीप्रभु सुनकर उसमें जितना कृष्ण-भाव का रस होता उसे कहते जाते थे ॥ ३३ ॥ श्रीप्रह्लाद चरित्र व श्रीध्रुव चरित्र को सौ-सौ वार आवृत्ति कराकर एकाग्र मन से सुनते थे ॥ ३४ ॥ तथा अन्य कार्य के लिये श्रीप्रभु को अवसर ही नहीं था निरन्तर ही कृष्ण नाम व यश को कहते व सुनते थे ॥ ३५ ॥ श्रीगदाधरजी का विषय भागवत पाठ करना था। तथा श्रीस्वरूप दामोदर का विषय कीर्तन करना था ॥ ३६ ॥ अकेले श्रीदामोदरस्वरूपजी गुण-गान करते तथा श्रीगौराङ्ग प्रभु विह्वल होकर नाचते थे ॥ ३७ ॥ अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुङ्कार आदि जो कुछ प्रेम-भक्ति के विकार होते हैं, वे सब मूर्तिमन्त होकर श्रीगौरचन्द्र के शरीर में रहते थे माना प्रभु सबके साथ ही नाचते थे ॥३८-३९॥

सन्यासि-पार्षद यत ईश्वरेर हय । दामोदरस्वरूप-समान केहो नय ॥४१॥
यत प्रीत ईश्वरेर पुरी गोसाञिरे । दामोदरस्वरूपेरे तत प्रीत करे ॥४२॥
दामोदरस्वरूप-सङ्गीत रसमय । याँर ध्वनि श्रवणे प्रभुर नृत्य हय ॥४३॥
अलक्षित रूप-केहो चिनिते ना पारे । कापटिर रूप येन बुलेन नगरे ॥४४॥
कीर्तन करिते येन तुम्बुरु नारद । एका प्रभु नाचायेन-कि आर सम्पद ॥४५॥
सन्यासीर मध्ये ईश्वरेर प्रिय पात्र । आर नाहि, एक पुरी गोसाञि से मात्र ॥४६॥
दामोदरस्वरूप परमानन्द पुरी । सन्यासि-पार्षदे एइ दुइ अधिकारी ॥४७॥
निरवधि निकटे थाकेन दुइजन । प्रभुर सन्यासे करे दण्डेर ग्रहण ॥४८॥
पुरी ध्यान पर, दामोदरेर कीर्तन । न्यासि-रूपे न्यासि-देहे बाहु दुइजन ॥४९॥
अहर्निश गौरचन्द्र संकीर्तन रङ्गे । विहरेन दामोदर स्वरूपेर सङ्गे ॥५०॥
कि शयने कि भोजने किबा पर्य्यटने । दामोदर प्रभु ना छाड़ेन कोनक्षणे ॥५१॥
पूर्वाश्रमे पुरुषोत्तमाचार्य नाम तान । प्रिय सखा पुण्डरीक विद्यानिधि-नाम ॥५२॥
पथे चलितेओ प्रभु दामोदर-गाने । नाचेन विह्वल हैया, पथ नाहि जाने ॥५३॥
एकेश्वर दामोदरस्वरूप-संहति । प्रभु से आनन्दे पड़े, ना जानेन कति ॥५४॥
किबा जल, किबा स्थल, किबा वन डाल । किछु ना जानेन प्रभु, गर्जेन विशाल ॥५५॥
एकेश्वर दामोदर कीर्तन करेन । प्रभुरेओ वने डाले पड़िते धरेन ॥५६॥

श्रीदामोदरस्वरूप का उच्च संकीर्तन सुनकर वाह्य ज्ञान नहीं रहता था और उसी क्षण नाचने लगते थे॥४०॥ श्रीमहाप्रभु के और जितने सन्यासी पार्षद थे उनमें श्रीदामोदरस्वरूप के समान कोई नहीं था ॥ ४१ ॥ ईश्वर श्रीगौरचन्द्र की जितनी प्रीति परमानन्दपुरी के ऊपर थी उतनी ही श्रीदामोदरस्वरूप पर भी थी ॥४२॥ श्रीदामोदरस्वरूप संगीत की रसमय मूर्ति थे जिनकी ध्वनि के सुनते ही श्री प्रभु का नृत्य होने लगता था ॥४३॥तथा अलक्षित रूप होने से कोई नहीं पहिचानता था वे कपट वेश करके नगर में भ्रमण करते थे॥४४॥ तुम्बुरु अथवा नारदजी को तरह कीर्तन करते थे तथा अकेले ही प्रभु को नचाते थे,उससे उनको सम्पत्ति क्या चाहिये था ? ॥४५॥ सन्यासियों में श्रीगौरचन्द्र का प्रिय पात्र दूसरा नहीं था, एक मात्र पुरी गुसाँई थे॥४६॥ श्रीदामोदरस्वरूप व श्रीपरमानन्दपुरी केवल यही दो सन्यासी पार्षदों में अधिकारी भक्त थे ॥ ४७ ॥ दोनों जन निरन्तर समीप में रहते थे प्रभु के सन्यास लेने पर उन दोनों ने उनका दण्ड ग्रहण किया था॥४८॥श्रीपुरी ध्यान परायण थे तथा श्रीदामोदर प्रसिद्ध कीर्तनियाँ थे सन्यासी रूप में महाप्रभु के सन्यासी-देह की दोनों जन भुजा रूप ही थे ॥ ४९ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र दिन रात संकीर्तन रंग से श्रीदामोदरस्वरूप के साथ बिहार करते थे॥५०॥क्या शयन,क्या भोजन,क्या पर्यटन किसी क्षण में श्रीदामोदर श्रीप्रभु को छोड़ते नहीं थे॥५१॥ गृहस्थाश्रम में उनका नाम पुरुषोत्तम आचार्य था तथा वे पुण्डरीक विद्यानिधि के प्रिय सखा थे मार्ग चलने में भी श्रीदामोदर के गान पर प्रभु विह्वल होकर नाचने लगते और मार्ग का भान नहीं रहता था॥५२-५३॥ अकेले श्रीदामोदरस्वरूप के साथ श्रीमहाप्रभु ऐसे आनन्द मग्न हो जाते थे कि फिर किधर जाना है या नहीं इसका ध्यान नहीं रहता था ॥ ५४ ॥ चाहे जल हो, थल हो अथवा वन व शाखा हो उन्हें कुछ भी ज्ञान

दामोदरस्वरूपेर भाग्येर ये सीमा। दामोदरस्वरूप से ताहार उपमा ॥५७॥
एक दिन महाप्रभु आविष्ट हइया। पड़िला कूपेर माझे आछाड़ खाइया ॥५८॥
देखिया अद्वैत-आदि सम्मोह पाइया। क्रन्दन करेन सभे शिरे हाथ दिया ॥५९॥
किछु ना जानेन प्रभु प्रेम-भक्ति रसे। बालकेर प्राय येन कूपे पड़ि भासे ॥६०॥
सेइक्षणे कूप हैल नवनीत मय। प्रभुर श्रीअङ्गे किछु क्षत नाहि हय ॥६१॥
ए कोन् अद्भुत याँर भक्तिर प्रभावे। वैष्णव नाचिते अङ्गे कन्टक ना लागे ॥६२॥
तबे अद्वैतादि मेलि सब भक्त गणे। तुलिलेन प्रभुरे धरिया कथोक्षणे ॥६३॥
पड़िला ये कूपे प्रभु ताहा नाहि जाने। 'कि बोल कि कथा' प्रभु जिज्ञासे आपने ॥६४॥
बाह्य ना जानेन प्रभु प्रेमभक्ति रसे। असर्वज्ञ प्राय प्रभु सभारे जिज्ञासे ॥६५॥
श्रीमुखेर शुनि अति अमृत-वचन। आनन्दे भासेन अद्वैतादि भक्तगण ॥६६॥
एइ मत भक्तिरसे ईश्वर विहरे। विद्यानिधि आइलेन जानिला अन्तरे ॥६७॥
चित्ते मात्र करिते ईश्वर सेइक्षणे। विद्यानिधि आसिया दिलेन दरशने ॥६८॥
विद्यानिधि देखि प्रभु हासिते लागिला। 'बाप आइला बाप आइला' बलिते लागिला॥६९॥
प्रेमनिधि प्रेमे हैया आनन्दे विह्वल। पूर्ण हैल हृदयेर सकल मङ्गल ॥७०॥
श्रीभक्तवत्सल गौरचन्द्र नारायण। प्रेमनिधि वक्षे करि करेन क्रन्दन ॥७१॥
सकल वैष्णववृन्द कान्दि चारि भिते। वैकुण्ठस्वरूप सुख मिलिला साक्षाते ॥७२॥

नहीं रहता–केवल गर्जते ही खूब जोर में थे ॥ ५५ ॥ श्रीदामोदर अकेले कीर्तन करते तथा श्रीप्रभु को वन व शाखाओं में गिरते तो पकड़ लेते थे ॥ ५६ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप के भाग्य की यह सीमा है उनकी उपमा वही दामोदरस्वरूप ही हैं ॥ ५७ ॥ एक दिन महाप्रभु भावाविष्ट होकर पछाड़ खाकर एक कूए में गिर पड़े ॥ ५८ ॥ अद्वैत आदि भक्त देखते ही मोह को प्राप्त होकर मस्तक पर हाथ मारकर सब रोने लगे ॥ ५९ ॥ श्रीप्रभु को प्रेमभक्ति रस से कुछ ज्ञान नहीं पड़ा तथा कूए में गिरकर बालक की तरह भासने लगे ॥ ६० ॥ कूआ तत्क्षण लौनी (घी) के तुल्य कोमल हो गया अतः श्रीप्रभु के श्रीअङ्ग में कुछ भी क्षत (घाव) नहीं हुआ ॥ ६१ ॥ यह कौन अद्भुत बात है ? देखो जिसकी भक्ति के प्रभाव से वैष्णवों के नाचते समय अङ्ग में काँटे नहीं लगते ॥ ६२ ॥ तब श्रीअद्वैत आदि सब भक्तवृन्दों ने मिलकर कुछ क्षण में श्रीप्रभु को पकड़ कर उठा लिया ॥ ६३ ॥ कुए में गिर पड़े यह श्रीप्रभु को उसका ज्ञान नहीं है अतः आप पूछते थे कि क्या बात है–बताओ ? ॥ ६४ ॥ श्रीप्रभु को प्रेम-भक्ति रस में वाह्य ज्ञान नहीं रहता और अज्ञान की भाँति सबसे पूछते ही थे ॥६५॥ श्रीमुख के अत्यन्त अमृतमय वचन सुनकर श्रीअद्वैतादि भक्तवृन्द आनन्द सागर में डूब जाते थे ॥६६॥ श्रीप्रभु इस प्रकार भक्तिरस में विहार कर रहे थे तथा विद्यानिधि आ गये यह मन में जान गये ॥६७॥ श्रीमहाप्रभु के मन में विचार मात्र करते ही उसी क्षण श्रीविद्यानिधि ने आकर दर्शन दिये॥६८॥ श्रीप्रभु विद्यानिधि को देखकर हँसे और "बाप आये २" कहने लगे ॥ ६९ ॥ श्रीप्रेमनिधि (विद्यानिधि) भी प्रेमानन्द में विह्वल हो रहे थे तथा हृदय के सब मङ्गल पूर्ण हो गये ॥ ७० ॥ श्रीभक्तवत्सल नारायण

ईश्वर सहिते यत आछे भक्तगण । प्रेमनिधि प्रति प्रेम बाढ़े अनुक्षण ॥७३॥
दामोदरस्वरूप ताहान पूर्व सखा । चैतन्येर अग्रे दुइजने हैल देखा ॥७४॥
दुइ जने चाहेन दुँहार पदधूलि । दुँहे धराधरि ठेलाठेलि फेलाफेलि ॥७५॥
केहो कारे ना पारेन, दुँहे महाबली । करायेन हासेन गौराङ्ग कुतूहली ॥७६॥
तबे वाह्य पाइ प्रभु विद्यानिधि-प्रति । 'कथोदिन नीलाचले तुमि कर स्थिति' ॥७७॥
शुनि प्रेमनिधि महासन्तोष हइला । भाग्य हेन मानि प्रभु-निकटे रहिला ॥७८॥
गदाधर देवो इष्ट मन्त्र पुनर्वार । प्रेमनिधि स्थाने प्रेमे कैलेन स्वीकार ॥७९॥
आर कि कहिब प्रेमनिधिर महिमा । याँर शिष्य गदाधर एइ प्रेम सीमा ॥८०॥
याँर कीर्ति बाखाने अद्वैत श्रीनिवास । याँर कीर्ति बोलेन मुरारि हरिदास ॥८१॥
हेन नाहि वैष्णव ये ताने ना बाखाने । पुण्डरीको सर्वभक्त काय-वाक्य-मने ॥८२॥
अहंकार तान देहे नाहि तिलमात्र । ना बुझि कि अद्भुत चैतन्य कृपापात्र ॥८३॥
ये रूप कृष्णेर प्रियपात्र विद्यानिधि । गदाधर-श्रीमुखेर कथा किछु लिखि ॥८४॥
विद्यानिधि राखि प्रभु आपन निकटे । वासा दिला यमेश्वरे-समुद्रेर तटे ॥८५॥
नीलाचले रहिया देखेन जगन्नाथ । दामोदरस्वरूपेर बड़ प्रेम पात्र ॥८६॥
दुइ जने जगन्नाथ देखे एक सङ्गे । अन्योन्ये थाकेन कृष्णरस कथा रङ्गे ॥८७॥

गौरचन्द्र ने प्रेमनिधि को वक्षस्थल से लगाकर क्रन्दन किया ॥ ७१ ॥ सब वैष्णव भी चारों ओर रोने लगे-वैकुण्ठ का सुख साक्षात् मिल रहा था ॥ ७२ ॥ श्रीमहाप्रभु के साथ जितने भक्तवृन्द थे उन्हें प्रेमनिधि के प्रति अनुक्षण प्रेम बढ़ रहा था ॥ ७३ ॥ दामोदरस्वरूप उनके पहिले के सखा थे श्रीचैतन्यदेव के आगे ही दोनों की भेंट हुई थी ॥ ७४ ॥ दोनों ही एक दूसरे की पदधूलि लेना चाहते थे इस कारण दोनों में पकड़ा-पकड़ि ठेलाठेलि फेंकाफेंकि हुई ॥ ७५ ॥ कोई किसी को पकड़ नहीं पाता कारण दोनों ही बड़े बली थे, कुतूहली गौराङ्ग ऐसा कुतूहल कराकर हँस रहे थे ॥ ७६ ॥ उसके पीछे श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने वाह्य ज्ञान पाकर श्रीविद्यानिधि से कहा कि तुम कुछ दिन नीलाचल वास करो ॥ ७७ ॥ श्रीप्रेमनिधि सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए और अहोभाग्य मानकर श्रीप्रभु गौरचन्द्र के निकट रहने लगे ॥ ७८ ॥ श्रीगदाधरदेव ने श्रीप्रेमनिधि से पुनर्वार इष्ट मन्त्र को प्रेम से स्वीकार किया ॥ ७९ ॥ प्रेमनिधि की महिमा और क्या कहैं ? देखो गदाधर जिनके शिष्य हैं, यही प्रेम की सीमा है ॥ ८० ॥ जिसकी कीर्ति की श्रीअद्वैत व श्रीनिवास व्याख्या करते थे तथा श्रीमुरारी गुप्त व श्रीहरिदास जिनकी कीर्ति का वर्णन करते थे ॥ ८१ ॥ ऐसा कोई वैष्णव नहीं था जा उनकी प्रशंसा न करता हो और पुण्डरीक विद्यानिधि भी शरीर-वाणी मन से सब भक्तों की सेवा करते थे ॥ ८२ ॥ तथा उनके देह में तिलमात्र भी अहंकार नहीं था और जान नहीं पड़ते थे कि श्रीचैतन्यदेव के कितने विलक्षण कृपापात्र थे ॥ ८३ ॥ श्रीविद्यानिधिजी श्रीगौरकृष्ण के प्रिय पात्र थे, यह कथा श्रीगदाधरजी के मुख से जो सुनी है उसमें से कुछ लिखता हूँ ॥ ८४ ॥ श्रीगौर प्रभु ने श्रीविद्यानिधि को अपने पास समुद्र के तट पर यमेश्वर नामक स्थान में ठहरने को स्थान दिया॥८५॥ विद्यानिधि नीलाचल में रहकर जगन्नाथ दर्शन करते थे आप दामोदरस्वरूप के बड़े प्रेमपात्र थे॥८६॥दोनों एक साथ जगन्नाथ-दर्शन करते और

यात्रा आसि वाजिल 'ओढन-षष्ठी' नाम । नया-वस्त्र परे जगन्नाथ भगवान् ॥८८॥
से दिन माण्डुया-वस्त्र परेन ईश्वरे । तान येइ इच्छा सेइ मत दासे करे ॥८९॥
श्रीगौरसुन्दरो लइ सर्व भक्तगण । आइला देखिते यात्रा श्रीवस्त्र-ओढन ॥९०॥
मृदङ्ग, मुहरि, शङ्ख, दुन्दुभि, काहाल । ढाक, दगड़, काढा, बाजये विशाल ॥९१॥
सेइ दिने नाना वस्त्र परेन अनन्त । षष्ठी हैते लागि रहे मकर-पर्यन्त ॥९२॥
वस्त्र लागि हइते लागिल रात्रि शेषे । भक्तगोष्ठीसह प्रभु देखि प्रेमे भासे ॥९३॥
आपनेइ उपासक, उपास्य आपने । के बुझे ताहान मन, तान कृपा बिने ॥९४॥
रसमय दासरूपे वसि योगासने । न्यासिरूपे भक्तियोग करे अनुक्षणे ॥९५॥
पट्ट-नेत-शुक्ल पीत नीलनाना वर्णे । दिव्य वस्त्र देन, मुक्ता रचित सुवर्णे ॥९६॥
वस्त्र लागि हैल देन पुष्प-अलङ्कार । पुष्पेर कङ्कण श्रीकिरीट पुष्पहार ॥९७॥
गन्ध पुष्प धूप दीप षोड़शोपचारे । पूजा करि भोग दिला विविध प्रकारे ॥९८॥
तबे प्रभु यात्रा देखि सब गोष्ठीसङ्गे । आइला वासाय प्रेमानन्द सुख रङ्गे ॥९९॥
वासाय विदाय दिला वैष्णव-सभेरे । विरले रहिला निजानन्दे एकेश्वरे ॥१००॥
यार ये वासाय सभे करिला गमन । विद्यानिधि दामोदर सङ्गे अनुक्षण ॥१०१॥
अन्योन्ये दुहाँर यतेक मनः कथा । निष्कपटे दुँहे कहे दुँहारे सर्वथा ॥१०२॥
माण्डुया- वसन ये धरिला जगन्नाथ । सन्देह जन्मिला विद्यानिधिर इहात ॥१०३॥

परस्पर श्रीकृष्ण प्रेमरस की कथाओं के रङ्ग में रहते थे ॥ ८७ ॥ ओढ़न षष्ठी नामक यात्रा जब आकर उपस्थित हुई उस दिन श्रीजगन्नाथ भगवान् नये वस्त्र धारण करने लगे॥ ८८ ॥ श्रीजगन्नाथ उस दिन मांड़ दिये हुए वस्त्र पहिनते थे अतः जैसी उनकी इच्छा हो दास भी उसी प्रकार करते हैं ॥ ८९ ॥ सब भक्तों को लेकर श्रीगौरसुन्दर भी शीत वस्त्र ओढ़ने के दिन की यात्रा के दर्शनों को गये॥९०॥मृदङ्ग, मुँहचङ्ग, शंख, दुँदुभि, नगाड़े, काहाल, दगड़, ढप व काढ़ा नाम के विशाल बाजे बज रहे थे ॥ ९१ ॥ श्रीअनन्तदेव उस दिन अनेक प्रकार के वस्त्र पहिनते हैं, यह उत्सव अगहन शुक्ला षष्ठी से माघ पूर्णिमा पर्य्यन्त रहता है ॥ ९२ ॥ अतः वस्त्र पहिराते २ रात्रि शेष होने लगी सो भक्तगोष्ठी सहित श्रीप्रभु गौरचन्द्र देखकर प्रेम में डूब गये ॥९३॥ स्वयं आप ही उपास्यदेव हैं और आप ही उपासक हैं अहो आपकी कृपा के बिना आपके मन को कौन समझ सकता है ? ॥ ९४ ॥ आप ही रसमय दारुरूप से योगापीठ पर विराजते थे और आप ही सन्यासी रूप से अनुक्षण भक्तियोग का आचरण करते थे ॥ ९५ ॥ मोती व सुवर्ण से रचित रेशमी व मखमल के दिव्य वस्त्र सफेद, पीत व नील आदि नाना वर्णों के पहिन रहे थे ॥ ९६ ॥ वस्त्र संलग्न होने पर फूलों के अलंकार कंकण किरीट, मुकुट व पुष्पहार पहिराये ॥ ९७ ॥ तथा गन्ध, फूल, धूप, दीप आदि षोड़शोपचार से पूजा करके विविध प्रकार के भोग दिये गये ॥ ९८ ॥ तब श्रीप्रभु सब मण्डली सहित यात्रा दर्शन करके प्रेमानन्द सुख-रङ्ग से निवास स्थान को आये ॥ ९९ ॥ श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने सब वैष्णवों को अपने २ स्थान के लिये विदा दी और आप एकान्त में अपने आनन्द में रहे ॥ ॥ १०० ॥ अपने २ निवास स्थान को सब ने गमन किया तथा दामोदरस्वरूप व विद्यानिधि तो प्रत्येक.क्षण संग ही रहते थे ॥ १०१ ॥ दोनों को जितनी मन की बातें

जिज्ञासिला दामोदर स्वरूपेर स्थान "मण्डेर कापड़ ईश्वरेरे देने केने ॥१०४॥
ए देशे तश्रुति स्मृति सकल प्रचुरे। तबे केने बिना धौत मण्ड़ वस्त्र परे?" ॥१०५॥
दामोदर स्वरूप कहेन "शुन कथा। देशा चारे इथे दोष ना लयेन एथा ॥१०६॥
श्रुति स्मृति ये जाने, से ना करे सर्वथा। ए यात्राय एइमत सर्वकाल एथा ॥१०७॥
ईश्वरेर इच्छा यदि ना थाके अन्तरे। तबे देख राजा केने निषेध ना करे ॥१०८॥
विद्यानिधि बोले "भाल, करुक ईश्वरे। ईश्वरेर ये कर्म्म, सेवके केने करे ॥१०९॥
पूजा-पाण्ड़ा पशुपाल पड़िछा वेहारा। अपवित्र-वस्त्र केने धरे वा इहारा ॥११०॥
जगन्नाथ-ईश्वर, सम्भवे' सब ताने। तान आचरण कि करिब सर्वजने ॥१११॥
मण्ड़वस्त्र-स्पर्शे हस्त धुइले से शुद्धि। इहा वा ना करे केने हइया सुबुद्धि ॥११२॥
राजपात्र अबुध ये इहा ना विचारे'। राजाओ माण्डुया-वस्त्र देन निज शिरे" ॥११३॥
दोमोदर स्वरूप बोलेन "शुन भाइ। हेन बुझि ओढ़न-यात्राय दोष नाइ ॥११४॥
परब्रह्म-जगन्नाथरूप-अवतार। विधि वा निषेध एथा ना करे विचार" ॥११५॥
विद्यानिधि बोले "भाइ शुन एक कथा। परंब्रह्म-जगन्नाथ विग्रह सर्वथा ॥११६॥
ताने दोष नाहि विधि निषेध लंघिले। ए-गुलाओ ब्रह्म हैल थाकि नीलाचले ॥११७॥
इहाराओ छाड़िलेक लोक व्यवहार। सभेइ हइल ब्रह्मरूप-अवतार" ॥११८॥
एत बलि सर्व पथे हासिया हासिया। जायेन येहेन हास्यावेश युक्त हैया ॥११९॥

थीं वे दोनों ही सर्वथा निष्कपटरूप से परस्पर में कहते थे ॥ १०२ ॥ जगन्नाथ ने जो मांड़युक्त वस्त्र धारण किये इसमें श्रीविद्यानिधि को सन्देह उत्पन्न हुआ ॥ १०३ ॥ अतः श्रीदामोदरस्वरूप से पूछा कि मांड़युक्त वस्त्र भगवान् को क्यों देते हैं? ॥ १०४ ॥ इस देश में तो श्रुति व स्मृति का विशेष प्रचार है तब बिना धुले माँड़युक्त वस्त्र क्यों पहिराते हैं? ॥ १०५ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप ने कहा "बात सुनो! इसमें यहाँ के देशाचार से दोष नहीं लेते हैं ॥ १०६ ॥ जो श्रुति स्मृति जानते हैं वे सर्वथा ऐसा नहीं करते हैं, परन्तु यहाँ तो इस यात्रा में सदा से इसी प्रकार होता है ॥ १०७ ॥ यदि भीतर में ईश्वर की इच्छा नहीं रहती तो देखो राजा निषेध क्यों नहीं करता? ॥ १०८ ॥ श्रीविद्यानिधि ने कहा अच्छा ईश्वर तो जो करें परन्तु ईश्वर का जो कर्म है उसको सेवक क्यों करते हैं? ॥ १०९ ॥ पुजारी, पण्डा, वेश-रचियता, तत्त्वावधायक (महापात्र) वेहारा (जलादि वहनकारी) ये लोग अपवित्र वस्त्र क्यों पहिरते हैं? ॥ ११० ॥ देखो जगन्नाथ तो ईश्वर हैं उनको सब सम्भव है, परन्तु अन्य सब लोग उनके आचरण क्यों करते है? ॥ १११ ॥ मण्डवस्त्र के स्पर्श करने से हाथ धोने पर शुद्धि होती है, न जाने सुबुद्धि होकर ऐसा क्यों करते हैं? ॥ ११२ ॥ जो राजपात्र हैं वे भी मूर्ख हैं, विचार नहीं करते? देखो राजा भी माण्डयुक्त वस्त्र अपने शिर पर दिये हुए हैं ॥ ११३ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप ने कहा "अरे ओ भाई! सुनो यों समझ में आती है कि ओढ़नयात्रा में इसका दोष नहीं है ॥११४॥ देखो जगन्नाथ रूप में परंब्रह्म ही अवतीर्ण है अतः यहाँ विधि-निषेध का विचार नहीं है॥११५॥ श्रीविद्यानिधि ने कहा दामोदर एक बात सुनो देखो जगन्नाथ विग्रह तो सर्वथा परमब्रह्म है ॥११६॥जगन्नाथ जी को विधिनिषेध के उल्लंघन करने से दोष नहीं है,क्या नीलाचल में रहने से यह सब भी ब्रह्म हो गये हैं

दुइ सखा हाथा हाथि करिया हासेन । जगन्नाथ दासेरेओ आचार दोषेन ॥१२०॥
सभे ना जानेन सर्व दासेर स्वभाव । कृष्ण से जानेन यार यत अनुराग ॥१२१॥
भ्रमो करायेन कृष्ण आपन-दासेरे । भ्रमच्छेदो करे पाछे सदय अन्तरे ॥१२२॥
भ्रम कराइला विद्यानिधिरे आपने । भ्रमच्छेद-कृपाओ शुनिवा एइक्षणे ॥१२३॥
एइमत रंगे ढङ्गे दुइ प्रियसखा । चलिलेन कृष्णकार्ये यार यथा वासा ॥१२४॥
भिक्षा करि आइलेन गौराङ्गेर स्थाने । प्रभु स्थाने आसि सभे थाकिला शयने ॥१२५॥
सकल जानेन प्रभु चैतन्य गोसाञि । जगन्नाथ- रूपे स्वप्ने गेला तान ठाञि ॥१२६॥
स्वपने देखेन विद्यानिधि महाशय । जगन्नाथ आसि हैला सम्मुखे विजय ॥१२७॥
क्रोधरूप जगन्नाथ-विद्यानिधि देखे । आपने धरिया तान चड़ायेन मुखे ॥१२८॥
दुइ भाइ मेलि चड़ मारे दुइ गाले । हेन दढ़ चड़ ये अङ्गुलि गाले फूले ॥१२९॥
दुःख पाइ विद्यानिधि 'कृष्ण रक्ष' बोले । 'अपराध क्षम' बलि पड़े पदतले ॥१३०॥
"कोन् अपराधे मोरे मारह गोसाञि" । प्रभु बोले "तोर अपराधेर अन्त नाञि ॥१३१॥
मोर जाति, मोर सेबकेर जाति नाञि । सकल जानिला तुमि रहि एइ ठाञि ॥१३२॥
तवे केने रहियाछ जातिनाशा-स्थाने । जाति राखि चल तुमि आपन-भवने ॥१३३॥
आमि ये करिया आछि यात्रार निर्वन्ध । ताहातेओ भाव अनाचारेर सम्बन्ध ॥१३४॥

॥ ११७ ॥ सो इन्होंने भी लोक व्यवहार छोड़ दिये व सब ही ब्रह्मरूप के अवतार हो गये ॥११८॥ ऐसे कहते हुए सब मार्ग हँसते २ परम हास्य आवेश में युक्त होकर जा रहे थे ॥ ११९ ॥ दोनों सखा हाथ में हाथ देकर हँस रहे थे और जगन्नाथ के सेबकों के आचारों में दोषारोपण करते जाते थे ॥१२०॥ सब दासों के स्वभाव को सब ही नहीं जानते, जितना अनुराग है उसे तो कृष्ण ही जानते हैं ॥ १२१ ॥ श्रीकृष्णचैतन्य (कृष्ण) अपने दास में भ्रम करा देते हैं और पीछे से सदय हृदय हो भ्रम को छेदन भी कर देते हैं ॥१२२॥ आप ही ने विद्यानिधि को भी भ्रम कराया और अब भ्रमछेदनकारी कृपा की बात सुनो ॥१२३॥ इस प्रकार रङ्ग, ढङ्ग से दोनों प्रिय सखा कृष्ण कार्य के निमित्त जहाँ जिसका निवास था वहाँ के लिये चल दिये ॥ १२४ ॥ सो भिक्षा करके श्रीगौरचन्द्र के स्थान में आये तथा उनके पास आकर सो गये ॥ १२५ ॥ श्रीचैतन्य सब जानते थे सो स्वप्न में जगन्नाथ रूप से उनके पास गये ॥१२६॥ बड़े उदार श्रीविद्यानिधि महाशय ने स्वप्न में देखा कि जगन्नाथ बलराम दोनों आकर सामने उपस्थित हुए हैं ॥ १२७ ॥ विद्यानिधि ने जगन्नाथ को क्रोधरूप में दर्शन किये और जगन्नाथ पकड़ कर उनके मुख पर थप्पड़ मारने लगे ॥ १२८ ॥ जगन्नाथ व बलराम दोनों भाई मिलकर दोनों गालों पर थप्पड़ मारते हैं और ऐसे दृढ़ थप्पड़ मारे हैं कि दोनों गालों में अँगली फूल आई ॥ १२९ ॥ अतः दुःखी होकर विद्यानिधि ने कहा "हे कृष्ण रक्षा करो और अपराध क्षमा करो इस प्रकार कहकर चरणों में गिर पड़े ॥ १३० ॥ तथा बोले प्रभो मुझे किस अपराध पर मारते हो तब जगन्नाथ ने कहा तेरे अपराध का तो अन्त ही नहीं है ॥ १३१ ॥ देख मेरी और मेरे सेवकों की तो कुछ जाति नहीं है इस जगह रहकर तुम सब कुछ जान गये हो ॥ १३२ ॥ तब तुम जाति नाश करने वाले स्थान में क्यों रहते हो ? जाति रक्षा के लिये तुम अपने घर चले जाओ ॥१३३॥ मैंने इस यात्रा का जो निर्बन्ध किया है उसमें

आमारे करिया ब्रह्म, सेवक निन्दिया। माण्डुया कापड़-स्थाने दोषदृष्टि दिया ॥१३५॥
स्वप्ने विद्यानिधि महाभय पाइ मने। क्रन्दन करेन शिर धरि श्रीचरणे ॥१३६॥
"सर्व अपराध प्रभु क्षम' पापिष्ठेरे। घाटिलूँ घाटिलूँ प्रभु बलिलुँ तोमारे ॥१३७॥
जे मुखे हासिलुँ प्रभु तोर सेवकेरे। से मुखेर शास्ति प्रभु भाल हैला मोरे ॥१३८॥
भाल दिन हैल मोर आजि सुप्रभात। मुख-कपोलेर भाग्ये बाजिल श्रीहाथ ॥१३९॥
प्रभु बोले तोरे अनुग्रहेर लागिया। तोमारे करिलूँ शास्ति सेवक देखिया" ॥१४०॥
स्वप्ने प्रेमनिधि प्रति प्रेम दृष्टि करि। देउले आइला दुइ भाइ-राम हरि ॥१४१॥
स्वप्न देखि विद्यानिधि जागिया उठिला। गाले चड़ सब देखि हासिते लागिला ॥१४२॥
श्रीहस्तेर चड़े सब फुलियाछे गाल। देखि प्रेमनिधि बोले "बड़ भाल भाल ॥१४३॥
येन कैलूँ अपराध, तार शास्ति पाइलुँ। भालइ करिला प्रभु अल्पे एड़ाइलुँ" ॥१४४॥
देख देख एइ विद्यानिधिर महिमा। सेवकेरे दया यत, तार एइ सीमा ॥१४५॥
पुत्र ये प्रद्युम्न-ताहानेओ हेन मते। चड़ नाहि मारेन ना फेलान श्रीहाथे ॥१४६॥
जानकी-रुक्मिणी-सत्यभामा-आदियत। ईश्वर ईश्वरी आर आछे कत कत ॥१४७॥
साक्षातेई मारे यार अपरध हय। स्वप्नेर प्रसाद शास्ति दृश्य कभू नय ॥१४८॥
स्वप्ने द ड पाय, किवा प्र भ हय। जागिले पुरुष सेइ दुइ किछु नय ॥१४९॥
शास्ति वा प्रसाद प्रभु स्वप्ने यारे करे। से यदि साक्षात लोके देखे फल धरे ॥१५०॥

भी अनाचार का सम्बन्ध तुमने मन में किया है ॥१३४॥सेवकों की निन्दा करके मुझे ब्रह्म कहा और माण्ड-युक्त वस्त्रों में दोषारोपण किया ॥१३५॥ स्वप्न में इस प्रकार श्रीविद्यानिधिजी मन में बड़ा भय पाकर श्रीचरणों में मस्तक को धरकर रोने लगे ॥१३६॥ प्रभो ! इस पापी के सब अपराध को क्षमा करो, हे प्रभो आप के आगे कहता हूँ मैं अपराधी हूँ, अपराधी हूँ ॥ १३७ ॥ प्रभो जिस मुख से मैं आपके सेवकों के प्रति हँसा था मेरे उस मुख को उत्तम दण्ड दिया ॥ १३८ ॥ मेरे लिये आज के दिन सुप्रभात हुआ जो मेरे मुख व कपोलों पर भाग्य से श्रीहस्त कमल का स्पर्श हुआ ॥ १३९ ॥ प्रभु ने कहा "तुम्हारे ऊपर अनुग्रह के निमित्त ही सेवक देखकर दण्ड दिया है ॥ १४० ॥ स्वप्न में प्रेमनिधि के प्रति कृपादृष्टि करके राम व हरि दोनों भाई मन्दिर में चले गये ॥ १४१ ॥ स्वप्न देखकर विद्यानिधि जग पड़े और गालों में थप्पड़ों के चिन्ह देखकर हँसने लगे ॥ १४२ ॥ श्रीहस्त के थप्पड़ों से सब गाल फूल रहे थे यह देखकर प्रेमनिधि बोले "बड़ा अच्छा हुआ" ॥ १४३ ॥ जैसा अपराध किया था उसका दण्ड भी पा लिया, प्रभो अच्छा किया थोड़े में ही अपराध दूर कर दिया ॥ १४४ ॥ विद्यानिधि की महिमा को देखो, अहो सेवकों के ऊपर जितनी दया है उसकी यही सीमा है ॥ १४५ ॥ अपने पुत्र प्रद्युम्न को भी इसी प्रकार अपने हाथ से न थप्पड़ मारे और न प्रेरणा ही की ॥ १४६ ॥ जानकी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि लेकर जितने ईश्वर व ईश्वरी हैं सो जिनका अपराध होता है उन्हें साक्षात् दण्ड देते थे परन्तु स्वप्न का अनुग्रह व दण्ड कभी दृश्य नहीं हुआ था॥१४७-१४८॥स्वप्न में चाहे दण्ड मिले अथवा अर्थ लाभ हो, परन्तु जागने पर दोनों से कुछ नहीं रहते॥ १४९॥प्रभु जिनको स्वप्न में दण्ड व अनुग्रह करते हैं यदि वह साक्षात् लोगों के दृष्टिगोचर होकर फल धारण करे तो

तारे बड़ भाग्यवान् नाहिक संसारे। स्वप्नेहो ना कहे किछु अभक्त जनेरे ॥१५१॥
साक्षाते से एइ सब बुझह विचारे। एइ ये यवनगणे निन्दा हिंसा करे ॥१५२॥
ताहाराओ स्वप्ने अनुभव मात्र चाहे। निन्दा हिंसा करे देखि स्वप्न नाहि पाये ॥१५३॥
यवनेर कि दाय, ये ब्राह्मण सज्जन। तारा यत अपराध करे अनुक्षण ॥१५४॥
अपराध हैले दुइ लोके दुख पाय। स्वप्नेहो अभक्त पापिष्ठेरे ना शिखाय ॥१५५॥
स्वप्ने प्रत्यादेश प्रभु करेन जाहारे। सेइ महाभाग्य हेन माने आपनारे ॥१५६॥
साक्षाते आपने स्वप्ने मारिल ताहारे। ए प्रसाद सभे देखे श्रीप्रेमनिधिरे ॥१५७॥
तबे पुण्डरीक देव उठिला प्रभाते। चड़े गाल फूलियाछे देखे दुइ-हाथे ॥१५८॥
प्रति दिन दामोदरस्वरूप आसिया। जगन्नाथ देखे दोंहे एक सङ्ग हैया ॥१५९॥
प्रत्यह आइसे स्वरूप से दिन आइला। आसिया ताहाके किछु कहिते लागिला ॥१६०॥
सकाले आइस जगन्नाथ दरशने। आजि शय्या हैते नाहि उठ कि कारणे ॥१६१॥
विद्यानिधि बोले भाइ एथाय आइस। कहिब सकल कथा, खानिक बइस ॥१६२॥
दामोदर आसि देखे-तान दुइ गाल। फुलियाछे चड़ चिह्न देखेन विशाल ॥१६३॥
दामोदरस्वरूप जिज्ञासे एकि कथा। केने गाल फुलियछे किबा पाइला व्यथा ॥१६४॥
हासिया बोलेन विद्यानिधि महाशय। शुन भाइ कालि गेल यतेक संशय ॥१६५॥
माण्डुया वस्त्रेरे ये करिलुँ अवज्ञान। तार शास्ति गाले एइ देख विद्यमान ॥१६६॥
आजि स्वप्ने आसि जगन्नाथ बलराम। दुइ-दण्ड चड़ायेन-नाहिक विश्राम ॥१६७॥
'मोर परिधान वस्त्र करिलि निन्दन'। एत बलि गाले चड़ायेन दुइ जन ॥१६८॥

संसार में उससे बड़ा भाग्यवान् नहीं है कारण कि दुष्टजनों से प्रभु स्वप्न में भी कुछ नहीं कहते॥१५०-१५१॥ साक्षात् में इन सब बातों को विचारकर समझ लेओ कि जो यवनगण निन्दा व हिंसा करते हैं वे भी स्वप्न में मात्र अनुभव चाहते हैं और निन्दा-हिंसा करते हैं तथापि स्वप्न में भी शास्ति नहीं पाते॥१५२ १५३॥यवनों की तो क्या बात, जो ब्राह्मण सज्जन हैं वे भी प्रत्येक क्षण में जितने अपराध करते हैं ॥१५४॥ सो अपराध करने पर दोनों लोकों में दुःख तो पाते हैं परन्तु प्रभु अभक्त पापियों को स्वप्न में भी शिक्षा नहीं देते॥१५५॥ प्रभु जिनको स्वप्न में प्रत्यादेश (प्रत्याख्यान) करते हैं वे अपने को बड़ा भाग्यशाली मानते हैं ॥ १५६ ॥ प्रभु ने स्वप्न में श्रीप्रेमनिधि को मारा इस अनुग्रह को सब लोगों ने साक्षात देखा ॥ १५७ ॥ तब प्रभात में श्रीपुण्डरीकदेव उठे और देखा कि दोनों हाथ के थप्पड़ों से गाल फूल रहे हैं ॥ १५८ ॥ प्रति दिन दामोदर-स्वरूप आते थे एवं दोनों एक साथ जगन्नाथ दर्शन करते थे॥१५९॥श्रीस्वरूप प्रतिदिन जैसे आते थे उसी तरह उस दिन भी आये और आकर उनसे कुछ कहने लगे ॥ १६० ॥ भाई जगन्नाथ दर्शन के लिये शीघ्र आओ, क्या कारण है जो आज शय्या से उठे नहीं ॥ १६१ ॥ तब विद्यानिधि ने कहा "अरे भाई यहाँ आओ एक क्षण बैठो सब प्रसंग कहूँगा" ॥१६२॥ दामोदर ने आकर देखा कि दोनों कपोल फूल रहे हैं और थप्पड़ों के चिन्ह विशाल देख पड़ते हैं ॥ १६३ ॥ दामोदरस्वरूप ने जिज्ञासा की कि यह क्या बात है गाल कैसे फूल गये क्या कोई व्यथा (बीमारी) हो गई है ॥ १६४ ॥ श्रीविद्यानिधि महाशय ने हँसकर कहा सुनो भाई कल समस्त संशय दूर हुआ ॥ १६५ ॥ माँडी वस्त्रों की जो अवज्ञा की थी उसका दण्ड यह कपोलों पर विद्यमान देख लो ॥१६६॥ आज स्वप्न में जगन्नाथ बलराम ने आकर दो घड़ी तक थप्पड़ मारे हैं और विश्राम नहीं

गाले बाजियाछे यत अंगुलेर अंगुरि । भाल मते उत्तरो करिते नाहि पारि ॥१६९॥
लज्जाय काहारेओ सम्भाषा नाहि करि । गाल भाल हइले से बाहिर हैते पारि ॥१७०॥
एत कथा अन्यत्र कहिते योग्य नहे । बड़ भाग्य हेन भाइ मानिल हृदये ॥१७१॥
भाल शास्ति पाइलुँ अपराध अनुरूपे । ए नहिले पड़िताङ महा-अन्ध कूपे ॥१७२॥
विद्यानिधि प्रति देखि स्नेहेर उदय । आनन्दे भासेन दामोदर महाशय ॥१७३॥
सखार सम्पदे हय सखार उल्लास । दुइ जने हासेन परमानन्द हास ॥१७४॥
दामोदरस्वरूप बोलेन शुन भाइ । ए मत अद्भुत दण्ड देखि शुनि नाइ ॥१७५॥
स्वप्ने आसि शास्ति करे आपने साक्षाते । आर शुनि नाहि, सबे देखिलूँ तोमाते ॥१७६॥
हेन मते दुइ सखा भासेन सन्तोषे । रात्रि दिन ना जानेन कृष्ण कथा रसे ॥१७७॥
हेन पुण्डरीक विद्यानिधिर प्रभाव । इहाने से गौरचन्द्र प्रभु बोले 'बाप' ॥१७८॥
पाद स्पर्श भये ना करेन गङ्गा स्नान । सबे गङ्गा देखेन, करेन जल पान ॥१७९॥
ए भक्तेर नाम लइ श्रीगौरसुन्दर । 'पुण्डरीक बाप बलि' कान्देन विस्तर ॥१८०॥
पुण्डरीक विद्यानिधि चरित्र शुनिले । अवश्य ताहारे कृष्ण पादपद्म मिले ॥१८१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चान्द जान । वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान ॥१८२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते अन्त्यखण्डे श्रीपुण्डरीकविद्यानिधिचरित्रवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

* समाप्तश्चायम् अन्त्यखण्डः *

* इति श्रीमद्वृन्दावनदासविरचितं श्रीचैतन्यभागवतं सम्पूर्णम् *

लिया ॥ १६७ ॥ मेरे पहरने के वस्त्रों की निन्दा करते हो यों कहकर दोनों भाई थप्पड़ मारने लगे ॥ १६८ ॥ जितनी अँगुलियों में अँगूठी थी वे सब कपोलों पर लगीं, परन्तु अच्छी प्रकार से पूछने भी नहीं पाया॥१६९॥ लज्जावश किसी से सम्भाषण नहीं करता हूँ गाल अच्छे होने पर बाहिर निकलूँगा ॥१७०॥ भाई यह कथा अन्य से तो कहने योग्य नहीं है मैं तो अपने हृदय में अहोभाग्य मानता हूँ ॥ १७१ ॥ अपराध के अनुरूप अच्छा दण्ड मिला है, यदि दण्ड न होता तो मैं महा अन्धकूर में गिर जाता ॥ १७२ ॥ विद्यानिधि के प्रति प्रभुस्नेह का उदय देखकर परम उदार दामोदर आनन्द में विभोर हो गये ॥ १७३ ॥ कारण कि मित्र की सम्पत्ति को देखकर मित्र को उल्लास होता है अतः दोनों परम आनन्दमय हास्य में हँस रहे थे ॥ १७४ ॥ श्रीदामोदरस्वरूप ने कहा "हे भाई सुनो, ऐसा अद्भुत दण्ड तो न देखा न सुना ॥१७५॥ स्वयं आकर स्वप्न में साक्षात् प्रभु दण्ड करें अन्य जगह तो नहीं सुना केवल तुम्हारे अङ्ग में देख रहा हूँ" ॥१७६॥ इस प्रकार पुण्डरीक विद्यानिधि व दामोदरस्वरूप दोनों सखा सन्तुष्ट होकर कृष्णचन्द्र की कथारूपी रस में डूबे रहते थे तथा दिन रात्रि का अनुसंधान नहीं होता था ॥ १७७ ॥ पुण्डरीक विद्यानिधि का ऐसा प्रभाव है और इसी कारण श्रीप्रभु गौरचन्द्र ने उनको "बाप" कहकर सम्बोधन किया था ॥ १७८ ॥ चरण छुवाने के भय से गङ्गा में स्नान नहीं करते थे केवल गङ्गा के दर्शन व गङ्गाजल पान करते थे॥१७९॥श्रीगौरसुन्दर इस भक्त के नाम को लेकर पुण्डरीक बाप ऐसा कहकर विशेषरूप से रोते थे ॥१८०॥ पुण्डरीक विद्यानिधि का चरित्र जो सुनेंगे उनको कृष्णचन्द्र के चरण-कमल अवश्य मिलेंगे ॥ १८१ ॥ श्रीवृन्दावनदास ठाकुर (ग्रन्थकार) श्रीकृष्णचैतन्य एवं नित्यानन्द चन्द्र को जानकर अर्थात् हृदय में धारण करके उनके चरण-कमल युगलों की महिमा गान करते हैं ॥ १८२ ॥

(अनुवादकर्त्ता—पण्डित रामलालजी)

- - - - - - - - - - - - - -

❀ श्री श्रीनित्यानन्दाष्टकम् ❀

शरच्चन्द्रभ्रान्ति स्फुरदमलकान्तिं गजगतिं, हरिप्रेमोन्मत्तं धृतपरमसत्वं स्मितमुखम् ।
सदाघूर्णन्नेत्रं करकलितवेत्रं कलिभिदं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ १ ॥
रसानामागारं स्वजनगणसर्व्वस्वमतुलं, तदीयैकप्राणप्रतिमवसुधाजान्हवापतिम् ।
सदा प्रेमोन्मादं परमविदितं मन्दमनसां, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ २ ॥
शची-सूनुप्रेष्ठं निखिलजगदिष्टं सुखमयं, कलौ मज्जज्जीवोद्धरणकरुणोद्दामकरुणम् ।
हरेराख्यानाद्वा भवजलधिगर्व्वोन्नतिहरं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ३ ॥
अये भ्रातर्नृणां कलिकलुषिणां किन्नु भविता, तथा प्रायश्चित्तं रचय यदनायासत इमे ।
व्रजन्ति त्वामित्थं सह भगवता मन्त्रयति यो, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ४ ॥
यथेष्टं रे भ्रातः ! कुरु हरि हरि ध्वानमनिशं,ततो वः संसाराम्बुधितरणदायो मयि लगेत् ।
इदं बाहुस्फोटैरटति रटयन् यः प्रतिगृहं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ५ ॥
बलात्संसाराम्भोनिधि-हरणकुम्भोद्भवमहो, सतां श्रेयः सिन्धून्नतिकुमुदबन्धुं समुदितम् ।
खलश्रेणीस्फुर्ज्ज त्तिमिरहरसूर्य्यप्रभमहं, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ६ ॥

जिनका मनोहर श्रीमुखमण्डल शरत्कालीन चन्द्रमा की अत्यधिक शोभा को तिरस्कार करता है, जिनकी परम सुविमल अङ्ग कान्ति अत्यन्त मनोहर रूप से शोभायमान है, जो मत्त मातङ्ग की भाँति मृदु मन्थर गति से गमन करते हैं, जो श्रीकृष्ण प्रेम में निरन्तर उन्मत्त हैं, जिनका श्रीअङ्ग विशुद्ध सत्वमय है, जिनका मुख कमल निरन्तर मन्दहास्य से शोभित है, जिनके नयन युगल निरन्तर चञ्चलायमान हैं,जिनके श्रीहस्त में मनोहर व्रज भाव पोषक (श्रीबलराम के गोचारण रस का पोषक) वेत्र शोभायमान है,उन कलिकल्मष ध्वंसकारी श्रीकृष्ण भक्ति कल्पतरु के मूलरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्व्वदा भजन करता हूँ ॥१॥ रससागर, निज जनगण के सर्वस्व, अतुलनीय, तदीयैक्य प्राण प्रतिम श्रीवसुधा और श्रीजान्हवादेवी के पति,निरन्तर प्रेमोन्मत्त, मन्द मानस वालों के परम ज्ञाता, भजन वृक्ष के बीजांकुर (मूलरूप) श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्वदा भजन करता हूँ ॥ २ ॥ शचीनन्दन गौरहरि के प्रिय, निखिल जगत् के इष्ट, कलिकाल में सुखपूर्वक निमग्न जीवों के उद्धार के लिये महाकारुण्य विस्तारकारी करुणासागर, हरिनाम ग्रहण के द्वारा भवसागर के उन्नत अभिमान को विध्वंसित करने वाले, भजन वृक्ष के बीजांकुर (मूलरूप) श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्वदा भजन करता हूँ ॥ २ ॥ "हे भाई ! निरन्तर हरि-हरि इस ध्वनि का यथेष्ट उच्चारण कर, तुम्हारा संसारसागर का तरणदाय (उद्धार का भार) हमने ले लिया है" इस प्रकार जो घर-घर में जाकर भुजा स्फालनों के द्वारा कहा करते हैं,भजन वृक्ष के बीजांकुर उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं सर्वदा भजन करता हूँ॥४॥ "अरे भैया, कलि कलुषित मनुष्यों की क्या गति होगी ? ऐसा प्रायश्चित्त बताइये जो कि यह सब अनायास ही तुम्हें प्राप्त कर सकें" इस प्रकार जो भगवान् श्रीगौरहरि के साथ मन्त्रणा करते हैं, भजन वृक्ष के मूलरूप उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का मैं सर्वदा भजन करता हूँ॥ ५ ॥ अहो ! संसार सागर का बलात

नटन्तं गायन्तं हरिमनुवदन्तं पथि पथि, व्रजन्तं पश्यन्तं स्वमपि नदयन्तं जनगणम् ।
प्रकुर्वन्तं सन्तं सकरुणदृगन्तं प्रकलनाद्, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ७ ॥
सुविश्राणं भ्रातुः करसरसिजं कोमलतरं, मिथो वक्त्रालोकोच्छलितपरमानन्दहृदयम् ।
भ्रमन्तं माधुर्य्यैरहह मदयन्तं पुरजनान्, भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥ ८॥
रसानामाधारं रसिकवरसद्वैष्णवधनं, रसागारं सारं पतिततितितारं स्मरणतः ।
परं नित्यानन्दाष्टकमिदमपूर्वं पठति य, स्तदंघ्रिद्वन्द्वाब्जं स्फुरतु नितरां तस्य हृदये ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्वृन्दावनदासठक्कुरविरचितं
श्री श्रीनित्यानन्दाष्टकं सम्पूर्णम् ।

पान करने में अगस्त्य ऋषि रूप, साधुओं के कल्याण समुद्र के उन्नतिकारक परम उदीयमान कुमुदबन्धु चन्द्रमारूप,खल श्रेणियों के विस्फुञ्जित अन्धकार पटल का नाश करने में सूर्य्य की भाँति प्रभाधारी, भजन वृक्ष के मूलरूप० ॥ ६ ॥ नृत्य परायण, गानशील, हरिहरि बोलते हुए पथ में गमन करने वाले, अपने को देखने वाले जनगण को गवाने वाले, दर्शन मात्र से करुणा दृगञ्चल द्वारा सब को परम सज्जन बनाने वाले, भजन वृक्ष के मूलरूप० ॥७॥ भ्राता श्रीगौरहरि के अत्यधिक कोमल कर-कमल को धारण करने वाले, परस्पर मुखावलोकन से उच्छलायमान परमानन्दित हृदय वाले, निज माधुर्य्य से पुरजनों को उन्मादित करते हुए भ्रमण करने वाले, भजन वृक्ष के मूलरूप०॥८॥रसों के भण्डार,श्रेष्ठरूप रसिक सद्वैष्णवों के परम धनरूप, रसों के सार सागर, श्रवणमात्र से पतित जन समूह का उद्धार करने वाला, श्रेष्ठ इस नित्यानन्द प्रभु के अष्टक का जो पाठ करेगा उसके हृदय में निरन्तर उन प्रभु के युगल चरण कमल स्फूर्त्ति होंगे ॥ ९ ॥

(अनुवादक)

प्रकाशक— **कृष्णदास.**

अनर्पितचरीं चिरात्
करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्वलरसां
स्वभक्तिश्रियम् ।
हरिः पुरटसुन्दरद्युति-
कदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे
स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥
(श्रीश्रीरूपगोस्वामिप्रभुः)

स्वदयितनिजभावं
यो विभाव्य स्वभावात्
सुमधुरमवतीर्णो
भक्तरूपेण लोभात् ।
जयति कनकधामा
कृष्णचैतन्यनामा
हरिरिह यतिवेशः
श्रीशचीसूनुरेषः ॥
(श्रीश्रीसनातनगोस्वामिप्रभुः)

श्री श्रीगुरुगौराभ्यां समर्पितमस्तु

Baba Krishna Das